कबीरपंथ और दरियापंथ (बिहार) का अध्ययन

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० राम कुमार वर्मा (पद्म भूषण)

प्रस्तुत कर्ता

सुरेश चन्द्र मिश्र, एम० ए०

हिन्दी - विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

१९६८

प्राक्कथन

मध्यकालीन साहित्य और उसकी साधना में कबीर पंथ और दरियापंथ का अपना विशिष्ट स्थान है। इन संतों की साधना में पुण्यतोया भागीरथी के सदृश अभिशप्त भारतीय जनता को अपनी धारा से पवित्र करने का अति स्तुत्य प्रयास किया है। यही कारण है कि इनके सिद्धान्त एवं साधनायें भारतीय आध्यात्मिक विचारधारा के समस्त सारग्राही तत्व अनुस्यूत हैं। अपनी तत्वानुभूति, आत्मदर्शन एवं सारग्राही प्रकृति के कारण उन्होंने आध्यात्मजगत् के सार भाग को आत्मसात कर लिया है। मध्यकालीन संतों का साहित्य साधना से मुखरित हुआ है, जिसमें समाज एवं देश के प्रति कल्याण एवं नवजागरण के लिए मार्ग प्रशस्त हुए हैं। इस दृष्टि से दोनों पंथों के संतमतानुयायियों का योगदान सर्वथा अनूठा सिद्ध हुआ है, उनके चरित्र पर एक उत्कृष्टकोटि के संत, समाज सुधारक एवं उपदेशक वाले व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है। मानवता के अवसान काल में इनकी साधना ने निराशमानव हृदय को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है, जिससे समस्त चेतन जगत् को एक नये सिरे से देखने के लिए दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। संतों का समग्र जीवन देश हित के चिंतन में उत्सर्ग हुआ है, जिसमें सामाजिक दोषों एवं उलझी हुई समस्याओं के लिए निराकरण प्रस्तुत किया गया, यही कारण है कि उनके काव्य पक्ष का उद्घाटन तो बहुत बाद में हुआ, जिसमें समस्त कौशल अयत्नसाधित प्रतीत होते हैं। हिन्दी साहित्य जगत् में सन्त-साहित्य पर विविध शोध कार्य सम्पन्न किये गये हैं, किन्तु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "कबीरपंथ और दरिया पंथ (बिहार) का अध्ययन" का विषय सर्वथा नया है। वैसे कबीर पंथी सिद्धान्त एवं साधना आदि के सम्बन्ध में डा० केदारनाथ द्विवेदी ने 'कबीर और कबीरपंथ का तुलनात्मक अध्ययन' में विशेष प्रकाश डाला है, जिससे मुझे कबीर पंथी विचारधारा को समझने में पर्याप्त सहायता मिली है और दरियापंथी मान्यताओं के लिए मुझे डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री के "संत कवि दरिया : एक अनुशीलन" से विशेष जानकारी हुई है। किन्तु दोनों पंथों का तुलनात्मक ढंग से अध्ययन करने का यह

प्रथम प्रयत्न है। यह मेरा सौभाग्य है कि हिन्दी जगत् के अधिकारी विद्वान् डा० रामकुमार वर्मा के कुशल निर्देशन में मैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उपस्थित कर सका हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। सर्वप्रथम अवतरणिका के अन्तर्गत संत-मत की पृष्ठभूमि के रूप में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का विवेचन उपस्थित किया गया है। प्रथम अध्याय में कबीर-पंथ का बिहार में विकास एवं उसका दरिया साहब पर प्रभाव का निरूपण किया गया है। दूसरे अध्याय में इन पंथों की साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें उनकी रचनाएं, वर्ण्यविषय, छंद, भाषा, अभिव्यंजना शैली, अलंकार - आदि की चर्चा हुई है। तृतीय अध्याय में उनके दार्शनिक सिद्धान्तों की तुलना की गई है जिसमें सत्पुरुष जीव, जगत् (सृष्टिनिर्माण) माया, मुक्ति, कर्म एवं पुनर्जन्म आदि का यथासाध्य चिंतन किया गया है जिसमें सत्पुरुष की कल्पना में उनकी समन्वयवादी विचारधारा सफल हुई है। इसकी कल्पना संतों ने एकेश्वर-वाद के रूप में की है, जिसमें उन्होंने बहुदेव वाद का भरपूर तिरस्कार किया है। उनके सत्पुरुष की कल्पना में हिन्दुओं का राम एवं मुसलमानों का अल्लाह समाहित हो गया है। इसे निर्गुण तथा अनवतारी सिद्ध किया गया है। इनकी रचनाओं में जिन अवतारी देवों की चर्चा प्रस्तुत की गई है उन्हें निरंजन का अवतार बताया गया है और सन्तों ने सत्पुरुष को अपनी साधना में शीर्ष स्थान प्रदान किया है। जीव को उन्होंने ईश्वर का अंश सिद्ध करते हुए अमर एवं सनातन सिद्ध किया है। जगत् का विकास दोनों पंथों ने सत्पुरुष से स्वीकार किया है और उसने सृष्टिच्छा को फलीभूत करने के लिए निरंजन एवं आद्या को जन्म दिया, जिनके साहचर्य से ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार अंडज की आद्या ने, पिंडज की ब्रह्मा ने, ऊष्मज की विष्णु ने और उद्भिज की सृष्टि शिव ने की। माया को इन संतों ने जगत् में प्रसरित समस्त द्वन्द्वों एवं क्लेशों का मूल कारण बताया है और माया द्वारा ही सृष्टि का समस्त विकास भी स्वीकार किया है। समस्त सुर, नर, मुनि, माया से घिरे हुए चित्रित किए गए हैं, इसीलिए संतों ने इस काया, माया, तथा समस्त पार्थिव जगत् की प्रीति एवं ममता को निःसार बताया है। माया के काम, क्रोध, मद लोभ एवं मोह आदि अस्त्र-शस्त्र बताये गए हैं जिनसे यह अखिल सृष्टि पर विजय प्राप्त करती है। यही कारण है कि दोनों पंथों ने माया का त्याग ही साधक की सफलता का मूल स्वीकार किया गया है।

माया की अपरम्पार महिमा का निराकरण विवेक एवं आत्म ज्ञान द्वारा ही सम्भव बताया गया है। मुक्ति के लिए भी संतों ने माया एवं जागतिक द्वन्द्वों से परे होना अनिवार्य बताया है, जब तक व्यक्ति जगत् के अनुरागात्मक सम्बन्धों से निर्लेप नहीं हो जाता तब तक मुक्ति नहीं सम्भव है, उनकी मुक्ति किसी स्थल अथवा लोक की कल्पना में विश्वास नहीं करती। इन संतों ने व्यक्ति की उत्कृष्टता का आधार कर्म को ही स्वीकार किया है,कर्म ही सुख एवं दुख के कारण है और इन्हीं से उनके जन्म विधान भी संचालित होते हैं।

चौथे अध्याय में इनके योग एवं स्वरोदय सम्बन्धी सिद्धान्तों की चर्चा उपस्थित की गई है। उनके योग पर भक्ति का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है। वे काया की कृच्छ साधना को तिरस्कृत कर समस्त बहिर्मुखी चित्तवृत्तियों को आत्मा में केन्द्रित कर देने में विश्वास करते हैं।उनकी यौगिक क्रियाओं का मूल मनोधारणा एवं ध्यानधारणा पर केन्द्रित हो गया है। वे अपनी एक एक श्वांस को ईश्वर प्रेम में अभिमुख कर देने में विश्वास करते हैं।

पांचवें अध्याय में उनके ज्ञान एवं भक्ति सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। ज्ञान के लिए वे तत्वानुभूति एवं आत्मदर्शन की स्थिति को महत्व देते हैं। भक्ति के लिए उन्होंने अपने आत्मदेव की उपासना में विश्वास किया है जिसके लिए उनकी भावभक्ति,सद्गुरु-प्रेम , अन्त:शुचिता एवं निष्काम कर्म ही सर्वस्व हैं। छठें अध्याय में उनके विधि एवं निषेध सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है , यही उनकी साधना के मुख्य अंग हैं। विधि में क्षमा,दया, धैर्य, संतोष, परोपकार, अहिंसा, विवेक आदि आते हैं और निषेध के अन्तर्गत काम, क्रोध, मद,लोभ, मोह, कपट, कनक, कामिनी, निन्दा , मद्य, मांस, मैथुन-सेवन, तीर्थ-व्रत, मूर्ति-पूजा तथा वर्णाश्रम धर्म आदि आते हैं। सातवें अध्याय में उनके लोकाचारों की तुलना प्रस्तुत की गई है। आठवें अध्याय में उपसंहार के रूप में दोनों पंथों के समस्त सिद्धान्तों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार संतों ने अपनी साधना द्वारा मानव जीवन के लिए एक ऐसी अमर एवं दिव्य ज्योति प्रदान की है,जिसके माध्यम से मानवता को जगत् की अस्थायी मान्यताओं से विमुख कर स्थायी उपलब्धियों की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

अन्त में उन समस्त विद्वज्जनों एवं महानुभावों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट

करता हूं, जिनसे मुझे किसी न किसी रूप में सहायता उपलब्ध हुई । शोध छात्रों के शुभचिन्तक डा० रामकुमार वर्मा का मैं सदा कृतज्ञ रहूंगा, जिनसे मुझे अपने दुष्कर कार्य में पूर्ण सहायता प्राप्त हुई और उनकी उदारता एवं संत स्वभाव के पति मैं सदा आभारी हूं । डा० पारसनाथ तिवारी द्वारा मुझे अध्ययन में सदा जो संरक्षण एवं निर्देशन प्राप्त हुआ है, उसका मूल्य शब्दों में नहीं आंका जा सकता, उनकी इस उदारता एवं कृपा के लिए मैं आजीवन ऋणी रहूंगा । डा० केदारनाथ द्विवेदी का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूं, जिनके शोध प्रबंध से मुझे कबीरपंथी मान्यताओं को समझने में सहायता प्राप्त हुई । डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री का हार्दिक श्रद्धा से स्मरण करता हूं जिनके "संतकवि दरिया: एक अनुशीलन" से मुझे दरिया पंथी सिद्धान्तों के लिए दिशा दृष्टि प्राप्त हुई । हस्तलेखों के संकलन में मुझे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के कर्मचारियों से जो सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं, विशेष रूप से श्री हवलदार-त्रिपाठी एवं श्री रंजनसूरिदेव का मैं आभारी हूं जिन्होंने मुझे सदा प्रोत्साहन प्रदान किया है । धरकंधा के महन्थ श्री ब्रजनन्दनदास एवं दरिया पंथीआश्रम , काशी के महंथ का मैं विशेष रूप से ऋणी हूं जिन्होंने मुझे 'ज्ञानदीपक' की एक प्रति प्रदान की और समय-समय पर यथोचित परामर्श भी प्रदान किया ।

श्री मेवालाल मिश्र के प्रति आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने टाइप के कार्य को यथा समय सम्पूर्ण किया है । अंत में मैं पुन: उन समस्त लेखकों एवं विद्वज्जनों के प्रति विशेष सम्मान प्रकट करता हूं, जिनकी पुस्तक एवं निर्देशन से मुझे सहायता मिली है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को उपस्थित करने में मैंने यथासाध्य सावधानी बर्ती है, किन्तु प्रमादवश किसी प्रकार कीत्रुटियां रह गयी हों तो मैं क्षमा प्रार्थी हूं ।

कार्तिक पूर्णिमा (सुरेशचन्द्र मिश्र)

संवत् २०२१ विक्रमी

४०९, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद ।

विषय-सूची

अवतरणिका

अतीत काल से ही भारत अपने अनन्त धर्म एवं धन के कारण सुविख्यात रहा है। यहाँ पर अनेक भारतीय अथवा अभारतीय जातियाँ संरक्षण प्राप्त करती रहीं, जिसके परिणाम-स्वरूप भारत-भूमि अनेकानेक धर्मों की जन्मदात्री बन गई। दुर्भाग्य की बात है कि विपुल धन एवं धर्म यहाँ के विकास, सुख, शांति एवं सुरक्षा के लिए अभिशाप बन गये। यही कारण है, भक्ति आन्दोलन के पूर्व की समस्त परिस्थितियाँ इतिहासजगत् में एक अपूर्व घटना के रूप में समझी जा सकती हैं।

अनादि काल से ही भारतवर्ष जातियों, कबीलों, नसलों एवं घुमक्कड़ खानाबदोशों के विशाल झुण्ड का केन्द्र बना था। किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, आभीर, शुङ्ग, यवन, खस, शक आदि अनेक जातियाँ यहाँ समय-समय पर आईं। किन्तु भारतीय संस्कृति की उदारता ने इन सब को शीघ्र ही आत्मसात् कर लिया। इन सबके सहयोग से भारत के सुख, शांति एवं ऐश्वर्य में पर्याप्त मात्रा में अभिवृद्धि हुई, किन्तु ऐसी ही अवस्था में भारत के दुर्दिन भी अतिसन्निकट थे, क्योंकि मुसलमानों का प्रवेश भारत में दुख कीवषाति के रूप में हुआ, जिनके मजहब की महत्वाकांक्षा के सम्मुख भारत की समस्त गति स्थिर सी हो गई, इसका कारण है कि भारतीय अपने विरोधी जातियों की सभ्यता एवं संस्कृति को पचा न सके, और दूसरी ओर मुसलमान आक्रान्ताओं को अपने स्वप्न को साकार करने के लिए जिन अमानुषिक प्रसाधनों का सहयोग लेना पड़ा, वह इतिहास में सदा रोमांचकारी सिद्ध होगा। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "मुसलमानी धर्म एक मजहब" है। भारतीय समाज-संगठन से बिल्कुल उल्टे तौर पर उसका संगठन हुआ था। भारतीय समाज जातिगत विशेषता

एक था व्यक्तिगत धर्म-साधना का पक्षपाती था, इसलाम जातिगत विशेषता को लोप करके समूह-गत धर्म-साधना का प्रचारक था । एक का केन्द्रबिन्दु चारित्र्य था, दूसरे का धर्म मत । भारतीय समाज में यह स्वीकृत तथ्य था कि विश्वास चाहे जो भी हो, चारित्र्य शुद्ध है तो व्यक्तिश्रेष्ठ हो जाता है, फिर चाहे वही किसी जाति का भी क्यों न हो । मुसलमानी समाज का विश्वास था कि इसलाम ने जो धर्म-मत प्रचार किया है, उसको स्वीकार कर लेने वाला ही अनन्त स्वर्ग का अधिकारी है, जो इस धर्म को नहीं मानता, वह अनन्त नरक में जाने को बाध्य है ।"[1]

भक्ति आन्दोलन की पूर्वपीठिका मात्र अपने दु:ख एवं निराशा की कहानी है, जिसमें भारतीयों को दीर्घकाल तक बर्बर एवं निरंकुश जातियों के कुठाराघात एवं अपमान का दुर्लक्ष्य बनना पड़ा । यहाँ तक कि इनके अनैतिक एवं अमानुषिक व्यवहारों के कारण उनका जीना भी दूभर हो गया । भारत पर सर्वप्रथम आक्रमण मुहम्मद बिनकासिम का हुआ, इसके अनन्तर गजनी एवं गोरी के आक्रमण तो भारत के पर्व तक नींव हालने में सफल सिद्ध हुए । इनके आक्रमण ने भारत की समुन्नत सभ्यता एवं कला को धूल धूसरित कर दिया, साथ ही इनसे अपार धन एवं जन की क्षति हुई । स्मिथ लिखता है कि " प्राचीन सभ्यता के कई अन्यतम आदर्श मुसलमानों के प्राथमिक आक्रमण के युग में ही समाप्त हो गये ।[2] गोरी के पश्चात् उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (सं० १२६३ – १२७३) ने गुलाम वंश की स्थापना की, किन्तु इससे भी भारत की पतनोन्मुख परिस्थिति के लिए बल ही प्राप्त हुआ । इसके अनन्तर अलाउद्दीन खिलजी (सं० १३५२–१३७२) ने खिलजीवंश की स्थापना की, इसकी निरंकुशता एवं निष्ठुरता ने भारत की बची खुची आशा पर भी तुषारापात कर दिया, इसकी निर्दयता तो जगत् प्रसिद्ध है, जिससे भारतीयों का जीवन और भी संकटमय एवं आपदग्रस्त हो गया । इसके शासनकाल में कृषिक्षेत्रों पर खून एवं पसीना एक कर देने वाले कृषकों की जो दुर्दशा की गई, वह एक अभूतपूर्व घटना थी, क्योंकि

---

१. कबीर, पृ० १७२, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

२. आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, वि० स्मिथ, पृ० २२६

उनके अन्नोत्पादन का सर्वाधिक अंश राज्यकोष में जमा करा लिया जाता था, जो भारत अतीत से ही अपने धन एवं वैभव के लिए आदर्श था, वह एक-एक दाने के लिए तरसने लगा। हिन्दुओं के घर सोने चांदी रखने की बात तो दूर रही जीवन में काम आने वाली अति साधारण वस्तुओं का रखना भी मुसलमानों की आंख में खटकने लगा। उन्हें किसी भी उत्सव एवं त्योहार को प्रसन्नता के साथ सम्पन्न करने के लिए किसी प्रकार की स्वतन्त्रता न प्राप्त हो सकी। साधारण अपराधों पर भी जीते जी खाल निकलवा लेना तो इन सम्राटों के लिए सहज बात सिद्ध हुई। इस प्रकार के दण्ड केवल अपराधियों को ही नहीं, प्रत्युत इसलाम धर्म अस्वीकार करने वालों को भी दिये जाते थे। कितने हिन्दुओं को इसलाम धर्म इन्हीं दण्डविधियों की कटुता के कारण स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार का कष्ट केवल हिन्दुओं को ही नहीं था, क्योंकि मुसलमानों की भी दशा विशेष संतोषजनक न थी, धर्म के आधार पर शिया सुन्नी में विद्वेष एवं मनोमालिन्य की भावना परस्पर बनी ही रही। शासन प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा ने इसलाम संस्कृति में कम हत्या के उदाहरण न प्रस्तुत किये, क्योंकि अल्तमश ने आरामशाह एवं नसिरुद्दीन ने अपने कई भाइयों को अपदस्थ कर राज्य प्राप्त किया, इसी उपक्रम में रजिया एवं उसके प्रेमी की हत्या हुई। अलाउद्दीन ने तो राज्य प्राप्ति की मधुराकांक्षा से प्रेरित होकर अपने चचा एवं श्वसुर का बध किया। इसीप्रकार उसकी भी हत्या गुलामों द्वारा हुई। निर्गुण भक्ति के प्रवर्त्तक कबीर के समकालीन लोदी सम्राटों के अत्याचारों की रक्तरंजित कहानियों से भारतीय इतिहास के पृष्ठ रंगे हुए हैं। इस प्रकार स्वार्थ साधन एवं राज्याकांक्षा से उत्प्रेरित होकर अपने परिजनों की हत्या के अनेकानेक षड्यंत्रों से सम्पूर्ण मध्यकालीन इतिहास ओत-प्रोत है।

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रशासन सम्बन्धी समस्त दोष इन दुराग्रही सम्राटों में प्रविष्ट हो गये। इन्हीं दुष्परिणामों के कारण शान-शौकत, दुराग्रह, विलासिता, हिंसा, उत्पीड़न एवं शोषण आदि विनाशमूलक कुरीतियाँ देश में विस्तार पाने लगीं। भारत के इन विलासप्रिय असभ्य-शासकों के खोखलेपन ने राष्ट्र के आत्मबल रूपी सारिका के पंख नोच डाले, मानवता

कराह उठी, मात्र उसके कंकाल ही अवशेष रह सके, ऐसी उथल-पुथल एवं आपत्तिजनक स्थिति में परतंत्रता के कटु पाश में आबद्ध हिन्दुओं का समस्त वेग एवं विवेश शून्य पड़ गया। डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के शब्दों में हम कह सकते हैं कि -" हिन्दू जाति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निराशा का अनुभव कर रही थी। गजनवी, गोरी, गुलाम खिलजी, तुगलक, लोदी और मुगल सभी तो मूर्ति-भंजक के रूप में भारतीय जनता के समक्ष प्रकट हुए।"....... देश की इस विषम परिस्थिति में एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी जो देश के निवासियों को अंधकार में प्रकाश, निराशा में आशा की ज्योति दिखा सके[१]।"

सामाजिक दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय जनता में वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी। जहां तक जातीय कट्टरता का प्रश्न है, उसका प्रमाण स्वामी रामानन्द एवं कबीर स्वयं हैं, जनश्रुति के आधार पर रामानन्द स्वयं कबीर को निम्न वर्ण में जन्म धारण करने के कारण अपनी शिष्य-परम्परा में ग्रहण करने के लिए अयोग्य समझते थे, इसी प्रकार समस्त हिन्दूजाति में दिनों दिन जातिगत जटिलताएं द्विगुणित हो रही थीं। वैसे पद एवं धन की लोलुपता ने कितने हिन्दुओं को इसलाम धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया, इतना ही नहीं अपितु कितनी हिन्दू कन्याएं मुसलमानों के साथ ब्याही गईं। इस प्रकार हिन्दुओं की विवेक शून्यता ने उनमें संकुचित वृत्ति एवं स्वयं सिमटने की प्रवृत्ति के बीज अंकुरित किये। समाज में अनेक जातियों एवं धर्मों के विस्तार के साथ, बढ़ती हुई जन-संख्या में नाना प्रकार की कुरीतियां और दुष्प्रवृत्तियां भी जन्म लेने लगीं। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव एवं शाक्त साधनाओं की विभिन्न सम्प्रदायगत मान्यताओं ने जातिगत वैचारिक मतमतांतरों का तांता सा बांध दिया, इसी प्रकार गुरुओं की शिष्य परम्परा ने भी समाज में विभिन्न वर्गों को जन्म देने में सहयोग किया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि -" कबीर साहब के सामने वास्तव में एक बहुत बड़ी समस्या थी, जिसका निराकरण करना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक था। धर्म के क्षेत्र में न केवल हिन्दू तथा मुसलमान दो वर्गों में बंटकर आपस में लड़ भिड़ रहे थे, अपितु यती, जोगी, सन्यासी, साक्त, जैन, शैव, काजी भी सर्वत्र अपनी हांक रहे थे। सभी अपने को सत्य मार्ग का पथिक मानकर एक दूसरे के प्रति घृणा तथा द्वेष भाव

---

१. सन्त चरनदास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पृ० ६

रखते थे।[१]

कालान्तर में वर्णव्यवस्था ने अपना इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि समाज में विभिन्न मत मतान्तरों का एक सुविशाल जाल-सा बिछ गया, इसी बीच वर्णाश्रम धर्म के मूल स्तम्भ ब्राह्मण वर्ग का प्राबल्य समाज की ह्रासोन्मुखी परिस्थिति को और भी अस्त-व्यस्त करने में विशेष सफल सिद्ध हुआ। इन जटिलताओं के कारण भारतीय संस्कृति संरक्षित तो अवश्य हुई, किन्तु सामाजिक शक्ति विशृंखलित होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त सी हो गई, जिसके परिणामस्वरूप सामूहिक शक्ति का समूल विनाश हुआ। मुसलमानों की एकता पर्याप्त दिनों तक कायम न रह सकी, विदेशियों के आगमन से भारत में एक ईरानी संस्कृति का आविर्भाव हुआ। इन सब के कुप्रभाव के कारण समाज में अंधविश्वास, मिथ्याविलास, स्वार्थपरता ने मानवीय विकास के समस्त मार्गों को अवरुद्ध सा कर दिया। इस प्रकार समाज में द्वन्द संघर्ष एवं वैमनस्य का प्राबल्य हो उठा, जिसके कारण देश में आसुरी वृत्तियों का महोदधि तरंगायित हो उठा, समाज की इस द्वैत एवं द्विधा की अस्त-व्यस्त परिस्थिति में युग को एक ऐसे स्रष्टा की अपेक्षा थी, जो कि समाजगत समस्त विषमताओं का उन्मूलन कर समन्वयवादी विचारधारा के माध्यम से भारत की श्रांत, विक्षुब्ध एवं निराश जनता में नवजागृति उत्पन्न कर उसे सन्मार्ग की ओर उन्मुख करता।

काल के निर्मम कुठाराघात के कारण समाज में जिस निराशजनक परिस्थिति का उद्‌भव हुआ, उसी का परिणाम है कि समग्र जनता आपत्ति एवं संकटमय परिस्थिति से विकल होकर ईश्वर में आस्था एवं विश्वास रखने के लिए विह्वल हो उठी, किन्तु ऐसी अवस्था में जहां धर्मोत्थान के लिए विशेष सतर्कता बर्ती गई, वहीं पर विविध धार्मिक रूढ़ियों के बीज भी अंकुरित होते देखे जाते हैं। भारतीय जनता में धर्म के प्रति एक नव जागृति उत्पन्न हो गई, जिसमें समग्र जनता में धर्म के प्रति एक अपूर्व सनसनी देख पड़ती है, इसीलिए इस कर्मगत दूरारूढ़ कल्पना से कोई व्यक्ति अछूता न रह सका। वर्णाश्रम धर्म के महापुजारी ब्राह्मणों से उन्होंने धर्म सम्बन्धी

---

१. उत्तरी भारत की संतपरम्परा, पृ० १८२-१८३, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

दार्शनिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं के प्रति जमकर विचार विमर्श करना प्रारम्भ किया । सुदूरकाल से अपदस्थ शूद्रवर्ग भी इस धर्मगत चेतना से उत्प्रेरित हुआ, यही कारण है कि कबीर, रैदास आदि महात्मा भक्तिभूमि पर पदार्पण कर अपने यथोचित अधिकार के लिए अग्रसर हुए । आगे चलकर तुलसी के समय में जो स्थिति हो गई थी; उससे हम इसकी पूर्व पीठिका का अनुमान लगा सकते हैं :-

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर, आँखि देखावहिं डाटि ।।

—— रामचरित मानस उत्तरकांड, दोहा ६६ (ख)

तुलसी के उपर्युक्त दोहे से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शूद्र भी अपनी प्रतिष्ठा के प्रति समाज में कितना जागरूक हो उठा था । उन्होंने तत्कालीन धर्मगत परिस्थिति का बड़ा ही जीता जागता चित्र उपस्थित किया है :—

(क) बेदधर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए ।
साधु सीधमान जानि रीति पाप पीनकी ।

—— कवितावली, उत्तरकांड, छन्द १७७

(ख) गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग

—— कवितावली, उत्तरकांड, छन्द ८४

(ग) जाकें नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ।

—— रामचरित मानस,उत्तरकांड,६७-८

(घ) असुभ बेष भूषन धरें भच्छा भच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ।।

—— रामचरित मानस, उत्तरकांड, दोहा ९८ क

इन सब के आधार पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि धर्म के क्षेत्र में वितंडावाद और अस्तव्यस्तता का प्राधान्य था । किन्तु अनेक संतों ने उसमें व्यवस्था लाने का प्रयास किया । इसी प्रकार की नैतिकता तथा आत्मबल गोरखनाथ, कबीर तथा उनके परवर्ती सूफियों में प्राप्त होता है, जिनमें बाह्याचार एवं दुरा-चार का तिलमात्र भी प्रवेश न हो सका और आचरण की शुद्धता एवं जीवन के संयम

की गवेषणा ही इनका मूल विषय था ।

मुसलमानी शासकों द्वारा हिन्दुओं पर इतने अधिक कर लगाये कि उनकी कमर टूट गई, जजिया कर इसी प्रकार का कर था । धार्मिक स्वतन्त्रता की बात तो बहुत दूर रही, प्रत्यक्ष ही हिन्दुओं के धर्म पर आघात किया गया । मन्दिरों एवं देव मूर्तियों को तोड़वा कर उनके स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाना तो इस्लाम सरदारों के लिए सर्व साधारण बात सिद्ध हुई । डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में हम कह सकते हैं कि " ऐसे अनिश्चित काल में हिन्दू जनता के हृदय में जिस भय एवं आतंक को स्थान मिल रहा था, वह उनके धर्म को जर्जरित कर रहा था । धर्म की रक्षा करने की शक्ति हिन्दुओं के पास रह ही न गई थी ।"[१]

ऐसी अवस्था में भारत-भूमि में नाना प्रकार की साधना पद्धतियों का विकास हुआ । सिद्धों की गुह्य साधना के कारण जिस प्रकार के मतमतांतरों का विकास हो रहा था, साधना के उसी मार्ग को शैव, शाक्त, गाणपत्य एवं वैष्णव सम्प्रदायों ने अपने-अपने ढंग से सुविधानुसार स्वीकार किया, परिणामत: वैदिक धर्म शीघ्र ही ह्रासोन्मुखी हुआ । इसी समय विशेष रूप से बौद्ध धर्म एवं वैष्णवधर्म का प्रचलन हुआ । कालान्तर में बौद्धधर्म हीनयान एवं महायान नामक दो शाखाओं में विभाजित हो गया । हीनयान शाखा में प्रविष्ट हुए आचार व्यवहार की विधियों की दुरूहता के कारण इसे देश का यथोचित सहयोग न मिल सका, और दूसरी ओर महायान अपनी सरलता के कारण ही समाज में यथेष्ट आदर का पात्र समझा गया, किन्तु यह भी शीघ्र तिरोभूत हो गया, तदनन्तर शांकर मत का प्राबल्य हुआ, जिससे जनता आकर्षित हुई, अभी अशिक्षित जनता में महायान का प्रचार चल ही रहा था, इसीलिए अवसर पाकर महायान ही मंत्रयान के नाम से पुन: अभिवृद्धि की ओर अग्रसर होने लगा, जिसमें नाना मंत्रों को प्रश्रय मिला, इसी से वज्रयान की उत्पत्ति हुई, जिसमें ८४ सिद्ध दीक्षित हुए, इन्होंने कर्मकाण्ड, वर्णाश्रम

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ० २०१
डा० रामकुमार वर्मा

धर्म, मूर्तिपूजा के प्रतिपूर्ण उदासीनता प्रकट कर गुरु माहात्म्य एवं एकेश्वरवादी विचारधारा के प्रति पूर्ण आस्था प्रकट की । आगे चल कर बारहवीं शताब्दी में श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया, जिसमें शंकर के अद्वैतवाद की अपेक्षा भक्ति पर अधिक बल दिया गया । कबीर के पूर्ववर्ती स्वामी रामानन्द, रामानुजाचार्य की परम्परा में हुए, जो कि पहले जाति बन्धन स्वीकार करते थे, किन्तु कुछ समय के अनन्तर ही धर्म को जाति निर्पेक्ष्य समझते हुए, उन्होंने सभी के लिए भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया ।

इस प्रकार धार्मिक क्रान्ति के पूर्व का वातावरण एक ऐसे युग की प्रतीक्षा में अक्षत पुष्प लेकर खड़ा था, जिसमें भक्ति चेतना रूपी मन्दाकिनी अपनी स्निग्ध धारा को प्रवाहित कर जन-मानस के समस्त दोषों का परिहार करती, यही कारण है कि इन संत साधकों द्वारा सम्पूर्ण जनता को जो एक मूर्त चेतना एवं अमर संदेश दिया गया, वह है समन्वयवादी विचारधारा । डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि " हिन्दू धर्म पर आघात होते ही यद्यपि जनता विचलित हो उठी, तथापि आत्मरक्षा के विचार से किसी अंश तक हिन्दुओं ने भी इसलाम धर्म के समझने की चेष्टा की । फलत: धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने का सूत्रपात एक ऐसे रूप में प्रारम्भ हुआ जिसने हमारे साहित्य में एक नवीन धारा की ही सृष्टि कर दी । यह नवीन धारा संत काव्य के रूप में प्रवाहित हुई ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतमत के लिए तत्कालीन परिस्थितियां पूर्व से ही एक उर्वर भूमि प्रशस्त कर रखी थीं, जिसमें संत विचारधारा के बीज पड़ते ही सहज रूप से अंकुरित हो उठे, इतना ही नहीं, अपितु कालान्तर में ये इतने उन्नतिशील हुए कि इनकी शीतल छाया के तले अतीत से चली आती हुई, निराश एवं संत्रस्त जनता में एक अपूर्व साहस, शांति एवं नव सम्बल उपलब्धहुआ और सब को एक नये सिरे से देखने के लिए एक दिव्य ज्योति एवं अलौकिक शक्ति प्राप्त हुई ।

संत मतरूपी पावन मन्दाकिनी को प्रवाहित करने का सर्वाधिक श्रेय

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ० २०५..
डा० रामकुमार वर्मा

संत कबीर की है, जिनके भगीरथ प्रयास से अतीत से चली आती हुई अंध परम्परा, अत्याचार एवं शोषण आदि कुरीतियों का समूल विनाश हुआ । वे प्राचीनकाल से चली आती हुई धार्मिक परम्पराओं को एक नया मोड़ देने में सफल हुए । इसीलिए उन्होंने उपनिषदों के अद्वैतवाद, शंकर के मायावाद, वैष्णव की भक्ति साधना एवं अहिंसा, वज्रयानी एवं नाथपंथी हठयोग, रहस्यवाद, जातिपांति एवं कर्मकाण्ड के खण्डन, सूफियों की माधुर्य भक्ति और इस्लाम के समन्वयवादी विचार धारा का गहन अध्ययन कर इन्हीं के सारस्वरूप अपने निर्गुण मत का ताना बाना बुना । इसी निर्गुण मत के माध्यम से भारतदेश में रामराज्य की कल्पना की गई, जिसमें सम्पूर्ण देश में भाई चारे एवं ' वसुधैव कुटुम्बकम् ' का पाठ पढ़ाया गया ।

मध्यकालीन हिन्दी काव्यधारा संत कबीर (१५ वीं शती वि०) से लेकर शिवदयाल साहब (२० वीं शती वि० पूर्वार्द्ध) तक अर्थात् लगभग ५०० वर्ष की विशाल अवधि के मध्य विशेष जागृति एवं आध्यात्मिक चिंतन पद्धति के अनुसार साहित्यिक सृजन गतिमान रहा, जिसमें सभी संत कवियों ने साधना पर बल दिया है, यद्यपि साधना मार्ग में कुछ अन्तर देखा जा सकता है, किन्तु मूलोद्देश्य में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है । निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत आध्यात्मिक चिंतन के परिणामस्वरूप ईश्वर की ऐसी मान्यता स्वीकार की गई, जिसमें जातिगत जटिलता कोई सीमा रेखा न खींच सके, और सब एकेश्वरवाद के प्रवाह में बह चलें । दीर्घकाल से चली आती हुई आपत्तिसूचक विषमताएं जो मानव-जीवन के लिए एक प्रश्न चिह्न के रूप में उपस्थित हो चुकी थीं, उन सब का समाधान बड़े ही विवेकपूर्ण ढंग से किया गया और भक्ति के क्षेत्र में सदा से पद दलित अशिक्षित एवं निम्नवर्ग के लिए भी समस्त विरोधी एवं बाधक तत्त्वों को समाप्त किया गया । कबीर की दृष्टि में, जब कि सब मनुष्यों का जन्म एवं मरण सब एक है, तब वैषम्य के लिए कोई उचित आधार नहीं । इसीलिए वे कहते हैं :—

एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा ।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बांम्हन कौन सूदा ।।
माटी का प्यंड सहजि उतपनां, नाद ब्यंद समांनां ।
बिनसि गयां थैं का नाव धरिहौ, पढ़ि गुनि ह्रंम जांनां ।।
रजगुन ब्रह्मा तम [illegible] संकर, सतगुन हरि है सोई ।
कहै कबीर [illegible] जपहु रे, हिंदू [illegible] ।।

कबीर ने समस्त जीवों में आत्मौपम्य की भावना कूट-कूट कर भरने के लिए ही सब में एक ईश्वर का वास स्वीकार किया है, जिससे किसी भी प्रकार से द्वैत एवं द्विधा की परिस्थिति उत्पन्न न हो :—

जे मेरे जीव दोइ जांनत हों, तौ मोहि मुकति बताओ ।
एकमेक रमि रह्या सबनि में, तौ काहे भरमावौ ।।
तारण तिरण जबै लग कहियै, तबलग तत न जांनां ।
एक रांम देख्या सबहिन में, कहै कबीर मन मांनां ।। ५२ ।।

— कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०५ (सभा)

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार "कबीर ने तत्कालीन परिस्थितियों का बल एकत्र कर युगधर्म को पहचान कर एक निर्भीक सम्प्रदाय की सृष्टि की जिसमें 'एकेश्वरवाद' और 'समत्व सिद्धान्त' की प्रमुख भावना थी । एक ईश्वर की दृष्टि में 'कीड़ी' और 'कुंजर' समान हैं, ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई भेद नहीं दोनों में एक ही ब्रह्म की ज्योति है जिस प्रकार काली और सफेद गाय में एक ही रंग का दूध है ।"[1]

प्राचीनकाल से ही ईश्वरानुभूति के लिए ग्रन्थ ज्ञान को प्रतिष्ठा दी गई है, किन्तु इनका तात्त्विक विवेचन करने पर पता चलता है कि इस प्रकार के ज्ञान से उस चिरंतन सत्य की परख सम्भव नहीं । पुराणकाल से ही ग्रन्थ ज्ञान का प्रचार बड़े ही धूमधाम से चला आ रहा था, किन्तु उचित विवेक न होने के कारण ऐसे ज्ञानी आचरण भ्रष्ट होकर समाज के वातावरण को दूषित कर रहे थे, इसीलिए ऐसे ज्ञान के प्रति पूर्ण उदासीनता प्रदर्शित करते हुए संतमतावलम्बियों ने अनन्त साधना एवं तपश्चर्या के पश्चात् उत्पन्न होने वाले आत्मज्ञान पर जोर दिया है । कबीर ने स्पष्ट कहा है :—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ।।

---

१. संत कबीर, पृ० २३, डा० रामकुमार वर्मा

इसीलिए कबीर की साधना में जो भक्ति एवं साधना के सिद्धान्त निरूपित किये गये, वे शास्त्रीय ज्ञान से सर्वदा अछूते ही बने रहे, क्योंकि उनके जीवन में सत्य का समावेश था, जिसे उन्होंने अन्तरानुभुति द्वारा प्राप्त की थी। निर्गुणोपासना एक मात्र बुद्धि एवं हृदय के संधि की आवश्यकता रखती है, जिसमें व्यावहारिक पक्ष ही महत्त्वपूर्ण है, और पाखंड एवं बाह्याडम्बर की लेशमात्र गुंजाइश नहीं। आत्मानुभूति द्वारा उपलब्ध पवित्र ज्ञान,एवं अन्य साधना पद्धतियों के सदृश जीवन में अंधकार का बहुत बड़ा तूफान नहीं आने देता, अपितु अन्तःशुचिता एवं अतुल साधना में विश्वास रखता है। जो व्यक्ति मुर्तिपूजा, तीर्थ-व्रत, नमाज एवं काबा-कर्बला आदि पाखण्ड पूर्ण धर्म विधियों में विश्वास करता है,उनके प्रति कबीर ने, पूर्ण उदासीनता प्रकट करते हुए अन्तरतम में अवस्थित आत्मा रूपी परमात्मा की परख के लिए संकेत किया है :—

अल्लह रांम जिऊं तेरे नांई।
बंदे ऊपरि मिहिरि करो मेरे सांई।। टेक।।
क्या ले माटी (मुड़ी ?) भुइंसों मारें क्या जल देह न्हवाएं।
खून करें मिसकीन कहावे गुनही रहे छिपाएं।।१।।
क्या उजू जप मंजन कीएं क्या मसीति सिरु नाएं।
दिल महिं कपट निवाज गुजारे क्या हज काबे जाएं।।२।।
बांमन ग्यारसि करे चोबीसों काजी मह (माह ?) रम जांनां।
ग्यारह मास कहों क्यूं खाली एकहि मांहि निःयांनां।। ३।।
जो रे खुदाई मसीत बसतु है और मुलुक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम निवासी दुहुं महिं किनहुं न हेरा।।४।।
पूरब दिसा हरी का बासा पच्छिम अलह मुंकामा।
दिल महिं खोजि दिले दिल खोजहु इहंई रहीमां रांमां।।५।।

—कबीर ग्रन्थावली (परिषद्), पृ०१०३

इस प्रकार भक्ति के क्षेत्र में समन्वयवादी दृष्टि से जिन सद्सिद्धान्तों की कल्पना की गई,उससे किसी भी हिन्दू अथवा मुसलमान को प्रतिशोध करने का अवसर न मिला, क्योंकि संत मतानुयायियों द्वारा जिन दुष्प्रवृत्तियों की अवहेलना की

गई, वह किसी भी नैतिक उद्देश्य की पूर्ति एवं जीवन में कल्याण तथा विकास के स्वप्न को साकार करने के लिए हेय सिद्ध होती, इसीलिए जीवन में इनके द्वारा संधि के जो सुझाव उपस्थित किये गये, यदि समग्र जनता उसको उचित मूल्य न दे सकी तो उसका किसी प्रकार विरोध भी न किया। उन्होंने समस्त धर्मों का लोप करके एक उत्कृष्ट 'मानव धर्म' की स्थापना की, जिसमें चेतन जगत् के छोटे से छोटे जीव एवं महान् से महान् व्यक्ति के लिये दया परोपकार एवं आत्मोपम्य का एक उत्कृष्ट पाठ तैयार हुआ।

जीवन साम्य के लिए संत कवियों ने जिस प्रबल आधार का अवलम्बन लिया, उस पर पहुंचते-पहुंचते मुसलमानों की काबा तीर्थस्थली काशी बन गई एवं राम रहीम बन गया :—

काबा फिर कासी भया, रामहि भया रहीम।

— कबीर ग्रन्थावली (परिषद्) साखी १०,२१०

संत साधना द्वारा देश में जिस ज्ञान की आंधी आई, उसमें नाना मतमतांतर समाप्त हो गये और सारे भेद-विभेद उसके प्रचंड वेग के साथ पता नहीं कहां उड़ चले। कबीर की साधना पद्धति ने राम भक्ति के उपासक तुलसी आदि के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में 'यह आश्चर्य की बात अवश्य है कि निर्गुणवाद ने सगुणवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया, यद्यपि होना चाहिए इसके विपरीत, किन्तु कबीर की निर्गुणधारा अधिकांश में परिस्थिति की आज्ञा थी और भक्ति तथा साकारवाद की असंदिग्ध प्रारम्भिक स्थिति। अतः भक्तिकाल के प्रभात में कबीर का निर्गुणवाद साहित्य के विकास की एक आवश्यक और प्रधान परिस्थिति ही माना जाना चाहिए।[१]

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३५५, डा० रामकुमार वर्मा

अध्याय - १

बिहार में कबीर पंथ का विकास तथा उसका दरिया पंथ पर प्रभाव

अध्याय १

बिहार में कबीर पंथ का विकास तथा उसका दरिया पंथ पर प्रभाव—

भारत की पुनीत स्थली अतीत काल से ही विविध धर्मों का केन्द्र रही। यही कारण है कि यहां का पूर्ण इतिहास असंख्य धर्म महापुरुषों के पावन चरित्र से रंगा हुआ है। परिवर्तन के शाश्वत नियमों के परिणामस्वरूप ये विविध धर्म यहां पर विकसित हुए साथ ही उनका विकास इस प्रकार अपने शीर्ष विन्दु पर पहुंचा कि उनके नाम पर अनेक पंथ एवं सम्प्रदाय चल पड़े, यही बहुत कुछ कारण रहा होगा कि संत कबीर दास भारत की धूसरित एवं विक्षिप्त दशा में जन्म लेकर एक ऐसी नव-जागृति एवं चेतना जनजन के समीप तक पहुंचानी चाही जिसके माध्यम से मानव जाति का ही नहीं प्रत्युत अखिल चेतन जगत् का कल्याण सम्भव था, क्योंकि वे एकेश्वर-वादिता के सबसे बड़े पुजारी थे जिसके परिणामस्वरूप अपनी अमर साधना को उन्होंने सर्वथा पंथ निरपेक्ष रखने का प्रयास किया। ऐसी अवस्था में जब कि कबीर ने स्वत: कोई सम्प्रदाय चलाया हो इसके लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण भी नहीं मिलते बल्कि उनकी वाणियों से पता चलता है कि वे सम्प्रदाय चलाने के विरोधी भी थे। फिर कबीर पंथ के सूत्रपात का उत्तरदायित्व किस पर सौंपा जाय? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

अब तक जो भी सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत निष्कर्ष निकालना कठिन है। इस विषय पर विचार करने के लिए हमें कबीर पंथी विवरणों से निर्णय लेना होगा। कबीर पंथी साहित्य में इस बात का अवश्य उल्लेख मिलता है कि कबीर ने अपने प्रधान शिष्य धर्मदास को पंथ निर्माण का उत्तराधिकारी बना कर यह आशीर्वाद दिया कि उनके बाद उनके वंश में ४२ उत्तराधिकारी और होंगे। हिन्दी साहित्यकारों में आचार्य शुक्लजी ने कबीर पंथी विचारधारा के

विभिन्न स्रोतों का विश्लेषण कर मत व्यक्त किया कि " उन्होंने (कबीर ने) भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया ।"[१]

जहां तक कबीर की विचारधारा के विभिन्न स्रोतों का प्रश्न है, शुक्लजी का कथन पर्याप्त युक्ति संगत प्रतीत होता है, किन्तु उनके द्वारा कोई सम्प्रदाय खड़ा करने की बात अवश्य चिंत्य प्रतीत होती है। कबीर ने अनेक स्थलों पर साम्प्रदायिक वाह्याडम्बर का विरोध किया है। माला तिलक आदि के विरोध में तो उनकी अनेक कटूक्तियां मिलती हैं।[२] महन्थवाद के विरोध में भी उनके विचार द्रष्टव्य हैं। उदाहरणतया :—

सिष साखा बहुते किए, केसौ किया न मीत ।
चाले थे हरि मिलन कौं, बीचहिं अटका चीत ।। ६।।

— कबीर ग्रंथावली, पृ०२११(हिन्दी परि०)

स्वांमीं हूवा सीत का, पैकाकार पचास ।
रांम नांम काठै रहा, करै सिखां की आस ।।१७।।
कलि का स्वांमीं लोभिया, पीतलधरी खटाइ ।
राज दुवारैं यौं फिरै, ज्यौं हर हाई गाइ ।।१८।।

— कबीर ग्रंथावली,पृ० २१३(हिन्दी परिषद्)

महादेव को पंथ चलावै । ऐसो बड़ो महंत कहावै ।।
हाट बजारे लावै तारी । कच्चा सिद्धहु माया प्यारी ।।
करहिं लड़ाई मति के मंदा । ई अतीत की तरकस बंदा ।।
धौरा धौरी कीन्ह बटोरा । गांव पाय जस चलैं करोरा ।।

— बीजक रमैनी ।। ६६ ।।

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी सा०का इ०सं०२००५, पृ० ७७
२. देखिए कबीर ग्रन्थावली, पृ० २२३-२२४ (परिषद् संस्करण)

जिस व्यक्ति के ऐसे क्रान्तिकारी विचार हों उसके मत्थे सम्प्रदाय स्थापना का उत्तरदायित्व मढ़ना उपयुक्त नहीं जान पड़ता। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विश्वसनीय प्रमाण भी नहीं मिलता जिसके आधार पर उन्हें कबीर-पन्थ का प्रवर्तक माना जा सके। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कालान्तर में धर्मदास ने इनसे प्रभावित होकर इनके नाम पर कबीर-पन्थ की स्थापना की, किन्तु धर्मदास तथा कबीर के समय में पर्याप्त व्यवधान जान पड़ता है। और कदाचित उपर्युक्त दोनों महात्मा समकालीन भी नहीं थे। कबीर-पन्थ के विशेषज्ञों का भी यही मत जान पड़ता है।[१]

इस प्रकार का उल्लेख हमें प्राप्त होता है कि गुरु नानकदेव १५, १६ वर्ष की अवस्था में व्यापार के लिए जब निकले थे उस समय उनकी भेंट किन्हीं साधुओं से चारेकाना के समीप हुई थी, सम्भावना कुछ ऐसी ही है कि वह अखाड़ा कबीर-पंथियों का ही रहा होगा।[२] गुरु नानक का समय सं० १५२६ से सं० १५६६ तक आता है, इसीलिए ऐसी कल्पना की जा सकती है कि सं० १५४२ के लगभग उनकी भेंट कबीर-पंथियों से हुई होगी, किन्तु यह सम्भावना भी तो हो सकती है कि शिष्य समुदाय एवं पंथ के अपने कुछ अलग अर्थ हों। यदि कबीर-पंथ कबीर द्वारा स्थापित किया गया होता तो इसका उल्लेख अवश्य किया जाता, किन्तु आज तक इस प्रकार के कोई भी प्रमाण हमारे समक्ष उपस्थित नहीं हो सके हैं।

इतना अवश्य ही आचार्य क्षितिमोहन सेन की 'दादू उपक्रमणिका' (पृ० १३-१४) में बताया गया है कि कमाल से पंथ चलाने के लिए कुछ लोगों ने निवेदन किया था, परन्तु उन्होंने यह कह कर कि 'ऐसा करने में आध्यात्मिक गुरु-हत्या का पाप लगेगा', पंथ-स्थापना के विषय में उदासीन हो गये। इस उक्ति से भी यही ध्वनित होता है कि तब कोई पंथ स्थापित नहीं हुआ था, अन्यथा कमाल से ऐसी प्रार्थना क्यों की जाती ?

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी 'उत्तरी भारत की संत परम्परा', पृ० २८२
एवं डा० केदारनाथ द्विवेदी 'कबीर और कबीर-पंथ', पृ० १६१

२. शालिग्राम -गुरुनानक, पृ० २७, ओंकार आदर्श चरित माला, प्रयाग

इस प्रकार जब कि कबीर-पंथ की स्थापना का उत्तरदायित्व एवं तिथि विषयक समस्या इतनी उलझी सी है, तब किसी प्रकार का अन्तिम निर्णय करना समीचीन नहीं, केवल इतना तो कहा जा सकता है कि यदि कबीर-पंथ की स्थापना की गई होती तो इस प्रकार का कार्य कबीर के अनन्तर होने वाले किन्हीं शिष्यों द्वारा सम्पन्न किया गया होगा, । साथ ही कबीर-पंथ का निर्माण निश्चय ही कबीर के निधनोपरान्त कई वर्षों पश्चात् हुआ होगा । कबीर के निधन की दो तिथियों का वर्णन हमें प्राप्त होता है — एक तो सं० १५७५ एवं दूसरा सं० १५०५ । किन्तु दूसरी तिथि ही विद्वानों द्वारा विशेष मान्य ठहराई गई है । कबीर पंथ स्थापना का सम्बन्ध बहुत कुछ धर्मदास से ही जोड़ा जा सका है और इसी निर्णय को प्राय: तर्क संगत भी स्वीकार किया गया है । 'अनुराग सागर' एवं 'धर्म बोध' नामक दोनों कबीर-पंथी ग्रन्थों में ऐसा विवरण मिलता है कि कबीर ने धर्मदास को ऐसा वरदान दिया था कि उन्हें वे जिन्द वेष में मथुरा में दर्शन देंगे, साथ ही उनके जीवन काल में धर्मदास से साक्षात्कार होने का कोई भी साक्ष्य हमारे पास नहीं है । इस प्रकार सिद्ध होता है कि कबीरदास जी के अपने आशिर्वाद को साकार करने के लिए दूसरा जन्म भी धारण करना पड़ा होगा । इस प्रकार सम्भवत: कबीर के निधन तिथि के लगभग ५० वर्ष के अनन्तर धर्मदास का जन्म स्वीकार किया जा सक सकता है, क्योंकि दादूपंथी राघवदास ने अपने 'भक्तमाल' (सं०१७१७) में धर्मदास को कबीर का शिष्य बताया , और यदि धर्मदास की जन्मतिथि १७ वीं श० का प्रथम चरण स्वीकार कर लें तो वे पूर्ण रूपेण कबीर के समसामयिक नहीं सिद्ध होते । वैसे दरिया साहब कृत 'ज्ञान दीपक' के अनुसार धर्मदास का अवतार कबीर साहब के २०० वर्ष बाद हुआ था ।

पंथ स्थापना का सूत्रपात गुरु नानक देव के द्वारा हुआ था, इस प्रकार नानक देव के बाद ही कबीर-पंथ चला होगा । कबीर-पंथ की तीनों शाखाएं (काशी वाली शाखा, धनौती वाली भगताही शाखा और छत्तीसगढ़ी शाखा) किसी प्रकार के पंथ निर्माण की चर्चा प्रस्तुत नहीं करती हैं । प्रमोद गुरुवाला पीर के समय के कुछ चिट्ठियां और पंचे प्राप्त हुए हैं । छत्तीसगढ़ी शाखाओं में इनसे पूर्व कुलपति नाम, सुदर्शन नाम, चूरामणि नाम और धर्मदास हुए थे जिनका समय कल्पित है । धनौती

शाखा से भी कोई उल्लेखनीय विवरण नहीं प्राप्त हो सका । साथ ही कबीर चौरा के प्रथम आचार्य सुरतगोपाल के लिए भी कोई ऐसा समीचीन विवरण नहीं प्राप्त होता कि उन्होंने पंथ स्थापना की थी । सुख दास जी प्रभृति के लिए कल्पना की जा सकती है कि उन्होंने कबीर चौरा में मठ स्थापित किया होगा, क्योंकि उनके पूर्व भी किसी के लिए ऐसी कल्पना का आधार नहीं मिलता । सुखदास साहब जो कि काशिराज बलवन्त सिंह (सं० १७१७) के समकालीन सिद्ध होते हैं, ये आठवें आचार्य बताये जाते हैं, इनके पूर्व भी काशी वाली शाखा का रूप सम्भवत: नगण्य सा ही रहा । इस प्रकार धर्मदास को ही पंथ प्रवर्तक स्वीकार कर लेने में कोई बाधा नहीं दीख पड़ती ।

विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि छत्तीसगढ़ी शाखा के प्रत्येक आचार्य का औसत कार्यकाल लगभग २५ वर्ष रहा होगा । इस प्रकार निश्चय ही धर्मदास का काल सत्रहवीं शती के दूसरे चरण के आस पास स्वीकार किया जा सकता है ।[१] इस मत के विषय में डा० की ने दो बातों की सम्भावना प्रकट की है -- प्रथम तो सम्भवत: छत्तीसगढ़ के गुरुपरम्परा वाली सारिणी में कुछ नाम छूट गए हों और द्वितीय यह कि धर्मदास कबीर के समसामयिक नहीं थे ।[२] यही द्वितीय धारणा ही विशेष तर्क संगत जान पड़ती है । तथापि प्रत्येक गुरु का औसत अवधि का मान निकालना वैज्ञानिक नहीं प्रतीत होता, किन्तु प्रमाणों के अभाव में विवश होकर हमें इसी युक्ति का आश्रय लेना पड़ता है । श्री युगलानन्द बिहारी के `कबीर कथा` से प्राप्त हुए विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर ने मगहर में अपनी अंतिम लीला समाप्त होने के अनन्तर धर्मदास को दर्शन दिया, इस प्रकार हम धर्मदास को कबीरपंथ की स्थापना का उत्तरदायी स्वीकार कर सकते हैं, साथ ही १७ वीं श० में धर्मदास ने कबीर पंथ को गतिशील बनाने के लिए कुछ बाकी न लगा रखा होगा । और १८ वीं श० के आते आते कबीर पंथी साहित्य का जिसमें दार्शनिकता एवं पौराणिकता की भी छाप लगी है, सृजन प्रारम्भ हुआ होगा जिसे कि भविष्य में विद्वज्जनों ने समादर प्रदान किया ।

कबीर पंथी शाखाएं --

ऐसा लगता है कि कबीर पंथ की स्थापना के अनन्तर ही उसकी एकता

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी - 'उत्तरी भारत की संत परम्परा', पृ०२६९
२. डॉ० की - 'कबीर एण्ड हिज फालोअर्स', पृ० ९९

अपने में केन्द्रित न रह सकी, यही कारण रहा है कि वर्तमान युग तक आते आते अनेक शाखाएं विकास प्राप्त करती हैं, जिनमें से तीन शाखाएं प्रमुख हैं — १ कबीर चौरा काशी, (२) धनौती की भगताही शाखा और (३) छत्तीसगढ़ी धर्मदासी शाखा। ऐसी अन्य कुछ शाखाएं भी हैं जो अपना उन्मुक्त विकास प्राप्त करने के लिए गतिशील रहीं। इन तीनों शाखाओं में से प्रासंगिक रूप से हमें धनौती की भगताही शाखा पर विशेष रूप से विचारविमर्श करना है क्योंकि इसका क्षेत्र बिहार रहा जहां तक बहुत कुछ सम्भावना है, उस पंथ की धार्मिक साधनाओं से दरिया साहब पूर्ण रूपेण प्रभावित हुए, साथ ही शेष दोनों शाखाओं का संक्षेप में प्रसङ्गानुसार वर्णन किया जायगा।

कबीर चौरा काशी —

काशी के कबीर चौरा के बारे में अध्ययन करने से पता चलता है कि इसके भी अद्यावधि दो बंटवारे हो चुके हैं — प्रथम तो नीरू टीला के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करता है, और दूसरे को कबीर चौरा कह कर पुकारा गया है। उक्त स्थान में पूर्व एवं पश्चिम में दो आंगन हैं, पश्चिम वाले आंगन में पूर्व प्रचलित कबीर के माता-पिता का निवास स्थान बताया जाता है जो कि नीरू टीला के नाम से विख्यात है, और दूसरी ओर पूर्व में एक धर्मशाला है, उसमें कबीर महाविद्यालय है, जिसमें शिक्षा दी जाती है। कबीर चौरा में एक मन्दिर है, जिसके लिए बताया जाता है कि कबीर इसी में आसीन होकर धार्मिक शिक्षा दीक्षा दिया करते थे। इस मन्दिर में कबीर का एक कल्पित चित्र और उनके एक जोड़े चरण पादुका रखे गये हैं, जिन्हें प्रात: संध्या पूजा अर्पित की जाती है।

उक्त शाखा के सूत्रपात करने वाले मूल रूप से सुरतगोपाल बताये जाते हैं, जिनके कालनिर्धारण के लिए समीचीन प्रामाणिक स्रोतों के अभाव में बहुत बड़ी बाधा दीख पड़ती है, इस विषय पर किन्हीं विद्वानों का ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाया है। 'गुरु माहात्म्य' (पृ० १, २) के अनुसार वहां के गुरु की अद्यावधि सारिणी प्रस्तुत की जा सकती है। (१) कबीर, (२) सुरतगोपाल, (३) ज्ञानदास, (४) श्यामदास, (५) लालदास, (६) हरिदास, (७) शीतलदास, (८) सुखदास (९) हुलासदास, (१०) माधवदास, (११) कोकिलदास, (१२) रामदास

(१३) महादास, (१४) हरिदास, (१५) शरणदास, (१६) पूरनदास, (१७) निर्मल दास (१८) रंगीदास, (१९) गुरुप्रसाद दास, (२०) प्रेमदास एवं(२१) रामविलास दास। वैस्टकाट ने 'कबीर एण्ड दी कबीर पंथ' पृ० ६२ में अपने समकालीन महंथ गुरुप्रसाद दास तक की जो तालिका प्रस्तुत की है उसमें विभिन्नता इस बात की है कि कबीर के बाद पहला नाम श्यामदास का मिलता है और सुरत गोपाल एवं ज्ञानदास को हरिदास के अनन्तर तथा शीतलदास के पूर्व में दिखलाने का प्रयास किया है, किन्तु पंथ के प्रामाणिक स्रोतों से निर्णय लेने पर कहा जा सकता है कि सुरत गोपाल ही प्रथम आचार्य रहे होंगे। इस प्रकार इस मत के आधार पर वैस्टकाट का मत कुछ भ्रम उत्पन्न कर सकता है। इस गद्दी के आठवें आचार्य सुखदास साहब बताये जाते हैं जिनको काशिनरेश बलवन्त सिंह (सम्वत् १७१७) के समकालीन घोषित किया है और इस गद्दी के प्रत्येक आचार्यों के औसत गद्दी काल को पच्चीस वर्ष स्वीकार करने पर सुरतगोपाल का गद्दीकाल १७ वीं शती के प्रथम चरण में रखा जा सकता है और इनकी बहुत खींचतान की जाय तो कबीर का समसामयिक भी सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु इन सभी मतों का आधार बस कल्पित स्रोत ही हो सकते हैं। सुखदास एवं उनके पश्चात् आचार्यों की समाधि मगहर, पुरी एवं गया में दी गई बताई जाती है। डा० केदारनाथ द्विवेदी का यह मत समीचीन भी प्रतीत होता है, इस प्रकार काशीमठ स्थापना बहुत कुछ सम्भव है सुखदास के समय में अर्थात् अठारहवीं शती के प्रारम्भ में हुई होगी। कबीर चौरा से सम्बन्धित अन्य और भी स्थानों का वर्णन हमें मिलता है यथा लहरतारा, मगहर, मुस्लिम कबीर पंथी मठ, हिन्दू कबीर पंथीमठ, कबीर बाग गया आदि हैं, किन्तु विस्तार भय के कारण इनका उल्लेख उपयुक्त नहीं।

धनोता की भगताही शाखा—

कबीर पंथ की भगताही शाखा के प्रवर्त्तक भगवान गोसाईं को बताया जाता है और सम्प्रति इसका मुख्य स्थान छपरा जिलान्तर्गत धनौती नाम के ग्राम में है। यद्यपि ऐसा स्वीकार किया गया है कि इस शाखा की प्रमुख गद्दी तिरहुत प्रदेश के बैभार नामक ग्राम में स्थापित की गई थी, साथ ही इसके अतिरिक्त रहिया

एवं लढ़िया ग्राम में भी गद्दी स्थापित हुई बताई जाती है, ये जाति के अहीर एवं निम्बार्क मतानुयायी बताये जाते हैंऔर इनका जन्म स्थान पिठौराबाद या पिथौराबाद (अलवार अन्य मतानुसार बुंदेलखण्ड) कहा जाता है। तुलसीसाहब कृत 'घट रामायण' (भाग १ पृ० १६६) के अनुसार भगवान गोसाईं जाति के ब्राह्मण थे, उनके पिता का नाम कालू और माता का नाम जगबंधनी था। जगबंधनी का पूर्व नाम मंगली था और वह जाति की तैलिन थी, कालू से उसका प्रेम हुआ तो ब्राह्मणों ने उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया, किन्तु दोनों का प्रेम बंधन न टूटा। कालू पण्डित ने मंगली का नाम जगबंधनी परिवर्तित कर दिया इन्हीं से भगवान गोसाईं की उत्पत्ति बताई गई है। इस मत के विषय में सभी विद्वानों की धारणा एक सी है, यदि अंतर भी है तो काल विषयक। महर्षि शिव व्रतलाल ने एक जनश्रुति के आधार पर लिखा है कि भगवान् गोसाईं कबीर दास के सहवास में रह चुके थे और कबीर दास द्वारा गाये गये भजनों को वे लिखते जाते थे, कालान्तर में उन्होंने लगभग कबीर के ६०० (छ: सौ) भजन साखी शब्दों को संगृहीत कर एक गुटका बना लिया। सम्भवत: यही मूल बीजक विराट जनसमूह के समक्ष उपस्थित हो सका है। इसीलिए कबीरपंथी साहित्य में इस बात का उल्लेख आता है कि इनके हाथ बीजक का एक गुटका अवश्य ही लगा था, जहां तक सम्भावना हो सकती है यह बात अवश्य सत्य प्रतीत होती है। कहा जाता है कि वे बांधव गढ़ भी गये थे, जहां धर्मदास ने उक्त गुटका लेने का अथक प्रयास भी किया था, किन्तु असफल रहे और वे उस गुटके को लेकर बिहार प्रान्त चले गये और वहीं कबीरपन्थ का प्रचार करने लगे, यहीं पर भगताही शाखा का प्रवर्त्तन भी किया, इस शाखा का प्रधान मठ धनौती में बनाया गया और मूल गुटके को मूल धर्मग्रन्थ मानकर विशेष सम्मान प्रदान किया गया।

कबीरपन्थी रचना 'अनुराग सागर' (र०का० १८०० श० के आस पास) में इन्हें ग्रन्थ चोर भी घोषित किया गया है, इतना ही नहीं कबीरपन्थी रचनाओं में जहां कहीं भी भगवान गोसाईं की चर्चा की गई है, वहां अवश्य ही उनका सम्बन्ध तथाकथित गुटके से स्थापित किया गया। डा० पारसनाथ तिवारी ने अपनी कबीर ग्रन्थावली में अनेक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर निर्णय किया है कि बीजक

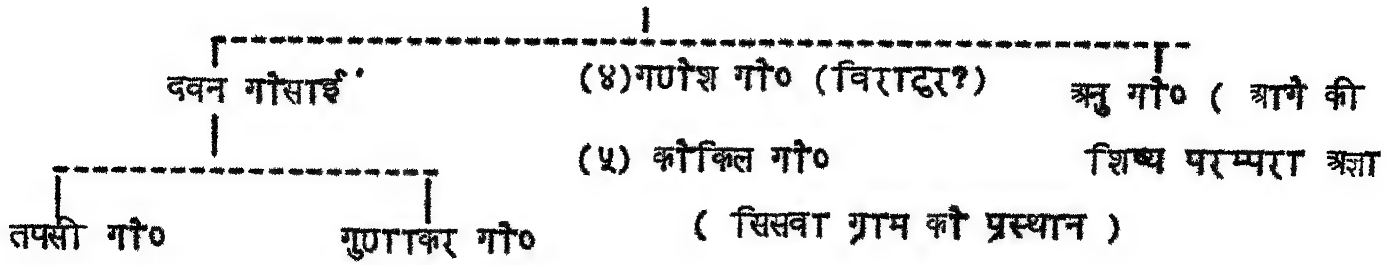
---

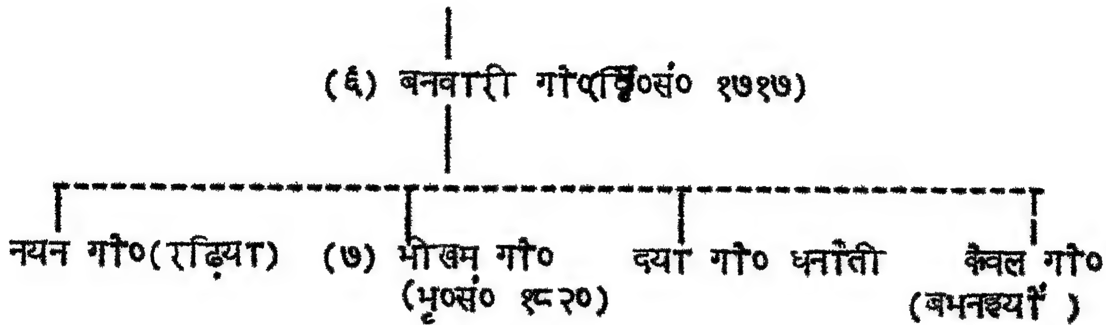
१. कबीर ग्रन्थावली (परिषद् संस्करण) भू०, पृ० ६१-६७

के जितने भी रूप अब तक उपलब्ध हुए हैं उनमें भगताही शाखा का रूपान्तर ही सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध होता है, और उसका संकलन सर्वप्रथम कदाचित विहार में ही हुआ । उन्होंने इस धारणा की पुष्टि के लिए गुटके में आए हुए शब्दों को अपने विवेचन का आधार स्वीकार किया है जिसमें कि `` कहत भइल, होवे, जेकरा, तोहरा को, अछलौं, तजलो आदि पूर्वी शब्द प्रयुक्त किये गये हैं । इस प्रकार यद्यपि उन्हें कबीर पंथी साहित्य में ग्रन्थ चोर कहा गया है किन्तु वस्तु स्थिति इसके विपरीत जान पड़ती है वे ग्रन्थ अपहरणाकर्ता नहीं प्रत्युत उद्धारकर्ता हैं ।

प्रासंगिक रूप से भगवान गोसाई की शिष्य परम्परा पर कुछ विचार विमर्श करना अनपेक्षित नहीं । इस दिशा में निम्नलिखित साक्ष्य विशेष सहायक सिद्ध होते हैं :- एक तो डा० एफ० ई० के द्वारा `कबीर एण्ड ह्विज फालोअर्स (१९३१ ई० ) की दी हुई सारिणी, दूसरी भगताही शाखा के सम्प्रदायिक ग्रन्थ जिनमें धनौती मठ से प्रकाशित ` मूल बीजक` ( इसके संपादक ) श्री रामखेलावन गोसाई द्वारा दी गई गुरुप्रणाली ( सन् १९३८ ई०) और हरिशरण गोसाई लखी मठ छपरा द्वारा लिखित `भक्ति पुष्पांजलि` (सन् १९५०) । यद्यपि डा० की ने मूल स्रोत का उल्लेख नहीं किया है तथापि जहां तक सम्भावना है कि उन्होंने अपनी उक्त मान्यता का आधार कबीर पंथी विवरण को ही चुना । डा० की द्वारा यह तालिका इस प्रकार बताई गई —भगवान् गोसाई - अज्ञात नाम शिष्य बनवारी- भीखम-भूपाल,- परमेश्वर-गुणपाल-सीसमन,- हरनाम,- जयमन- स्वरूप- साधु- राम रूप (पृ० १०६) किन्तु दोनों स्रोतों के अनुसार यह परम्परा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है :—

निम्बार्काचार्य
|
बीच की शृंखलाओं का विवरण अज्ञात
(१) भगवान गोसाई(मूलत:पिठौराबाद,अलवर निवासी)
|
(२) घनस्याम गोसाई (डेमसर ग्राम, विराट प्रदेश)
|
(३)उधोरण गोसाई
|
(४) गणेश गो०(विराटपुर ?)





मूल बीजक की आचार्य परम्परा में आचार्य बनवारी गोसाईं के देहावसान की तिथि सं० ११७० दी हुई है इसमें समस्त गुरू का औसत गद्दी काल २५ वर्ष स्वीकार कर लेने पर ऐसा माना जा सकता है कि उधौरण गोसाईं सं० १७०० के आस पास उपस्थित रहे होंगे, और भूपाल मणि गोसाईं (मृत्यु तिथि सं० १८८४) के शिष्य परमेश्वर गोसाईं तथा उनके गुरुभाइयों को सं० १६०० तक जीवित माना जा सकता है। यहां इस बात का भी संकेत कर देना वांछनीय है कि पं० परशुराम चतुर्वेदी ने डा० एफ०ए० की द्वारा प्रस्तुत की गई गुरू परम्परा वाली तालिका के आधार पर भगवान साहब का समय १७ वीं० श० का अंतिम चरण ही मान्य ठहराया है (उ०भा० की संत परम्परा पृ० २७४) । डा० केदारनाथ द्विवेदी ने पुष्पांजलि की आचार्य प्रणाली में दिए गए विवरण की चौथी पीढ़ी के कई गुरुओं भाइयों की पूर्वापर क्रम में स्थान देकर भगवान गोसाईं का कालनिर्धारण सं० १५५२ के आस पास किया है, किन्तु भगवान गोसाईं को १७ वीं श० के अंतिम चरण में ही स्वीकार करना विशेष वैज्ञानिक होगा। प्रत्येक आचार्यों का औसत गद्दी काल २५ वर्ष मान लेने पर भी उनका यही समय सिद्ध होता है। बनवारी गोसाईं के बारे में गुरु प्रणाली में यह मिलता है कि गुणाकर गोसाईं से जब उन्हें शांति न मिली तब वे कोकिल गोसाईं के पास सिसवां ग्राम में चले गये और उसके समीप बड़हरा ग्राम में उन्होंने मठ की स्थापना की। साथ ही वहां कृषि योग्य भूमि की खोज कर

कृषि का विस्तार किया ।

उपर्युक्त वर्णित गुरुओं के पश्चात् आने वाली पीढ़ी में सर्वोपरि एवं शीर्षस्थान रखने वाले भीषम गोसाईं माने जाते हैं, उन्होंने पंथ में व्यवस्था लाने का अति स्तुत्य प्रयास किया । उनके गुरु भाई नयन गोसाईं राजा बैतिया के कृपा पात्र थे अत: सर्वप्रथम वे ही गद्दी के आचार्य घोषित किये गये परन्तु भीषम गोसाईं से द्वेष हो जाने के कारण गद्दी को त्याग वे रढ़िया या डा० की के अनुसार लढ़िया नामक ग्राम चले गये । वहां जाकर स्वतंत्र मठ की स्थापना कर ली , जिसमें कालान्तर में छोटी छोटी गद्दियों का प्रचलन हो गया यथा :-दानापुर, बलभी, परसौनी आदि ।

नयन गोसाईं से मतभेद होने पर भीषम गोसाईं ने नारायणी के किनारे घटवा नामक स्थान पर में पृथक गद्दी स्थापित की, किन्तु उनके लघु गुरु भाई दया गोसाईं के स्वेच्छा पूर्वक गद्दी त्याग करने पर धनौती आ कर पुन: रहने लगे । दया गोसाईं ने स्वयं अपना निवास स्थान बदली ग्राम बनाया । कुछ समय अनन्तर वहां से किशुनपुरा चले गये और वहीं पर अपना प्रधान पीठ बनाया, जिसके अंतर्गत मुसदावनी, मुंगेर, सोंढीहा, पकड़ी आदि गद्दियाँ बनीं । इनके एक अन्य गुरुभाई केवल गोसाईं ने बभनइयां में अपनी शाखा का केन्द्र बनाया । इससे सम्बद्ध सुरहुरी, खैरा, भलकोली, बचहीला, भिन्ड पोखर, कटइयां, बैजनाथ पुर आदि बाइस गद्दियों की स्थापना हुई ।

इनके लगभग बयालिस शिष्य थे । भीषम की निधन तिथि (फागुन एकादशी सं० १८२०) के अनन्तर उनके सर्वाधिक प्रभावशाली शिष्य भूपालमणि उनके उत्तराधिकारी हुए । भूपालमणि के तेरह प्रधान शिष्यों ने इस शाखा की गद्दी अनेक स्थानों पर स्थापित की । इनमें से अलेख गो० (नवरंग मठ) नारायण गो० (मानसर) हरगोविन्द (जसुरी) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । कुछ ऐसी सम्भावना है कि उनके इक्कीस शिष्य उनके समीप रहते थे और शेष इक्कीस ने अन्यत्र जाकर अपनी विभिन्न गद्दियों की स्थापना की । गुरु प्रणाली में इनके नाम इस प्रकार आए हैं :—(१) प्रबल गो० (भरथुई), (२) चतुर्भुज (बन्नापौ), (३) डम्भर गो० (बसहीला), (४) केसरी गो०, (५) गिरिधर (धनौती), (६) जगदीश

(वैरीया), (७) नारायण (चमही), (८) अकबर गो० (पुरहनियाँ), ९. गोरख गो०, (१०) मंगल गो०, (११) सहदेव गो०, (१२) भुवाल गो० (१३) बसन गो० प्रथम (हंडिता), (१४) बसन द्वि० (अधरवार), (१५) हरगोविन्द गो० (मायल), (१६) पुरण गो० (हरदी), (१७) वखतर गो० (आलमपुर), (१८) भूखल गो० (सैखबना), (१९) रुद्र तथा (२०) यति गो० (मुसहरनियाँ)।

इस शाखा का प्रचार विशेष रूप से बिहार क्षेत्र में हुआ। चूंकि दरिया साहब (बिहार) का समय सं० १८३७ तक आता है, इसलिए वे भगताही शाखा के महंथ भीखम गोसाईं (मृ०सं० १८२०) के सम सामयिक सिद्ध होते हैं, परिणाम-स्वरूप भीखम गोसाईं तक की गुरुप्रणाली उक्त प्रसंग में चित्रित की गई है। उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भौतिक समृद्धि की दृष्टि से धनौती शाखा की काफी अभिवृद्धि हुई। साहित्यिक दृष्टि से 'बीजक' के अतिरिक्त अन्य विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं है, इसलिए कहा जा सकता है कि इस विषय में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस शाखा के संतों में भक्तिभाव की अत्यधिक प्रधानता है, इसीलिए ये भगत कह पुकारे जाते हैं। धार्मिक दृष्टि से इसमें व्यर्थ के प्रचलित बाह्याचारों का भी अभाव है।

धनौती की भगताही शाखा के अतिरिक्त पूर्व दिशा में कुछ और भी गद्दियां हैं, जिनमें से एक कबीर बाग गया जो कि कबीर चौरा से ही सम्बद्ध है शेष अपने को स्वतंत्र घोषित करती हैं। स्वतन्त्र गद्दियों में विशेष स्थान विद्दूपुर (जिला मुजफ्फरपुर) का है जो कि प्रधान शाखा के रूप में प्रतिष्ठित है जिसके संस्थापक संत जागूदास हैं, जिनका जन्म सं० १५३८ में माना जाता है और माता का नाम कमलेश्वरी था। जनश्रुति के अनुसार कबीरदास जी ने इन्हें दीक्षा दी थी जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य नहीं प्रतीत होता, उन्होंने वनकठा जंगल में एक मठ की स्थापना की सम्प्रति इसका नाम शिवपुर हो गया है।

शिवपुर मठ के अतिरिक्त एक मठ विद्दूपुर में भी स्थापित हुआ, विद्दूपुर मठ कबीर पंथी संतों का विशेष महत्त्व पूर्ण स्थान माना जाता है, कुछ समय के अनन्तर इस शाखा की अनेक उपशाखाएं दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, गया, लखनऊ प्रभृति शहरों एवं अन्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित हो गई। विश्वसनीय सूत्रों से

ज्ञात होता है कि इस शाखा का विकास नेपाल की तराई तक हुआ, क्योंकि यहां इस शाखा के ५३ मठ प्राप्त होते हैं, किन्तु उनके विषय में कोई विशेष विवरण नहीं प्राप्त होता। शेष स्वतंत्र गद्दियों में से कबीर चौरा जगदीश पुरी, फतुआ, पटना, मठ लक्ष्मीपुर (रूसड़ा) महादेव मठ रुसड़ा है, किन्तु इन सबका वर्णन विस्तार भय के कारण नहीं किया जा रहा है।

उपरोक्त समस्त शाखाओं एवं गद्दियों में होने वाले विकास का अध्ययन करने से जहां तक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यिक क्षेत्र में इन सबने अपना कोई विशेष योगदान नहीं किया था, इस दृष्टि से कबीर पंथ की तृतीय शाखा छत्तीसगढ़ी विशेष सहयोगी सिद्ध हुई। इसीलिए बहुत कुछ सम्भव है कि छत्तीसगढ़ी शाखा के साहित्यिक महत्ता से दरिया साहब प्रभावित हुए हों। अत: इस शाखा का भी वर्णन संक्षेप में देना उपयुक्त है।

छत्तीस गढ़ी शाखा के मूल प्रवर्तक धर्म दास जी बताये जाते हैं, जिनके काल निर्धारण के विषय में विद्वानों के लिए एक समस्या उत्पन्न हो गई है, इसीलिए इस समस्या का कोई उचित समाधान नहीं निकल पाता। डा० केदारनाथ द्विवेदी ने प्राप्त हुए कुछ चिरकालीन पत्रों एवं पंजों का आधार लेकर धर्मदास की पांचवीं पीढ़ी में उत्पन्न होने वाले प्रमोद गुरु तथा उनके बाद के आचार्यों का समय निर्धारित करना चाहा है, जिससे दामखेड़ा से प्रकाशित `वंशपरिचय` से प्राप्त हुए प्रमोद गुरु का समय सं० १७५० विशेष समीचीन ज्ञात होता है। अनुमानत: उनके पिता कुलपति नाम का समय संवत् १७२५ के आस पास और पितामह एवं प्रपितामह (सुदर्शन नाम तथा चूड़ामणि का समय सं० १७०० तथा सं० १६७५ बताया जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि धर्मदास ने सं० १६७५ में अपनी अंतिम लीला समाप्त की। डा० केदारनाथ द्विवेदी के `कबीर और कबीर पंथ` के आधार पर सं० १७०० से लेकर सं० १९०० तक के आचार्यों का गद्दीकाल इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है – सुदर्शन (गद्दीकाल सं० १७००), कुलपति (१७२५), प्रमोद (सं० १७५०) केवल (सं० १७७६) अमोल (सं० १७६४) सुरत सनेही (सं० १८२५) हक्कनाम (सं० १८५५) पाकनाम (सं० १८६०– मृ० सं० १९२०)।

सुरत सनेही के बाद का इतिहास संघर्षों का काल कहा जा सकता है।

अन्य शाखाओं से इस शाखा में एक विशेष अंतर यह है कि संत साधना में गृहस्थियों के लिए कोई स्थान न था, न तो ऐसे कोई उदाहरण ही मिलते हैं, परन्तु इस शाखा में तो देखने से यह पता चलता है कि कालान्तर में गद्दियों के आचार्य भी गृहस्थियों की भांति आचरण करने लगे, साथ ही उनमें एक पत्नी के स्थान पर दो या और अधिक स्त्रियों को रखने की परम्परा चल पड़ी । यही सबसे बड़ा कारण रहा है कि उनसे उत्पन्न संततियों में अवश्य ही उत्तराधिकार की लालसा के परिणामस्वरूप संघर्ष होता । यथा: सुरत सनेही नाम की वैध पत्नी संतानहीन थी, इस लिए हंसदास जो कि उनके अवैध पत्नी से उत्पन्न पुत्र था उत्तराधिकार के लिए योग्य समझा गया और यही सबसे बड़ा कारण बन गया कि बहुत बड़ा जनसमूह दासी पुत्र को गद्दी पर आसीन होते देख नहीं सकता था, इसलिए उनमें विरोध की लहर दौड़ गई । इसी-प्रकार के कई उथल पुथल इस शाखा में देखने को मिलते हैं ।

कालान्तर में छत्तीसगढ़ी शाखा में उत्तराधिकार के लिए दो परम्पराएं प्रचलित हुईं । एक तो नाद वंश अथवा वचन वंश जिसका कि उदाहरण हमें अन्य शाखाओं में भी प्राप्त होता है और द्वितीय वंशानुक्रम जो कि इस शाखा की अपनी निजी देन थी ।

इस प्रकार कबीर पंथ का विकास अबाध गति से चलता रहा, अब हमें इस बात की चर्चा करनी है कि इसका प्रभाव दरिया पंथ पर किस सीमा तक पड़ा है । सर्वप्रथम संतकबीर का प्रभाव दरिया पर किस रूप में पड़ा यह विशेष ध्यान देने की बात है ।

उक्त विषय के स्पष्टीकरण के लिए हमें अन्त: साक्ष्यों पर निर्भर करना होगा । इस दृष्टि से जब हम दरिया साहब की रचनाओं का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने को कबीर का अवतार स्वीकार कर सत-सुकृत का अंश घोषित किया है । यथा:—

> कलउ कबीर कासी अस्थाना । नाम संताएन पंथ बखाना ।। ५०१।।
> सत सुकृत का धरे वो सरीरा । निर्मल ग्यान कथि कहे वो कबीरा ।।५०२

फिरि कलऊ मंहधरा सरीरा । नाम ग्यान असल रंगहीरा ।। ५०७।।
सतनाम का कीन्ह बिचारा । दरिया नाम से पंथ सुधारा ।।५०८।।

— ब्रह्म बिवेक, पृ० ३७१

अगस्त रूप हम हीं चलि आएउ, सागर जल गंडुका लै राखेउ रे जी ।
बलिभद्र नाम हमही कंहं कहिए , हर मुसल हथिआरेउ रे जी ।
सेस रूप हमहीं होए रहिआ, लखन कछु इमि आनेउ रे जी ।
कलउ कबीर होए कासी आए- कीन्हों सबद् पुकारेउ रे जी ।

— मूर्ति उखाड़, पृ० ५६ परि०
(सं०क०द० एक अं०)

उपर्युक्त अन्त:साक्ष्यों के आधार पर दरिया साहब को कबीर दास का अवतार स्वीकार करने में कुछ भी बाधा नहीं ज्ञात होती । ऐसी स्थिति में जब दोनों संतों में पूर्ण साम्य है, तो ऐसी धारणा बना लेना अनुचित न होगा कि कबीर पंथ एवं दरियापंथ में पर्याप्त समानता है । दरिया साहब ने स्वत: इस बात का उल्लेख किया है कि " सोई कहो जो कहहिं कबीरा । दरिया दास पद पायो हीरा ।। "[१] इससे यह ध्वनित होता है कि वे कबीर दास जी की साधना से अत्यधिक प्रभावित थे, इसीलिए उन्होंने ऐसे उत्कृष्ट संत की साधनाओं पर ध्यान रखते हुए पंथ में प्रचलित बाह्याचारों पर विशेष ध्यान दिया । कबीर पंथ में प्रचलित विचारधाराओं को या तो उसी रूप में या कुछ परिवर्तन के साथ उन्होंने अपनी रचनाओं में ग्रहण किया । यथा : कबीर पंथ का सत्लोक दरियापंथ में छपलोक हो गया एवं कबीर पंथ के सार शब्द को यथावत दरियापंथ में सम्मान मिला ।

ऐसी अवस्था में जब कि कबीर पंथी साधनाओं का प्रभाव दरिया साहब पर निश्चित रूप से पड़ा तब ऐसी धारणा बना लेना समीचीन ही है कि निश्चय ही दोनों पंथों में पर्याप्त समानता होगी, और यदि भिन्नता भी होगी तो बहुत कम अंशों में । `गणेश गोष्ठी` नामक कबीर पंथी ग्रन्थ दरियापंथी `गणेश गोष्ठी` से बहुत कुछ साम्य रखता है । कबीर पंथी महात्माओं का प्रयास ब्राह्मणधर्म की प्रतिक्रिया के लिए अतिस्तुत्य है, किन्तु दरिया साहब भी इसकी तुलना में कुछ कम नहीं हैं, क्योंकि उनकी रचनाओं से स्पष्टत: परिलक्षित होता है कि उनका समग्र जीवन मात्र सामाजिक दोषों के परिहार में ही व्यतीत हुआ साथ ही ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया के लिए उन्होंने कुछ बाकी न लगा रखा । `मूर्ति उखाड़` नामक साहित्यिक रचना उसका ज्वलन्त प्रमाण

१. दरिया सागर, पृ० [illegible]

रचना इसका ज्वलंत प्रमाण है कि मात्र ब्राह्मण धर्म एवं देव देवियों के प्रतिक्रियास्वरूप ही अपने सन्निकट ग्राम से एक मूर्ति उखड़वा फेंकी , जबकि बहुत बड़ा जनसमूह उनके प्रतिकूल रहा होगा । कहने का अभिप्राय यह है कि दरिया साहब को अपनी साधना के समक्ष कबीर पंथ का बहुत कुछ प्रभाव अवश्य ही रहा होगा । वैसे इस विषय पर विशेष विचार विमर्श अगले अध्यायों में किया जायगा ।

'ज्ञानदीपक' में वर्णन में आया है कि धर्मदास के वंशज भगवान दास एक बार दरिया साहब के ग्राम में आए, वहां पर उन्होंने राम और कबीर को एक ही सिद्ध करना चाहा, किन्तु दरिया साहब ने इसे अविश्वसनीय ठहराने का प्रयास किया, इस पर विरोधी दल उनसे खिन्न हो कर शक्ति का प्रयोग करना चाहा परन्तु दरिया-साहब के अलौकिक प्रभाव के कारण विरोधी दल भाग खड़े हुए, और उनके दृढ़ निश्चय पर पानी फिर गया । भगवान दास उनके विरोधी दल में आते थे ।[१]

दरिया पंथ—

दरिया पंथ का प्रवर्तन दरिया साहब के द्वारा ही हुआ । दरिया का जन्म स्थान धरकंधा ही माना जाता है, और धरकंधा में ही प्रमुख गद्दी की स्थापना हुई । इस पंथ का प्रचार क्षेत्र मुख्यत: बिहार प्रान्त तथा उत्तरप्रदेश के पूर्वीय जिले ही रहे हैं । इसकी प्रमुख चार गद्दियां हैं, जिनमें से धरकंधा के अतिरिक्त तेलपा (सारन) मिर्जापुर (सारन) तथा मनुआ (मुजफ्फरपुर) में हैं । दरियापंथ के लगभग कुल ११२ मठ हैं, मठों के लिए सारन, शाहाबाद, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, बलिया, गया, गोरखपुर, पटना, गाजीपुर, भागलपुर, बनारस, आजमगढ़ बाराबंकी एवं नेपाल राज्य के जिले विशेष उल्लेखनीय हैं ।

धरकंधा में ऐसा कोई भवन नहीं मिलता जिसे कि मंदिर कहा जाय । जिस घर में दरिया साहब रहते थे उसी को दरियापंथ का मूल तख्त माना गया । इसके महंथों की परम्परा निम्नरूप में बताई जा सकती है :—

---

१. ज्ञानदीपक, पृ० १४६-१५१

धरकंधा के महंथ

दरिया साहब
|
गुना साहब
|
भौरा साहब (अल्पकाल)
|
टेका साहब
|
चित्तर साहब
|
छत्रपति साहब
|
उम्मेर साहब
|
अच्छेवर साहब
|
रामदास साहब
|
गोकुलदास साहब
|
चतुरी दास (अल्पकाल)
|
जानकीदास (अल्पकाल).
|
ज्ञानदास

दरिया साहब ने गुनादास को महन्थ बनने के लिए जो आदेश पत्र दिया उसमें उनके उत्तराधिकारी टेकादास तथा रायमती, केवलदास, मुरलीदास एवं दल दास की विशेष चर्चा की है। फकीर दास बस्तीदास और रंगदास को उन्होंने अपना सम्बन्धी स्वीकार किया था। मुरलीदास उनके दीवान्, मुनिदास, दलदास और वजीरदास नौकरी पेशा वाले बताये जाते हैं। इन सबका वर्णन ` ज्ञान मूल ` (पृ० ४०४) में प्राप्त होता है।

कालान्तर में कबीर पंथ की छत्तीसगढ़ी शाखा की भांति यह पंथ भी दो प्रकार की शाखाओं में विभक्त हो गया — प्रथम बिन्द गद्दी (बिन्दु गद्दी, जिसमें इन महंथों के अपने सम्बन्धी गद्दी के उत्तराधिकारी बनते थे) द्वितीय नाद गद्दी (जिसमें मंत्र प्राप्त हुए शिष्यों की गणना की जाती है)।

उपरोक्त शिष्यों के अतिरिक्त दरिया-पंथी आचार्य चतुरीदास ने 'ज्ञानदीपक' की भूमिका में कुछ और शिष्यों का भी नाम दिया है :— रूपा साहब, बालक साहब, अंजीर दास, चन्दन दास, बल्लूदास, फेंकूदास, सुफलदास, उजियार दास (द्वितीय), अजगैबदास, गुलाबदास, प्रेमदास, भौरा साहब, पीताम्बर साहब, परिमल साहब तथा नरौज साहब। साथ ही साधुराम व्रतदास ने भी कुछ शिष्यों के नाम दिये हैं :—पुरानदास, गाजा दास और फेंकनदास ये हुए साधु, तथा राजपुर के फगडा दुबे और हिरामन भक्त इनका नाम गृहस्थ अनुयायियों में आता है।

डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने अपने 'सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन' के परिशिष्ट वाले अंश में बताया है कि दरिया साहब जिस घर में रहते थे, उसमें अब उनके वंशज निवास करते हैं। मठ जो कि धरकंधा के महंथ थे का स्थान दरिया साहब की समाधि के निकट ही एक फर्लांग दूरी पर है। बुकानन साहब के मतानुसार अनुमान किया जा सकता है कि दरिया साहब के पश्चात् यह मठ स्थापित किया गया होगा, क्योंकि उनके समय कोई मठ न था।

उपरोक्त विवरणों से निष्कर्ष निकालने पर इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि कबीर-पंथ एवं दरियापंथ में अत्यधिक सम्बन्ध रहा है और इनमें साधना तथा वैचारिक परम्परा की दृष्टि से अवश्य ही आदान प्रदान हुआ होगा।

अध्याय – २

साहित्य — रचनाएं, वर्ण्यविषय, छंद, भाषा, अभिव्यंजना शैली

अलंकार

अध्याय २

साहित्य — रचनाएं, वर्ण्यविषय, छंद, भाषा, अभिव्यंजना शैली, अलंकार—

रचनाएं —

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ द्वारा प्रतिपादित विविध सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन करने के पूर्व इनके साहित्य की पूर्ण जानकारी अपेक्षित है। कबीर एवं दरिया साहब की रचनाओं में वर्ण्य विषय की दृष्टि से तो समानता है ही साथ ही कबीर पंथी एवं दरियापंथी साहित्य में भी इस दृष्टि से पर्याप्त अनुरूपता ज्ञात होती है, इन पंथों के कुछ साहित्य तो एक ही नाम से उपलब्ध होते हैं, जिनका सम्यक विवेचन बाद में किया जायगा।

कबीर की रचनाएं —

कबीर की रचनाओं की पाठ समस्या के विषय में प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० पारसनाथ तिवारी[१] ने जो अनुसंधान कार्य किया है उसके आधार पर कबीर की रचनाएं निम्नलिखित शाखाओं में विभाजित की जा सकती हैं :—

(१) पंचवाणी परम्परा की शाखा

राजस्थान के दादूपंथ में पांच प्रधान संतों की रचनाएं एक ही ग्रन्थ में सम्मिलित की जाती थीं, और उन्हें पंचवाणी नाम दिया जाता था। इनमें क्रमश: दादू, कबीर, नामदेव, रैदास तथा हरिदास को स्थान दिया जाता है। इस परम्परा की अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती हैं — नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रन्थावली' इसी परम्परा का पाठ प्रस्तुत करती है।

---

१. देखिए कबीर ग्रन्थावली (हिन्दी परिषद्) प्रयाग वि०वि०, भूमिका, पृ० ५०-५१

(२) निरंजनी पंथी शाखा—

इस शाखा में कबीर वाणी का जो रूपान्तर मिलता है वह दादूपंथी शाखा के ही समान है, किन्तु इसमें कुछ साखियाँ तथा पद अधिक मिलते हैं, इसका कोई रूपान्तर अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

(३) गुरु ग्रन्थ साहब की शाखा —

सिक्खों के धर्म ग्रन्थ `गुरु ग्रन्थ साहब` में भी कबीर की वाणी संगृहीत है, इस ग्रन्थ का संकलन सम्वत् १६६१ में हुआ था। तिथि की प्राचीनता की दृष्टि से इसको महत्व देते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने `संतकबीर` में इसी पाठ को प्रामाणिक मानकर प्रकाशित कराया।

(४) बीजक की शाखा—

कबीर पंथियों के द्वारा बीजक ही कबीर साहब की रचनाओं का प्रामाणिकतम संकलन माना जाता है यद्यपि क्रम आदि की दृष्टि से बीजकके भी तीन रूपान्तर मिलते हैं किन्तु पाठ की दृष्टि से उनमें अंतर अधिक नहीं।

(५) स्फुट पदों की शाखा—

ऐसी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें कबीर के स्फुट पदों का संकलन परिमाण भेद के अनुसार मिलता है। काशी कबीर चौरा तथा बेलवेडियर प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित `शब्दावली` इसी शाखा का प्रतिध्वनित्व करती है।

(६) साखी प्रतियों की शाखा—

कुछ हस्तलिखित प्रतियां ऐसी मिलती हैं जिनमें कबीर के केवल साखियों का संकलन मिलता है। बम्बई, बड़ौदा तथा प्रयाग से प्रकाशित साखी ग्रन्थ स्थूल रूप से इन्हें रूपान्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(७) प्राचीन संकलनों की शाखा—

दादू पंथ में `सर्वङ्गी` तथा `गुणगंजनामा` नामक प्राचीन संकलन मिलते हैं जिनमें अन्य सन्तों के साथ कबीर की वाणियां भी मौलिक रूप में सुनने को मिलती

है क्योंकि गेयहोने के कारण साधारण जनता में कबीर की रचनाओं का अधिक प्रचार है। आचार्य क्षितिमोहन सेन की 'कबीर' नामक पुस्तक में साधुओं के मुख से सुनकर उनकी रचनाएं संकलित की गई हैं।

उपर्युक्त सभी शाखाओं के हस्तलिखित अथवा प्रकाशित समस्त सामग्री का उपयोग करते हुए डा० तिवारी ने 'कबीर ग्रन्थावली' में कबीर की रचनाओं का सर्वाधिक प्रामाणिक स्थिर पाठ तैयार करने का प्रयास किया है, जो विद्वानों में कबीर की रचनाओं का सर्वाधिक प्रामाणिक पाठ माना जाता है।

कबीर साहित्य का मुख्य वर्ण्य विषय निर्गुण ईश्वर की महिमा एवं उसकी प्राप्ति के लिए विवेकएवं ज्ञान की अनिवार्यता जगत् एवं माया की नि:सारता, ढोंग एवं पाषण्ड का तिरस्कार, भक्ति साधु महिमा एवं सहज साधना आदि का निरूपण है।

कबीर पंथ की रचनाएं —

कबीर की स्वतन्त्र रचनाओं के अतिरिक्त कबीर के नाम पर हिन्दी जगत में विपुल साहित्य उपलब्ध होता है, जिन्हें मूलत: कबीर का स्वीकार करने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। कबीर की प्रतिष्ठा धार्मिक क्षेत्र में इतनी अधिक हो गई कि उनके अवलम्बियों ने अपनी अधिकांश रचनाओं को धार्मिक श्रद्धा के भाव से प्रेरित होकर कबीर के नाम से प्रचलित किया इनमें अधिकांश तो कबीर के पद्यांशों को तोड़ मरोड़ कर या कुछ भाषान्तर के साथ उन्हें अपनी रचनाओं में रखने लगे, जिससे जन सामान्य में उन्हें कबीर की रचना के रूप में ख्याति प्राप्त हो सके। समय की प्रगति ने कबीर पंथी साहित्य का पर्याप्त सहयोग किया, यही कारण है कि कबीर पंथ में इन ग्रन्थों की इतनी अधिक मात्रा दृष्टिगत होती है। कबीर पंथ में दृढ़ता एवं प्रतिष्ठा लाने के लिए कबीर पंथी संतों ने साधना की दृष्टि से अनेक ग्रन्थों की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि मात्र अपने सिद्धान्त एवं साधना में दृढ़ता लाने के लिए कर्म कांड, बाह्याचार एवं अन्य विषयों से सम्बद्ध रचनाएं कबीर पंथियों द्वारा प्रस्तुत की गई। कबीर पंथी रचनाओं का अध्ययन 'कबीर ग्रन्थावली' के आधार पर किया गया है।[१] इनका हम विचार

साम्य की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गों में विवरण प्रस्तुत करते हैं।

(१) गोष्ठी-साहित्य –

इसमें 'कबीर-गोरख-गोष्ठी,' 'कबीर-शंकराचार्य-गोष्ठी,' 'कबीर-दत्तात्रेय-गोष्ठी,' 'कबीर देवदूत गोष्ठी', 'कबीर-जोगाजीत-गोष्ठी', 'कबीर-सर्वाजीत (शास्त्रज्ञ पंडित) गोष्ठी', 'कबीर-वशिष्ठ गोष्ठी,' 'कबीर हनुमान गोष्ठी' आदि ग्रन्थ आते हैं, जिनमें कबीर ने अपने प्रतिद्वन्दियों (जिनके नाम ऊपर गिनाये गये हैं) को ज्ञान विषयक चर्चा में जिस प्रकार पराजित किया था उनके विशद वर्णन उपलब्ध होते हैं। उपर्युक्त प्रतिपक्षी गण ही कबीर के समय में विविध धर्म सम्प्रदायों के मूलाधार रहे हैं जिनसे कबीर-पंथ को भी निपटना अनिवार्य हो गया। ये ग्रन्थ तार्किक शैली में लिखे गये हैं जिसके परिणामस्वरूप भाषा बहुत ही व्यंग्यात्मक एवं तीक्ष्ण सी बन गई है।

(२) सृष्टि-प्रक्रिया तथा कबीर के जीवन से सम्बद्ध पौराणिक शैली के ग्रन्थ: इस प्रकार के साहित्य के अन्तर्गत उन कबीर-पंथी रचनाओं की गणना की जाती है जिनमें सृष्टि-विकास एवं कबीर के विविध अवतार तथा उनके जीवन से सम्बद्ध अनेक अतिरंजनापूर्ण गाथाओं का समावेश किया गया है। इनमें 'अनुराग सागर,' 'ज्ञान सागर,' 'अम्बुसागर,' 'स्व-संवेदबोध,' 'निरंजन बोध,' 'सर्वज्ञसागर,' 'ज्ञान स्थिति बोध' तथा 'सुकृत ध्यान' आदि ग्रन्थ आते हैं। इनका सृजन विशेष रूप से हिन्दू पौराणिक कथाओं के अन्तर्गत उन्हीं के आधार पर हुआ है, यही बहुत कुछ सम्भावना है कि इन रचनाओं में सृष्टि की उत्पत्ति माया, ब्रह्म, जगत् तथा सांसारिक प्रपंचों की मुक्ति आदि के वर्ण्य विषय उन पौराणिक आख्यानों से पर्याप्त साम्य रखते हैं। इनमें से कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना अभीष्ट होगा।

अनुराग सागर –

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के मतानुसार यह उस समय की रचना है जब प्राणनाथ (सन् १६१८ से सन् १६६४ ई० तक) धामी सम्प्रदाय एवं जगजीवनदास (जन्म सन् १६७०) सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना कर चुके थे। इसकी सर्वाधिक प्राचीन प्रति स्वामी युगलानन्द बिहारी को प्रमोद गुरु बालापीर के संग्रह

के समय में उपलब्ध हुई थी। प्रस्तुत शोध प्रबंध में `सृष्टि प्रक्रिया` नामक शीर्षक का अध्ययन इसी `अनुराग सागर` के आधार पर प्रस्तुत किया जायगा क्योंकि कालोचित समस्या की दृष्टि से इसे ही प्राथमिकता देनी होगी। इसकी रचना कबीर एवं उनके शिष्य धर्मदास के मध्य धर्मगत विविध सिद्धान्तों के विषय में वार्तालाप की शैली में हुई है, इसमें कबीर के जीवन एवं उनके विविध अवतारों आदि के विषय में भी उल्लेख किया गया है।

ज्ञान सागर --

इसकी रचना पुराणों के पर्याप्त अनुरूप ही ज्ञात होती है क्योंकि इसके विषय विशेष रूप से पौराणिक प्रसंगों से प्रभावित है यथा: सृष्टि प्रक्रिया के साथ पृथ्वी का पाप के भार से संतप्त होकर निवेदन के निमित्त विष्णु के सम्मुख उपस्थित होना, विष्णु के विविध अवतार: राजा बलि, नारद, श्रवणकुमार, सती-दाह, शिव समाधि भंग करने के हेतु कामदेव का प्रयास एवं नारद मोह आदि की चर्चा इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं, जिन पर निर्विवाद रूप से पौराणिक गाथाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। राम एवं कृष्ण लीला के वर्णनों पर स्पष्ट ही `राम चरित मानस` एवं `महाभारत` आदि का प्रभाव पड़ा है।

अम्बुसागर--

इसमें अघासुर, वलभद्र, इन्दर पुरवन, अनुमान, धीर्यमान्, चरण, नन्दी हिन्डोल, कैकवत, सत्ययुग, त्रेता आदि युगों में कबीर के अवतरित होने एवं उनसे सम्बद्ध ह अनेक मनोरंजक कहानियों का वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें अनेक राजाओं और कबीर पंथी मान्यताओं के अनुसार कबीर द्वारा प्रतिपादित दीक्षा विधि आदि की भी चर्चा की गई है।

निरंजनबोध--

यह एक संक्षिप्त रचना है, इसमें सत्पुरुष के आदेशानुसार कबीर के अवतरित होने एवं धर्मराय अथवा निरंजन के आतंक से जीवों को कबीर द्वारा बताये गये अनेक सुरक्षा विधियों की ओर संकेत किया गया है। यह भी वार्तालाप शैली में लिखा गया है। इसका रचना काल विवाद ग्रस्त है।

ग्रन्थ भवतारण बोध-

यह कबीर के प्रमुख शिष्य धर्मदास की रचना बताई जाती है जिसमें, कबीर के चारों अवतारों एवं उनसे सम्बद्ध अनेक लीलाओं का संक्षेप में वर्णन हुआ है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कि इसमें भवसागर के संतरण के लिए धर्मदास के प्रश्नों का कबीर द्वारा समाधान प्रस्तुत किया गया है। त्रिदेवों की उपासना की नि:सारता, निर्गुण ब्रह्म का माहात्म्य, गुरु माहात्म्य, भक्ति के उपाय एवं योग विषयक महत्वपूर्ण बातों की ओर संकेत करते हुए बाह्याचार से एवं ढोंगों की निन्दा की गई है।

(३) पंथ के बाह्याचार से सम्बद्ध ग्रन्थ -

इनमें सुमिरन बोध`, `सुमिरण-साठिका,` `चौका-सरोदय`, एकोतरा सुमिरण, `इकतार की रमैनी`, `आरती अठपहरा`, चौका पर की रमैनी, `स्वासाभेद`, `टकसार` आदि ग्रन्थों की गणना की जाती है जिनका मुख्य वर्ण्य-विषय कबीर पंथी साधुओं के जीवन से सम्बद्ध नाना उत्सवों के विधियों की ओर संकेत करना है। इनमें कबीर-पंथियों की दीक्षा विधि, चौका साज, आरती-विधि एवं अनेक मंत्रों का भी वर्णन हुआ है। इसी परम्परा में 'विवेक सागर' एवं 'धर्मबोध' की भी गणना की जा सकती है जिनमें गृहस्थ एवं वैरागी साधुओं के जीवन से सम्बद्ध अनेकबातों की चर्चा की गई है।

(४)नाम माहात्म्य सम्बन्धी ग्रन्थ -

`ज्ञानबोध`, कबीर-भेद, `मुक्तिबोध`, `कबीर बानी`,` नाम महात्म्य` `ब्रह्म-निरूपण`,` हंस मुक्तावली`, `मूलबानी`, मूल ज्ञान` में सत्तनाम का का माहात्म्य गायन एवं भक्ति के विषय में उल्लेख किया गया है।

ज्ञानबोध-

इसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की उपासना की` नि:सारता, तथा उनके अवतार की कथा की चर्चा की गई है। इसका मुख्य विषय निर्गुण ब्रह्म की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना ही रहा है, जिसके लिए एक भक्त के लिए आत्म परख एवं अन्तरानुभूति की अनिवार्यता एवं ग्रन्थज्ञान तथा व्यर्थ के पाखण्डों के प्रति उपेक्षा भाव प्रदर्शित करने आदि की ओर संकेत किया गया है।

मुक्तिबोध—

इसकी रचना रमैनी, साखी एवं छन्द में वार्तालाप शैली में हुई है। इसमें धर्मदास द्वारा किये गये ब्रह्म जगत्, माया, एवं भक्ति आदि विषयक प्रश्नों का कबीर द्वारा दिए गये समाधान का विशद चित्रण उपलब्ध होता है। ईश्वर भक्ति के लिए मूलनाम का अजपाजाप ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया गया है और साधु एवं सद्गुरु के प्रति सम्मान प्रदान करने तथा बाह्याचार के पूर्ण रूपेण उन्मूलन की ओर भी संकेत किया गया है।

कबीर-बानी—

इसमें धर्मदास द्वारा किए गए सृष्टि विषयक प्रश्नों का कबीर द्वारा दिए गए प्रत्युत्तर का वर्णन किया गया है जिसमें रचयिता ने सो'हं शब्द, गुरु तथा नाद एवं विन्दु की ओर भी संकेत किया है। इसमें योग विषयक चर्चा भी की गई है।

(५) योग साधना सम्बन्धी ग्रन्थ —

इसमें 'काया पांजी,' 'मूल पांजी,' 'पंचमुद्रा', श्वास गुंजार, 'संतोष बोध,' कबीर-सुरति-योग' एवं 'सुरति-शब्द-संवाद आदि आते हैं। इनका मुख्य वर्ण्य विषय योग विषयक चर्चा है। 'कायापांजी, तथा' मूल पांजी' में इस बात की ओर निर्देश किया गया है कि त्रिकुटी के आगे सुमेरु है जिसकी बायीं ओर धर्मराय अवस्थित हैं और दूसरी ओर सुरति द्वार है। सुमेरु के आगे सुरति कंवल है, जिसके एक योजन आगे एक श्वेत वर्ण का अक्षय वृक्ष है जिसमें मोतियों की झालर लगी हुई है, यहीं कबीर अवस्थित हैं।

'संतोष बोध' ज्ञान सागर प्रेस बम्बई से और 'सुरति सम्बाद' जिला जौनपुर की बड़ैया गद्दी से प्रकाशित हो चुके हैं, इनकी भाषा अत्यधिक आधुनिक ज्ञात होती है।

स्वर पांजी — में कबीर ने धर्मदास को उपदेश दिया है जिसमें उन्हें योग का रहस्य बताते हुए जल, थल, आकाश, अग्नि तथा वायु के गुण-परिमाण और देवताओं आदि के विषय में चर्चा की गई है।

ज्ञान स्वरोदय-

यह ग्रन्थ कबीर धर्म वर्धक कार्यालय, सीयाबाग- बड़ोदा द्वारा प्रकाशित कराया गया है, जिसमें योग-विषयक चर्चा के साथ साथ नासिका के श्वास संचालन के आधार पर भविष्य कथन की अनेक विधियों की भी चर्चा की गई है।

(६) नीति ग्रन्थ -

'ज्ञान गूदड़ी,' ज्ञानस्तोत्र', 'तीसा जंत्र', 'मनुष्य विचार,' 'उग्रज्ञान - मूलसिद्धान्त' आदि कबीर पंथ के नीति ग्रन्थ हैं, इसमें कहीं कहीं कबीर की साखियों का भी प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त 'अअरावत,' 'अदारखंड' की रमैनी; तथा 'अलिफनामा' में देवनागरी तथा फारसी लिपि के अक्षरों के आद्याक्षर नीति युक्ति उक्तियां उपलब्ध होती हैं।

(७) अन्य ग्रन्थ -

'मुहम्मद बोध,' सुल्तान बोध,' गरुड़बोध, 'अमर सिंह बोध' 'वीरसिंह बोध' 'जगजीवन बोध, 'कमाल बोध, एवं 'गुरु माहात्म्य' में कबीर द्वारा अनेक व्यक्तियों के प्रति दिये गये धर्मोपदेशों के विवरण उपलब्ध होते हैं। 'मुहम्मद बोध' में इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब को उपदेश दिया गया है। 'सुल्तानबोध' में बलख के सम्राट् इब्राहिम अदम को सांसारिक भोगों से विरक्त होने के लिए कबीर द्वारा दिए गये उपदेशों का वर्णन किया गया है। 'गरुड़बोध' में गरुड़ को अमरसिंह बोध में लंका के राजा अमरसिंह को, 'बीरसिंह बोध' में बनारस के ~~बादशाह~~ राजा वीरसिंह को और 'जगजीवन बोध' में राजा जगजीवन को, भूपाल बोध में जलन्धर के सम्राट भूपाल को, 'कमालबोध' में दिल्ली के सिकन्दर शाह तथा अहमदाबाद के दरिया खां को तथा' गुरु माहात्म्य' में श्री नगर (गढ़वाल) के राजा रायमोहन को धर्मोपदेश देकर कबीर पंथ की शिक्षाओं से अनुप्राणित करने की चर्चा की गई है। 'ज्ञान-प्रकाश' में कबीर एवं धर्मदास के मध्य कबीर द्वारा सगुण भक्ति से विमुख कर, निर्गुण भक्ति की ओर अनुरक्त करने का वर्णन किया गया है।

'करनीनामा,' कबीर-अष्टक पुकार' 'सतनाम' या सतकबीर बन्दी छोर' में कबीर पंथी संतों द्वारा कबीर की स्तुतियों का वर्णन उपलब्ध होती हैं।

`मंत्र-जंजीरा` में कबीर-पंथी संतों द्वारा स्वीकृत सांप, विच्छू आदि के अनुक मंत्रों की चर्चा की गई है।

`उग्रगीता` की रचना `गीता` के आधार पर की गई है, इसमें कुल अठारह अध्याय हैं जिनमें सृष्टि, वर्ण व्यवस्था, गुरु माहात्म्य भक्ति एवं योगादिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के विषय पर भी प्रकाश डाला गया है।

यज्ञ-समाधि—

इसमें कबीर एवं धर्मदास के सम्वाद द्वारा कृष्ण चरित्र के विषय में चर्चा उपस्थित की गई है। इसी प्रकार `वशिष्ठबोध` एवं `ज्ञान-सम्बोधन-ग्रन्थ में तथा 'वशिष्ठ और राम सम्बाद' में सत्संग की महिमा प्रस्तुत की गयी है।

निर्णय सार—

इसका सन् १९४७-४९ की खोज रिपोर्ट में उल्लेख हुआ है जो कबीरपंथी साधु पूरणदास की रचना मानी जाती है। यह बंसुदास जी की टीका के साथ स्व-संवेद कार्यालय, सीयाबाग बड़ौदा द्वारा मुद्रित हो चुका है।

` कबीर परिचय` या `तिरंजा की साखी` (जिसमें ८३३ साखियों की गणना की जाती है) में अधिकांश में कबीर का नाम है किन्तु तथ्य यह है कि ये कबीर की रचनाएं नहीं ज्ञात होती। इसकी रचना बीसवीं शती की ज्ञात होती है, यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित युगलानन्द की `सतकबीर की साखी` तथा रामरहस्यदास की `पंचग्रन्थी` में मुद्रित हो चुका है।

राम सार या राम सागर —

इसमें सन् १९०१ की खोज रिपोर्ट में कबीर का नाम दिया हुआ है किन्तु यह किसी परवर्ती संत की रचना ज्ञात होती है, इसमें राम नाम की महिमा गाई गई है।

ग्रन्थ`आत्मबोध` —

यह वेंकटेश्वर प्रेस की नवीं जिल्द में संकलित है जिसकी रचना रेखता और झूलना छंद में हुई है, इसका वर्ण्य विषय अध्यात्म एवं योग से सम्बन्धित है

और इसकी भाषा बड़ी ही प्रभावशालिनी बन पड़ी है।

ज्ञान तिलक-

यह पंजाब विश्वविद्यालय तथा अन्य संग्रहों में उपलब्ध है किन्तु यह प्राचीन है। इसका रचयिता अज्ञात है। इसकी गणना गोष्ठी साहित्य के अन्तर्गत भी की जा सकती है।

'ग्रन्थ बत्तीसी', 'कबीर बत्तीसी', 'ज्ञान बत्तीसी', 'सार बत्तीसी' आदि एक ही रचना के विविध नाम हैं। इसमें दो पद उपलब्ध होते हैं। कुल मिला कर बत्तीस अक्षरों में कड़िया या द्विपदियां हैं जिसके कारण इसका नाम बत्तीसी पड़ा है। इसका मुख्य वर्ण्य विषय रामनाम की महिमा एवं योग से सम्बद्ध है। यह कबीर की रचना नहीं ज्ञात होती है।

इनके अतिरिक्त 'जन्मबोध,' 'जीवन्धर्म बोध,' 'जन्म पत्रिका की रमैनी,' 'आध बोध,' 'राम मंत्र,' 'सबद् भोग ग्रन्थ' एवं 'ब्रह्म निरूपण' आदि ग्रन्थों की गणना कबीर पंथी साहित्य के अन्तर्गत की जाती है जिसका विभिन्न दृष्टियों से साहित्य के अन्तर्गत महत्त्व है। 'ब्रह्मनिरूपण' की रचना संस्कृत श्लोकों में की गई है, जिसका सम्बन्ध कबीर पंथी साधुओं से ही जोड़ा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर कबीर पंथ का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन किया जायगा।

दरिया पंथी रचनाएं -

दरिया पंथी रचनाओं में दरिया साहब की रचनाएं मुख्य रूप से आती हैं, जिनके विषय में डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने अपने शोध प्रबंध 'सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन' में संकेत किया है, जिसके अनुसार उनकी कुल बीस रचनाओं का विवरण उपलब्ध होता है। जिनमें (१) 'अग्रज्ञान,' (२) 'अमर सार,' (३) 'भक्ति हेतु', (४) 'ब्रह्मचैतन्य,' (५) 'ब्रह्मविवेक' (६) 'दरिया नामा,' (७) 'दरिया सागर,' (८) 'गणेश गोष्ठी,' (९) 'ज्ञान दीपक,' (१०) 'ज्ञानमूल,' (११) 'ज्ञान रत्न,' (१२) 'ज्ञान स्वरोदय,' (१३) 'कालचरित्र,' (१४) 'मूर्ति उखाड़,' (१५) 'निर्भय ज्ञान,' (१६) 'प्रेम-मूल' (१७) 'शब्द या बीजक,' (१८) 'सहसरानी,' (सहस्रानी), (१९) 'विवेक सागर', एवं (२०) 'यज्ञ समाधि' आते हैं।

दरिया साहब की रचनाओं के विषय में अन्य विद्वानों में मतभेद हैं किन्तु उक्त शोध प्रबंध में अन्त: साक्ष्य के आधार पर उनकी रचनाओं का अध्ययन किया जाता है जिससे उनकी रचनाओं के कुछ क्रम उपलब्ध होते हैं। यथा :— `ज्ञान दीपक` में इस प्रकार का वर्णन आया है कि `दरिया सागर प्रथमहि कहेऊ।` इससे निष्कर्ष-(निकाला) लेना स्वाभाविक है कि `दरियासागर` उनकी प्रथम रचना है और `ज्ञान स्वरोदय` में उल्लिखित है :—

`ग्रन्थ अष्टदस कहा बखानी
तब सरोद कहं दिल अनुमानी।`

इसका अभिप्राय यह है कि १८ पुस्तकों की रचना के अनन्तर `ज्ञानस्वरोदय` की रचना की गई—अर्थात् `ज्ञान स्वरोदय` दरिया साहब की अंतिम रचना है। इसमें अंतिम पद इस प्रकार है :—

'दरिया नामा' पारसी, पहिले कहा किताब।
सो गुन कहा सरोद में गहिर ग्यान गरकाब।।

अर्थात् दरियानामा के आधार पर `ज्ञानस्वरोदय` की रचना हुई। उपर्युक्त विवरणों के आधार पर हम निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते हैं :—

१. `दरिया सागर` प्रथम रचना है।
२. `ज्ञानस्वरोदय` उनकी अंतिम रचना है।

इन दोनों के मध्य काल में शेष १८ ग्रन्थों की रचना हुई, इस प्रकार कुल २० ग्रन्थ हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

अग्रज्ञान—

इसमें दरिया साहब एवं सत्पुरुष के मध्य वार्तालाप का वर्णन है, जिसका मुख्य विषय माया, निर्गुण-सगुण ब्रह्म, स्वर्गलोक, सृष्टि रचना एवं शब्द तथा नाम महिमा आदि है।

अमरसार—

इसमें सत्पुरुष एवं दरिया साहब की स्तुति एवं सत्पुरुष से उनका साक्षात्कार, भक्ति की महत्ता, मिथ्या-पाखंड एवं योग का विरोध एवं ज्ञान की

महत्ता आदि पर प्रकाश डाला गया है।

भक्तिहेतु —

इस ग्रन्थ में भक्ति एवं ज्ञान की महत्ता, साधु आचार एवं असाधु का तिरस्कार, सत्संग एवं सद्गुरु की महिमा, अहिंसा, दया माया त्याग, बाह्याचार खंडन एवं योग आदि की चर्चा की गई है।

ब्रह्मचैतन्य —

इसकी रचना संस्कृत भाषा -शैली में हुई है, इसमें निर्गुण-सगुण महिमा, योग, अहिंसा, पाखंड का तिरस्कार एवं माया आदि के त्याग पर प्रकाश डाला गया है।

ब्रह्मविवेक—

इस ग्रन्थ में ईश्वर या सत्पुरुष के अस्तित्व एवं उसकी प्राप्ति के लिए विवेक एवं ज्ञान की वांछनीयता, ढोंग का तिरस्कार, साधु महिमा, योग, सप्तलोक आत्मशुद्धि के नियम, मूर्तिपूजा का खंडन, माया का त्याग, सृष्टि एवं त्रिदेवों एवं सुरनर मुनि आदि को कनक एवं कामिनी के जंजालों में फंसकर पथ भ्रष्ट होने आदि का वर्णन किया गया है।

दरियानामा—

यह फारसी में लिखा हुआ ग्रन्थ है, जो कि परवर्ती ग्रन्थ ज्ञान स्वरोदय का ही संक्षिप्त फारसी रूपान्तर है, यत्रतत्र 'कुर-आन शरीफ' के भी कुछ अंशों से साम्य मिल जाता है। इसकी रचना मुसलमानों से सम्बद्ध उपदेशों के लिए की गई है।

दरिया सागर —

इसमें सार शब्द एवं सत्पुरुष का माहात्म्य, भक्ति, योग एवं सद्गुरु आदि के विषयों पर प्रकाश डाला गया है। ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति एवं विश्वास की अनिवार्यता, माया का त्याग एवं ग्रन्थ ज्ञान, मूर्तिपूजा, बाह्याचार एवं व्यर्थ के ढोंगों की निःसारता का भी वर्णन हुआ है।

गणेश गोष्ठी—

इसका मुख्य विषय मूर्तिपूजा खण्डन,कर्मकाण्ड, वर्णाश्रम धर्म, ग्रन्थज्ञान आदि का तिरस्कार एवं सत्पुरुष आदि की महत्ता है। इसमें विविध अध्यात्म विषयों का वर्णन दरिया एवं गणेशगोष्ठी की सम्बाद शैली के आधार पर किया गया है।

ज्ञानदीपक—

इसका मुख्य वर्ण्य विषय सद्गुरु, साधु भक्ति, मुक्ति योग एवं नाना पौराणिक कथाओं का निरूपण ही है। इसमें दरिया साहब ने अपने को कबीर का अवतार सिद्ध किया है।

ज्ञान मूल—

इसमें ज्ञान की महत्ता पर अत्यधिक बल दिया गया है और शेष वर्णन अन्य रचनाओं के ही सदृश है। इसमें विशेष रूप से दरिया साहब के परिवार एवं उनके शिष्यों के विषय में भी संकेत किया गया है।

ज्ञान रतन—

इसके वर्ण्य विषय का मूलाधार रामचरित मानस की कथा है, वैसे इसमें निर्गुण ईश्वर, भक्ति, माया, सत, सद्गुरु की महत्ता एवं अनेकानेक पौराणिक उपाख्यानों आदि का भी यथा प्रसंग निर्देश किया गया है।

ज्ञान स्वरोदय—

इसका मुख्य विषय आत्मा परमात्मा का तादात्म्य, शरीर,पुनर्जन्म, मुक्ति, भक्ति, स्वर्ग नरक योग, संयम आदि है। इसमें नासिका द्वारा श्वांस के आरोह एवं अवरोह के आधार पर भविष्य कथन की ओर भी संकेत किया गया है।

काल चरित्र—

इसमें दरिया साहब का काल से संघर्ष का वर्णन है, शेष वर्णन अन्य रचनाओं के सदृश है।

मूर्ति उखाड़ —

इसमें मूर्तिपूजा का खण्डन बड़े ही वास्तविक ढंग से किया गया है।

धरकंधा के गणेश पंडित एवं दरिया साहब के मध्य हुए वार्तालाप का वर्णन उपलब्ध होता है, जिसमें दरिया साहब ने मूर्ति उपासना को नि:सार सिद्ध करने के लिए, अपने समीपस्थ ग्राम की एक देवी की मूर्ति को उखड़वा कर कई महीनों तक गुप्त रूप से जमीन में गड़वा दिया किन्तु इसका उन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा । मूर्ति पूजा के तिरस्कार के लिए दरिया साहब को विशाल जनसमुदाय से टक्कर लेना पड़ा, पर उनका असाधारण धैर्य सफलता प्राप्त करने में पर्याप्त सिद्ध हुआ ।

निर्भय ज्ञान —

इसका मुख्य विषय सत्पुरुष का गुणानुवाद सद्गुरु एवं सतशब्द में विश्वास है एवं दिव्य दृष्टि का अलौकिक प्रभाव का वर्णन है ।

प्रेम मूला —

यह एक छोटी-सी रचना है, जिसमें भक्ति के क्षेत्र में संतों के लिए ईश्वर एवं गुरु के प्रति पवित्रप्रेम उत्पन्न करने के लिए उपदेश दिया गया है ।

शब्द —

यह दरिया साहब की सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसमें अनेक दृष्टियों से अनन्त भावों का चित्रण हुआ है। अध्यात्म जगत् के लिए यह एक लह-राता हुआ सागर सा प्रतीत होता है, जिसमें भक्त के लिए कितने बहुमूल्य रत्न उप-लब्ध हो सकते हैं । इसमें अनेक गेय पदों का संग्रह है ।

सहसरानी —

इसमें १०५३ साखियों का संकलन है, जिसमें अधिकांश साखियां उनकी अन्य रचनाओं से आई हुई जान पड़ती हैं ।

विवेक सागर —

इसमें गरुड़ की बंदना एवं विवेक की महत्ता का वर्णन किया गया है । इसमें महाभारत की कथा को प्रधानता दी गई है और विषय, अन्य रचनाओं के सदृश हैं ।

यज्ञ समाधि- इसकी रचना कृष्णाचरित पर आधारित है, जिसमें महाभारत के प्रसंगभी समाविष्ट हैं।

इस प्रकार दरिया साहब की रचनाओं के अतिरिक्त हमें दरियापंथ की कोई अन्य महत्वपूर्ण रचना उपलब्ध न हो सकी। परवर्ती दरियापंथियों में से तेलपा के शिवनाथ रचित 'भक्तमहातम', 'शिवसागर', दंगसी के रूप साहबकी ज्ञानटीका', 'ज्ञानमणि, 'ज्ञान-गरकाब' तथा मोहनसाहब की 'आदि अंकावली' का पता चलता है, किन्तु ये रचनाएं उपलब्ध न हो सकीं। परिणामस्वरूप इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विभिन्न दरियापंथी सिद्धान्तों का हम अध्ययन करेंगे।

दरिया साहब की उपर्युक्त रचनाओं में से दरिया ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड) (डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, २०१८) में 'दरिया सागर', 'ग्यान रतन', 'ग्यान सरोद', 'भक्तिहेतु', 'ब्रह्मविवेक', एवं 'ज्ञानमूल' संकलित हैं। हमें 'ज्ञान दीपक' (महन्त साहब चतुरीदास जी, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग, १९३६) की भी एक प्रति प्राप्त हुई।[1] दरिया साहब की समस्त रचनाओं की ह०लि०प्रतियां बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना में सुरक्षित हैं, जिनका उपयोग भी प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है। इनके अतिरिक्त 'सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन' (डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, बि०रा०भा०परिषद्, पटना सन् १९५४ ई०) के परिशिष्ट में दरिया साहब की कुछ रचनाओं का संकलन हुआ है, उनका भी यथास्थान उपयोग हुआ है। रचना शिल्प आदि की दृष्टि से इन रचनाओं की तुलना आगे की जा रही है।

नाम साम्य-

कबीरपंथ एवं दरियापंथ दोनों में कुछ रचनाएं एक ही नाम से उपलब्ध होती हैं जिनमें वर्ण्यविषय की दृष्टि से भी समानता प्रतीत होती है। यथा:- 'शब्द', 'निर्भय ज्ञान', 'विवेक सागर', 'ज्ञान स्वरोदय' एवं 'यज्ञ समाधि'।

शब्द-

ये कबीर एवं दरिया की स्वतंत्र एवं मौलिक रचनाएं हैं जो आकार में भी सर्वाधिक विशाल है। इन पंथों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दोनों में ऐसे पदों का संकलन है जो विभिन्न रागों में गाये जा सकते हैं। इनमें अन्य ग्रन्थों के सभी विषयों का समावेश किया गया है। इन्हीं

---

१. 'ज्ञानदीपक' यद्यपि मुद्रित है, किन्तु अब अप्राप्य है। इसकी एक प्रति काशी के समीपस्थ दरियापन्थी गद्दी के महंत से मुझे प्राप्त हुई जिसके लिए मैं उनका आभारी हूं। मुद्रितप्रति के अतिरिक्त बि०रा०भा०परिषद् की [illegible] भी उपयोग किया गया है।

विशेषताओं के कारण इन्हें विशेष स्थान प्राप्त हुआ है।

निर्भयज्ञान—

दोनों पंथों के 'निर्भयज्ञान' में टकसार शब्द की महत्ता स्वीकार की गई है इसका मुख्य वर्ण्य विषय सत्पुरुष महिमा, गुरु की महत्ता आदि है। इसमें भक्ति की अपेक्षा, मूर्तिपूजा एवं बाह्याचार का खण्डन उपलब्ध होता है। साधना पक्ष में ग्रन्थ के लिए दोनों में समान रूप से तिरस्कार प्रदर्शित किया गया है।

इनमें अन्तर इस बात का है कि कबीर पंथी 'निर्भय ज्ञान' का आकार बड़ा है, साथ ही इसमें ज्ञान, भक्ति तथा सत्पुरुष आदि के विषय में कतिपय कहानियों द्वारा विशेष रूप से मनोमुग्धकारी चित्रण उपस्थित किया गया है,[1] जिसका दरियापंथी 'निर्भय ज्ञान' में सर्वथा अभाव है। कबीर पंथी निर्भय ज्ञान में संसार की अज्ञानता का प्रदर्शन सोंडर मल नामक गधे के बच्चे की मृत्यु का उदाहरण लेकर किया गया है, किसी राज्य में एक संतान हीन धोबिन के पालतू सोंडर मल नामक गधे की मृत्यु पर रोते देख कर अखिल राज समाज करुण विलाप करने लगा, जिसके रहस्य का निवारण एक ज्ञानी के आगमन के अनन्तर हुआ कि सभी व्यर्थ अज्ञानतावश रो रहे थे, यह है संसार की अज्ञानता।[2] दरियापंथी 'निर्भय ज्ञान' के अतिरिक्त कबीर पंथी 'निर्भयज्ञान' में एक और भी महत्वपूर्ण घटना उपलब्ध होती है, वह है कबीर का जन्म विषयक वर्णन।[3] इसके साथ ही कबीर के बाल्य-काल में होने वाली अनेक अलौकिक घटनाओं तथा रामानन्द, अनन्तानन्द, सर्वानन्द से गोष्ठी के प्रसंग भी दृष्टिगत होते हैं।[4] कबीर को अपने जीवन में अपने सत्य की परख के लिए तत्कालीन अनेक सम्राटों तथा अलौकिक शक्तियों के सम्मुख परीक्षा देनी पड़ी, किन्तु इन सब व्यर्थ एवं निःसार के प्रपंचों से उनका अमित साहस एवं

---

१. निर्भयज्ञान (कबीर पंथ), पृ० २८

२. वही, पृ० २५-२६

३. वही, पृ० ५७

४. वही, पृ० ५८-८३

धैर्य कब टूटने वाला था ? वे सत्य की ही तो मूर्ति थे, और इसी का पाठ पढ़ाने के लिए इस धरा पर अवतरित हुए थे, इसीलिए वे अपनी परीक्षाओं में सर्वथा अचल एवं सफल सिद्ध हुए। किन्तु इन सब की ओर दरिया पंथी 'निर्भय ज्ञान' में यत्किंचित निर्देश नहीं किया गया है। कबीर पंथी 'निर्भय ज्ञान' में एक विशेषता और भी महत्वपूर्ण ज्ञात होती है, वह यह कि लक्ष्मी स्वयं एक मोहक मूर्ति के रूप में कबीर को वशवर्ती बनाने के लिए उपस्थित हुईं किन्तु उन्हें भी कबीर की अलौकिक प्रतिभा के समक्ष लज्जित एवं पराजित होना पड़ा।[१]

दरिया पंथी 'निर्भय ज्ञान' में विशेष रूप से योग[२] विषयक चर्चा की गई है, जिसका विवेचन यथा-स्थान किया जायगा। इसमें ज्ञान की उपमा उस सर्प-मणि से दी गई है जिसके दिव्यालोक से अंधकार समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान के प्रकाश द्वारा अज्ञानांधकार विलीन हो जाता है और ज्ञाता में एक दिव्य ज्योति का प्रकाश पुंज प्रवेश करता है।[३] दरिया साहब ने इसमें पच्चीस प्रकृतियों की कल्पना बड़े ही मौलिक एवं अनूठे ढंग से प्रस्तुत की है जिसका विवेचन शरीर वाले प्रसंग में किया जायगा।[४]

विवेक सागर —

'विवेक सागर' नाम की रचनाएं यद्यपि दोनों पंथों में उपलब्ध होती हैं किन्तु वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनमें पर्याप्त अन्तर है। कबीर पंथी 'विवेक सागर' में विशेष रूप से काम, क्रोध, मद, लोभ, एवं मोह के विषय में वर्णन किया गया है, किन्तु दरियापंथी विवेक सागर गरुड़ की वन्दना, यम की यातना, शरीर का लोकों में विभाजन, स्वर्ग के आमोद-प्रमोद, विहंगमयोग, कौरव पाण्डव का युद्ध, प्रायश्चित के निमित्त यज्ञ का आयोजन, श्वपचसुदर्शन की अनुपस्थिति में यज्ञ की अपूर्णता एवं उनके भोजन ग्रहण करने पर घंटे बजने तथा यज्ञ की पूर्णता आदि का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार दोनों पंथों के 'विवेक सागर' की अनुरूपता नहीं ज्ञात होती।

---

१. निर्भय ज्ञान (कबीर पंथ) पृ० ८४-८५
२. वही (दरिया पंथ) पृ० ६ पाण्डुलिपि
३. वही, (वही) पृ० ७ वही
४. वही, (वही) पृ० ११-१२, वही

ज्ञान स्वरोदय—

दोनों पंथों के 'ज्ञान स्वरोदय' नामक ग्रन्थ में स्वरोदय की दृष्टि से पर्याप्त अनुरूपता परिलक्षित होती है, जिसमें नासिका के श्वास-भेद द्वारा भविष्य कथन के अनेक सिद्धान्त निरूपित किये गये हैं इनका विशद विवेचन स्वरोदय वाले प्रसंग में किया जायगा ।

यज्ञ समाधि—

दोनों पंथों के 'यज्ञसमाधि' का मुख्यवर्ण्य विषय कृष्ण चरित का उद - घाटन रहा है किन्तु दरिया साहब की 'यज्ञ समाधि' रचना अनुपलब्ध होने के कारण इनकी विस्तृत तुलना नहीं की जा सकती ।

कथा साम्य

ज्ञान सागर एवं ज्ञान रतन की तुलना

राम चरित्र का प्रसंग—

साम्य—

कबीर पंथी 'ज्ञान सागर' एवं दरिया साहब के 'ज्ञान रतन' में राम-चरित्र की दृष्टि से पर्याप्त सादृश्य विन्दु दृष्टिगत होते हैं । 'ज्ञान रतन' का वर्ण्य विषय 'ज्ञान सागर' की तुलना में वृहद् अवश्य है किन्तु 'ज्ञान सागर' में भी राम-चरित्र की दृष्टि से पूर्ण समन्वित चित्र उपस्थित किया गया है यही कारण है कि इस दृष्टि से दोनों रचनाओं में पर्याप्त एक रूपता दृष्टिगत होती है । इनमें सबसे बड़ी समानता इस बात में ही है कि 'राम चरित मानस' के सदृश इनका कांडों में कोई विभाजन नहीं हुआ है । कथानक की दृष्टि से इनमें इस प्रकार साम्य है :—

'ज्ञान सागर' का प्रारम्भ नारद चरित्र से किया गया है, इसी प्रसंग में श्रवण चरित्र एवं दशरथ के शाप-भ्रष्ट होने की कथा , सती दाह, नारद की कामासक्ति एवं उनके अभिमान चूर होने की कथा, लक्ष्मण एवं रामको नारद के शाप

देने की कथा, राम जन्म की आकाश वाणी एवं रावण का अपने परिजनों सहित जन्म लेने आदि की चर्चा की गई है।[१]

'ज्ञान रतन' की कथा सत्पुरुष एवं माया की महिमा से प्रारम्भ होती है। शुजाशाह के दरिया साहब से पाप पुण्य, मानव स्वभाव, निर्गुण-सगुण विवेचन, योग, दिव्यदृष्टि, माया, कर्म मुक्ति, ज्ञान एवं भक्ति आदि के विषय में प्रश्न के रूप में कथा का बीजारोपण होता है, जिसमें वे दरिया साहब से सीता राम विषयक संदेह का समाधान चाहते हैं और दरिया साहब इसके स्पष्टीकरण के लिए सत्पुरुष के सोलह पुत्रों का वर्णन करते हैं, जिनमें निरंजन एवं सुकृत भी सम्मिलित हैं।[२]

'ज्ञान सागर' में रामकथा का प्रारम्भ 'रामचरित मानस' के अनुरूप ही राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के जन्म से होता है। इसके अनुसार रामजन्म के अनन्तर कौशिक ऋषि अवध में आकर महाराज दशरथ से राम को यज्ञ की सुरक्षा के लिए याचना करते हैं, राम लक्ष्मण उनके साथ जाकर आश्रम में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करते हैं, और यज्ञ की रक्षा करते हुए राम ताड़का का बध करते हैं। कुछ समय के अनंतर जनकपुर में सीता-स्वयम्बर के उपक्रम में धनुषयज्ञ के समारोह को देखने के लिए विश्वामित्र एवं राम-लक्ष्मण प्रस्थान करते हैं, एवं मार्ग में राम के चरणों की रज द्वारा अहिल्या की मुक्ति होती है। जनकपुर में उन सबका बड़े ही शुद्ध ढंग से स्वागत किया जाता है।[३]

'ज्ञान रतन' में कहानी का प्रारम्भ सीता जन्म से होता है, तदनन्तर माया का अवतार सीता के कौमार्य एवं सौन्दर्य आदि का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् उनके स्वयम्बर में आए हुए राजकुमारों की भीड़-भाड़ एवं रावण के प्रयत्न विफल होने की चर्चा की गई है, इस प्रकार सर्वप्रथम सीता स्वयंवर की कथा का उल्लेख हो जाने पर 'ज्ञान रतन' में राम जन्म का उल्लेख हुआ है। रामजन्म

---

१. ज्ञानसागर, पृ० ३१-३५
२. ज्ञानरतन, पृ० १२१-१२७
३. ज्ञानसागर, पृ० ३५-३७

के अनन्तर यज्ञ की सुरक्षा के लिए विश्वामित्र के मांगने एवं राम लक्ष्मण के विदा होने, आश्रम में आकर शिक्षा प्राप्त करने, ताड़का बध, एवं विश्वामित्र के साथ उनके जनकपुर में धनुष यज्ञ को देखने के लिए प्रवेश करने आदि का वर्णन किया गया है।[१]

'ज्ञान सागर' में जनकपुर की पुष्प वाटिका में राम को भ्रमण करते हुए सीता का अवलोकन एवं उनके मुग्ध होने, राम का यज्ञ-भूमि में पदार्पण, राजकुमारों से भरे यज्ञ मंडप में सीता का प्रवेश, रावण का प्रयत्न निष्फल होने, राम द्वारा धनुर्भंग, परशुराम का क्रोध, लक्ष्मण-परशुराम सम्बाद, एवं परशुराम का परास्त होना, दशरथ को निमंत्रण दान, दशरथ का बारात लेकर आगमन, राम तथा अन्य राज-कुमारों का विवाह, बारात की विदाई, अवधपुर में आकर उत्सव आदि मनाने का वर्णन उपलब्ध होता है।[२]

इसी प्रकार 'ज्ञान रतन' में पुष्पवाटिका में आये हुए राम और सीताका परस्परावलोकन और उनका यज्ञ मंडप में पदार्पण, राम द्वारा धनुर्भङ्ग, परशुराम का क्रोध, लक्ष्मण सम्बाद, परशुराम का राम के सम्मुख नतमस्तक होना, जनक द्वारा दशरथ को विवाह के लिए निमंत्रण भेजना, बारात का आगमन , राम एवं अन्य राजकुमारों का विवाह, बारात की विदाई, अयोध्या में आकर 'नरेश द्वारा मंगल साज का वर्णन किया गया है।[३] इसी प्रसंग में इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि 'ज्ञान रतन' में जिन सीता का वर्णन हुआ है उन्हें दरिया साहब ने सत्पुरुष की पुत्री अथवा कन्या कुमारी के रूप में वर्णन करते हुए माया का साक्षात अवतार सिद्ध किया है, इसीलिए उन्होंने कहा है :-

सतें पुर्ब के कन्या कुमारी । इन्ह परिपंच बिदित जग डारी ।। २०८

— ज्ञान रतन, पृ० १३५

माया जनक ग्रिह आइया, परगट भई तिनि लोक ।
सोभा सकल संवारिकै, दियो सभन्हि के सोक ।।६।।

— ज्ञान रतन, पृ० १२७.

साथ ही माया की व्यापकता एवं इसकी सम्मोहन शक्ति के विषय में भी उन्होंने

---

१. ज्ञान रतन, पृ० १२७—१३१
२. ज्ञान सागर, पृ० ३७—३८
३. ज्ञान रतन, पृ० १३१—१३४

निर्देश किया है: —

आए जनकपुर सभैनचाया। माया भेद ग्यान नहिं पाया।। २१६ ।।
यह कौतुक माया कर चीन्हा। आगे पगु अवधपुर दीन्हा।।२१७।।

— ज्ञानरतन, पृ० १३६

इसीप्रकार दरिया साहब ने राम को भी निरंजन का अवतार सिद्ध किया है :—

सोई राम निरंजन अहई। यह जग जानि त्रिगुन मैं बहई ।। २०६ ।।

— ज्ञानरतन, पृ० १३५

'ज्ञान सागर' में इस प्रकार का वर्णन आया है कि राम के राज्याभिषेक के लिए जब दशरथ उद्यत होते हैं तब अम्बिका कैकेई के मन में इसके प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करती है, जिससे कैकेई दशरथ से राम के लिए वन गमन एवं भरत के लिए राज्याभिषेक का वर मांगती है, परिणामस्वरूप राम-लक्ष्मण एवं सीता वन के लिए प्रस्थान करते हैं, पुत्रशोक की असह्य पीड़ा के कारण दशरथ प्राण का त्याग करते हैं, तब भरत अयोध्या आते हैं। समस्त प्रजा उनसे राज्य भार सम्भालने की प्रार्थना करती है किन्तु वे इस घृणित प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुए राम को अयोध्या वापस बुलाने के लिए वन गमन करते हैं, किन्तु किसी भी प्रकार उन्हें वापस न लौटते देख उनके आदेश से भरत पुन: अयोध्या लौट आते हैं।[1]

इसी प्रकार"ज्ञान रतन"में बताया गया है कि राम के राज्याभिषेक के साज बाज से मंथरा कैकेयी से इसके विरोध के लिए प्रस्ताव करती है, सरस्वती भी कैकेयी को अलौकिक शक्ति द्वारा राम के प्रति अचल प्रेम से विचलित करने के लिए बुद्धि पर आधिपत्य करती है, जिससे कैकेयी दशरथ से राम वन गमन एवं भरत के राज्याभिषेक के लिए वर मागती है, परिणामस्वरूप राम लक्ष्मण सीता के वन चले जाने पर पुत्र के विरह में दशरथ प्राण त्यागते हैं। पिता की मृत्यु का समाचार प्राप्त करते ही भरत अयोध्या आते हैं, समस्त प्रजा उनका राज्याभिषेक करना चाहती है, किन्तु वे इस गलत प्रस्ताव का सफल विरोध करते हैं, और राम को

---

१. ज्ञान सागर, पृ० ३६

मनाने के लिए वन जाते हैं, किन्तु उन्हें किसी भी प्रकार अयोध्या न लौटते देख उनके कहने पर पुन: अयोध्या लौट आते हैं ।[१]

' ज्ञान सागर ' के अनुसार राम लक्ष्मण एवं सीता वन में विचरण करते हैं, वहीं स्वर्ण मृग के भेष में मारीच प्रकट होता है, जिसके पीछे राम-लक्ष्मण शिकार के लिए जाते हैं, इसके अनन्तर रावण आकर सीता का अपहरण करता है, बाद में उसके मार्ग को जटायु अवरुद्ध करता है, दोनों में संघर्ष होने के कारण जटायु की मृत्यु होती है और राम-लक्ष्मण वन में सीता को न पाकर शोक करते हैं ।[२]

'ज्ञान रतन' में बताया गया है कि वन में राम के सम्मुख स्वर्ण मृग के रूप में मारीच का प्राकट्य होता है, राम उसका पीछा करते हैं, तदनन्तर राम का पता लगाने के लिए सीता लक्ष्मण को भेजती हैं, इसी मध्य रावण उनका हरण करता है और पथ में रावण को जटायु से युद्ध करना पड़ता है । परिणामत: जटायु की मृत्यु होती है, राम-लक्ष्मण सीता को न पाकर शोक से विह्वल हो सीता की खोज में वन में विचरण करते हैं ।[३]

'ज्ञान सागर' में इस प्रकार की चर्चा की गई है कि सीता की खोज में घूमते हुए राम की भेंट हनुमान से होती है जिससे उनका सुग्रीव आदि कपियों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित होता है, इसी उपक्रम में राम बालि का बध करते हैं, और हनुमान सीता का पता करने के लिए लंका जाते हैं ।[४]

इसी प्रकार ' ज्ञान रतन ' में भी बताया गया है कि वन में विचरण करते हुए राम का परिचय हनुमान से होता है और सुग्रीव से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित होता है राम द्वारा बालि मारा जाता है । सुग्रीव बन्दरों को सीता की खोज के लिए भेजते हैं और हनुमान लंका के लिए प्रस्थान करते हैं ।[५]

---

१. ज्ञान रतन, पृ० १३६
२. ज्ञान सागर, पृ० ४०
३. ज्ञान रतन, पृ० १५३-१५४
४. ज्ञान सागर, पृ० ४०
५. ज्ञान रतन, पृ० १५४-१५८

'ज्ञान सागर' में उल्लेख आया है कि हनुमान लंका में पहुंचकर सीता का दर्शन करते हैं, इसके अनन्तर वे वाटिका के रक्षक दैत्यों का वध करते हैं, जिससे राक्षसों द्वारा पकड़ कर रावण के सम्मुख लाये जाते हैं, उनकी पूंछ में आग लगाई जाती है, परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण लंका जल उठती है और हनुमान लंका से वापस आकर राम को सीता का सम्पूर्ण समाचार देते हैं।[1]

'ज्ञान रतन' में भी इसी प्रकार के प्रसंग उपस्थित किये गये हैं कि लंका में हनुमान पहुंच कर सीता का दर्शन करते हैं — और राक्षसों का वध करते हुए पकड़े जाते हैं, उनकी पूंछ में आग लगाई जाती है, जिससे सम्पूर्ण लंका जल कर खाक हो जाती है। लंका-दहन के पश्चात् हनुमान राम के समीप वापस आकर सीता का सन्देश देते हैं।[2]

'ज्ञान सागर' के अनुसार लंका दहन के पश्चात् राम की सेना द्वारा सेतु बंधन एवं लंका में उनके दैत्य वध के लिए प्रवेश करने की चर्चा की गई है। राम की सेना द्वारा अनेक दैत्यों का वध किया गया, जिससे भयभीत विभीषण की रावण से प्रार्थना एवं रावण के कोप द्वारा संक्षुब्ध विभीषण का राम की शरण में आने की भी चर्चा मिलती है, इसके पश्चात् राम कुम्भकरण का वध करते हैं, मेघनाद द्वारा लक्ष्मण को 'शक्ति' लगती है, जो हनुमान द्वारा संजीवनी ले आने पर पुनर्जीवित होते हैं। राम द्वारा रावण का वध होता है जिससे सुर-नर-मुनि सब परमानन्द से झूम पड़ते हैं, राम सीता को अपने समीप बुला कर लंका का समस्त राज्य विभीषण को सौंपते हैं। अन्त में वे अयोध्या आकर राज्य करने लगते हैं। इसी प्रकार पूरी कथा 'ज्ञान रतन' में भी वर्णित है।

'ज्ञान सागर' में भी राम को स्पष्टतः निरंजन का अवतार घोषित किया गया है।[3]

---

१. ज्ञान सागर, पृ० ४०-४१

२. ज्ञान रतन, पृ० १५८-१६२

३. ज्ञान सागर, पृ० ४३

अन्तर—

`ज्ञान सागर` एवं `ज्ञान रतन` में राम चरित्र सम्बन्धी कथानक का मूलोद्देश्य राम के वास्तविक स्वरूप का निरूपण ही स्वीकार किया जा सकता है। `ज्ञान सागर` में सहज एवं स्वाभाविक रूप से राम कथा का निर्वाह हुआ है, जिसमें `ज्ञान-रतन` के सदृश अन्यान्य प्रसंगों का पिष्टपेषण नहीं किया गया है। `ज्ञान सागर` की कथा `रामचरित मानस` के भरद्वाज-याज्ञवल्क्य सम्वाद, पार्वती-शिव सम्वाद और गरुड़ काग- भुशुण्डि सम्बाद तथा `ज्ञान रतन` के शुजाशाह और दरिया साहब एवं पार्वती शिव के सम्वाद के रूप में प्रारम्भ नहीं हुई है। इनमें कई दृष्टियों से पार्थक्य भी दृष्टिगत होता है, जो इस प्रकार है :—

`ज्ञान सागर` के रचयिता ने सर्वप्रथम राम-जन्म का उल्लेख करने के पश्चात् सीता स्वयम्बर की ओर निर्देश किया है, किन्तु `ज्ञान रतन` में सर्वप्रथम जानकी के जन्म एवं स्वयंबर आदि की ओर संकेत कर के तदनन्तर रामजन्म का उल्लेख किया गया है। सम्भवत: दरिया साहब अपने `ज्ञान रतन` का प्रारम्भ सीता जन्म से प्रारम्भ करने के लिए इस उद्देश्य से प्रेरित हुए होंगे, जिससे सीता के माया जनित शक्ति का प्राबल्य भलीभांति निरूपित हो सके। `ज्ञान रतन` के अतिरिक्त` आनन्द रामायण` एवं `अध्यात्म रामायण` का प्रारम्भ भी सीता जन्म से ही किया गया है `ज्ञान सागर` में राम के राज्याभिषेक के समय अम्बिका द्वारा कैकेयी में विरोध भावना जागृत कराने का संकेत किया गया है जबकि `ज्ञान रतन` में मन्थरा द्वारा कैकेयी में राम के प्रतिकूल भावना उत्पन्न की गई। `ज्ञान सागर` के अनुसार कैकेयी के वर मागने पर तुरंत ही रामलक्मण एवं सीता वन चले जाते हैं, और दशरथ उनके शोक में प्राण त्याग करते हैं किन्तु `ज्ञान रतन` में इस प्रकार का उल्लेख आया है कि राम अपनी माताओं से वन जाने के लिए अनुमोदन लेते हैं, उनके साथ चलने के लिए लक्ष्मण एवं सीता हठ करते हैं, राम लक्ष्मण सीता वन जाते हैं, और इन सब के वशिष्ठ आश्रम तक पहुंचने के पश्चात् दशरथ की मृत्यु होती है। मृत्यु के अनन्तर भरत आकर कैकेयी और मंथरा पर कोप करते हैं। और वे दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करते हैं। इसी प्रसंग में दरिया साहब ने राम का प्रयाग आगमन, लक्ष्मण और सीता सहित भारद्वाज के दर्शन, सीता का माया रूप, रामकी कुम्भज ऋषि से भेंट तथा रामकी पर्ण कुटी में तपश्चर्या आदि का वर्णन किया है। इसके पश्चात्

उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि जनक अपनी प्रजा सहित अवधपुर में जाकर भरत सहित राम को वापस लौटाने के लिए वनको ~~लिए~~ प्रस्थान करते हैं। वे सब प्रयाग पहुंच कर भारद्वाज ऋषि का दर्शन करते हैं, और वन में अशांति का वातावरण छा जाता है, जिससे लक्ष्मण भरत पर क्रोध करते हैं किन्तु राम उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हैं। भरत राम को किसी भी प्रकार लौटते न देख कर उनके आदेश से अयोध्या वापस आकर तपस्या में लीन हो जाते हैं और जनक जी भी अपना जीवन पूजा पाठ में व्यतीत करते हैं, किन्तु इन सबका वर्णन `ज्ञानसागर` में यत्किंचित भी नहीं हुआ है।

`ज्ञान सागर` के अनुसार वन में रहते हुए राम-लक्ष्मण एवं सीता को शूर्पणखा की कहानी से अछूता रखा गया किन्तु `ज्ञान रतन` में यह कहानी बड़े ही विलक्षण ढंग से प्रस्तुत की गई है जिसमें कुछ मौलिकता भी है क्योंकि इसमें लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र के वध का भी संकेत किया गया है, इसके पश्चात् लक्ष्मण उसे नाक-कान विहीन करते हैं। `ज्ञान सागर` में खरदूषण -वध का भी कोई संकेत नहीं है किन्तु `ज्ञान रतन` में इसका भी उल्लेख किया गया है। 'ज्ञानरतन' में शूर्पणखा द्वारा रावण के समक्ष अभियोग का भी संकेत किया गया है किन्तु `ज्ञान सागर` में नहीं।`

`ज्ञान सागर` में सीता हरण के प्रसंग में मृग के पीछे गये हुए राम का पता लगाने के लिए सीता द्वारा लक्ष्मण के भेजे जाने का भी कोई उल्लेख नहीं है प्रत्युत् इसमें सीधे उल्लेख प्राप्त होता है कि राम-लक्ष्मण मृग का शिकार करने के लिए गए। जब कि `ज्ञान रतन` में लक्ष्मण `राम चरित मानस` के सदृश सीता द्वारा भेजे जाते हैं। `ज्ञान रतन` के सदृश राम-लक्ष्मण के सीता-विरह का वर्णन भी `ज्ञान सागर` में नहीं है।

बालि बध के प्रसंग में भी `ज्ञान सागर` एवं `ज्ञान रतन` में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है क्योंकि `ज्ञान सागर` में राम द्वारा मारा गया बालि भगवान से किसी प्रकार का निवेदन नहीं करता जबकि ये सब प्रसंग `ज्ञान रतन` में `राम चरित मानस` के सदृश ही वर्णित हैं। इन सबके साथ ही `ज्ञान रतन` में वर्षा-ऋतु शरद् ऋतु, राम-लक्ष्मण का सुग्रीव के यहाँ जाने तथा जामवन्त द्वारा हनुमान को सीता का पता लगाने के लिए भेजे जाने का वर्णन किया गया है जिसका कि ज्ञान

सागर` में सर्वथा अभाव है।

` लंका दहन प्रसंग में` ज्ञान सागर` के रचयिता ने सुरसावध, हनुमान-विभीषण सम्बाद, हनुमान द्वारा सीता को राम की अंगूठी देने, सीता-सम्बाद, नाग-पाश, हनुमान-रावण सम्बाद, सीतापुनर्भेंट और उनके संदेश आदि का उल्लेख करना उपयुक्त नहीं समझा है-जबकि `ज्ञान रतन` में इन सबका यथा स्थान निर्देश किया गया है।

`ज्ञान सागर` में इस प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है कि हनुमान द्वारा सीता का सन्देश सुनाए जाने पर तुरंत ही राम समुद्र पर पुल बांध कर लंका पहुंच जाते हैं किन्तु `ज्ञान रतन` के अनुसार सेतु-बंधन की बड़े ही अच्छे ढंग से तैयारी की जाती है, इसके साथ ही कई और प्रसंग जैसे रावण-मन्दोदरी सम्वाद, शिव-पार्वती सम्बाद, राम का विरोध करने में रावण की धृष्टता एवं दृढ़ता, रावण का अपना मस्तक चढ़ा कर शिव से वर प्राप्त करना, पृथ्वी का भार कम करने के लिए ईश्वर का अवतार, राम की परीक्षा हेतु पार्वती द्वारा सीता का रूप धारण करना, उनकी शंका का निवारण करना, निर्गुण-सगुण विवेचन, शिव द्वारा राम को त्रिलोक का स्वामी सिद्ध करना, सत्पुरुष का सत्य स्वरूप एवं उनके साक्षात्कार के लिए सुलभ उपाय और सगुण अवतारों से इनका पार्थक्य आदि का बड़े ही अच्छे ढंग से निरूपण हुआ है।

` ज्ञान सागर` में समुद्र को पार करने के पश्चात् राम का सुमेरु पर निवास , रावण को समझाने के लिए अंगद का दूत के रूप में राम द्वारा भेजे जाने, रावण के पुत्र प्रक्षयकुमार से युद्ध और उसकी मृत्यु, रावण-अंगद संवाद, अंगद का भूमि पर पैर रख कर उसे हटाने के लिए सबको चुनौती देने, रामकी सेना का प्रस्थान, मन्दोदरी-रावण-सम्बाद, रावण-विभीषण सम्वाद आदि प्रसंगों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु `ज्ञान रतन` में ये सब प्रसंग भली भांति वर्णित हैं। इनके साथ ही `ज्ञान रतन` में सीता और द्रौपदी का माया के रूप में अवतरित होने के विषय पर दरिया से शुजा द्वारा प्रश्न और दरिया का उत्तर सत्पुरुष एवं सद्गुरु के महत्त्व, राम से विभीषण का परिचय एवं उसे भक्त के रूप में स्वीकारने, विभीषण हनुमान और अंगद के वीरत्व का वर्णन, रामकी महिमा से रावण के मुकुट गिरने, पार्वती द्वारा शंकर से रावण के वरदानों के विषय

में प्रश्नादि प्रसंगों का यथा-स्थान प्रयोग किया गया है।

`ज्ञान सागर` में रावण मन्दोदरी सम्वाद , रावण का हठ, राम की सैना में युद्ध का वेग, वाणों में सत्पुरुष के नाम, युद्ध का आरम्भ, मेघनाद और बन्दरों में संघर्ष, संजीवनी के लिए जाते हुए हनुमान एवं का`लनेमि से युद्ध और उसका बध, हनुमान का पर्वत लेकर लौटना, लक्ष्मण के लिए राम का रुदन, हनुमान का आगमन, रावण-कुम्भ कर्ण सम्वाद, मेघनाद द्वारा यज्ञारम्भ एवं रामसेना द्वारा उसके यज्ञ का विध्वंस, लक्ष्मण के वाण द्वारा उसकी भुजा का कट कट कर सुलोचना के आगे गिरना, सुलोचना का करुण क्रन्दन तथा राम के आश्रम में आना पति की चिता पर उसका सती होना, रामकी सेना में महिरावण का रात्रि में आगमन और राम लक्ष्मण को बांधकर ले जाना एवं हनुमान द्वारा मुक्ति आदि का कोई उल्लेख नहीं, किन्तु `ज्ञान रतन` में इन सब कथाओं का भली भांति उपयोग हुआ है।

`ज्ञान सागर` के रचयिता ने मात्र एक वाक्य में ही राम द्वारा रावण के वध का उल्लेख कर दिया है, जिसमें अन्य और प्रसंग छूट से गये हैं, जब कि ज्ञान रतन में विशेष रूप से रावण का युद्ध भूमि में प्रवेश , गरुड़ द्वारा नाग पाश से राम और लक्ष्मण की मुक्ति, राम-रावण युद्ध, रावण का वध, और बंदीजनों की सुरक्षा, लक्ष्मण के साथ राम का ----, सीता के समीप गमन, मिलन एवं हर्ष, विभीषण का राज्याभिषेक, मन्दोदरी का राजमहिषी बनना, घर में विद्रोह एवं अनबन हो जाने पर प्रवचन, सबका सेतुबंध रामेश्वर पहुंचना, चित्रकूट के लिए पदार्पण , मार्ग में भरद्वाज आदि ऋषियों से भेंट एवं ऋषि पत्नियों द्वारा सीता को ज्ञान प्रदान करने आदि का भी निरूपण हुआ है।

` ज्ञान सागर` में इस बात का उल्लेख किया गया है कि राम-रावण का वध करने के पश्चात् अयोध्या चले आते हैं और कुछ दिन के अनन्तर लवकुश की उत्पत्ति होती है तथा वे अयोध्या का राज्य भार सम्भालते हैं। किन्तु `ज्ञान रतन` के अनुसार अवधपुरीमेंराम का आगमन, भरत-राम मिलन, राज्याभिषेक, वानरसेना की विदाई आदि प्रसंगों का भलीभांति निरूपण हुआ है अन्त में दरिया साहब ने `ज्ञान रतन` में अपने जन्म, भक्ति, योग, सत्पुरुष-माहात्म्य एवं कुयोग तथा

तथा बाह्याचार खंडन आदि का वर्णन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि`ज्ञान रतन` पर`राम चरित मानस` का अत्यधिक प्रभाव है, जबकि`ज्ञानसागर` इससे वंचित है। डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने रामचरितमानस की लगभग १०० पंक्तियों का प्रभाव`ज्ञानरतन` पर दिखाया है। किन्तु `ज्ञान सागर` तथा`रामचरित मानस` में इस प्रकार का साम्य नाम मात्र के लिए एक पंक्ति में उपलब्ध होता है,जिसे हम संयोग के रूप में भी मान सकते हैं, वह पंक्ति इस प्रकार है :—

रामहि देउं कालि जुबराजू। सजहिं सुलोचनि मंगल साजू।।

—अयोध्या कांड, दोहा, २७।३

तुलना

रामहि काल देत हैं राजू। निश्चय ह्वैहैं तोर अकाजू।।

—ज्ञान सागर, पृ० ३६

यहां हम केवल प्रथम चरण में शब्द साम्य देखते हैं किन्तु`मानस` में यह उक्ति दशरथ की है, जबकि `ज्ञानसागर` में अम्बिका की है। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि`ज्ञानसागर` कदाचित`रामचरित मानस` से पुराना है, परिणामत: दरिया साहब के `ज्ञान रतन` की अपेक्षा वह पर्याप्त प्राचीन सिद्ध होता है।

ज्ञान सागर एवं ज्ञान दीपक की तुलना :

नारद-मोह प्रसंग साम्य—

कबीर पंथी` ज्ञान सागर` एवं दरिया साहब के `ज्ञान दीपक` के नारद मोह प्रसंग में भी पर्याप्त सादृश बिन्दु दृष्टिगत होते हैं। दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्णन आया है कि नारद एक राजकुमारी के रूप लावण्य को देखकर मुग्ध हो गये, और उसके स्वयंवर के समय उन्होंने विष्णु भगवान से सुन्दर रूप बनाने के लिए आग्रह किया किन्तु भगवान ने नारद को काम के दुष्प्रभाव से वंचित रहने के लिए, उनका रूप बन्दर का बनाया जिसे परिणाम स्वरूप राजकुमारी स्वयंवर से नारद से भूल कर भी आकर्षित न हुई और वे निराश हो गये। जब उन्होंने अपना स्वरूप देखा तब विष्णु भगवान के ऊपर कुपित हो कर उन्हें अभिशप्त किया कि`जिस प्रकार मेरा मुंह बन्दर का बनाया है उसी का जाकर संग करो।`विष्णु भगवान ने

मुनि के शाप को शिरोधार्य किया । और शाप भ्रष्ट होने के कारण उन्हें दशरथ के घर अवतरित होना पड़ा ।[१]

अन्तर —

उपर्युक्त समानता के साथ ही दोनों रचनाओं में नारद मोह के कथानक में पर्याप्त अन्तर भी देखा जा सकता है । `ज्ञान सागर` में नारद मोह प्रसंग का निर्वाह बड़े ही सूक्ष्म एवं संक्षिप्त रूप में किया गया है, जिसमें नारद-अभिमान एवं अन्यान्य महत्वपूर्ण बातों को कुछ भी महत्त्व नहीं दिया गया, किन्तु `ज्ञानदीपक` में नारद मोह का प्रसंग उनके अभिमान में चूर होने से ही प्रारम्भ होता है, जिसमें वे स्वत: अपने को काम का विजेता बनने का दम्भ करते हैं । इतना ही नहीं, प्रत्युत वे बड़े बड़े योगियों के सम्मुख उपस्थित हो कर काम पर विजय की प्रशंसा भी करते हैं, सर्वप्रथम उन्होंने सनकादिक से अपने योग एवं कामदेव पर विजय की कहानी कही जिससे सनकादि ने उनसे अभिमान न करने की सलाह दी । पुन: उन्होंने शिव के समक्ष गर्वपूर्वक इन्हीं बातों को दुहराया, शिव ने भी उनकी प्रशंसा की जिससे उनके अभिमान को निरंतर प्रोत्साहन ही मिलता रहा । अन्तत: जब वे इस प्रसंग को लेकर विष्णु के सम्मुख उपस्थित हुए, तब उनसे नारद का अभिमान देखा न गया और उन्होंने नारद के अभिमान को चूर करने के लिए एक मोहक राजकुमारी की सृष्टि की जिसके शुभलक्षणों एवं रूप लावण्य को देखकर नारद कामाशक्त हुए । कथानक का यह विस्तार `ज्ञान सागर` में नहीं उपलब्ध होता । `ज्ञानदीपक` के सदृश `ज्ञान सागर` में राजकुमारी का नख शिख वर्णन नहीं हुआ है । ज्ञान दीपक में `राम चरितमानस` के सदृश दो रुद्रगणों की कल्पना की गई है, जिसका कि 'ज्ञान सागर' में सर्वथा अभाव है । `ज्ञान दीपक` में इन रुद्रगणों को नारद के बन्दर रूप को देख कर हंसने के कारण नारद द्वारा अभिशप्त भी कराया गया है, जिसका पर्याप्त मेल `रामचरित मानस` के कथानक से प्रतीत होता है ।

कबीर की जीवनी से सम्बद्ध प्रसंग —

कबीर पंथी साहित्य में अनेक ग्रन्थ ऐसे प्राप्त होते हैं जिनमें कबीर के जन्म का वृत्तान्त पूर्ण विस्मयकारी एवं अतिरंजनापूर्ण घटनाओं से रंग दिया गया है, जिनके मध्य उचित एवं समीचीन निर्णय लेना असम्भव काम पड़ता है, किन्तु

इतना तो निसन्देह कहा जा सकता है कि उनके जीवन को इन अलौकिक एवं अनूठे वर्णनों से सम्बद्ध करने का मूलोद्देश्य कबीर पंथी संतों द्वारा उन्हें ईश्वरत्व प्रदान करना रहा है। कबीर पंथी रचना `ज्ञान सागर` में कबीर के जन्म के विषय में पूर्ण समन्वित चित्र प्रस्तुत किया गया है, वैसे अनुराग सागर` एवं `निर्भय ज्ञान` प्रभृति में भी कबीर के जीवन सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं। कबीर के जीवन से सम्बद्ध विवरणों की दृष्टि से `ज्ञान सागर` को सर्वाधिक महत्ता देनी पड़ेगी क्यों कि कालोचित समस्या की दृष्टि से भी यह सर्वाधिक प्राचीन रचना है, इसीलिए इसके विव रण अधिक मान्य सिद्ध होते हैं। दरियापंथी रचना 'ज्ञानदीपक' में भी कबीर के जीवन से सम्बद्ध कहानी उपलब्ध होती है, जो कबीर पंथी रूपान्तर से काफी मिलती जुलती हुई ज्ञात होती है।

साम्य -

` ज्ञान सागर` एवं `ज्ञान दीपक` दोनों में इस प्रकार का उल्लेखआया है कि स्नानार्थ गई हुई चन्दन साहु की पत्नी ने कबीर को जलाशय के समीप के समीप प्राप्त किया जब वह उन्हें अपने पति के समीप ले गई, तब उन्होंने क्रोध वश कबीर को फेंक देने के लिए आदेश दिया।[१]

चन्दन साहु की पत्नी द्वारा कबीर को फेंक दिए जाने पर दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है कि कि नीरू नीमा नामक जुलाहे ने कबीर को अपने घर ले जाकर लालन पालन किया, चूंकि वे संतानहीन थे, इसलिए कबीर के प्रति उनका अत्यधिक प्रेम था।[२]

चन्दन साहु की पत्नी द्वारा कबीर को फेंक दिए जाने पर दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है कि कबीर नीरू नीमाकेपूर्व जन्मों के विषय में संकेत करते हैं कि " पूर्वजन्म में तुम ब्राह्मण थे, किन्तु भक्ति से विचलित होने के कारण तुम्हारा उद्धार न हो सका।"[३]

---

१. ज्ञान सागर, पृ० ७०-७२ कबीर पंथ (१) ज्ञानदीपक पृ० ११० दरिया पंथ
२. वही, पृ० ७२ ,, (२) वही, पृ० १०० ,,
३. वही, पृ० ७२-७३ (३) वही, पृ० ११२ ,,

'ज्ञान सागर' एवं 'ज्ञान दीपक' दोनों में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि कबीर बाल्यकाल से ही एक प्रतिभावान मस्तिष्क के थे जो प्रारम्भ से ही योग एवं भक्ति की चर्चा किया करते थे, जिसे सुन सब विस्मय में पड़ जाते थे।[१]

दीक्षा प्राप्ति के विषय में इन ग्रन्थों में लगभग एकरूपता ज्ञात होती है कि प्रात: गंगा स्नान के लिए गये हुए स्वामी रामानन्द के पैरों से कुचले जाने पर उनके मुख से नि:सृत राम नाम ही कबीर के लिए गुरु मंत्र सिद्ध हुआ।[२] उनके अलौकिक ज्ञान एवं प्रतिभा की ओर भी दोनों ग्रन्थों में समान रूप से धारणा व्यक्त की गई है कि अल्प समय में ही कबीर के चमत्कारपूर्ण क्रिया कलापों का प्रभाव जन-मानस के ऊपर पड़ने लगा, जिससे सब आश्चर्यान्वित हो उठे, साथ ही यह बात और भी विस्मयकारी सिद्ध हुई, जो कि कबीर अपने का स्वामी रामानन्द का शिष्य घोषित करते थे, किन्तु इस रहस्य का उद्घाटन उन्होंने बड़े ही विवेक पूर्ण ढंग से स्वत: स्वामी जी के समक्ष उपस्थित होकर प्रस्तुत किया, जिससे सबको उनके अस्तित्व के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा, और स्वामी रामानन्द जी भी ने उन्हें अपनी शिष्य परम्परा में रख लिया।[3]

अवतार -

'ज्ञान सागर' के अनुसार सतयुग, त्रेता समाप्त हो जाने पर कलियुग के प्रभाव से सर्वप्रथम कबीर मानसरोवर आये।[४] और उन्होंने जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना की, पुन: द्वारिका में पंडा के जलते हुए पैर को शीतल किया।[५] किन्तु 'ज्ञान दीपक' में सतजुग, त्रेता एवं द्वापर व्यतीत हो जाने पर केवल दश जन्मों के विषय में संकेत मात्र कर दिया गया है, इसके पश्चात् कबीर काशी में अवतरित हुए।

'ज्ञान सागर' में कबीर का प्राकट्य चन्दवारे में बताया गया है, जबकि ज्ञान दीपक' में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

---

१. ज्ञान सागर, पृ० ७४-७५ (कबीर पंथ) (१) ज्ञान दीपक, पृ० ११३ (दरिया पंथ)
२. वही, पृ० ७५ ,, (२) वही, पृ० ११४ ,,
३. वही, पृ० ७५-७६ ,, (३) वही, पृ० ११४-११५ ,,
४. वही, पृ० ६७
५. वही, पृ० ६८-७०

'ज्ञान सागर' के वर्णनानुसार नीरू अपनी पत्नी नीमा को लोक लज्जा के कारण कबीर को फेंक देने के लिए विवश करता है, किन्तु कबीर द्वारा आश्वासन दिलाने पर प्रसन्नता पूर्वक वे उन्हें घर ले जाते हैं।[1] जबकि 'ज्ञानदीपक' के अनुसार नीरू नीमा के सम्मुख इस प्रकार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

'ज्ञान सागर' में कबीर के जीवन से सम्बद्ध अनेकानेक घटनाओं की ओर निर्देश किया गया है। यथा: सिकन्दरशाह की वार्ता एवं गौ को जिलाना आदि किन्तु ज्ञान दीपक में इस प्रकार की कोई उल्लेखनीय घटना नहीं आयी है।

दोनों पंथों के साहित्य में कबीर के अनेक जन्मों के विषय में भी विवरण उपलब्ध होता है। कबीर-पंथी अनुरागसागर में बताया गया है कि सत्ययुग में कबीर सतसुकृत,[2] त्रेता में मुनीन्द्र,[3] द्वापर युग में करुणामय[4] एवं कलियुग में कबीर[5] नाम से अवतरित हुए, इन सब के साथ ही उनके जीवन को अनेक अलौकिक घटनाओं से रंगदिया गया है। जब कि 'ज्ञान दीपक' में कबीर के अवतार धारण करने के ~~प्रसंग के~~ प्रसंग कुछ अन्तर के साथ वर्णित हैं। दरिया साहब की 'ब्रह्म विवेक' (पृ०३७१) नामक रचना में कबीर के जन्म विषयक क्रम कुछ अन्तर के साथ वर्णित हैं इसमें वे सत्ययुग में सुकृत, त्रेता में करुणामय, द्वापर में मुनीन्द्र और कलियुग में कबीर नाम से अवतरित हुए बताये जाते हैं। दरिया साहब ने धर्मदास एवं स्वयं अपने को कबीर का अवतार सिद्ध किया है जिसका कबीर पंथी धारणा से कोई सामंजस्य नहीं ज्ञात होता। कबीर पंथी साहित्य में इस प्रकार की धारणा सुनिश्चित की गई है कि कबीर कभी 'गर्भ' में नहीं आते किन्तु 'ज्ञान दीपक' में इसके प्रतिकूल प्रसंग उपलब्ध होते हैं।[2] कबीर-पंथी रचनाओं में इस प्रकार के विवरण उपलब्ध होते हैं, जिनके आधार पर कबीर का निरंजन से संघर्ष भी सिद्ध होता है जबकि 'ज्ञानदीपक' में कबीर और यम के दूतों में संघर्ष का उल्लेख प्राप्त होता है, इसके साथ ही कबीर को जिन द्वीपों कीयात्रा के अनन्तर अमरलोक से जम्बूद्वीप पर पदार्पण करना पड़ा उनमें भी दोनों पंथों के साहित्य में कुछ अन्तर ज्ञात होते हैं। सब कुछ होते हुए

---

(१) ज्ञान सागर, पृ० ७२-७३

(२) ज्ञान दीपक, पृ० ११९

भी दरिया साहब भी कबीर को उसी प्रकार आस्था की दृष्टि से देखते हैं जिस प्रकार कबीर पंथी महात्मा, इसमें किसी प्रकार की दूसरी राय नहीं हो सकती

ज्ञान सागर एवं विवेक सागर की तुलना पाण्डव यज्ञ तथा सुपच सुदर्शन की कथा —

साम्य—

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों ~~प्रकार~~ के साहित्य में पाण्डव यज्ञ तथा सुपच सुदर्शन की कथा लगभग समान रूप से निरूपित की गई है। कबीर पंथी 'ज्ञान-सागर' एवं 'अनुराग सागर' में यह कथा भली भांति वर्णित है किन्तु 'ज्ञान सागर' में इसका अधिक विस्तार उपलब्ध होता है जिसकी तुलना दरिया पंथी 'विवेक सागर' की कथा से की जा सकती है।

दोनों ग्रन्थों के अनुसार महाभारत युद्ध में की गई घोर हत्या के पाप के निवारणार्थ यज्ञ का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश के बड़े बड़े महात्माओं को भोजन कराया गया तथापि यज्ञ अपूर्ण ही रहा, यज्ञ की पूर्णता का प्रतीक स्वत: सात बार घंटे का बजना स्वीकार किया जाता था, किन्तु इसके न बजने पर पांडवों के मन में शंका हुई, जिसके विषय में उन्होंने कृष्ण से निवेदन किया।[१]

दोनों ग्रन्थों में कृष्ण से कहलाया गया है कि यज्ञ की पूर्णता के लिए निर्गुण भक्त को भोजन कराना अनिवार्य है।[२]

कृष्ण के आदेशानुसार सुपच सुदर्शन भक्त को बुलाने के लिए भीम गए, किन्तु भीम का निवेदन सुनते ही उन्होंने पाण्डवों तथा कृष्ण को हत्यारा सिद्ध किया और उन्हें अपमान की दृष्टि से देखा, परिणामस्वरूप भीम कुपित होकर वापस

---

१. ज्ञान सागर पृ० ५२ (कबीर पंथ) (१) विवेक सागर, पृ० १७०-७१(दरियापंथ)
२. वही पृ० ५२ (,,) (२) वही, पृ० १७२-१७३ (,,)

चले आये ।[१] और उन्होंने सारा वृत्तान्त कृष्ण को सुनाया । कृष्ण भगवान ने सुपच को पुन: बुलाने के लिए युधिष्ठिर को भेजा और युधिष्ठिर के आग्रह से सुपच सुदर्शन उनके घर आये । उनके भोजन के अनन्तर घंटा बजने पर यज्ञ पूर्ण हुआ ।[२]

अन्तर –

इस कथा के प्रसंग में जहां तक विषमता का प्रश्न है, वहां ज्ञान - सागर में एक महत्वपूर्ण बात की ओर संकेत नहीं किया गया है।वह यह कि सुपच के तीन ग्रास भोजन करने के अनन्तर ही घण्टे की भन्कार सुनाई पड़ी, अभी तक केवल तीन बार ही घंटे की ध्वनि हुई थी, किन्तु इसे सात बार बजना चाहिए था, इसका यह कारण था कि भक्त सुपच सुदर्शन के विषय में द्रौपदी के मन में दुर्भावना बनी हुई थी, जिससे वे कुपित हो कर वहां से चल पड़े, किन्तु बाद में युधिष्ठिर द्वारा पुनर्निवेदन करने पर उन्होंने भलीभांति भोजन ग्रहण किया और सात बार घंटे की ध्वनि सुनाई पड़ी तथा यज्ञ पूर्ण हुआ ।

प्रभाव–

जब हम पारस्परिक प्रभाव की दृष्टि से दोनों सम्प्रदायों का अवलोकन करते हैं तो कबीर पंथी साहित्य की तुलना में दरिया साहब पर सर्वाधिक प्रभाव कबीर साहित्य का ज्ञात होता है, और जो कुछ प्रभाव कबीर पंथी साहित्य का है उसे हम गौण रूप से स्वीकार कर सकते हैं । कबीर वाणी के विभिन्न रूपान्तरों में 'बीजक' का ही प्रभाव अधिक दिखलाई पड़ता है । 'बीजक' के तीन रूपान्तर उपलब्ध होते हैं, जिनमें भगताही शाखा का 'बीजक' प्राचीनतर ज्ञात होता है ; और उसका संकलन भी कदाचित बिहार में ही सर्वप्रथम हुआ था । इस रूपान्तर को भगताही शाखा का 'मूल बीजक' कहा जाता है । दरिया साहब का प्रचार क्षेत्र बिहार ही था । अत: उसका प्रभाव उन पर पड़ना स्वाभाविक ही है ।[३]

---

१. ज्ञान सागर, पृ० ५३ (कबीर पंथ) (१) विवेक सागर, पृ० ~~१८९~~ १७६(दरियापंथ)

२. वही, पृ० ५३ ,, (२) वही, पृ० १८९-९० ,,

~~[illegible]~~ पृ० १८६- १८६

३. उदाहरण के लिए परिशिष्ट देखिए ।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से तुलना —

संतों के साहित्य में काव्यगत परिकार लाने का सचेष्ट प्रयत्न नहीं किया गया है, प्रत्युत इसमें स्वाभाविक अभिव्यक्ति पर ही अधिक बल दिया गया है। यहां हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि रस अलंकार (अप्रस्तुत योजना) आदि की दृष्टि से कबीर पंथी साहित्य एवं दरिया पंथी साहित्य में कहां तक साम्य अथवा वैषम्य है।

रस—

साहित्य के क्षेत्र में कवियों एवं छंद शास्त्रियों ने शृङ्गार को रस राज स्वीकार किया है इसका प्रभाव कबीर पर अवश्य ही पड़ा है, किन्तु यह निभ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि यह रसराज लौकिक कोटि का न होकर विशुद्ध आध्यात्मिक कोटि का था। कबीर साहित्य में शृङ्गार रस मात्र ईश्वरो-न्मुखी प्रेम के रूप में अभिभूत हुआ है, जिसमें किसी प्रकार के लौकिक भावना की बू भी नहीं आ पाई है। प्रेम के क्षेत्र में उन्होंने संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का भली भांति निर्वाह किया है, किन्तु उन्होंने विरह पक्ष को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। इसका कारण यही है कि विरहानल की सुमधुर आंच में वियोगी की संतप्त आत्मा अपने ईश्वर-प्रेम के लिए निखर उठती है, और अखिल विश्व ही उसके लिए आराध्यदेव बन हो जाता है, और उसके प्रेम की पवित्र एवं स्निग्ध छटा अखिल भू-मण्डल पर छा जाती है।

कबीर का कौशल इस क्षेत्र में अतिश्लाघ्य है कि उन्होंने अपने ईश्वरोन्मुखी प्रेम को पूर्ण मानवीय परिवेश में ढालने का प्रयास किया है, क्योंकि दैवी विषयों की तुलना में मानवीय कल्पना की अभिव्यक्ति साधक के लिए सहज एवं सरल ज्ञात होती है। वात्सल्य एवं दाम्पत्य भावनाओं से तो उन्होंने अपने साहित्य को रंग सा दिया है, यही कारण है कि उनका साहित्य उन्हें एक उच्चकोटि के रूप में मूर्तिमान करता है।

वात्सल्याशक्ति का सबसे बड़ा उदाहरण 'हरिजननी मैं बालक तेरा' स्वीकार किया जा सकता है। जहां तक दाम्पत्य प्रेम का प्रश्न है साधक अखिल सृष्टि में अपने प्रेमी के अतिरिक्त किसी के प्रति अनुरक्त नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार

एक प्रतिव्रता पत्नी अपने पति के प्रति अटल विश्वास एवं प्रेम रखती है ठीक उसी प्रकार से एक भक्त अपने भगवान के प्रति, यही दशा कबीर की भी परिलक्षित होती है। यही कारण है कि कबीर साहित्य में ऐसे शुष्ठु उदाहरणों की भरमार सी हो गई है। उन्हें अपने आराध्यदेव के प्रेम के सम्मेख लौकिक सुख से समस्त प्रसाधन नि:सार एवं व्यर्थ प्रतीत होते हैं, यही कारण है कि उन सब को त्याग कर वे अपने परमाधिदेव के साक्षात्कार के लिए विह्वल हैं। वे अपने शरीर के दीपक में प्राणों की बती बनाकर रक्त के तैल से जलती दिव्य शिखा के आलोक में अपने प्रियतम को प्राप्त करना चाहते हैं। इसीलिए वे कहते हैं :—

> इस तन का दीवा करौं, बाती मेलौं जीव।
> लौ ही सींचौं तेल ज्यौं, कब मुख देखौं पीव ।। २२।।

—कबीर ग्रन्थावली(परिशिष्ट), पृ० १४४

उनकी विरह जन्य भावना तब और भी मुखरित हुई देखी जाती है कि जब वे अपने शरीर को जला कर उसके धुएं को आकाश में भेज कर ईश्वर की कृपा रूपी वृष्टि की आशा करते हैं और इस जलते हुए शरीर की स्याही बना कर वे राम नाम लिख कर ईश्वर के पास तक भेजने में भी अपने को वंचित नहीं रखना चाहते, यही है उनके विशुद्ध प्रेम की दिव्य झांकी :—

> यहु तन जारौं मसि करौं, ज्यू धूवां जाइ सरग्गि।
> मति वै रांम दया करौं, बरसि बुझावै अग्गि ।।२०।।
> यह तन जारौं मसि करौं, लिखौं रांम का नाउं।
> लेखनि करौं करंक की, लखि लिखि राम पठाउं ।।२१।।

— कबीर ग्रन्थावली (परि०), पृ० १४३-४४

कबीर को अपने वियोगावस्था में अखिल सृष्टि की धधकती हुई ज्ञात होती है :—

> विरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाऊं।
> मो देख्यां जल हरि जलैं, संतौ कहां बुझाऊं ।।३६।।

कबीर ईश्वर प्रेम में इतना अधीर हो उठे हैं उनके दर्शन की प्रतीक्षा में उनकी आंखों में झाई पड़ गई है, जिससे उन्हें कुछ सूझ ही नहीं पा रहा है, नाम की रट लगाते लगाते उनकी जिह्वा सूख सी गई है, अहर्निश उनके नेत्रों से वारिधारा प्रवाहित हो रही है, वे पपीहे की भांति ईश्वर की धुनि में पागल हैं:—

अंखियन तो झाईं परी, पंथ निहारि निहारि ।
जिभ्भा में छाला परा, राम पुकारि पुकारि ।। ३६।।
नैनां नीझर लाइया, रहत बहै निस धांम ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ करों-कब रे मिलहुगे रांम ।। ४८ ।।
—कबीर ग्रन्थावली(परिषद्), पृ० १४६-१४७

पर्याप्त दिनों की प्रतीक्षा के अनन्तर जब ~~ईश्वर से~~ कबीर का साक्षात्कार अपने आराध्यदेव से होता है, तब वे इस प्रकार के संयोग को सदा बने रहने की कामना करते हैं। इसीलिए वे कहते हैं :—

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाए । भाग बड़े घर बैठे आए ।। १ ।।
चरनन लागि करों सेवकाई । प्रेम प्रीति राखौ उरझाई ।। २ ।।पद ७ ।।
—कबीर ग्रन्थावली (परिषद्), पृ० ६

कबीर साहित्य का प्रभाव कबीर-पंथ पर भी पड़ा है, इसीलिए विरहजन्य स्थिति का चित्रण कबीर-पंथी साहित्य में भी दृष्टिगत होता है। अंतर इस बात का अवश्य कि कबीर-पंथी विरह अपेक्षा कृत अधिक मांसल प्रतीत होता है किन्तु इसमें भी आध्यात्मिक प्रेम के निरूपण में पर्याप्त सावधानीवर्ती गई है। कबीर पंथी साहित्य में वर्णित वियोग शृंगार का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है ।—

पिया बिना मोहिं नीक न लागे गांव ।। टेक ।।
चलत चलत मोरे चरन दुखित भे, आंखिन परिगे धूर ।। १।।
आगे चलूं पंथ नहिं सूझै, पाछे परे न पांव ।। २।।
ससुरे जाउं पिया नहिं चीन्हे, ~~बीचे अमरपुर धाम~~ नैहर जावत बाउं ।।
इहां मोर गांव उहां मोर पाही, बीचे अमरपुर धाम ।। ४।।
धरमदास बिनवे कर जोरी तहां गांव ना ठांव ।। ५ ।। शब्द १४ ।।
— धनी धरमदास जी की शब्दावली (बेल०प्रेस), पृ० [illegible]

कबीर के सदृश कबीर-पंथ में साधक का प्रियतम में घुल मिल जाने का भाव अधिक नहीं दृष्टिगत होता तथापि कबीर-पंथी भक्तों में भी मिलनाकांक्षा की दशा का चित्रण वरवधू के रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन वर्णनों में आध्यात्मिकता का ही विशेष पुट है। कबीर-पंथी संतों ने इन रूपकों के द्वारा अपना तादात्म्य गगन मंडल निवासी अविनाशी पुरुष से स्थापित करना चाहा है, जिसमें उन्होंने त्रिगुणों के सिन्दूर से नायिका की मांग भरने का प्रयास किया है, और उन्होंने सद्गुरु, को ब्राह्मण बनाकर, शब्द-सुरति की गाठ जोड़ कर, चन्द्रमा सूर्य का कोह्बर बना कर वैवाहिक रीति-सम्पन्न करने की विधि बताई है, अंत में प्रियतमा ज्ञान के डोली पर चढ़ कर अपनी ससुराल जाती है :——

तिरगुन सेंदुरा मंगावो मोरे बाबा, पिय से मांग भराइ हो।
सतगुर बिप्र के चरन पखारों, जुगु गुग रहे सोहाग हो ।। ५।।
सब्द सुरत से गांठ जुरावो, मांड़ो राखो छाइ हो।
पांच भंवरिया घुमाओ मोरे बाबा, गंठिया देवो निबुकाइ हो ।।६।।
चांद सुरज दोउ कोह्बर बाबा, पांजी दसो दुवार हो।
ऊंच दुवारी निहारो सखियां, निहुरि के घर को जाहु हो ।।७।।
ज्ञान के डोलिया फंदावो मोरे बाबा, करि देवो बिदा हमार हो।
धरमदास से छुटल भल सागर, सबसों भेंटि अकवार हो ।।८ ।।शब्द१८।।

—धनी धरमदास जी की शब्दावली (वेलव० प्रेस, पृ० ४७ –४८

किन्तु इस दृष्टि से जब हम दरिया-ग्रंथों का अध्ययन करते हैं तब यह पता चलता है कि उसमें इस प्रकार के मनोभावों का इतना अधिक हृदयग्राही चित्रण नहीं उपस्थित किया गया है जितना कि कबीर-पंथी साहित्य में। दरिया साहब ने अपने साहित्य में ऐसे कवियों को भर्त्सना का पात्र सिद्ध किया है, जो विषय वासना से प्रेरित शरीर के आकर्षण से मुग्ध हो कर लौकिक शृंगार का भरपूर वर्णन करते हैं। दरिया साहब में शृंगार रस के यत्किंचित उदाहरण मिलते हैं किन्तु उन पर अध्यात्मिक भावनाओं का ही अत्यधिक निखार दृष्टिगत होता है। इस प्रकार दरिया साहब की रचनाओं में शृंगार रस के जो भी स्थल

मिलते हैं उन पर पूर्ण अध्यात्मिक रंग दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :—

मो हि ना भावे नैहरा ससुरवा जे बौं हो।
नैहर के लोगवा बड़ अस्थिार। पिया के वचन सुनि लागेला बिकार।।
पिया एक योलिया दि ह ल भेजार। पांच पचीस तेहि लागेला कंहार।।
नैहरा दुखसुख सहलों बहुत। सासुर में सुनलों खसम मजगुत।।
नैहरा में बाली भोली ससुरा दुलार। सत के सेनुरा अमर भतार।।
कहे दरिया धन्य भाग सोहाग। पिया केरि सेजिया मिलल बड़िभाग।।
—शब्द (परिशिष्ट), पृ० १६८-१६६, संतकविदरिया एक अनु०

दोनों पंथों का साहित्य नि:सन्देह धार्मिक है, यही कारण है कि जहां कहीं भी पौराणिक कथानकों का चित्रण हुआ है उनमें अध्यात्मिक भावनाएं ही विशेष मुखरित हुई हैं और उनकी कविताओं में शांत रस की विशेष प्रधानता है, किन्तु इस बात की उपेक्षा भी नहीं की गई है कि यथा प्रसंग अन्य रसों का प्रयोग न किया गया हो। `ज्ञान सागर` एवं `ज्ञान रतन` में वर्णित राम कथा के प्रसंग में वात्सल्य शृंगार, वीर, करुणा, अद्भुत, भयानक और रौद्र तथा हास्य रस का यथा स्थान वर्णन किया गया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से तो इन पंथों में कोई प्रसंग ही नहींबन सके हैं, इसका मूल कारण अध्यात्मिक भावना की प्रचुरता ही स्वीकार की जा सकती है, किन्तु दर्शन, अध्यात्म भक्ति एवं योग आदि की दृष्टि से इनका वर्णन बड़ा ही अनूठा बन पड़ा है जिसकी चर्चा बाद में की जायगी।

वर्णन कौशल की दृष्टि से इन रचनाओं का विकास अति श्लाघ्य है। इनके रचयिता ने अपने मन्तव्य को पूर्ण करने तथा अपने वर्ण्य विषय के पूर्ण निर्वाह तथा पाठकों की अभिरुचि को सदा कौतूहल जनक बनाये रखने के लिए जिस सतर्कता एवं कुशलता का परिचय दिया है वह हिन्दी जगत् में सदा अनुकरणीय रहेगा। साहित्य में अपने लक्ष्य सिद्धि के लिए पौराणिक कथाओं का समावेश जिस नूतन परिवेश में ढाल कर किया गया वह भी कम महत्व का नहीं है। कबीर-पंथी `विवेक सागर` में मोह राजा का वर्णन बड़े ही अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें रचयिता ने अपने वर्णन कौशल का भली भांति निर्वाह किया है। इसी प्रकार दरिया

साहब ने राजसत्ता के आनन्द में मदमस्त राजकुमार के वर्णन और उसके राजकोष, हाथी, सिंघासन, ठाटबाट, राजमहल के गान-वाद्य, सैना, अन्त:पुर की सुन्दरियों तथा राज प्रासाद के सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। दोनों पंथों के साहित्य में यदि सौन्दर्य निरूपण के कौशल की पराकाष्ठा देखनी हो तो कबीर-पंथी 'निर्भय ज्ञान'(पृ० ३-७) एवं दरिया-पंथी 'ज्ञान दीपक' (३६-४०) के पन्ने उलटे जायं जिनमें कवि ने मसृण कुन्तल-राशि, मोतियों की माला वाण की नोक के सदृश तिरछी चितवन, शुक नासिका के सदृश नासिका, तारों के सदृश दीप्त कर्ण फूलों की मणियां, दाणिम जैसी दंतावलियां, मुस्कान पूर्ण अधर मोहक ग्रीवा, स्वर्ण कलश वक्ष स्थल, मृणाल सदृश सुकोमल भुजाओं, केसरि कटि सी क्षीण कटि, कदली-स्तम्भ सी कोमल और सुडौल जंघाओं,गजसी मतवाली चाल, मणियों से सुसज्जित वस्त्राभरण और जयमालों से सुशोभित हस्तादि का वर्णन कितनी पटुता के साथ किया है ? ध्यान देने की बात है कि इनके साहित्य में जितनी भी उपमाएं प्रस्तुत की गई हैं वे काव्य में प्राचीन काल से ही प्रयुक्त होती रही हैं, इस दृष्टि से इनकी कोई मौलिकता नहीं ज्ञात होती, किन्तु यह बात भुला देने की नहीं है कि जिस कुशलता के साथ इन कवियों ने इन्हें प्रस्तुत किया है वह अत्यधिक महत्व की वस्तु है।

यदि हम कल्पनोत्कर्ष की दृष्टि से कबीर-पंथी एवं दरिया-पंथी साहित्य का अध्ययन करें तो लगता है कि इन कवियों ने अपने सुमधुर कल्पना के सहारे जगत् के निर्जीव वस्तुओं में भी प्राण का संचार किया है। कल्पनोत्कर्ष की सुमधुर झांकी जो कि इनके साहित्य में प्राप्त होती है वह अगले अध्यायों में निर्दिष्ट की जायगी। वैसे भी वर्ण्य विषय की दृष्टि से इनके साहित्य में निर्गुण-सगुणईश्वर, आत्मा, जगत्, माया, मुक्ति, स्वर्ग-नरक की कल्पना, भक्तिज्ञान प्रेम, संत एवं सद्गुरु की महिमा, पाखंड एवं ढोंग आदि के खंडन एवं योग आदि की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। इन कवियों ने समान रूप से जीवन के अनेक नियमों अर्थात्, सत्य, अहिंसा, संयम, आत्म निरोध एवं दैन्यादि का भी निर्देश किया है। इन विषयों को भलीभांति निरूपण करने में इनके साहित्य में यत्र तत्र पुनरुक्ति भी हुई है। अपने काव्य के भावोन्मेष में इन कवियों ने पुनरुक्ति दोष से बचने की कोई जागरूकता नहीं प्रदर्शित की है।

छन्द-गत तुलना —

कबीर-साहित्य में `बीजक` एवं `कबीरग्रन्थावली` की रचना विशेष रूप से छन्द, पद एवं सवैया में हुई है। `बीजक` में छन्दों की दृष्टि से कहरा, हिंडोला, वसन्त, चांचर, चौंतीसी, विरहुली-बेलि, बिरहुली, मुक्तामणि, सरसी, श्याम, गीता, दोही, हरिपद, सार, प्रिया एवं दृढ़पद आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। कबीर साहब की शब्दावली में `शब्द` `रेख्ता`` झूलना एवं होली आदि छन्दों का विधान प्राप्त होता है।

कबीर-पंथी साहित्य विशेष रूप से चौपाई, साखी एवं सोरठों में लिखा गया है। `आत्मबोध` पूर्ण रूप से झूलना छन्दों में विरचित है। इसी प्रकार दरिया पंथी साहित्य भी विशेष रूप से चौपाई, साखी एवं सोरठों में लिखा गया है। `दरिया शब्द` की रचना `कबीर बीजक` के सदृश हुई है जिसमें पद एवं विविध छंद भी उपलब्ध होते हैं यथा झूलना आदि।

भाषा गत तुलना —

आश्चर्य की बात है कि हिन्दी जगत् में जहां पर कबीर-साहित्य को अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ है, वहीं पर इसकी भाषा विषयक समस्या संदिग्ध है। इसका मुख्य कारण यह है कि कबीर ने इस ओर यत्किंचित भी संकेत नहीं किया। न तो उनके साहित्य में उनकी शिक्षा के विषय में ही उल्लेख हुआ है किन्तु इतना अवश्य है कि उन्हें अशिक्षित सिद्ध करने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी बताया है, जिसका अर्थ पंजाबी के योग से लिया जाता है। `बीजक` में प्रयुक्त रचल, पूछल, गयल, लागल, मानल, बांधल, मांडल, नियरायल, व्याहल, गायल, आदि शब्दों से निर्णय लेना स्वाभाविक होगा कि उनके `बीजक` पर पूर्वी भाषा का प्रभाव कम नहीं है। डा० बाबूराम सक्सेना ने `अवधी का विकास` शीर्षक अपने शोध प्रबंध में कबीर को अवधी का प्रथम संत कवि स्वीकार किया है। डा० सुनीतकुमार चटर्जी के अनुसार कबीर पर पूर्वी बोलियों का प्रचुर प्रभाव है। डा० रामकुमार वर्मा कबीर की भाषा को अपरिष्कृत स्वीकार करते हुए उसे पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी और पंजाबी से प्रभावित स्वीकार करते हैं। कबीर की वाणियाँ

से निष्कर्ष निकालने पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे। इसीलिए उनकी भाषा को पंचमेल-खिचड़ी एवं सधुक्कड़ी आदि कहा गया।

कबीर पंथी ग्रन्थ हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, संस्कृत, उड़िया, गुजराती, बंगला, मराठी आदि भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं। `सुल्तान बोध` उर्दू एवं ब्रह्मनिरूपणम्` संस्कृत भाषा में लिखा गया है। कबीर पंथी ग्रन्थों की रचना देवनागरी लिपि में हुई है किन्तु उनमें उर्दू शब्दों का भी प्राचुर्य है। इनकी रचना पद्य एवं गद्य दोनों प्रकार की शैली में हुई है।

इसी प्रकार दरिया पंथी रचनाएं हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू एवं संस्कृत भाषा में भी प्राप्त होती हैं। यथा `दरिया नामा` एवं `ब्रह्मचैतन्य` क्रमश: उर्दू एवं संस्कृत भाषा शैली में लिखे गये हैं। इनकी रचनाएं विशेष रूप से देवनागरी लिपि में ही उपलब्ध होती हैं, किन्तु उनमें कबीर पंथ के अनुरूप ही उर्दू शब्दों का प्रयोग प्रभूत मात्रा में दृष्टि गोचर होता है। ये पद्य में ही लिखे गये हैं। दरिया साहब की रचनाओं पर भी पंजाबी भाषा का प्रभाव कम नहीं है। वैसे इनका अवधी भाषा से अत्यधिक निकट का सम्बन्ध ज्ञात होता है। दोनों पंथों के साहित्य में देशज शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

अब यदि हम इन संतों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हम कह सकते हैं कि कबीर एवं दरिया आदि निर्गुणी संत चाहे लौकिक पाठशालाओं में उच्चस्तर की शिक्षा न प्राप्त किये हों किन्तु अध्यात्मजगत् के स्वानुभूति एवं आत्मदर्शन की शिक्षा उन्होंने अपने अध्यात्म जगत् की यात्रा में सर्व प्रथम सहज ही प्राप्त कर ली थी, जिसकी प्राप्ति के अनन्तर पुन: भक्त के लिए कुछ अवशेष ही नहीं रह जाता। यही कारण है कि इनके साहित्य में अपने असाधारण ज्ञान एवं उच्चादर्शों की जो अलौकिक छाप पड़ी है उससे इनकी रचनाएं साहित्य जगत् में हिन्दी की प्राण समझी जाती हैं। भाषा की दृष्टि से कबीर स्वतन्त्र थे, यही कारण है कि उन्होंने अपने भाव प्रवाह में भाषा की दासता को अस्वीकार करके स्वच्छन्द रूप से विचरण करना चाहा है। उनका भाषा पर स्वत्व सा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि उनके वर्ण्य विषयों की अभिव्यक्ति के पीछे पीछे स्वयं भाषा नटी अनुगमन करती हो। कहने का अभिप्राय यह है कि भाषा स्वयं उनकी कल्पना का बाट जोहती रहती है

वे स्वयं भाषा के पचड़े में नहीं आना चाहते । दरियासाहब ने भी कबीर के सदृश भाषा की स्वाभाविकता पर विशेष जोर दिया है।

अभिव्यंजना शैली —

कबीर पंथ एवं दरियापंथ दोनों के साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि इनकी रचना उच्चकोटि के काव्य की दृष्टि से नहीं की गई थी, इसीलिये सम्भव है कि इनके साहित्य में काव्यशास्त्र का उतना अच्छा परिष्कार न उपलब्ध हो । इनमें सम्पूर्ण जगत् के लिए एक नव संदेश भरा है, जिसमें जीवन के प्रति जहां नए नए पथ निर्दिष्ट किये गये, वहीं स्वाभाविक रूप से काव्य के कुछ रस भी छलक पड़े हैं। उनकी वाणी जीवन की पुकार है, जिसमें मानवता मूर्तिमान होकर झांकती रहती है।उसमें मानवता की ही अधिक झलक है न कि काव्य सुन्दरी की । उनकी कटूक्तियों में सत्यता एवं वास्तविकता तथा अक्खड़पन में ही सरसता एवं मृदुलता है। देश की कुरीतियों एवं भ्रष्टाचारों के प्रति भावोन्मेश के परिणामस्वरूप हार्दिक उमंग से जो वाग्विदग्धता आई है वह अत्यन्त भावपूर्ण है। इस दृष्टि से जहां तक हम दोनों पंथों के साहित्य का अध्ययन करते हैं इनका स्थान तो संत साहित्य में एक दम निराला है। इनके काव्य में स्वत: भाव गाम्भीर्य उत्पन्न हो गया है —जिसके लिए उन्होंने कभी प्रयत्न ही नहीं किया था । सत्य का निरूपण ही तो इनके काव्य का प्राण है। अब यह बात कुछ और है कि ऐसे उत्कृष्ट वर्ण्य विषय का ही प्रभुत्व रहा है, जिससे इनके काव्य में स्वत: काव्यत्व समाहित हो गया है। इनके असाधारण जीवन के सामंजस्य के कारण ही असाधारण ढंग का साहित्य बन पड़ा है, उन्हें सामाजिक दोषों का परिहार अभीष्ट था न कि काव्य दोषों का । यही कारण है कि उनका साहित्य कविता एवं कला की दृष्टि से पूर्णरूपेण अल्पसाधिक प्रतीत होता है। इनके साहित्य का वर्ण्यविषय आध्यात्मिक है, जिसमें इनके उक्तिवैचित्र्य एवं अभिव्यंजना शैली ने अपने चिंतन में सदा ही नव हरीतमा एवं ताजापन लाने का प्रयास किया है। इन्होंने नि:सार एवं निर्जीव प्रसंगों में भी अपनी प्रतिभा से नव-प्राण-संचार किया है ।

प्रतीक विधान—

प्रतीकों के माध्यम से काव्य में अर्थ-गाम्भीर्य उत्पन्न करने की परम्परा

अतीत से ही चली आ रही है, इसके माध्यम से कवि वाणी से अगोचर स्वसंवेद्य अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए वाच्यार्थ की अपेक्षा संकेतार्थ का सहारा लेता है। जब असीम भाव ससीम भाषा के परिवेश में नहीं बंध पाते तब प्रतीक विधानों का जन्म होता है। जब साधक अपनी सच्ची अन्तरानुभूति को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने में असमर्थ हो जाता है तब वह लौकिक स्तर की अनुभवजन्य अभिव्यक्ति विधाओं की खोज करता है जिनकी प्रवृत्तियों के साथ सर्वाधिक औपम्यमूलक योजना परिलक्षित होती है। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने प्रतीक-विधान की पूर्णता के विषय में लिखा है कि 'प्रतीक' से अभिप्राय किसी वस्तु को इङ्गित करने वाला न तो सङ्केत मात्र है और न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र प्रतिरूप ही है। यह उसका एक जीता जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है जिसकारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलता पूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है। इसकी सहायता बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है जब हमारी भाषा पङ्गु और अशक्त सी बन कर मौन धारण करने लगती है और अनुभवकर्ता की विविध भावशिला से चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भांति फूट निकलने के लिए मचलने लग जाते हैं। ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को उपयुक्त पाते हैं उसका प्रयोग कर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधारा को प्रवाहित कर देते हैं।[१]

इन प्रतीक विधानों का चुनाव हमारे जीवन से अति सन्निकट अथवा जीवन से सम्बद्ध कार्य व्यापारों से होता है। प्रतिदिन के व्यवहार तथा विभिन्न सम्बन्ध ही प्रतीक बन जाते हैं। इस प्रकार के प्रतीक संत साहित्य में भक्ति के प्रसंग में दास्य, सख्य एवं दाम्पत्य भावनाओं से लिये गये हैं। इसी प्रकार संख्यावाची विशेषणों वाले प्रतीकों का प्रयोग हम प्रायः कबीर-पंथ एवं दरियापंथ दोनों के साहित्य में प्रचुर मात्रा में पाते हैं। यथा 'पांच'-'पचीस'- पांच इन्द्रियों तथा पच्चीस प्रकृतियों के प्रतीक हैं। तीन की संख्या का प्रयोग-त्रिगुण, त्रिदेव, त्रिनाड़ी तथा

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी —कबीर साहित्य की परख, पृ० १४२

मन-पवन एवं सुरति के लिए किया गया है। इसी प्रकार आठ से अष्टदल कमल, नौ से देह के नवद्वार और दसवें द्वार से ब्रह्मरन्ध्र का अर्थ निकलता है। इन्हीं प्रतीकों का प्रयोग उलटबासियों के रूप में किया जाता है।

कबीर एवं दरिया साहब : दोनों में दास्य भक्ति के निम्न प्रतीक समान है :—

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं, तन मन धन मेरा रामजी के ताईं। पद११३

—कबीर ग्रन्थावली(सभा), पृ० १२४

तुलना

साहब मैं गुलाम हौं तेरो।

लिखि लीजै यह कागज कोरे जन्म जन्म का चेरो॥

— शब्द अर्जी, पृ० ६ (पाण्डुलिपि)

इसीप्रकार कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में दाम्पत्य प्रतीक के निम्नउदाहरण दिये जा रहे हैं, जिसमें साधक ईश्वर को अपना प्रीतम स्वीकार करता है :—

अपने पिया के ढूंढन हम निकसीं, कोइ न कहत सनेस हो।१॥

पिया कारन हम भई हैं बावरी, धरो जोगिनियां भेस हो॥२॥

—धनी धरमदास जी की शब्दावली, पृ०१३

तुलना

तुहु पिया, तुहु पिया तुहु पिया मेरो।

हौं पतनी पति नैननि हेरो॥

—शब्द(परिशिष्ट) १७२, संतकवि दरिया एक अनु०

इसी प्रकार कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में प्रयुक्त संख्या वाची प्रतीक भी समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं :—

पांच पच्चीस तीन गुण आ ही। यह ले सकल शरीर बनाही॥

—निरंजन बोध, पृ० ६

तुलना

पचीस प्रकृति अरु तीनू नारी। पांच तन्तु है आतमधारी॥ ३६०॥

मानवीय सम्बन्धों के अतिरिक्त संतों के जीवन में घटित होने वाले दिन-चर्या एवं जीविका के विविध क्षेत्रों से भी इन प्रतीकों का चुनाव इन पंथों के साहित्य में किया गया है। यथा जुलाहा, बनजारा, कुम्हार, और कायस्थ आदि। दोनों पंथों के साहित्य में नाथपंथी योगियों पारिभाषिक शब्दावली के प्रतीक भी प्रचुर-मात्रा में दृष्टिगत होते हैं। यथा: गंगा यमुना, सरस्वती, सूर्य, चन्द्र, सुरति-निरति, त्रिकुटी, त्रिवेणी, चरखा, हंस, डोरा, पांच-पचीस, शून्य, अजपा, अन-हद, गुफा, बङ्०कनाल, रस निझर: दसवां द्वार आदि। जिनका विशद वर्णन योग के प्रसंग में किया जायगा।

अलंकार —

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों के साहित्य में अलंकारों को सजाने का प्रयास नहीं किया गया है। इतना अवश्य है कि उनकी अन्तरानुभूति एवं आत्म-दर्शन काव्यशास्त्र की दृष्टि से चाहे जिस रूप में मुखरित हो उठा है, उसकी उन्होंने परवाह भी नहीं की है, यही मूल कारण है कि उन्हें अपने भावों को व्यक्त करने में जहां पर काव्य की दृष्टि उत्कृष्ट कोटि के कवि के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ है, वहीं पर उनमें कुछ दोष भी ढूंढ़ निकाले गये हैं/इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि काव्य की दृष्टि से उन्होंने किसी प्रकार के गुण अथवा दोष की परवाह ही नहीं की है। वे अपने भावों की उड़ान में उड़े हैं और जो भी समाज के गुण दोष देखे उन्हें उन्होंने निर्भीकता पूर्वक कह दिया है, उन्हें समाज के विरोध की कुछ भी चिन्ता नहीं है। अध्यात्म जगत् में विचरण करते हुए उनको अपने सद्गुरु एवं गोविन्द के प्रेम में देश की और वस्तुओं का कुछ भी स्मरण ~~सी~~ नहीं रह गया है। उन्हें अपनी बात कहनी है, वह चाहे दोष पूर्ण ढंग से कही गई हो या उत्कृष्ट ढंग से इसका निर्णय तो परवर्ती लोगों पर निर्भर करता है। इन कवियों ने भाव-विभोर होकर पुनरावृत्ति दोषों से अपनी रक्षा नहीं की है, जिससे इनका काव्य सौन्दर्य जाता रहा है। उनमें ज्ञान शुष्कता एवं अक्खड़पन अधिक है। संतों के काव्य में दार्शनिक चिंतन का प्राबल्य हो उठा है जिसके कारण रस छंद अलंकारादि की दृष्टि से उनमें उतनी उत्कृष्टता नहीं आ पाई है। इन सब की उन्हें अपेक्षा भी नहीं थी, जिन

सबकी उन्हें आवश्यकता थी उसका निरूपण उन्होंने अपने साहित्य में सर्वथा मौलिक एवं अनूठे ढंग से किया है।

इनमें अलंकारों का प्रयोग भी अयत्न साधित प्रतीत होता है। चूंकि संत कवियों का जीवन ग्राम्यजीवन के वातावरण के अत्यधिक सन्निकट था, इसलिए यह स्वाभाविक हो जाता है कि उनके साहित्य में ग्राम्य चित्र प्रचुर रूप में समाविष्ट हों। इनके रूपकों में अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से ग्राम्य जीवन का हरा भरा रूप चित्रित हुआ है। अप्रस्तुत योजना का एक अच्छा रूपक नीचे दिया जा रहा है :—

चल चल रे भंवारा क्वल पास। तेरी भंवरी बोलै अति उदास ।।१।।
चोज करत वहं बार बार। तन बन फूल्यो डार डार ।। २।।
बनस्पती का वियो है भोग। सुख न भयो तन बढ़्यो रोग ।।३।।
दिवस चार के सुरंग फूल। तेहि लखि भंवरा रह्यो भूल ।। ४।।
बनस्पती जब लागै आग। तब भंवरा कहां जैहो भाग ।। ५।।
पुहुप पुराने गये सूख। तब भंवरा ~~रोवै सीस कूट~~ लागि अधिक भूख ।।६।।
उड़ि न सकत बल गयो छूट। तब भंवरा रोवै सीस कूट ।। ७
चहुं दिसि चितवै मुंह पड़ाय। अबले चल भंवरी सिर चढ़ाय ।।८।।
कहै कबीरा ये मन भाव। इक नाम बिना सब जम के दाव ।।६।।३१।।

—कबीर साहेब की शब्दावली, भाग २,पृ० ४१

तुलना

चलु चलु रे भंवरी भंवर संग। बिनु रे भंवर तोर क्वन रंग ।।
काया क्वल वन फूल सुबास ।। दवना मरुआ चंपा बास ।।
बेइलि चमेलि ग्रिव गुधिरहार। सोधा चरचित करु सिगार ।।
प्रेम आनन्द सुख भरव बैलास। सोइ सोहागिनि पिया के पास ।।
अबर अमर बर मीलेव कंत। मेटेउ कलपना दुख अनंत ।।
भंवरा भंवरो भेउ अनंद। जैंव जल कुमुदिनि उदित चंद ।।
कुसुम फुले बन बिबिध फूल। दुर्ग लता फूले प्रेम मूल ।।
भंवरा भंवरी करु अनंद। परसु पिया पद केवु दंद ।।
नाम सुमिरु जन अमर सार। वेद बिहित सब करु बिचार ।।
ज्ञान पुरुष है भक्ति नारि। कहैं दरिया जन मनहि बारि ।।

कबीर पंथ एवं दरियापंथ दोनों के साहित्य में अनन्त जीवों की एकता का रूपक विभिन्न वर्णों वाली गायों के दूध से दिया गया है जो इस प्रकार है :-

कारी पियरी दुहहु गाई । ताकर दूध देहु बिलगाई ।। रमैनी ६२ ।।

— बीजक, पृ० ७१

तुलना

धेनु अनेक बरन जिव जानी । क्षीर सेत एक रंग बखानी ।। ३१८ ।।

— ग्यान सरोदै , पृ० २७३

दोनों पंथों में ईश्वर को एक मूल वृक्ष तथा त्रिदेवों तथा जगत् को उसके डार पात का रूपक दिया गया है :-

आदि पुरुष एक वृक्ष है, निरंजन डारा हो ।

तिर देवा शाखा भये, पत्र संसारा हो । शब्द ११४ ।

—बीजक, पृ० २२८ – २२६

तुलना

ताके खोजहु ग्यानी, जो सम के हहि मूल ।

डार पात सभ छोड़िके , गहो फेड़ असथूल ।। २७ ।।

— भक्ति हेतु, पृ० ३१४

दोनों पंथों में ईश्वर को एक समुद्र बताया गया है, जिसमें बिंदुस्व रूपी जीव मिल कर तदाकार हो जाता है , यह कल्पना भी कितनी अच्छी बन पड़ी है :-

सिंधु समानों बुंद मों, बुन्दहि सिंधु समान ।

सिंधु बुन्द एकै भयो, बहुर न आवा जान ।।

—पंच मुद्रा, पृ० २२४

तुलना

निकट जाय जमराज नहीं सिर धुनि धुनि पछताय ।

बुंद सिंधु में मिलि रहा, कवन सकै बिलगाय ।। १४ ।।

— ग्यान सरोदै, पृ० २५६

दोनों पंथों के साहित्य में जगत का रूपक एक सेमर के फूल से दिया गया है जिसमें तोता रूपी जीव उलझा हुआ है, जिससे उसे निराश होना पड़ेगा ।

सुवना सीमर सेइया, दो ढेंढ़ी की आश ।

ढेंढ़ी फुटी चनाक दै, सुवना चला निराश ।। बीजक साखी १६२, पृ० १३५

एवं

सेमर फूल जस किलवा आवा । देखि फूल बहु हरष बढ़ावा ।।
चंगुल मारत सुआ उड़ानो । रोम रोम मिथ्या कर जानो ।।

— ज्ञान स्थिति बोध, पृ० १३६

तुलना

अब सुगना तुम करो उपासा । बहुरि गए सेमर के पासा ।।१५६ ।।
चोंच के मारे सुआ उड़ि गएऊ । मुरछि गए तावर तन अएऊ ।१५७।।

— ग्यान मूल, पृ० ३८७

इसी प्रकार माया के लिए निम्नरूपक भी द्रष्टव्य हैं जो दोनों पंथों में समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं :—

यह माया जैसे कलवारिन मद पियाइ राखे बौराई । पद १६४ ।।

— कबीरग्रन्थावली (परि०), पृ० ६६

तुलना

एह संसार माया कलवारी । मदे मताए भरम करिडारी ।।१८।।

— ग्यान सरोदै, पृ० २५०

माया जग सांपिन भई, विष ले बैठी बाटि ।
सब जग फन्दे फन्दिया, चले कबीरु काटि ।। २०१

— बीजक, पृ० १३६

तुलना

माया काली नागिनी, बसे सो नग के पास ।
डंसे सकल संसार कहं, पाछु धनी के दास ।। सब्दज्ञानी (परि०) पृ० १८२

— संत कवि दरिया एक अनुशीलन

ई माया है चूल्ही, औ चूल्हे की जोय ।
बाप पूतहि अरुझावई, संग न काहुक होय ।। १४६ ।

— बीजक, पृ० १३४

तुलना

यह माया है चूल्ही औ चूल्हे की जोय ।
बीच में झगरा लायके, आपु किनारे होय । सब्दज्ञानी, पृ०१५(पाण्डुलिपि)

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि माँहिं पडंत ।
कहै कबीर गुरु ग्यांनि तैं, एक आध उबरंत ।। २६।।

—कबीर ग्रन्थावली (परिषद),पृ० १३६

तुलना

माया अनल है बिखम बिकरा । परै पतंग सकल तन जारा ।।४७४।।

— ज्ञान रतन, पृ० १५१

दोनों पंथों के साहित्य में गुरु कीउत्कृष्टता की उपमा कमलपत्र से दी गई है जिस प्रकार कमल पत्र जल में रहते हुए भी उसके प्रभाव से सर्वथा वंचित रहता है, ठीक उसी प्रकार से गुरु भी इस जगत् में विचरण करता हुआ जगत के प्रपंचों से पृथक् रहता है :—

गुरु सोई जो सब ते न्यारा । सो सब में भाखों उपचारा ।।
जल तैं पुरइन का है मूला । पानी पत्र न लागे फूला ।।

— ज्ञान सागर, पृ० ६६

तुलना

सतगुर मिलै तो ब्रह्म पुनीता । सास्तर ग्यांन पढ़ा निजु गीता ।।६७४।।
भवसंसै में कबहिं न भटकै । जों जल कंवल कबहिं ना अटकै ।।६७५।।

— दरिया सागर, पृ० ६८

दोनों पंथों में ज्ञान रूपी साबुन से समस्त दोषों के परिहार की ओर भी संकेत किया गया है :—

साबुन ज्ञान बसन मन-गुरु मलु युग युग के मन मैल निथरि गयो ।

—शब्द विलास, पृ ० ७

तुलना

साबुन मिलै मैल सभकाटै काया कपड़े धोवै ।
गया धोआवन निर्मल हुआ अघपातक सभ खोवै ।।

—शब्द पृ० १५,(पाण्डुलिपि)

दोनों पंथों के साहित्य में अध्यात्म जगत् के आनन्द के लिए जो ईश्वर सद्गुरु एवं साधु के प्रति प्रेम आवश्यक है उसकी उपमा जगत् के अनेक उपादानों में

उत्पन्न प्रेम से दी गई है :—

जैसे स्नेह कमल और भौंरा । जैसे स्नेह चन्द अरु कोरा ।।
जैसे स्नेह मीन जल अंगा । जैसेहि स्नेह है दीप पतंगा ।।
जैसे स्नेह मृगा अरुजंत्री । जैसे स्नेह चकमक और पथरी ।।
जैसे स्नेह स्वाति औरपपीहा।जैसे स्नेह चुम्बक अरु लोहा ।।
जैसे स्नेह मीन और नीरा । जल बिछुरे वह तजै शरीरा ।।

—कबीर बानी, पृ० १०८

तुलना

प्रेम कमल जल भीतरे, प्रेम भमर ले बास ।
होत प्रात संपुट खुले, भान तेज परकास ।।
जैसे मृगा नाद लव लाई । सुनत स्रवन धुनि प्रेम समाई ।
जल में कुमुदिनि इन्दु अकासा । ऐसो प्रेम प्रीति पराकासा ।।

— प्रेममूला, पृ० १—५ (पाण्डुलिपि)

एवं

फनि मनि गनि जिमि धरत उतारी। चरत चरा दिटि द्रिस्टिना बारी।६
फेरि नाहि एक पलक बिसवासा । लीन्ह उठाय अरध मुख ग्रासा ।।७।।
ज्यों पतंग मुख मोरत ना टारी । सन्मुख द्रिस्टि दीपक महं जारी ।।८।।
चंद चकोर देहि नहि पीठी । ध्यान सुरति राखहिं दिबि दीठी ।।११।।

— भक्ति हेतु, पृ० २७८

दोनों पंथों के साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि इसमें दृष्टान्तों का बड़े ही शुद्ध एवं उत्कृष्ट ढंग से निर्वाह किया गया है यद्यपि ये चिर प्रसिद्ध हैं तथापि उन्हें नूतन परिवेश में ढाल कर मौलिक ढंग से प्रयुक्त करने का इनका प्रयास अतिश्लाघ्य है । मानव जीवन की नि:सारता एवं जीवन में दोषों के क्रम का दृष्टान्त निम्न पद्यांशों से बढ़ कर और कौन हो सकता है ?

आपुन पो आपुहि बिसरो ।
जैसे स्वान कांच मंदिर में, भर्मित भूंकि मरो ।
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल, प्रतिमा देखि परो ।

वैसेहि गज फटिक शिला में, दशनन आनि अरी ।
मर्कट मूठि स्वाद नहिं बिहुरै घरघर रटत फिरी ।
कहंहिं कबीर ललनी के सुवना, तोहि कवने पकरी ।। ७६।।

—बीजक, पृ० १८७-१८८

<u>तुलना</u>

अब तुम चेह चेह करने लागा ।
चंगुल छूटे तो उड़िके भागे काल कर्म का दागा ।।
मरकट मुठी गही कर लागा कटक होए के रोवा ।
बाजीगर का मरम ना जाने एहि बिधि प्रानहि खोवा ।।
ऐसा सुख सपने का सम्पति एक जगा एक सोवा ।
अमर कोस भ्रीगा मत माते गीरि परा तब रोवा ।।
केहरि कूप में प्रतिमा देखा कूदि परा अरुभाना ।
फटिक सिल्या गज दसनन्हि अरिके मुह टूटा पछताना ।।
रे न भवन में स्वान जो परिके भुकि भुकि प्रानहि दीया ।
भरमत फिरे भरम के लागे पाछ्न जल के पीया ।।
आम्रित पीके अमर हुआ मीच पिया से मू आ ।
कहै दरिया दर भूलि परा है जीति लिया जग जूआ ।।

—— शब्द(परि०)पृ० १५३
संत कवि दरिया एक अनुशीलन

दोनों पंथों के साहित्य में अन्योक्ति के भी उदाहरण उपलब्ध होते हैं:—

तुम संतो खेलु सम्हारि, जग में होरी मचि रहि भारी ।। टेक ।।
जड़ चेतन दुई रूप बनाये, एक कनक दुजे नारी ।
पांच पचीस लिये संग अबला हंसि हंसि मिलिगावैं गारी ।।१।।
दुरमिति दम्भ गहे करमें डफ, खड़ खड़ दै तारी ।
तिरगुन तार तंबूरा बाजै, आस तृस्ना गतिन्यारी ।।२।।
चोवा-चंदन अबिर अरगजा, माया की गब्बर भारी ।। ३।।
लोभ मोह दुइ भरि पिचुकारी, छूटत बारम्बारी ।
जो कोई सन्मुख होई के खेले, तिनहिं छींट लागै कारी ।।४।।

कुमति गुलाल डारि मुख मींजै, काम पुटरिया मारी ।
सुर नर मुनि अरु पीर औलिया, भींजि रहे संसारी ।।५।।
चतुरन फगुआ दै दै छूटे, मूरख कौं लगै प्यारी ।
कहैं कबीर सुनौ हो धर्मनि, निर्गुन ज्ञान गलिन्यारी ।। ६।। होली ४

—धनी धरमदास जी की शब्दावली, पृ० ५८

तुलना

साधो बाँधि करकसहि मारी ।
जिवजानि मारहु मुसुक चढ़ावहु एह सभ बात बिगारी ।।
ज्ञान ना भावै रस कै धावै जम की साट सहारी ।
नैनन्हि काजर नख सिख अभरन झमकि झमकि पगु ढारी ।।
निति उठि झगरा करै खसम से रगरा साँझ सकारी ।
पिया से पिठि दै रूठि कै बैठी दुजा क्वन धरुवारी ।।
पाँच पचीस सखी सभ मिलिके एह तौं मह्ल हमारी ।।
तुहुँ पिया हारि बारि कै बैठौ क्वन चरित्र निरुवारी ।।
स्वादिक स्वाद एक सभ हमरे पान फूल रस डारी ।
भोग करहि हम जोग ना जानहि तेल फुलेल संवारी ।।
भली ठगिनि है ठगी एक सबकै ठगा सकल संवसारी ।
कहैं दरिया फेरि नाक दरहु गे दासी भली हमारी ।।

—शब्द (परिशिष्ट) , पृ० १५६
संत कवि दरिया एक अनुशीलन

दोनों पंथों के साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें रचयिता ने अपने काव्य में कलात्मक ढंग से शब्दों और पद खण्डों की बारबार आवृत्ति से अर्थ में और भी गाम्भीर्य उत्पन्न कर दिया है। यद्यपि आवृत्ति काव्यशास्त्र की दृष्टि से कहीं कहीं दोष समझा जाता है किन्तु इन्होंने इतने सुन्दर ढंग से उनका प्रयोग किया है कि वह दूषण भी इनके काव्य में भूषण सा प्रतीत होता है। यथा :—

तब नहिं होते पवन न पानीं । तब नहिं होती सिस्टि उपानीं ।।
तब नहिं होते पिंड न बासा । तब नहिं होते धरनि अकासा ।।
तबनहि होते गरभ न मूला । तब नहि होते कली न फूला ।।

तब नहिं होते सबद न स्वादा। तब नहिं होते बिद्या न बैदा ।।
तब नहिं होते गुरू न चेला । गंम अगम यह पंथ अकेला ।। रमैनी । ४।

—कबीर ग्रन्थावली (परिषद्),पृ० ११६

तुलना

तब नहिं राम रमिता जाग आए । जाके बेद लोक सम गाए ।।६२ ।।
तब नहिं होते पवन औ पानी । तब नहिं संग ना सीव भवानी ।।६३
तब नहिं होते बेदकर मुला । तब नहिं गर्व ना ग्यान अनुकुला ।।६४।।
तब नहिं कच्छप ब्राह सरूपा । राव रंक नहि अविगत रूपा ।। ६५ ।।
तब नहिं होते फरह न फूला । तब नहिं होते गर्भ अनुकुला ।।६६।।
तब नहिं ब्रह्मे वेद बिचारी । तबनहिं गंगा रहलि बेचारी ।। ६७।।
तब नहिं चांदकान्ह रहे कर जोरी । तबनहिं मुरली मुख मंह्मोरी।।६८।।
तबनहिं चांद सूर्य बिसतारा । तबनहिं भइल दसो अवतारा ।।६६।।

—ग्यान रतन, पृ० १२६

साहित्य में मुहावरों का स्थान अप्रतिम है। हिन्दी ही नहीं अपितु अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी मुहावरों का प्रचलन है—इनके प्रयोग से उक्ति में ओज एवं भावोत्कर्ष उत्पन्न हो जाता है। कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों के साहित्य में मुहावरों एवं व्यंग्यों की चोट बड़ी ही तीखी ज्ञात होती है। निम्न उदाहरणों में कुरीति पूर्ण आचरण करने वालों के प्रति कैसी चुटकी ली गई है :—

संतो पाड़े निपुण कसाई ।
बकरा मारि भैंसा पर धावैं, दिल महं दर्द न आई ।।
करि सनान तिलक देइ बैठे, विधि से देवि पुजाई ।
आतम राम पलक महंबिनशे रुधिरक नदी बहाई ।।
अति पुनीत ऊंचे कुल कहिये, सभा मांह अधिकाई ।
इनते दीक्षा सब कोई मांगे, हंसि आवे मोंहि भाई ।।
पाप कटन कहं कथा सुनावहिं, कर्म करावहिं नीचे ।
हम तो दोउ परस्पर देखा, यम लाये हैं खीचे ।।
गाय बधे तेहि तुरुक कहिये, इनते क्या वे छोटे
कहहिं कबीर सुनहु हो, सन्तो कलि महं ब्राह्मण खोटे ।। शब्द४६

संतों सुनि लेहु राम दोहाई ।
पोथी पत्रा पाढ़ लीए ताल मझरियै आई ।।
पंडित का एक गइआ होती कान खुटि नहिं पाँछी ।
कंटिया दूध देवै नहिं कबहीं ठोर चलावैं गाँछी ।।
मीयाँ नै एक मुरगी पालिसि सीस पांव नहिं ठोरी ।
अलह नाम लेवै नहिं देवै ठोर चलावै चोरी ।।
काजी कहै जो हद हम कीन्हा मति कोउ झगरा लावै ।
झगरा झांकत बगरा उढ़ि गौ सीसबिहूना खावै ।।
भक्ता भक्तिन्हि बंधल बाटे खाट अर्धो बिनि ल्यावै ।
वोहि खटिया पर सूते ना कबहीं हाट तमासे धावै ।।
हिंदू कहै ज्ञान हम सीखा मुसलमीन कहै महरम ।
कहैं दरिया यैह कहर खोदाई चलो सिताबी चश्रम ।।

—शब्द (परिशिष्ट), पृ० १२७
संत कवि दरिया एक अनुशीलन

भ्रष्ट गुरु के लिए निम्न मुहावरा, द्रष्टव्य है :—

जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध ।
अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत ।। १५ ।।

—कबीर ग्रन्थावली,(सभा), पृ० २

तुलना

चेला बहिर गुरू है अंधा । प्रबल माया सब जग बंधा ।।१३४२ ।।

—ग्यान रतन, पृ० २०५

ऐसे व्यक्तियों को दोनों पंथों के साहित्य में अंधा बताया गया है जो माया रूपी जगत् की वास्तविकता की परख नहीं कर पा रहे हैं :—

जग अन्धा अगम्य न कीन्हा । सबै आस ताही कर लीन्हा ।

—ज्ञानप्रकाश,पृ० २१

तुलना

धोखा है धंधा या जग अन्धा, अन्धा नरक का सो धावै ।।

जो ग्रन्थ-ज्ञान के प्रति आस्था रखते हैं, उनके लिये कबीर-पंथी साहित्य में कहा गया है :-

अंध सो दरपन बेद पुराना, दरबी कहा महा रस जाना ।
जस खर चन्दन लादे उभारा, परिमल बास न जाने गंवारा ।।

—बीजक रमैनी, ३२, पृ० ४०

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी षड्कर्म विश्वासियों को हेय दृष्टि से देखा गया है :-

ऊपर हंस भितर हैं कागा कर्म कमावे खोटा ।
आगे नाथ न पाछे पगहा एहि बिधिगदहा मोटा ।।

—शब्द (परिशिष्ट), पृ० १३७
संत कवि दरिया एक अनुशीलन

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि रचनाओं के नाम कथानक के शिल्प विधान, रस, छंद, अलंकार आदि अभिव्यंजना शैली की सूक्ष्माति सूक्ष्म बातों में दोनों पंथों के साहित्य में अत्यधिक साम्य है। इतना ही नहीं, दोनों में समान रूप से मिलने वाली पंक्तियां इस बात का पुष्ट प्रमाण उपस्थित करती हैं कि दरिया साहब पर कबीर-पंथी रचनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा है, क्योंकि काल क्रमानुसार ऐसी कबीरपंथी रचनाएं प्राचीनतर सिद्ध होती हैं जिनका प्रभाव हमने दरियासाहब की रचनाओं पर देखा है। इस बात का एक भी प्रमाण नहीं मिलता कि कबीर-पंथी रचनाओं पर स्वत: दरिया साहब का प्रभाव पड़ा हो ।

अध्याय – ३

दार्शनिक सिद्धान्त

अध्याय ३

दार्शनिक सिद्धान्त

(क) सत्पुरुष

चिंतन ही दर्शन का मूल विषय है, भारतीय दर्शन विशेष रूप से आध्यात्मिक विकास का ही अध्ययन करता है, इसीलिए दर्शन का चरमोद्देश्य भ्रान्ति का निराकरण एवं सत्य की गवेषणा करना ही माना जा सकता है। आध्यात्मिक अनुभव ही सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का आधार है, इस जगत् की अपरिवर्तनीय व्यवस्था का संचालन एवं व्यापक नियमों का विधान किस अनतिक्रमणीय शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है ? यह अतीत काल से ही प्रबुद्धजनों के समक्ष एक रहस्यमय प्रश्न के रूप में उपस्थित होता रहा है, ऐसी अवस्था में किसी विशिष्ट मत को मान्यता प्रदान करना कठिन है। इस आश्चर्य पूर्ण एवं विवाद ग्रस्त सत्य के स्पष्टी-करण करने में वेदों का बहुत बड़ा हाथ रहा है, किन्तु उनका विश्लेषण करने पर सान्निध्य विन्दु अप्राप्य ही है। ऐसी अवस्था में जब मानवेतर शक्तियाँ उस परम तत्व की गवेषणा में आज तक अशक्त रही हैं, तब सामान्य मानव शक्ति का क्या अस्तित्व ? आदि काल से लेकर सम्प्रति उक्त समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत न हो सका। यही कारण रहा है कि वैदिक ग्रन्थों से लेकर विविध धर्मों वाले साहित्य ने यावत् गवेषणात्मक कार्य किये, उनमें विविधता एवं जटिलता के दुर्दम-नीय क्रम ही हमें देखने को मिलेंगे। इन सब का विश्लेषण करने पर उस परम तत्व के विविध रूप एवं नाम देखने को मिलते हैं। इसीलिए तुलसी दास जी ने इस विषय को बड़े विवेक से " हरि अनन्त हरि कथा अनंता। विविध भाँति श्रुति गावहिं संता " कह कर सुलझाना चाहा। वैदिक कालीन साहित्य से लेकर अद्यावधि जितने भारतीय धार्मिक ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें किसी न किसी रूप में अनिर्वचनीय सत्य की प्रतिष्ठा की गई है, जिसे सम्पूर्ण जगत् का नियामक स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु

विडम्बना यह है कि उन सब के मन्तव्य में इतनी अनेकता है कि सत्य का प्रत्यक्षीकरण दुष्कर ही प्रतीत होता है।

परम तत्त्व विषयक धारणा को उलझाने में धर्मों का ही विशेष स्थान माना जा सकता है, क्योंकि भारतवर्ष स्वयं विविध धर्मों का केन्द्र रहा है, इसीलिए अध्यात्मिक चिंतन के क्षेत्र में उक्त विविधता केवल जटिलता एवं विषमता का पुरस्कार ही युग के लिए प्रदान किया। धार्मिक जटिलताओं एवं विषमताओं ने ही समाज में एक ऐसी भ्रममूलक विनाशशील परिस्थिति उत्पन्न करने में विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया, जिनके कारण मानवता खतरे में पड़ चुकी थी। ऐसी ही परिस्थिति हम संत कबीर के पूर्व कालीन वातावरण के मध्य देखते हैं जबकि बौद्ध जैन, हिन्दू-मुसलमान, शैव-शाक्त, वैष्णव, यती जोगी सन्यासी, पंडित, शेख काजी अपने अपने मत मतांतर के पचड़े में पड़ कर युग के भविष्य को धुंधला बना चुके थे, हिन्दू-मुस्लिम एवं वर्णाश्रम धर्म जिनमें निम्नवर्गीय अस्पृश्य शूद्रों की दशा नितांत शोचनीय थी, जिन्हें शास्त्र वेद अध्ययन एवं धार्मिक उत्सवों के लिए सर्वथा अयोग्य ठहराया गया और नाना प्रकार की सामाजिक कुरीतियों से उनकी स्थिति जर्जर बना दी गई थी। ऐसी अवस्था में धार्मिक घृणा-ईर्ष्या, विषमता, शत्रुता एवं पाशविक नृशंसता के परिणामस्वरूप समाज में एक अनूठी विकलता छा चुकी थी, जिसमें मानवता के केवल अस्थि पंजर ही अवशेष रह सके। ऐसी अवस्था में जिस परमतत्व की कबीर ने स्थापना की वह अखिल विक्षिप्त एवं विकल मानव जाति के दुःसाध्य रोग के लिए एक अचूक औषधि का काम किया, सचमुच ही युग को कबीर जैसे उत्कृष्ट वैद्य की अपेक्षा थी। कबीर ने उस परम तत्व की गवेषणा तत्त्वज्ञान और आत्मा-नुभव के आधार पर की थी, जिसमें शास्त्रीय ज्ञान, कर्मकांडों की जटिलता एवं दुरूहता का भरपूर तिरस्कार किया गया था। इसीलिए उनकी गणना निर्गुणी संतों में सर्वोपरि की जाती है, कालान्तर में इन्हीं के नाम पर एक पंथ भी चल पड़ा। कबीर के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद बिहार में संत दरिया का जन्म हुआ, जिनके नाम पर दरियापंथ की स्थापना हुई। इन दोनों संतों का स्थान निर्गुण भक्त कवियों में अग्रिम है, इसी लिए दोनों पंथों में भी पर्याप्त समानता है। इस प्रसंग में परमतत्व सम्बन्धी समानताओं का उल्लेख किया जा रहा है :-

स्वरूप—

परम तत्व के विषय में जो कुछ धारणा इन पंथों में प्रस्तुत की है

मूल एवं आदि स्रोत वैदिक ग्रन्थों में ढूंढ़ा जा सकता है, यद्यपि उक्त चिंतन में उनकी अपनी कोई मौलिक उद्भावना नहीं है, फिर भी जिस संतप्त एवं विक्षुब्ध परिस्थिति में विवेक पूर्ण ढंग से ब्रह्म विषयक समन्वयवादी धारणा का प्रतिपादन कर सर्वजन हितका प्रयास इन संत कवियों किया उसका हिन्दी साहित्य में अपना अनूठा स्थान है। जैसा कि अतीत काल से यह कल्पना सतत कुछ रूपान्तर के साथ चली आ रही है, उन सब में उस आदि पुरुष के लिए एक विराट रूप चित्रित किया जाता रहा है। 'ऋग्वेद' में उसके लिए वर्णन आया है कि वह परम तत्व यावत् सृष्टि का समष्टि एवं ब्रह्माण्ड देह है। वह सहस्र शीर्ष सहस्राक्ष और सहस्रपाद है, वह विश्वव्यापी है और उसका आकार विश्व से भी दश अंगुल अधिक है।[१]

उपनिषदों में भी ईश्वर की कल्पना सर्वव्यापी एवं जगत् नियंता के रूप में ही की गई है :—

> अग्नि मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
> दिशः श्रोत्रेवाग्विवृताश्चवेदः।
> वायु प्राणो हृदयं विश्वमस्य
> पद्भ्यां पृथिवी ह्येषभूतान्तरात्मा ।।
> —मुण्डक० २-१, ४

'श्वेताश्वतर उपनिषद्' भी थोड़े शब्दांतर के साथ उपर्युक्त चित्रण को ही प्रस्तुत करता है।[२]

श्रीमद्भागवत् में भी कुछ ऐसा ही वर्णन हमें देखने को मिलता है कि —

> एकायन सो द्विफलास्त्रि मूलश्चतुरसः पंच विधः षडात्मा।
> सप्तत्वगष्ट विटपोनवा क्षो दशच्छन्दी द्विखगोह्यादिवृक्षः ।।
> 'भागवत्' १०, पृ० २-२१

इन्ही पुरातन ग्रन्थों के वर्णनों से पूर्ण साम्य रखते हुए इन पंथों में ब्रह्म विषयक धारणा सुनिश्चित की गई। सृष्टि के पूर्व विश्व शून्याकार था,

---

१. ऋग्वेद १०।९०।२-१४

२. दे० श्वेता० २-३

केवल आदि पुरुष ही उस समय शेष बचा था, जिससे कालान्तर में अखिल सृष्टि का संचालन सम्भव हुआ। इस प्रकार के उदाहरण प्राय: प्रचुर मात्रा में हमें दोनों पंथों के साहित्य में अनेक स्थलों पर देखने को मिलते हैं। विराट पुरुष की कल्पना दोनों पंथों में मिलती है, जो कि समान रूप से बड़े ही अलौकिक एवं विचित्र ढंग से प्रस्तुत की गई है। वेद एवं ब्रह्म भी उस सप्तलोक निवासी का वर्णन नहीं कर सकते, जो कि इन्द्रिय, मन, वाक्य, सकल प्रकाश, रूप रेख, वेश आदि की सीमाओं से परे हैं, वह सृष्टि के कण कण में व्याप्त है। नवलाख उसके मस्तक हैं, उसी ने एक से अनेक रूप धारण किया।[१]

सुनेउं शीश प्रभुकेर अकाशा। पग पताल तेहि अपार निवाशा ।।
सर्व मई औ सब ते न्यारा। सो खेले यह खेल रिसाला ।।

— ज्ञान प्रकाश, पृ० ११

तीन लोक तब ना रहे पांच तत्व गुण तीन।
वर्ण भेद नहिं दिवस निशि, एक ब्रह्म सबकीन् ।।

— सुरति सम्वाद, पृ० १

सकल के मांहि अरु सकल की जान है, आदि अरु अन्त नहिं मध्यपारा ।।

— आत्मबोध, पृ० ७

एक सो अनंत भयो, सो फूटि डार बिस्तार।
अंतहु फेरी एक है, ताहि खोजु निज सार ।।३।।

—दरिया सागर, पृ०३

डार पताल सोइ असमाना। ब्रह्मादिक सो खोजहिं जहाना ।।५०३।।
आदि अंत मध्य काया बिराजे। अविगत नाम छत्र सिर छाजे ।।५०४।।

— दरिया सागर, पृ० ५०

नाम—

हम पहले ही कह आये हैं कि चाहे किसी प्रकार का भारतीय धार्मिक साहित्य हो परन्तु सबमें एक न एक अलौकिक एवं अमर तत्व की प्रतिष्ठा अवश्य ही प्रदान की गई है, यह एक दूसरी बात है कि इन विविध धर्मों में नामों का वैविध्य देखने को मिले। दोनों पंथों में प्रयुक्त किये गये नामों के प्रति सर्वदा सावधानी

---

१. अनुरागसागर, पृ० ११, ज्ञानप्रकाश, पृ० ११(क०प०) एवं ज्ञानरत्न, पृ०२४, प[illegible]

बर्ती गई है कि उनमें न्याय, गुण, शील, एवं महिमा की दृष्टि से अंतर न हो। कबीर-पंथ में उस अमर तत्त्व के लिए `परमपुरुष`, `सत्पुरुष,` सत्यनाम`, सत्सुकृत`, `राम,`, `निरंजन`, `ओम,` `शून्य`, `खसम,` शब्द`, एवं `सहज` आदि नाम प्रयुक्त किये गये हैं। इसी प्रकार दरियापंथ में भी सत्पुरुष के अनेक नाम आए हैं, यथा: `सत्पुरुष`, `सतनाम`, `राम`, `आत्मा`, `ब्रह्म`, पारब्रह्म`, `कर्ता`, `अल्लाह`, `बेबहा`, `जिन्दा`, `सद्गुरु`, एवं सुकृत आदि।

राम—

संत कबीर ने अवतारी राम के प्रति सर्वदा अनास्था प्रकट की है जैसा कि उनकी रचनाओं से भी प्रकट होता है :—

दशरथ सुत तिहुं लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।

— बीजक, शब्द १०६

नां जसरथ धरि औतरि आवा। ना लंका का राव सतावा।

—कबीरग्रन्था०(परि०),पृ०१९८

राम गुण-न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहां लौं बूझै बूझन हार विचारो।।

—बीजक, शब्द ९८

इतना ही नहीं अपितु जन सामान्य में उत्पन्न होने वाले भ्रम का निवारण भी उन्होंने कर दिया था, जिससे कि किसी प्रकार वाद-विवाद के पचड़े में लोग न पड़े, इसीलिए कबीर ने राम को मरणशील प्राणी बताकर उनकी अंतिम लीला समाप्त करने की भी चर्चा की।[1] इसी प्रकार से दरिया साहब के लिए भी हम देखते हैं कि उन्होंने भी राम के अवतार वाद का सर्वथा खंडन किया है, यदि कहीं इस प्रकार का प्रयोग बन पड़ा है तो उनका अभिप्राय अवतारी सत्पुरुष से ही रहा है, अपने `शब्द` में भी दरिया साहब ने राम को व्यापक अर्थ देना चाहा है और उन्हें रमिता के विशेषण से सम्बोधित करते हुए सर्वव्यापी बताने का प्रयास किया है :—

साधो राम सकल घट बरता।

—शब्द, पृ० १३६ (परि०)

इतना ही नहीं प्रत्युत राम कृष्णादि यावत अखिल जगत को वश की

ज्योति के रूप में स्वीकार किया गया ।[१]

संत कबीर एवं दरिया दोनों ने यदि राम का स्वरूप निरूपण कहीं किया है तो सर्वथा उन्हें आवागमन के भौतिक गुणों से परे सिद्ध करते हुए सत्पुरुष के रूप में और उन्हें एक विराट एवं व्यापक अर्थ में चित्रित किया है। जिस अवतारी राम से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों का चित्रण इनके साहित्य में किया गया है उस राम के प्रति लेश मात्र भी भ्रम करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसे निरंजन अर्थात् शैतान बताया गया है। कबीर पंथ में दशरथ पुत्र राम को निरंजन का ही अवतार स्वीकार किया गया और यह भी बताया गया है कि इसी प्रकार से निरंजन के दश औतार हुए हैं।[२] इस प्रकार के वर्णन से कबीर पंथी एवं दरिया पंथी दोनों प्रकार का साहित्य ओत-प्रोत है।[३] कहीं कहीं पर कबीर और कबीर पंथ में वैचारिक पार्थक्य भी देखने को मिलते हैं, इसका कारण यही था कि कबीर की अमर साधना का पूर्ण रूपेण प्रभाव पंथ पर न पड़ सका, जिसके परिणामस्वरूप कबीर के राम को ठीक उनके मतानुसार प्रतिष्ठा न प्राप्त हो सकी, 'अनुराग सागर' में राम के काल का फन्दा स्वीकार किया गया है।[४] परन्तु जहां पर अनुराग सागर में राम के प्रति इस प्रकार के अनादर की भावना दृष्टिगत होती है, वहीं पर 'आत्मबोध' के कवि ने राम के प्रति पुनीत आस्था प्रदर्शित की है :-

धरणि के नीर नहिं नेह पपीहरे, बिरहिनी एक यों राम आसा ।।

— आत्म बोध, पृ० २७

फिर भी ऐसे उदाहरण बहुत ही कम प्राप्त होते हैं, इसलिए हम कह सकते हैं कि कबीर पंथ में राम शब्द को यथेष्ट सम्मान नहीं मिल सका है ।

अब हमें उन नामों पर प्रकाश डालना है जिनका प्रयोग दोनों पंथों में लगभग समान अर्थों में किया गया है। 'सत्पुरुष', 'सत्तनाम', 'सतशब्द' 'सत्सुकृत', 'ब्रह्म' आदि नाम प्राय: हमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते है। यदि इन नामों का विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि इस प्रकार की कल्पना के विषय में उनका कोई अपना नया योगदान नहीं था, क्योंकि इन नामों का मूल स्रोत हमें वैदिक ग्रन्थों के साथ साथ अन्य कई भारतीय धार्मिक ग्रंथों में भी प्राप्त हो जाता है, परन्तु ध्यान

---

१. दरियासागर, पृ० १४-१५
२. कबीर बचनावली, पृ० १६४
३. ज्ञान सागर, पृ० ५४(क०पं०) एवं ज्ञानरतन, पृ० १५०(द०पं०)
४. अनुराग सागर, पृ० ७३

देने की बात है कि इन नामों का गुणगान जिस समन्वयवादी विचारधारा से प्रेरित होकर किये जाने का प्रयास किया गया वह एक उत्कृष्ट विवेकशील एवं असाधारण मनोवेग रखने वाले व्यक्ति के ही वश की बात थी । साथ ही इन संत कवियों ने अपने आराध्य देव के लिए जिस अलौकिक एवं अनूठे चरित्र की परिकल्पना की वह सचमुच ही तत्कालीन निराश एवं विक्षुब्ध जन समुदाय के लिए विकल रोगी के पथ्य के सदृश सिद्ध हुआ । कबीर पंथी एवं दरिया पंथी संतों ने जिस परमतत्व के नाम, गुण शील एवं महिमा का चित्रण किया वह उस काल की ही देन रही जबकि वह युग एकमात्र बहुत बड़ी क्रान्ति का काल कहा जा सकता है, जिसमें विविध उथल-पुथल चल रहे थे, इसी प्रकार का क्रम वैदिक काल से ही चला आ रहा था, जिसमें एक मात्र धार्मिक विचार धारा ही विशेष सक्रिय थी । धार्मिक उपद्रवों के कारण देश में विनाशमूलक परिस्थितियों का जन्म हो चुका था, परिणाम स्वरूप यह युग महान् विघटन एवं अशांति का काल कहा जा सकता है । धर्म के नाम पर खून की होली खेली जा रही थी, मानवता के स्थान पर दानवता का ताण्डव नृत्य चल रहा था । कहने का अभिप्राय यह है कि अत्याचार इस प्रकार अपने उत्तुंग शृंग पर पहुँच चुका था कि अनन्त साधना एवं अमर चेतना के बावजूद भी समस्या का समाधान असम्भव था ।

यद्यपि उपनिषदों ने अपने अमर संदेश के द्वारा उलझी हुई समस्या का जो निराकरण प्रस्तुत किया था, उसके माध्यम से देश का कल्याण अवश्यम्भावी ही था किन्तु अभाग्य की बात थी कि उसके द्वारा प्रस्तुत किये गये सद्सिद्धान्तों को आत्मसातन करके आत्मघात ही करने का प्रयास किया गया । और जो कुछ भी समाधान अब तक प्रस्तुत किया गया था वह व्यवधान बन कर उपस्थित हुआ, निष्कर्षत: कह सकते हैं कि उपनिषदों का अमर वरदान जनता के लिए अभिशाप ही सिद्ध हुआ । इसके बीच एक विरोधी तत्व और भी उत्पन्न हो गया, जिससे कि ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों की जड़े और भी सुदृढ़ हो रही थीं, वह यह कि उपनिषदों के एकेश्वरवाद के पहले ही वैदिकी बहुदेववाद की प्राण प्रतिष्ठा हो चुकी थी, इसीलिए उनके आध्यात्मिक विकास, उपनिषदीय एकेश्वरवाद एवं वैदिक वर्णव्यवस्था के विरोधी परिणामों से जनता अशांत एवं विक्षुब्ध सी हो रही थी । इन्हीं ध्वंसात्मक कुप्रपंचों के मध्य जैन बौद्ध धर्म के जो कुछ संजीवनी बूटी से संतप्त हृदय को किंचित राहत मिली

ही थी कि वर्णव्यवस्था के सूत्र पुन: समाज में विस्तार पाने लगे, जब कि इनका ध्येय वर्णव्यवस्था का समूल विनाश करना था, किन्तु वैष्णव मत एवं शैव मत जो कि अतीत की साधना के पूर्ण उत्तराधिकारी थे, उनसे बहुत बड़ा संघर्ष करना था। इस प्रकार के समन्वय उपस्थित करने में दोनों धर्म अशक्त सिद्ध हुए। उपनिषददीय एकेश्वरवाद, अध्यात्मवाद, मोक्ष, सार्वभौम वाद एवं वैदिक बहुदेववाद, योगवाद, स्वर्ग-नरक, वर्णाश्रम धर्म के विरोधी गुणों का बेमेल सहवास केवल खाली दिमाग की ही बात थी। युग परिवर्तन की ही ऐसी परिस्थिति में अपेक्षा थी।[1]

इसी प्रकार विध्वंसात्मक परिस्थितियों के बीज क्रमिक रूप से १५ वीं शताब्दी तक अंकुरित होते दृष्टिगत होते हैं, जिनमें धार्मिक रूढ़ियाँ ही विनाश का मूल कारण बन रही थीं, कर्मकांडों एवं धार्मिक आचारों की विविधता एवं दुरूहता तो तत्कालीन जनता की संख्या से भी अधिक हमें देखने को मिल सकती है। ऐसी ही कातर एवं भयातुर परिस्थिति से यदि किसी ने टक्कर लेने का साहस किया तो इन्हीं संतों ने। यदि हम उनकी ऐतिहासिक विवेचना करें तो उन पर सांख्य एवं योग का अधिक प्रभाव ही दृष्टिगत होगा। और यही बहुत कुछ कारण रहा होगा जिससे उनके दर्शन एवं अध्यात्म में इन्हीं दर्शनों के बीज अंकुरित हुए दृष्टिगत होते हैं। यथा: पुरुष, प्रकृति, पंचतत्व आदि की कल्पना में सांख्य दर्शन का प्रभाव ढूंढ़ा जा सकता है, और उनकी यौगिक क्रियाओं का मूल स्रोत 'पतंजलि' 'योग दर्शन' में प्राप्त होता है। प्रासंगिक रूप से जिस सत्पुरुष की चर्चा करना हमारा अभीष्ट है, जिस पर संतकवियों के साहित्य में `क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुषविशेष: ईश्वर:` में आये हुए पतंजलि का` पुरुष विशेष` का ही पूर्ण रूपेण प्रभाव देखा जा सकता है, बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थिति इन पंथों के लिए भी स्वीकार की जा सकती है, जिससे कि` सत्पुरुष` की धारणा को प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए प्रेरित हुए हैं। `सत्पुरुष` के नाम गुण एवं शील आदि को ग्राह्य बनाने का उनका एक मात्र ध्येय समस्या का शांति पूर्ण ढंग से समाधान करना ही रहा है। साथ ही इतना निश्चय रूप से और भी कह सकते हैं कि जिस मनोवेग से सद्सिद्धान्तों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाते हुए इन कवियों ने अपने `सत्पुरुष` की प्राण प्रतिष्ठा की, वह किसी भी अध्यात्म सेवी सद्संत के लिए सहज ही ग्राह्य है।

---

१. राधाकृष्णनन्, पृ० २६६

'सत्पुरुष' शब्द का प्रयोग नितान्त व्यापक एवं अनुपम अर्थ में करके उसे अत्यंत उत्कृष्ट एवं अलौकिक गुणों से सुशोभित स्वीकार किया गया। क्योंकि दोनों पंथों ने ईश्वर को अद्वितीय, जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक और सर्व-शक्ति मान स्वीकार किया है, और उसका निवास स्थान सत लोक अथवा अमरलोक को बताया है। इनके साहित्य में सत्तलोक के अन्य और भी कई नाम आये हैं, सत्तलोक की शोभा बड़े ही अनुपम एवं अनूठे ढंग से प्रस्तुत की गई है, उस लोक तक की पहुंच साधारण साधना एवं सामान्य व्यक्ति के लिए तो पूर्ण असम्भव ही है। कबीर-पंथ के अनुसार वह ईश्वर दु:खनाशक, अविचल, सुखराशि, सत्य, अभय, सर्वत्रविद्यमान, अविगत, अजन्मा, नि:स्वादी, नि:कामी, निरमोही, अनादि, नि:क्रोधी, निरवैर, नि:शंक, गुणातीत, निर्द्वन्द, नि:कलङ्क, जगत्पिता,[1] अमर अजन्मा,[2] आदि गुणों से विभूषित बताया गया है, साथ ही वह इस प्रकार से अणु अणु एवं कण कण में समाया हुआ है जिस प्रकार से वट वृक्ष एवं उसकी छाया।[3] कबीर दास जी ने अपने प्रिय शिष्य धर्मदास को शिक्षा देते हुए 'सत्पुरुष' के विषय में बताया है कि वह सत्तलोक में निवास करता है, उसी के समस्त जीव हैं। परन्तु उस अविचल एवं पुरातन पुरुष तक किसी की पहुंच सम्भव न हो सकी, इसका एक मात्र कारण यह है कि सब त्रिगुणों के मायावी जाल में उलझे हुए हैं।[4]

दरिया पंथी साहित्य में भी इसी प्रकार की कल्पना की गई है कि सत्पुरुष अजर, अडोल, अनादि, अविनाशी, अजन्मा, अखण्ड, शाश्वत तथा चैतन है, एवं दया क्षमा, शील, संतोष, सत्य सर्वज्ञता एवं प्रेम आदि सभी गुणों का आगार है, इस प्रकार वह सर्वगुण सम्पन्न एवं सर्व शक्तिमान है।[5] इस प्रकार की कल्पना से दरिया साहब की रचनाएं ओत प्रोत हैं। 'दरिया सागर' में आए

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ५-६, आत्मबोध ६, एवं ज्ञानबोध, पृ० १४

२. ज्ञान प्रकाश, पृ० ४२

३. वही, पृ० ४२

४. वही, पृ० १६

५. दरिया सागर, पृ० ३६, १००

हुए ब्रह्म विषयक वर्णन से पता चलता है कि वे गोस्वामी तुलसीदास जी से भी प्रभावित थे, क्योंकि उन्होंने जिस निर्गुण ब्रह्म की कल्पना "बिनु पगु चले सुनैबिनु काना । बिनु करि निरति बेद करि जाना ।।"[१] के माध्यम से की, उसकी तुलना व गोस्वामी जी की चौपाई "बिनु पगु चले सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै विधि नाना ।।" से की जा सकती है ।

निर्गुण या सगुण :—

दोनों पंथों के समस्त संतों ने ब्रह्म के निर्गुण रूप के प्रति आस्था प्रकट की है सगुण रूप को पूर्ण रूपेण निरादर की दृष्टि से देखा है । इस प्रकार के दृढ़ निश्चय के लिए तत्कालीन परिस्थितियां एक उर्वर भूमि प्रदान कर चुकी थीं, जिसके परिणामस्वरूप निर्गुणी विचार धारा के बीज सहज ही अंकुरित हो सके । यद्यपि इन संतों के पूर्वकालीन स्थिति का संक्षिप्त विवेचन किया जा चुका है किन्तु प्रसंग वश यहां कुछ अन्य महत्वपूर्ण दृष्टियों से उनका उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा । निर्गुण ब्रह्म की उपासना का शिलान्यास संत कबीर द्वारा एक अनुपम उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया । इसीलिए निर्गुण ब्रह्म के प्रति प्रतिष्ठा प्रदान करने की परम्परा के प्रचलन का पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं पर सौंपा जा सकता है । यद्यपि वे एक युग निर्माता एवं समाज सुधारक संत थे, तथापि वे अपने समय की धार्मिक एवं दार्शनिक विचार धाराओं से विमुख न हो सके । उनकी अनूठी अमर साधना जिस समन्वय वादी मार्ग को प्रशस्त करने का प्रयास किया वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में ही नहीं प्रत्युत अखिल मानव जाति के इतिहास में एक अद्वितीय एवं अपूर्व घटना है । कबीर ने उपनिषदों के अद्वैतवाद, शंकर के मायावाद, वैष्णव आचार्यों की भक्ति, अहिंसा और प्रपत्ति के सिद्धान्त, तांत्रिक शैली, वज्रयानी, बौद्धों एवं नाथ पंथी योगियों के हठयोग , रहस्यवाद तथा जाति पांति कर्म कांडों के प्रतिकूल व्यंग्यों, वैष्णव भक्तों एवं सूफी सन्तों की माधुर्यमय भक्ति भावना , इस्लामी धर्म के एकेश्वरवादी विचारधाराओं के दृढ़ निश्चय का विश्लेषण कर सब का सार लेकर जिस समन्वयवादी विचारधारा का जन्म दिया, उससे ही सर्वजन हित का लक्ष्य पूरा किया जा सकता था , साथ ही जिस युग परिवर्तन की अपेक्षा सुदूर काल से चली आ रही थी उसकी पूर्ति ऐसी ही उत्कृष्ट विचारधारा के माध्यम से ही सम्भव थी, कबीर की इसी कल्पना को ही "निर्गुण" या

१. दरिया सागर, पृ० १००

संत मत की उपाधि से विभूषित किया गया ।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना का मुख्य उद्देश्य अतीत के अभिशाप को धुलना मात्र समझा जा सकता है, जिसकी प्राण प्रतिष्ठा बहुदेव वाद, अवतारवाद, कर्मकांडों की जटिलता और वर्णाश्रम धर्म की दुरूहता के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई । इन्ही दोषपूर्ण विनाशकारी परम्पराओं के कारण ही आध्यात्मिक उन्नति स्थिर हो चली जिनके मध्य पाशविक प्रवृत्तियों का अंधाधुंध प्रचार हो रहा था, क्योंकि अनन्तदेव देवियों को प्रसन्न करने के लिए असंख्य अमानुषिक हिंसाओं का प्रचलन कितनी हृदय द्रावक घटना है — ऐसे युग को हम मानवता का अंतिम दिन स्वीकार कर सकते हैं जिन्हें आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ महत्व नहीं दिया जाना चाहिए । यद्यपि निर्गुण ब्रह्म की उपासना बहुत ही उन्नतशील एवं उत्कृष्ट मस्तिष्क की अपेक्षा रखती हैं तब पर भी आध्यात्मिक जगत् में सगुणोपासना की परिकल्पना का अभिप्राय व्यर्थ के पाखण्डों एवं संघर्षों को सादर निमंत्रित कर जगत् में विनाश मूलक परिस्थितियों के बीज अंकुरित करना नहीं तो, और क्या है ? निर्गुण ब्रह्म की प्राण प्रतिष्ठा द्वारा धार्मिक सामाजिक दोष, अन्याय अत्याचार, बाह्याडम्बर एवं व्यर्थ के वेद ज्ञान आदि आध्यात्मिक विकास के विरोधी तत्वों के दोषों का परिहार किया गया और इस प्रकार की प्रतिक्रिया के माध्यम से तत्कालीन दुराग्रहियों की जड़ें काट दी गई । संत मत वाले कवियों का धर्म मानव धर्म था, जिसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वजन हिताय' जैसे उत्कृष्ट सिद्धान्तों को आत्मसात कर किसी भी कल्याणकारी धर्म के जितने सार हो सकते हैं, उन सबको ग्राह्य समझा गया और थोथी जैसी वस्तुएं त्याज्य ।

उपरोक्त सारी बातें दोनों पंथों के निर्गुण मतानुयायी बनने की पूर्व-पीठिका के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं । वैसे तो दरिया साहब ने भी संत कबीर के सदृश ही अवतार वाद का पूर्ण रूपेण खंडन किया है, और निर्गुण मत के प्रति मंडन । कहीं कहीं दोनों पंथों में हमें एक प्रकार का और भी उदाहरण मिल जाता है जिसमें इन संतों ने उस ब्रह्म को निर्गुण एवं सगुण दोनों से परे बताया है, इस प्रकार दरिया साहब के लिए ऐसी धारणा बना लेना समीचीन ही है कि इस विषय में भी वे संत कबीर से प्रभावित हुए । कबीर आदि संत मतानुयायियों की दृष्टि में किसी मनुष्य को ईश्वर स्वीकार करना अवैज्ञानिक ठहराया गया, और

यही बहुत कुछ कारण रहा है जिसके कारण दोनों पंथों में राम आदि दशावतारों को ईश्वर का अवतार स्वीकार करने के लिए कोई तर्कपूर्ण आधार नहीं प्रस्तुत किये गये। इतना ही नहीं स्पष्ट रूप से जहां पर भी राम कृष्णादि शक्तियों की लीला के प्रसंग इनके साहित्य में निरूपित किए गए हैं वहां पर इन सब को निरं-जन का अवतारी रूप दर्शाया गया है। जहां तक अवतारवादी विचारधारा की उपेक्षा का प्रश्न है, बहुत कुछ सम्भव है कि व्यर्थ के पाषण्डों एवं ढोंगों की रक्षा के लिए ही ऐसी उत्कृष्ट धारणा का प्रतिपादन हुआ हो। दूषित रूढ़ियों की निन्दा में दोनों पंथों ने कई स्वतंत्र रचनाएं प्रस्तुत कीं, जिनके पूत मंत्र स्फुरण से ही आध्यात्मिक जगत् में सत्यं शिवं सुन्दरं की कल्पना की जा सकती है।

कबीर पंथ के 'गणेश गोष्ठी' 'रामानन्द गोष्ठी' एवं अन्य गोष्ठियों में सन्तमतावलम्बियों के जिस मानस पटल की फांकी हमें प्राप्त होती है, इसके आधार पर दृढ़ता पूर्वक निर्णय लिया जा सकता है कि उन्होंने कभी भी सगुणो-पासना के प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा प्रकट न की थी, साथ ही ऐसे मत के खंडन के लिए जिन सुदृढ़ आधारों का अवलम्बन लेना चाहा, यदि सचमुच समस्त जनता का यथो चितसहयोग मिला होता तो अधर्म नाम की कोई भी वस्तु न रह जाती। कबीर-पंथ की ही भांति दरिया साहब के गोष्ठी साहित्य में भी एक मात्र निर्गुण मत के प्रति आस्था की ही प्रतीति होती है, उन्होंने बहुदेववाद, वर्णाश्रम धर्म, एवं कर्मकाण्डों की जटिलता के प्रतिकूल बड़े ही जोरदार शब्दों में प्रतिक्रिया के पग लिया। दरिया साहब के 'मूर्तिउखाड़' नामक ग्रन्थ में साकारोपासना पद्धति की जो चुटकी ली गई है वह समस्त सगुणोपासना प्रेमियों के लिए चुनौती समझी जा सकती है। दरिया साहब ने तत्कालीन कुरीतियों के भयावह विकास को देखकर एक देवी की मूर्ति को उखड़वा कर समाज में प्रतिष्ठित रूढ़ियों की निरर्थकता का भन्डा फोड़ कर दिया था। दोनों पंथों के साहित्य में ऐसे कम ही उदाहरण प्राप्त होंगे जिनमें सगुणोपासना के प्रति तीव्र व्यंग्य न किये गये हों।

सत्पुरुष को दोनों पंथों में प्राय: निर्गुण ही निरूपित किया गया है, कबीर पंथी रचना 'अनुराग सागर' में उसे निराकार, निर्गुण एवं अविनाशी बताते हुए शून्य का निवासी स्वीकार किया गया है।[1] 'बीरसिंह बोध' में उसे निर्गुण

---

१. अनुराग सागर, पृ० ६०

बताया गया है, साथ ही उसकी महिमा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश से भी परे सिद्ध की गई।[1] 'आत्मबोध' एवं 'अमर मूल' के कवि ने ब्रह्म को दु:खनाशक, अविचल, सुखराशि, सत्य, अभय, सर्वव्यापी, अविगत, अलख, अनाम, अगह, अडोल, अबोल, अनूप, अगर, अजन्मा, नि:स्वादी, नि:कामी, निरमोही, अनादि, नि:क्रोधी, निरवैर, नि:शंक, गुणातीत, निर्द्वन्द, नि:कलंक, आदि अलौकिक गुणों से युक्त बताया गया है।[2] 'अनुराग सागर' में उसे पंच तत्व एवं त्रिगुणों की सीमा से परे बताया है।[3] पंच तत्व एवं त्रिगुणों के योग से सगुण ब्रह्म का रूप निरूपण किया गया, साथ ही माया को भी त्रिगुणात्मिका स्वीकार किया गया, किन्तु निर्गुण ब्रह्म का स्थान इन सब की सीमाओं से परे सिद्ध किया गया है, जिस पर माया एवं त्रिगुणों का कुछ भी प्रभाव नहीं। 'बीरसिंह बोध' में नामदेव से मूर्ति उपासना की निन्दा करते हुए कबीर दास जीने निर्गुण ब्रह्म के प्रति पुनीत आस्था प्रकट की है।[4] साथ ही उन्होंने यह भी बताया है कि बिना निर्गुण भक्ति के यम के फन्दों से मुक्तिपूर्ण असम्भव है, इस प्रकार की उपासना की प्राप्ति सद्गुरु की कृपा से होती है।[5] 'ज्ञान बोध' में कबीर दास जी ने सगुणोपासना की भरपूर निन्दा की है और ऐसे भक्तों को पारब्रह्म का चोर घोषित किया है, जिन्हें ८४ लक्ष योनियों की कटुतर प्रताड़ना से कदापि मुक्ति संभव नहीं। उपर्युक्त मतों का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कबीर-पंथ में निर्गुण ब्रह्म के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित किया गया है।

दरिया-पंथी साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें भी निर्गुण ब्रह्म का समर्थन किया गया है जिस पर स्पष्टत: कबीर-पंथ का ही प्रभाव परिलक्षित होता है, इस बात का ज्वलंत प्रमाण यह है कि दरिया साहबने स्वत: इस बात का समर्थन किया है कि 'सोइ कहो जो कहहिं कबीरा। दरियादास पद पायो हीरा।'[6]

---

१. बीरसिंह बोध, पृ० १२, ज्ञानप्रकाश, पृ० ६,४२,४१, अमरसिंहबोध, पृ० २१
२. आत्मबोध, पृ० ५-७ एवं अमरमूल, पृ० १५०-१५२
३. अनुराग सागर, पृ० ६०-६७
४. बीरसिंह बोध, पृ० ७-८
५. वही, पृ० ९८
६. दरिया सागर, पृ० ८०

इस प्रकार दरिया साहब ने स्पष्टत: दृढ़ता पूर्वक समाज को बताने का प्रयास किया कि वे पूर्णरूपेण कबीर दास की विचारधारा एवं व्यक्तित्व के ऋणी हैं, साथ ही उनके हीरे रूपी पदों को अपना आलम्बन स्वीकार कर अपनी काव्य कृतियों का ताना बाना बुना, ~~साथ ही~~ और उनके सिद्धान्त एवं साधना को ग्रहण किया । इतना ही नहीं अपितु अन्य निर्गुण मतावलम्बी संतों के प्रति भी उनकी अटूट श्रद्धा थी । जिन निर्गुणी कवियों को हम संत समाज के स्तम्भ स्वरूप स्वीकार कर सकते हैं, उन सब की चर्चा दरिया साहब ने बड़े आदर के साथ किया है ।

नवो नाथ रहै गोरख योगी । भक्त मे भेख ध्रुव रस भोगी ।।
— ग्यान रतन, पृ० २०२

नामदेव, मत्स्येन्द्र आदि नामों की चर्चा उनके निर्गुण विचारधारा का क्या पोषण नहीं करती ?[१] दरिया साहब के पूर्ववर्ती कबीर आदि संत मतानुयायियों ने जि स ब्रह्म विषयक धारणा का प्रतिपादन किया था उसे त्रिगुणातीत या निर्गुण कहते हैं यह पहले ही निर्विवाद रूप से हम सिद्ध कर आये हैं । भारतीय दर्शन के अनुसार समस्त सृष्टि की रचना सत्व रजस एवं तमस इन्हीं त्रिगुणों के योग से सम्भव हुई , इसीलिए प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया, किन्तु दरिया साहब ने जिस सत्पुरुष या ईश्वर की कल्पना की वह कबीर पंथ के अनुरूप ही अखिल त्रिगुणात्मिका प्रकृति का नियामक स्वीकार करते हुए त्रिगुणों से विमुख एवं उसकी सीमाओं से पृथक बताया । दरिया साहब ने कबीर पंथ के अनुसार ही अपनी कृतियों में सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार की उपासनाओं का चित्रण करते हुए अनेक प्रभावपूर्ण मौलिक उद्भावनाओं के माध्यम से सगुण विचारधारा का खंडन एवं निर्गुण मत का मंडन किया है । साथ ही जिन राम-कृष्ण , शिव-पार्वती आदि देव-देवियों के पौराणिक संकेतों की चर्चा कर उन पर कलंक के छींटे फेंके हैं, उनका कबीर पंथी साहित्य से पूर्ण साम्य परिलक्षित होता है । उन्होंने (दरिया साहब ने) अपने साहित्य में निर्गुण ब्रह्म के जिन गुणों की चर्चा की है, उनका बहुत कुछ मेल कबीर पंथ से ही दृष्टिगत होता है । `दरिया सागर` (पृ०१००)

---

१. ग्यान रतन, पृ० १६२

में ब्रह्म को मुख, श्रवण एवं चक्षु से हीन सिद्ध करते हुए उसे विदेही सिद्ध किया गया है। इसी ग्रन्थ में उसे अजर अमर स्वीकार करते हुए यह भी बताया गया है कि साधारणजीवों की भांति जन्म धारण नहीं करता।[१] 'ज्ञान रतन' में सत्पुरुष को त्रिगुण से परे सिद्ध कर उसी से अखिल सृष्टि की रचना स्वीकार की गई है। वह अमर एवं निरलेप है, जिस ब्रह्म को दरिया साहब ने निर्गुण कहा है, उसे स्पष्ट रूप से सिद्ध करने का प्रयास किया कि वह कभी अवतार धारण कर सगुण रूप में अवतरित नहीं हो सकता, साथ ही सगुण रूप भी कभी निर्गुण नहीं बन सकता।[२] इस प्रकार ईश्वरही निर्गुण है और समस्त चैतन जगत सगुण। 'भक्ति-हेतु' में दरिया साहब निर्गुण ब्रह्म के चार स्तरों की चर्चा की है —प्रथम बोलता, द्वितीय पवन, तृतीय निराकार एवं चतुर्थ अचल।[३] इसी प्रकार उनकी अन्य रचनाओं 'ब्रह्म विवेक' (पृ० ३३०), 'ज्ञान मूल' (पृ० ३८३) आदि में ब्रह्म के निर्गुण रूप का समर्थन देखने को मिलता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दरिया साहब ने ब्रह्म को अजर, अमर, अडोल अनादि, अविनाशी, अजन्मा, अखण्ड, शाश्वत, तथा चैतन बताते हुए उसे दया, क्षमा, शील, संतोष, सत्य, सर्वज्ञता, प्रेम आदि अलौकिक गुणों का आगार सिद्ध किया है।

निर्गुण-सगुण के परे —

उपर्युक्त विचारधारा का विश्लेषण करने पर निर्णय किया जा सकता है कि निर्गुण उपासना पद्धति के विकास का मूलभूत कारण ब्रह्म विषयक धारणा का सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रतिपादन ही रहा होगा, क्योंकि इस बात की पुष्टि एक सबल आधार से और भी हो जाती है कि इन पंथों में ब्रह्म को सूक्ष्म रूप प्रदान करने के लिए उसे यत्र तत्र सगुण एवं निर्गुण दोनों से परे सिद्ध किया गया। यद्यपि इस प्रकार की कल्पना उनकी मौलिक सूझबूझ का प्रतीक नहीं, क्योंकि इन

---

१. दरिया सागर, पृ० १०८

२. ज्ञान रतन, पृ० १६६-१६७, २८८

३. भक्ति हेतु, पृ० २८३, ३०४

पर उपनिषदों के `परात्पर` ब्रह्म की धारणा का स्पष्ट प्रभाव है। शंकराचार्य ने ब्रह्म के विषय में उसकी सत असत की स्थिति के कारण अनिर्वचनीय माना है। इस निर्गुण एवं सगुण से भी परे ब्रह्म की कल्पना का बहुत कुछ साम्य शंकराचार्य के उक्त `अनिर्वचनीय` तत्व में ढूंढा जा सकता है। इस प्रकार की सत्पुरुष विषयक उत्कृष्ट कल्पना संत कबीर द्वारा ही की गई थी[१]। जिसे कि दरिया साहब ने भी मान्य ठहराने का प्रयास किया। संत कबीर ने अपने ब्रह्म को इतने उत्तुंग शृंग पर ले जाने का प्रयास किया, जहां पर असाधारण व्यक्तित्व एवं अनन्त साधना वाले विरले लोग ही पहुंच पाते हैं, उन्होंने अपने उपास्य देव को, मात्र सर्वोत्कृष्टता एवं अति सूक्ष्मता के निर्वाह के लिए ही सगुण एवं निर्गुण से परे सिद्ध किया, और इसी के आधार पर सर्वथा दोषों से भी रक्षा संभव थी। इसीलिए उन्होंने कहा:—

अजरा अमर कथै कोइ अलख न कथणां जाई।
नाति सरूपबरण नहीं जाके, घटि घटि रह्यौसमाई।।
प्यंड ब्रह्मंड कथै सबकोई, बाके आदि अरु अन्तनहोई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़िजे कथिये, कहै कबीर हरि सोई।। १८० ।।

—कबीर ग्रन्थावली (सभा०)पृ०१४६

कबीर पंथ में भी ब्रह्म को कहीं कहीं सगुण एवं निर्गुण से भी परे बताया गया है। यथा: —

सरगुण माहिं सार नहिं कोई। निरगुण नाम नियारा होई।
निर्गुण से सरगुण है भाई। सरगुण में यह जग लपटाई।
रजगुण सतगुण तमगुण कहिये। सब मिट जाय ज्ञान जो लहिये।
तीनों गुण से सरगुण होई। चौथा पद निरगुण है सोई।।
निरगुण नाथ निरंजन राई, निज उत्पत्ति बना के खाई।।
ताके परे इकनाम नियारा। सो साहब है मूल अपारा।।

— ज्ञान बोध, पृ० ६८

दरियापंथ में भी इसी प्रकार के विचार द्रष्टव्य हैं:—

बोह निरगुन सरगुन ते भीन्हा, जाके प्रान पिंड सम कीन्हा।। ३५५ ।।
निरगुन सरगुन दोनों ते न्यारा। सत्त रूप और विमल सुधारा।। १००१

सगुण भावना का प्रवेश--

समय की गति विलक्षण है, साथ ही प्रकृति के परिवर्तनीय शाश्वत नियमों की उपेक्षा सर्वथा असम्भव ही है, बहुत कुछ यही परिस्थितियां हम इन निर्गुणी संतों के लिए भी देखते हैं। किसी भी धर्म प्रचार के लिए तत्कालीन परिस्थितियां ही सब कुछ होती हैं, जिनके प्रतिकूल सफलता प्राप्त करना केवल बालू की दीवाल खड़ी करना है। कबीर आदि संत मतानुयायियों की अमर साधना रूपी पूत मन्दाकिनी अपने जिन प्रारम्भिक क्षणों में अति वेगपूर्ण गति से प्रवाहित हो चली थी, वह गति किन्हीं विरोधी परिस्थितियों के उत्पन्न होने के कारण कालान्तर में स्थिर सी हो चली। यह सत्य भी है कि नदी अपने विकास के प्राथमिक क्षणों के अतिरिक्त ज्यों ज्यों आगे विस्तृत होती जाती है, उसकी गति में क्रमिक रूप से स्थिरता आने लगती है, साथ ही कठोर पर्वतीय चट्टानों के समक्ष उसे पूर्ण रूपेण स्थिर भी हो जाना पड़ता है, यही बात इन संत साधकों पर लागू होती है कि जिस वेग से इनके मत का अंधाधुन्ध प्रचार उस परिवर्तन की अपेक्षा रखने वाले युग में हुआ वही सगुण मत प्रचारकों के समक्ष एक दम मंद पड़ गया। अवतार वाद के विनाश मूलक प्रेरक तत्वों के प्रतिकूल जिस निर्गुणी विचार धारा का सुदृढ़ भवन निर्मित किया गया, वह सगुण कल्पना के समक्ष स्थिरता न पा सका, इसका एक कारण यह भी था कि इन कवियों ने अवतारवाद के मूल सिद्धान्तों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रति विवेकपूर्ण ढंग से निर्णय न लेकर केवल तत्कालीन कूपमन्डूकों के आधारहीन तत्वों के प्रतिशोध में अपनी सफलता के पग अग्रसर किये परन्तु उनकी आशा पर पानी फिरने का एक मात्र कारण परिस्थिति एवं अवतारवाद के वैज्ञानिक तत्वों के प्रति उनका गलत निर्णय ही समझा जा सकता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निर्गुण मत की कल्पना थोथे एवं अवैज्ञानिक पहलुओं के आधार पर की गई थी प्रत्युत यह सर्वोत्कृष्ट मौलिक एवं अनुपम होते हुए भी उसमें सिद्धान्तों की दुरुहता एवं जटिलता के कारण अव्यावहारिकता आ गई। इन्हीं कट्टर एवं दु:साध्य पद्धतियों की अनिवार्यता ने तत्कालीन समाज को भयाकुल एवं शंकालु बना दिया, जिससे कि इसे सगुणोपासना की तुलना में समुचित सहयोग न प्राप्त हो सका। इसीप्रकार का ज्वलंत प्रमाण हमें इतिहास में उपलब्ध होता है बौद्ध धर्म की तुलना

में जैनधर्म के पांव उखड़ के ही रहे । इसका भी मात्र कारण उनकी साधना पद्धतियों की दुरूहता एवं क्लिष्टता ही समझी जा सकती है । जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म धारणाओं का प्रतिपादन जैन मतावलम्बियों ने किया उसे सामान्य धरातल पर क्रियात्मक रूप में परिणत किया जाना यदि असम्भव नहीं तो दु:साध्य अवश्य था । किन्तु दूसरी ओर बौद्ध धर्म की सहजता एवं सरलता के कारण ही जो असंख्य जनसमुदाय सहयोग किया, उससे उसकी जड़ें अतीत काल के लिए सुदृढ़ हो गईं । ऐसी ही स्थिति निर्गुण एवं सगुण विचारधारा के लिए भी स्वीकार की जा सकती है । जैसा कि हम पहले ही कह आए हैं कि निराकार ब्रह्मोपासना असाधारण प्रतिभा एवं व्यक्तित्व रखने वाले व्यक्ति के लिए ही सम्भव है, पर दुर्बल मानव अपने आराध्य-देव को अपने ही स्तर पर कार्य करते देखना चाहता है । वह अपनी निराशाजन्य परिस्थितियों में स्वातिबुंद के प्रेमी पपीहे की भांति ईश्वर की ओर राह देखता रहता है और भक्ति की चरमावस्था है कि साधक अपने ईश्वर के अनन्य एवं अभय शरण में छोड़ दे, जहां पर दु:खनाम की कोई चीज नहीं रह जाती, इस प्रकार का अचल एवं अटूट विश्वास उस रूपरेख विहीन ईश्वर के प्रति क्या सम्भव है ? ईश्वर के सगुण रूप को लेकर जिस `सत्यं शिवं सुन्दरं ` की सर्वोत्कृष्ट कल्पना की गई और अवतार वाद के मूर्त सौन्दर्य माधुर्य का जो चित्रण प्रस्तुत किया गया, उसके समक्ष निर्गुण मतावलम्बियों के पैर उखड़ गए । भक्तों को सूक्ष्मातिसूक्ष्म सामीप्य सुख के लाभ की आशा देने वाले, सुकृतियों पर दया की वर्षा करने वाले और पापी अत्याचरियों पर नाश का वज्रपात करने वाले अवतार उनको मोहक जान पड़े ।[१] अवतार-वाद को जो प्रबल सहयोग मिला उसी का प्रभाव है कि हिन्दी साहित्य में भक्ति-काल को स्वर्णकाल से अभिहित किया गया ।

यहां एक बात की ओर विशेष रूप से लक्ष्य कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि निर्गुण तथा सगुण रूप की समस्या इतनी उलझी हुई है कि बड़े बड़े विद्वानों को भी उसके सम्बन्ध में प्राय: भ्रम हो जाता है । कबीर ने कहा है :—

संतो धोखा कासूं कहिए ,
गुंण में निरगुंण निरगुंण में गुंण बाट छांड़ि क्यूं बहिए ।

—कबीर ग्रन्थावली (सभा), पृ० १९६

तुलसी ने भी एक स्थल पर कहा है ` निरगुन रूप सुलभ अति सगुन जान,

नहिं कोय ।" उन्होंने ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण रूपों में भेद दृष्टि उत्पन्न करना मिथ्या पाषण्ड माना है। मध्यकालीन सभी भक्तों ने ब्रह्म को अरूप तथा अरेख बताते हुए उसके असाधारण सौन्दर्य तथा शक्तिमत्ता का भी वर्णन किया है। कबीर ने भी कहा है :—

> अविगत अपरंपार ब्रह्म, ग्यान रूप सब ठांम ।
> बहु बिचारि करि देखिया, कोई न सारिख रांम ।।
>
> — कबीर ग्रन्थावली (परिषद्),पृ०१६८

उन्होंने ब्रह्म को अरूप बताते हुए ऐसा रूपवान भी बताया है कि संसार की समस्त वस्तुएं उसी से सौन्दर्य प्राप्त करती हैं, उसे ऐसा समर्थ बताया है कि पशु-पक्षी , जीव-जन्तु सभी उसी से प्रतिपालित होते हैं, उन्होंने कभी उसको माता तथा स्वत: को बालक माना है , कभी उसे " पीव" एवं स्वयं " तनक लहुरी बहुरिया" माना है, कभी उसको अपना स्वामी बताकर अपने को उसका कुत्ता कहा है। दूसरी ओर जब उसकी निर्गुणता का वर्णन करने लगते हैं तो केवल उसे अद्वैत ही बता कर संतुष्ट नहीं हो जाते बल्कि सिद्धों तथा नाथ योगियों की तरह द्वैताद्वैत विलक्षण तथा भावाविनिर्मुक्त बताते हैं। ब्रह्म के वस्तुत: दो रूपों अर्थात् निर्गुण तथा सगुण में कोई भेद नहीं । उसके अव्यक्त रूप को निगुर्ण तथा व्यक्त रूप को सगुण कहना चाहिए । परमेश्वर सगुण है या निर्गुण इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती " सत्यार्थ प्रकाश" (पृ० १०८) में लिखा है" जैसे जड़ के रूपादिगुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं है, वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं। इसीलिए" यद् गुणैस्सह वर्तमानं तत्सगुणम् । गुणेभ्यो यन्निर्गतं ~~पृथग्भूतं~~ पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्।" अर्थात् जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो । किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता केवल सगुणता और निर्गुणता में सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनंत ज्ञान बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।" (सत्यार्थ प्रकाश, पृ० १०८)

कबीर की प्रामाणिक वाणियों में निर्गुण तथा सगुण के बराबर की

सूक्ष्म मर्यादा की निरंतर रक्षा हुई है। अवतार वाद का अवश्य ही उन्होंने खण्डन किया है। ब्रह्म कल्पना के सम्बन्ध में तुलसी सूर आदि से उनका प्रमुख मतभेद यही है कि जहाँ पर तुलसीदास दशरथ सुतराम और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं मानते, वहाँ पर कबीर उसे परब्रह्म मानने को हरगिज तैयार नहीं, किसी के गर्भ से उत्पन्न किसी व्यक्ति को चाहे वह कितना भी असाधारण सामर्थ्य वाला हो, वे ईश्वर मानने के लिए तैयार नहीं। आगे चल कर परवर्ती संत मतानुयायियों ने इस अन्तर को भुला दिया और ये उसी पौराणिक बखेड़े के शिकार बन गए जिससे कबीर ने अपने मत को कोसों दूर रखा था।

यही कारण है कि उभयपंथों के संतों ने अपने ईश्वर के रूपादि का वर्णन सगुणोपासकों के सदृश ही करना प्रारम्भ किया। कबीर पंथ में सत्पुरुष को अमरलोक का निवासी बताया गया है, जिसकी अनुपम शोभा के समक्ष कोटि कोटि सूर्य एवं चन्द्रमा का सौन्दर्य फीका नजर आता है। वह एक चक्रवर्ती सम्राट के सदृश श्वेत सिंहासन पर विराजमान है जिसके ऊपर अनुपम छत्र तना हुआ है।[१] इसी प्रकार 'उग्रगीता' (पृ० २० एवं ७०-७१) एवं 'अनुराग सागर' (पृ० ६८) में पुरुष की अद्वितीय शोभा का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

कबीर पंथ के अनुरूप ही दरिया साहब ने भी अपने साहित्य में सत्पुरुष की शोभा का वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया है कि सत्पुरुष के चारों ओर करोड़ों कामनियाँ चवर झल रही हैं, करोड़ों कृष्ण ध्यान मग्न हैं, करोड़ों ब्रह्मा वेद पाठकर रहे हैं, ज्योति मंडल करोड़ों कलश एवं हिरण्यमय प्रकाश से सुशोभित हो रहा है, चारों ओर मणियों की झालर झूलती हुई छवि पा रही है।[२] इसी प्रकार का वर्णन 'ब्रह्म विवेक' (पृ० ३४६) एवं 'भक्तिहेतु' (पृ० २८३) में भी आया है। कबीर पंथ के अनुसार दरियासाहब ने भी बताया है कि सत्पुरुष श्वेत तख्त

---

१. धर्मदास की शब्दावली, पृ० ३२, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९४७

२. दरिया सागर, पृ० ४

पर बैठा हुआ है, और अनेक हंस चंवर फुला रहे हैं। और गुलाब एवं आरवत्ती की सुगंधि से परम सुख मिल रहा है।[१]

अवतारवाद —

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि कबीर ने अवतार वाद के प्रति सर्वथा उपेक्षा प्रकट की है। उन्होंने कथनी की अपेक्षा किसी कार्य के प्रयोगात्मक पहलू पर विशेष बल दिया है। उनका विचार था कि ईश्वर की प्राप्ति कोई हंसी खेल नहीं है, क्योंकि " हंसि हंसि कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय" इसीलिए उन्होंने साधना पक्ष को विशेष कष्ट साध्य बताया है। क्योंकि आध्यात्मिक विकास के बारे में जितनी उनकी पहुंच थी शायद किसी संत कवि कीरही हो, इसीलिए उनका दृढ़ विश्वास था कि जहां पर परमतत्व के साधन सरल होते हैं वहां पर आचरण भ्रष्टता के लिए विशेष प्रोत्साहन मिलता है। जहां तक कबीर की रचनाओं का प्रश्न है उनमें इसीप्रकार की भावना मिलती है, और अवतारवाद अथवा साकारोपासना के लिए कोई गुंजाइश नहीं, किन्तु आगे चलकर कबीर-पंथी साहित्य में वस्तु-स्थिति इसके विपरीत हो गई, उसमें यत्र तत्र अवतारवाद का खण्डन मिल जाता है यथा :—

जाकर कीन्ह सकल विस्तारा।सो साहब नहिं जग औतारा।।
योनी संकट वह नहिं आवे। वह तो साहब अक्षय रहावे।।
जहां लगे जोजन में आये। तहां लगि सबही अंश कहाये।।
ताते साहब अक्षय है, तीन लोक सों न्यार।
योनि संकट ना आवई, नावह लेइ औतार।।

— गरुड़ बोध, पृ० ६६

किन्तु वे स्वत: अवतार वाद का शिकार होने से बच न सके। परवर्ती कबीर-पंथी साहित्य के अनेक ग्रन्थों में कबीर को विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न अवतार धारण करते हुए दिखलाया गया है। ये प्रसंग इतने प्रचुर परिमाण में मिलते हैं कि सबका विधिवत निर्देश करना कठिन है। तब भी कुछ निर्देश कर देना

---

१. दरिया सागर, पृ० १०

अनुपयुक्त न होगा ।

'ज्ञानबोध' में इस प्रकार का विवरण मिलता है कि कलि काल में अधर्म एवं अत्याचार के परिणामस्वरूप कबीर ने सत्पुरुष के आदेशानुसार भवतारण एवं जीवों के उद्धार के लिए काशी में जन्म लिया । इसी प्रकार उन्होंने सतयुग में सतसुकृत, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुनामय, कलियुग में कबीर नाम धारण किया ।[१] इसी प्रकार की धारणा 'जगजीवन बोध' (पृ० ७-३८) , 'हनुमानबोध (पृ० ११४), 'स्वसमवेद बोध (पृ० ५५—५५) , 'ज्ञान प्रकाश' (पृ० १६), अनुराग सागर', (पृ० ६४, ६६, ७३, ७६, ८४, १०१, १११) , 'ज्ञान सागर' (पृ० ५७, ७५) आदि में प्राप्त होते हैं । कालान्तर में कबीर के निधनोपरांत कबीर पंथ में कबीर की प्रतिमा एवं कबीर के खड़ाऊ आदि की पूजा प्रारम्भ हुई ।

कबीर पंथ के अनुरूप दरियापंथ में अवतारवाद के खण्डन के जहां यत्किं-चित प्रमाण मिलते हैं वहीं पर इसके प्रति सम्मान के बीज भी बिखरे हुए परि-लक्षित होते हैं । इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि दरिया साहब ने अपने को कबीर का अवतार बताया है । दरिया सागर में उन्होंने इस बात की चर्चा की है कि कलियुग में सत्पुरुष ने उन्हें जीवों के उद्धार का आदेश दिया । साथ ही अनेक ग्रन्थों में वे अपने को सत्पुरुष का फरजन्द मानते हैं ।[२] उन्होंने यह भी बताया है कि सतयुग में सत्पुरुष के पुत्र का नाम सुकृत, त्रेता में करुनामय, द्वापर में मुनीन्द्र एवं कलियुग में उनका नाम कबीर हुआ ।[३] कबीर पंथ के सदृश दरिया पंथ में भी दरिया साहब की मूर्तिपूजा आदि का विधान प्रचलित हुआ ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ये संत भी अवतारवादी विचारधारा से अभिभूत हो गये ।

---

१. दरिया सागर, पृ० १६
२. ब्रह्म विवेक, पृ० ३७०
३. वही, पृ० ३७१

निरंजन —

जब उभयपंथों की रचनाओं पर हम दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि निरंजन का वर्णन समान रूप से किया गया है। यद्यपि निरंजन शब्द के प्रयोग के विषय में इन संतों की कोई अपनी मौलिक उद्भावना नहीं है क्योंकि इसका मूल स्रोत प्राचीन भारतीय साहित्य में से ही ढूंढा जा सकता है। `मुण्डकोपनिषद्` में इसका प्रयोग निर्मल अर्थ में करके ईश्वर के रूप में बताया गया है।[१] `छान्दोग्यउपनिषद में इसका प्रयोग अमूर्त ईश्वर के लिए किया गया है।[२] `श्वेताश्वतरोपनिषद` के `षनिष्कलंनिष्क्रियं शान्तं निरवंध निरंजनम्` से कवि की निरंजन के प्रति आस्था प्रकट होती है। अलख निरंजन का भी प्रयोग प्रारम्भ हुआ, उस रूप में शिव की कल्पना प्रतीत होती है, इन योगियों ने नादानुसंधान की अवस्था में भी निरंजन के प्रति आस्था प्रकट कर उसे ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित बताया है।[३] पाशुपत शैवसम्प्रदाय की शब्दावली में निरंजन शब्द का अर्थ `माया विशिष्ट अशरीरी जीव` से लिया गया।[४] मध्य युगीन योगमंत्र एवं भक्तिकालीन इतिहास में इस शब्द का प्रयोग बाहुल्य के साथ मिलता है। यहां तक कि इसके नाम पर कई स्वतंत्र पंथ भी चल पड़े। क्षिति मोहन सेन ने उड़ीसा के निरंजन पंथ का क्षेत्र बताया है।[५] काठियावाड़, राजस्थान में निरंजन पंथ चल पड़ा। बंगाल में प्रचलित निरंजन देव की पूजा कालान्तर में कबीर पंथ में अन्तर्भुक्त हो गई साथ ही उसकी समस्त कथाएं कबीर पंथ में परिणत हो गई। दक्षिण कन्नड़ी साहित्य में भी निरंजन शब्द का अर्थ `परमतत्व` से ही लिया गया है।[६]

कबीर-साहित्य में निरंजन शब्द का प्रयोग अति प्रचुर मात्रा में दिखलाई

---

१. मुण्डकोपनिषद्, ३।३
२. छान्दोग्यो उपनिषद्, ८।१६
३. हठयोग प्रदीपिका ४।१०४
४. पं० परशुराम चतुर्वेदी (कबीर साहित्य की परख, पृ० २४५)
५. आचार्य क्षितिमोहन सेन — `मिडिवल मिस्टिसिज्म`, पृ० ७०७
६. डा० हिरण्मय — हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ११२

पड़ता है, जो कि उनकी पुनीत आस्था के ही द्योतक है। कबीर ने इसका प्रयोग योग विषयक प्रसंग में भी किया है। उनके अनुसार निरंजन का ध्यान आवागमन से मुक्ति प्रदान करने वाला है।[१] कहने का अभिप्राय यह है कि निरंजन के प्रति उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। निरंजन के निवास स्थान के विषय में कबीर की धारणा है कि जब मन उन्मनि अवस्था में लीन हो कर उपरामता धारणा कर सहस्रार चक्र में आ जाता है, तब चन्द्रमा के बिना ही क्रान्ति छिटक जाती है, वहीं पर निरंजन का निवास स्थान है।[२] कबीर द्वारा प्रयुक्त निरंजन शब्द के लिए कुछ विद्वानों ने खींचतान प्रारम्भ कर अर्थ का अनर्थ करना चाहा, परन्तु उनके ऐसे प्रयास के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं प्रतीत होता। दूसरी ओर कबीर साहित्य में निरंजन शब्द का प्रयोग इतना अत्यधिक हुआ है जिससे कदापि इस प्रकार की शंका उठ ही नहीं सकती।

कबीर-साहित्य में जिस निरंजन को परब्रह्म के रूप में अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली थी कालान्तर में कबीर-पंथ एवं दरियापंथ में उसकी कल्पना एक शैतान के रूप में की गई और उसका पूर्व प्रचलित पवित्रचरित्र अब छल प्रपंचकारी कुप्रवृत्तियों से पूर्ण दूषित समझा जाने लगा। निरंजन के दोष पूर्ण चरित्रों का अतिरंजना पूर्ण वर्णन समान रूप से दोनों पंथों में मिलता है। उसका स्थान इनमें सृष्टि विषयक प्रसंग में बड़ा ही महत्वपूर्ण है साथ ही इसे आदि पुरुष का पुत्र बताया गया है। कबीर-पंथ में निरंजन के अनेक और भी नाम आए हैं। यथा सहज,[३] धर्मराय,[४] कैल,[५] आदि। दरियापंथ में निरंजन के लिए अब्दुल्ला भी कहा गया है।

स्वरूप —

कबीर-पंथ में निरंजन को आसुरी अवतार धारण करने वाला बतायागया है

---

१. आदि ग्रन्थ रामगोंड़ी, १८–४६

२. कबीर ग्रन्थावली (परचो कौ अंग साखी १५)

३. ज्ञानसागर, पृ० ८

४. वही, पृ० १५

५. कबीर बानी, पृ० १६, स्व सम्वेद बोध, पृ० ३०

'निरंजन बोध' में निरंजन के विषय में विशेष रूप से चर्चा की गई है। जिसमें बताया गया है कि निरंजन ने स्वयं कबीर से अपने अलौकिक स्वरूप के विषय में कहा है " मेरा शिर आकाश में, पांव पाताल में, और अग्निरूपी तेज का प्रकाश सोलह योजन तक फैला हुआ है, जीभ की चमक टूटते टूटते तारे एवं बिजली के सदृश भयावह है, सूंढ़ के सदृश भयंकर दांत सब को भयभीत कर रहे हैं।[१]" 'निरंजन बोध' (पृ० ७) में निरंजन को निर्गुण स्वीकार किया गया है और उसे सगुण रूप में ढाल कर उसके अनेक अवतारी रूपों की कल्पना की गई, इस प्रकार के वर्णन से सम्पूर्ण कबीर-पंथी साहित्य ओतप्रोत है। दरियापंथ में भी निरंजन को निर्गुण बताया गया है, और उसके सगुण रूप में कबीर-पंथ के सदृश अनेक अवतार धारण करने का वर्णन प्राप्त होता है।[२]

महिमा—

कबीर-पंथ में निरंजन को आसुरी अवतारधारण करने वाला बताया गया है। जोकि देवताओं को पीड़ित करता है।कहीं कहीं देव के रूप में कल्पना करके असुरों का संहारक सिद्ध किया गया है।[३] उसकी एक तप्त शिला का उल्लेख मिलता है जिस पर वह जीवों को पकड़ कर जलाया करता है।[४] उसने सुर नर मुनि आदि तैंतिस करोड़ जीवों को बांध रखा है।[५] 'ज्ञान प्रकाश'(पृ० ७) में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को भी निरंजन के अधीन स्वीकार किया गया है जो कि अनेक बार उसके बन्धन में पड़े। त्रिदेवों का पिता भी वही है, वह सवालाख जीवों का नित्यप्रति भक्षण करता है। उसे यमराज भी बताया गया है और उसका चरित्र धूर्तता एवं छल प्रपंचकारी कुप्रवृत्तियों से पूर्ण दूषित है,

---

१. निरंजन बोध, पृ० ११
२. ग्यान रतन, पृ० १५१
३. अनुराग सागर, पृ० ५५
४. वही, पृ० ५७
५. वही, पृ० ६२

इसीलिए उसने त्रिलोकों पर ठगोरी डाल दिया है। इसी साहित्य में यह भी वर्णन मिलता है कि निरंजन जन्म लेकर जीवों को प्रताड़ित करता है, पांडवों एवं कौरवों के मध्य कलह का बीज बोने वाला भी वही है।[१] उसके छल एवं प्रपंचकारी गुणों के कारण ही उसे मन की उपाधि दी गई है।[२] राम रहस साहब ने निरंजन को मन का प्रतिरूप मान कर कहा है :—

आपु निरंजन मन होय आये। तीन अंश तत्वों निमाये।।

—पंचग्रन्थी, पृ० ११५३(टीका०काशी०)

उन्होंने निरंजन को प्राणस्वरूप बताया है :—

प्राण निरंजन आपु कहावै, पांच मूल वायु निरमावै।

—पंचग्रन्थी, पृ० ११७०(टीका काशीदास)

कहीं कहीं पर उन्होंने निरंजन को मस्तक और अन्य सात अंगों को मायावी अंश स्वीकार किया है :—

मस्तक आप निरंजन राया। अंग सात सोई प्रतिमाया।।

— पंचग्रन्थी, पृ० ११७५ (टीका काशी०)

'निरंजन बोध' में उसे निर्गुण बताकर उसका निवास स्थान शून्य स्वीकार किया गया है, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उसकी सेवा करते हैं, समस्त सृष्टि पर उसका ही आधिपत्य है। उसकी महिमा अखिल सृष्टिपर इस प्रकार परिव्याप्त है कि सत्पुरुष तक का स्थान लुप्त प्राय हो गया है। कालस्वरूपी निरंजन अति प्रबल एवं कठिन है, जिसके साठ मस्तक एवं मुख बहुत ही सुदृढ़ है, सत्तर योजन तक उसके विशाल दांत कटकटा रहे हैं, प्रलय आदि सब उसी के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, उसके पास एक कान ८४ नेत्र, ८ मुख हैं हाथ में पाश लिये हुए है, छत्तीस प्रकार का नाम धारण किये हुए गर्व से बातें करता है। उसके तीन दांत पीछे की ओर मुड़े हुए हैं :—उसका एक दांत पातालमें है और दूसरा पृथ्वी तक जा कर देव ऋषि एवं अनेक जीवों का भक्षण करता है। इस ग्रन्थ में निरंजन द्वारा जीवों पर डाली गई ठगोरी का बड़ा ही अच्छा वर्णन उपलब्ध होता है। उसने स्वयं इस बात का समर्थन किया है कि समस्त जीव मेरे वश में हैं और उनके लिए मेरे द्वारा तीन सौ साठ (३६०) बन्धन निर्मित किए गए हैं

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० १६

जिनसे किसी भी प्रकार मुक्ति सम्भव नहीं। पांच-पच्चीस एवं त्रिगुणों से इस शरीर की रचना होती है, तिस पर भी उसमें पाप पुण्य एवं मन का पाश एवं भ्रम अज्ञान का प्रवेश और भी विनाश मूलक परिस्थिति उत्पन्न करता है। निरंजन ने स्वत: कबीर को इस प्रकार की चुनौती दी कि तुम्हारे एक पंथ का विकास हो सका है किन्तु मेरे दश पंथ प्रचलित हैं तो किस प्रकार जीवों के माया के फांस विच्छिन्न हो सकते हैं।[१]

दरिया पंथ में कबीर पंथ की ही भांति निरंजन के विषय में विशद् चर्चा नहीं मिलती किन्तु जिन प्रसंगों का समावेश साहित्य में हुआ है उनका पूर्ण सामंजस्य कबीर पंथी साहित्य से बैठ जाता है। `ज्ञान रतन` में निरंजन के अनेक अवतारों का वर्णन आया है :—

रामहिं रूप धरी है माया। जिन लंका को राम सताया।।
दस औतार माया ने धरिया। काल अपर्बल सब को छलिया।।
— ज्ञानबोध, पृ० : २०

सोई राम है क्रिस्न कन्हाई। दस औतार धरि जग में आई।। ४६८।।
बूझहु ज्ञानी कहु बिबेखा। यह तिर्गुन माया कर लेखा।। ४६६।।
— ग्यान रतन, पृ० १५०

`भक्तिहेतु` में निरंजन का त्रिलोकों पर शासन स्वीकार किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश उसकी सेवा कर रहे हैं[२]। केवल मन रूपी निरंजन तक ही सब पहुंच पा रहे हैं। अविगत पुरुष के विषय में किसी को ज्ञान नहीं।[३] दरिया साहब ने बताया है कि निरंजन तीनों लोकों का कर्ता बन कर उनपर एक प्रकार का पर्दा डाल रखा है, उसके वेद कितेबरूपी विधाओं का प्रपंच जगत् में पूर्ण रूपेण विकसित हो चुका है, जिससे समस्त जीव भ्रम में उलझे हुए हैं।[४]

---

१. निरंजन बोध, पृ० ८
२. भक्ति हेतु, पृ० २६५
३. ब्रह्म विवेक, पृ० ३५१
४. वही, पृ० ३४८, ३४६

तीनि लोक निरंजन, डारी ठगोरी मारि ।
जो जीव आए लोक से, ताहि भरम करि डारि ।।३३ ।।
— ब्रह्म विवेक, पृ० ३६६

उपरोक्त विचारों का विश्लेषण करने पर एक प्रकार का सन्देह उत्पन्न होता है कि कबीर पंथ के पूर्ववर्तीय साहित्य में जिस निरंजन के प्रति इतनी पुनीत आस्था प्रदर्शित की गई थी, तो किन कारणों से कालान्तर में उसकी प्रतिष्ठा अपदस्थ होने लगी ।

संत-साहित्य के विद्वानों ने इस मनोरंजन घटना के मूल कारणों की छान-बीन की है । भारत के पूर्वी अंचल में निरंजन के नाम पर प्रचलित सम्प्रदाय काफी प्रभावशाली हो गये थे , जिनसे कालान्तर में कबीर पंथ को भी निबटना पड़ा था, इस संघर्ष के परिणामस्वरूप निरंजनी सम्प्रदाय में प्रचलित समस्त कर्मकांड कबीर पंथ में अन्तर्भुक्त कर लिए गए किन्तु निरंजन के सम्बन्ध में ऐसी अनेक कहा-नियां भी गढ़ी गईं, जिससे उसका महत्त्व भी कम हुआ, । यही कारण है कि कबीर पंथी साहित्य में उसे शैतान के रूप में चित्रित किया गया जो कबीर द्वारा उसको अनेक बार अपदस्थ करने की कथाएं भी जोड़ी गईं । इन कथाओं में वस्तुत: ह्रासोन्मुखी निरंजन सम्प्रदाय पर कबीर पंथ के विजय की कहानी छिपी हुई है ।

अन्य साम्य रखने वाले नाम —

कुछ ऐसे भी नाम हैं जो , कबीर पंथ एवं दरियापंथ दोनों में समान अर्थों में प्रयुक्त किये गये हैं, किन्तु उनके लिए किसी प्रकार के भ्रम करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे सत्पुरुष के लिए ही आए हैं ।

सत्तनाम—

दोनों पंथों का विश्वास है कि सन्तनाम ही जीवों को इस दुखमय संसार एवं यम यातना से मुक्त कर सकता है ।[1] कबीर पंथ में सत्तनाम को चौथा पद बताते हुए कहा गया है कि इस पद तक विरले ही पहुंच पाते हैं ।[2] दरियापंथ में

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० १३-२४
२. दरिया सागर, पृ० ५७

इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गई है कि सतनाम के बिना मानव जन्म पाशविक अवतार के सदृश है, इस नाम के आधार पर जन्म जन्म के पाप नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सतनाम सर्वश्रेष्ठ है।[१] कबीर पंथ में सतनाम की प्राप्ति सद्गुरु द्वारा बताई गई है जिससे कि इस संसार सागर का अवगाहन सम्भव है।[२] कबीर ने यह बताया है कि जगत् की यह उलटी रीति है, जो सतनाम से विमुख होकर अनेक देवताओं की उपासना की जा रही है, जिन्हें स्पष्टत: ही निरंजन का अवतार सिद्ध किया गया है। इस शब्द का प्रयोग दोनों पंथों के साधु पारस्परिक आवेदन में भी करते हैं।

सत सुकृत—

कबीर पंथी 'विवेक सागर' (पृ० २) एवं दरिया पंथी 'दरिया सागर' (पृ० ३५) में सतसुकृत का प्रयोग ईश्वर के अर्थ में किया गया है। कहीं कहीं इस शब्दका प्रयोग कबीर एवं दरिया के लिए भी हुआ है। ऐसे अत्यधिक उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[३]

सत शब्द —

इसका भी प्रयोग दोनों पंथों में समान रूप से किया गया है। कबीर ने इसे तीनों गुणों से परे बताते हुए सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है।[४] दरिया साहब ने शब्द को तीनों लोकों से परे बताया है, जो कि गुरु की कृपा से उपलब्ध होता है। शब्द का प्रयोग सत्पुरुष के लिए भी किया गया है, और कहीं कहीं इसका प्रयोग गुरु मंत्र के लिए भी किया गया है।[५] दोनों पंथों के साहित्य में इसी प्रकार के अर्थ में 'शब्द' का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। कबीर पंथी साहित्य में बताया गया है कि कबीर निरंजन से कहते हैं कि सत्पुरुष ऐसा शब्द प्रदान है, जिससे पाँच-पच्चीस एवं त्रिगुणों की महिमा समाप्तप्राय हो जाती है। टकसार शब्द जिसे प्राप्त हो गया उस पर काल का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता।

---

१. दरिया सागर, पृ० ५७

२. ज्ञान बोध, पृ० १४

३. वही, पृ० १७ स्वसम्वेद बोध, पृ० ५० (कबीर पंथ), ब्रह्मविवेक, पृ० १००-१०१

४. ज्ञान सागर, पृ० २

५. दरिया सागर, पृ० ६

सतशब्द के माध्यम से माया जाल समाप्त हो जाता है, जिसे इसमें विश्वास हो गया, उसके लिए सारी द्विधा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार जिसने इस शब्द को धारण कर लिया उस पर यम की झलक तक नहीं पड़ सकती।[१] दरिया - साहब का भी दृढ़ विश्वास है कि जिसे गुरु शब्द में विश्वास हो जाता है, वह निरमल बन कर अमरलोक का अधिकारी बन जाता है।[२]

शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में ऋग्वेद,[३] ब्रह्मसूत्र,[४] भागवत[५] एवं उपनिषद्[६] आदि में भी होतारहा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस प्रयोग के विषय में भी इनकी कोई मौलिक उद्भावना नहीं है, इन सब में शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अर्थ में हुआ है। कबीर पंथ में शब्द को 'सार शब्द' भी कहा गया है, और इसे आदिनाम, निरक्षर नाम, सारनाम आदि भी कहा गया है। और इसका प्रयोग सृष्टि विषयक प्रसंग में भी हुआ है।[७]

शब्द का प्रयोग योग विषयक प्रसंग के लिए भी दोनों पंथों में प्राप्त होता है। कबीर दास जी ने भी शब्द का प्रयोग योग विषयक प्रसंग में किया है। यथा: 'अनहद सबद होत झनकार।'[८] 'कबीर वानी', में शब्द का प्रयोग योग के लिए ही हुआ है।[९] दरिया पंथ में भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है।[१०]

दरिया पंथ में एक नये नाम की भी कल्पना की गई है वह है 'बेवहा'।

---

१. निरंजन बोध, पृ० ६-८
२. दरिया सागर, पृ० १५
३. ऋग्वेद संहिता, १।१६४।१०
४. ब्रह्मसूत्र, १।३।२८
५. भागवत ११।२१।५६
६. माण्डूक्योपनिषद् १ और कठोपनिषद, १।२।१६
७. सर्वज्ञ सागर, पृ० १३३-१३४
८. कबीर ग्रन्थावली, पृ० २६६
९. कबीर वानी, पृ० ११०
१०. दरियासागर , पृ० १७

इसका अर्थ है बेकीमत अर्थात् अमूल्य । इस नाम के प्रति दरिया साहब ने अटूट श्रद्धा अर्पित की है ।[१] दरिया-पंथ में यह शब्द अति प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुआ है, यह फारसी का शब्द है जो कि `सत्पुरुष` का समवार्थक है । अन्य और भी नाम हैं जिनका प्रयोग कबीर-पंथ में विशेष हुआ है, परन्तु दरिया-पंथ में उतना अधिक आदर न मिल सका । यथा : ओंकार, शून्य, सहज एवं असम आदि ।

महिमा—

दोनों पंथ में सत्पुरुष की अनन्त महिमा स्वीकार की गई है यद्यपि अनादि काल से ही ईश्वर की महिमा वर्णनातीत ही रही है, और सम्प्रति उक्त कार्य के लिए जितने भी प्रयास किये गये हैं, वे उस परम विधायक की महिमा का वर्णन प्रस्तुत करने में नगण्य ही सिद्ध हुए । सत्पुरुष ही संसार के घट घट में विद्यमान है । जैसा कि इनके साहित्य से भी प्रकट होता है :—

एक पुरुष है अगम अपारा । सब घट व्यापक सबसे न्यारा ।।
— स्वसमवेद बोध, पृ० ७७

आदि अंत सत्पुर्ख अमाना । ब्रह्म एक है सम घट जाना ।। ६१ ।।
— दरिया सागर, पृ० १०

परम तत्व ही सृष्टि के कण कण में समाहित है , केवल भ्रम का आवरण ही पार्थक्य उत्पन्न करता है, जिसके परिणाम स्वरूप जगत् को मिथ्यानुभूति हो रही है, और सब भटक रहे हैं । इस भ्रम का निवारण तभी सम्भव है जब कि आत्मज्ञान हो, ऐसी अवस्था में ही सत्य के समीप हम पहुंच सकते हैं, और समस्त जगजंजाल से मुक्ति सम्भव है ।[१] कबीर-पंथी साहित्य में इस प्रकार का वर्णन आया है कि कबीर उस ईश्वर को निर्गुण बताते हुए कहते हैं कि उसके विषय में वेद शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा भी पार न पा सके । सुर, नर, ऋषि, मुनि, सुरपति, शेष, शारद, नारद, आदि भी उसकी महिमा का वर्णन करने में अशक्त सिद्ध हुए ।

---

१. जीवधर्म बोध, पृ० ३०—३१ (कबीर-पंथ) एवं ब्रह्म विवेक, पृ० ३३०-३३१

वही ईश्वर तक पहुंच सकता है जो कि अपने को सद्गुरु की शरण में अर्पित कर दे ।[१] इसी प्रकार का वर्णन हमें दरिया-पंथ में मिलता है कि करोड़ों ब्रह्मा, इन्द्र, कृष्ण एवं शिव जन्म लेकर काल के गाल में चले गये परन्तु ईश्वर की अनन्त महिमा से अज्ञान सिद्ध हुए ।[२]

कोटिन ब्रह्मा गय सिराई । अविगत की गति काहु न पायी ।।
कोटिन ब्रह्मा पृथ्वी बिलाने । अविगत की गति काहु न जाने ।।
कोटिन विष्णु गये सिरायी । फिरि फिरि के पृथ्वीहु बिलायी ।।
कोटिन रुद्र देह धरि लीन्हा । अस्थिर होय जगत् सो कीन्हा ।।
कोटिन इन्द्र अवतार जो लीन्हा । अविगत पुरुष काहु नहिं चीन्हा ।।
गण गंधर्व नर कौन चलावैं । सनक सनन्दन पार न पावैं ।।
शेष नाग बहु भांति भुलाने । आदि पुरुष की खबरि न जाने ।।

—गरुड़ बोध, पृ० ७५

कोटिन्हि ब्रह्मा गए भुलाई । कोटिन्हि इन्द्र मेघ चलि जाई ।। ७७८।।
केते क्रिस्न जगत भरमाई । गोप सखा संग गाय चराई ।।७७९।।
केते ब्रह्मा जाहिं नसाई । इन्द्र केते को बिनसहिं आई ।।७८७।।
जहहिं सेस सहस्र मुख बचना । तीन लोक की इहे रचना ।। ७८८।।
चलिहैं संकर जोग बिसारी । चलिहैं क्रिस्न बाल मुरारी ।।७८९।।
जइहैं जोगी जति सम कोई । तीनि लोक काल बसि होई ।।७९०।।
ढूंढ़त सुरनर मुनि सभ हारे । आदि अंत नहिं कहे बेचारे ।।७९१।।

—दरिया सागर, पृ० ७८-७९

कबीर-पंथी साहित्य में समस्त सुर मुनि को हेय सिद्ध किया गया है और सत्पुरुष को सर्वश्रेष्ठ ।[३] इसी प्रकार दरियापंथी साहित्य में उसे ध्रुवतारा

---

१. बीरसिंह बोध, पृ० १२
२. दरिया सागर, पृ० ७७-७८
३. गरुड़ बोध, पृ० ८६

के सदृश निर्मल स्वीकार किया गया है।[1] दोनों पंथों ने सत्पुरुष को मूल स्वीकार करते हुए जिन त्रिदेवों की भक्ति में सम्पूर्ण जगत् उलझा हुआ है उन्हें सत्पुरुष की शाख एवं पत्र के सदृश निःसार बताया गया है :—

आदि पुरुष एक वृक्ष है, निरंजन डारा हो।
तिरदेवा शाखा भये, पत्र संसारा हो ।। ११४ ।।

—मूल बीजक,पृ०२२८–२२६

मूल वृक्ष वह पुरुष बखानी। शाखा तासु निरंजन जानी ।।
डाली ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। पत्र तासु संसार नरेश्वर ।।

—ज्ञानस्थिति बोध, पृ० ६१

पुरुष पुरान अहै सम तूला। छोड़ अनन्त एक गहु मूला।

—अमर सार, पृ० ११(पाण्डुलिपि)

ताके खोजहु ग्यानी, जो सभ के हहि मूल।
डार पात सब छोड़िके, गहो पेड़ असथूल ।।२७ ।।

—भक्ति हेतु, पृ० ३१४

---

१. ज्ञान सरोदै, पृ० २५७

(ख) जीव

समस्त प्राणियों में जीव तत्व समान रूप से विद्यमान है। इसीलिए इन्हें चेतन प्राणी स्वीकार किया गया। चेतन जगत् में एक ऐसा विशिष्ट तत्व है, जिससे वह उत्कृष्ट स्वीकार किया गया,; वह है ज्ञान। इस प्रकार जीव एवं ज्ञान प्राणि-मात्र के लिए अनिवार्य हैं। व्यवहारिक जीवन में जैसा कि हम देखते हैं प्रत्येक जीव कुछ न कुछ व्यापार करते रहते हैं, यहाँ तक किये कार्य क्रमिक रूप से जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त संचालित रहते हैं। इन समस्त कार्य व्यापारों का सीधा लगाव आत्मा से ही होता है,क्योंकि आत्मा की तृप्ति कभी नहीं होती, इसीलिए आत्मशांति के लिए ये समस्त क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। इसी हेतु याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यक उपनिषद में मैत्रेयी से कहा कि इस जगत् के समस्त कार्यव्यापारों का लक्ष्य आत्म तुष्टि ही है।

प्रश्न उठता है। कि जगत् के समस्त कार्यों का संचालन किस प्रकार सम्भव है? इतना तो सहज ढंग से मान्य हो सकता है कि चाहे जिस प्रकृति के कार्य हों, उनका सम्पादन या तो कर्मेन्द्रियों द्वारा सम्भव है या फिर ज्ञानेन्द्रियों द्वारा। परन्तु कर्मों का विधायक एवं नियामक कौन है? यह प्रश्न कुछ टेढ़ा है। इन्द्रियों में मन को श्रेष्ठ बताया गया है। मन किसी कार्य के विषय में चिंतन करता है एवं बुद्धि निश्चय करती है, किन्तु इतने से ही तो काम चल नहीं सकता क्योंकि भिन्न भिन्न परिस्थितियों में समस्त इन्द्रियों को एकाग्र कर पृथक् पृथक् व्यापार के लिए इनका एकत्र ज्ञान होने की नितान्त आवश्यकता है। मूलभूत समस्या यह है कि इस प्रकार के कार्य का सम्पादन किसके हाथ में है? कौन सी शक्ति जीवों को कर्म में नियोजित करती है? यदि इन समस्त कार्यों का दायित्व इस जड़ शरीर पर सौंप दें तो सम्भवत: समीचीन न होगा क्योंकि प्रत्येक जीव के लिए एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है, कि उसकी समस्त चेतना, सब

हलचल एवं कार्य व्यापार की समस्त क्षमता एक दिन समाप्त हो जाती है। केवल इस जड़ शरीर के घटावयव अंश ही शेष रह जाते हैं, तो इस प्रकार का विवेक पूर्ण कार्य इस जड़ शरीर का परिणाम मानना क्या उचित है ? जो चेतना शक्ति शरीर में विद्यमान है उसे समस्त कार्यों का हेतु बताया जाय तो आपत्ति उपस्थित होगी, क्योंकि जब हम प्रगाढ़ निद्रा में सोते हैं तो प्राणादि वायु के श्वासोच्छ्वास प्रभृति व्यापार, रक्त संचार एवं अन्य ज्ञान शक्तियों के विद्यमान रहते हुए भी `मै` का भास नहीं रह जाता (वृहदारण्यक २।१।१५-१८)। इस प्रकार निर्णय ले सकते हैं कि शारीरिक समस्त क्रियायें एक मात्र इस शरीर से उत्पन्न होने वाले एक विशिष्ट गुण रूप में हैं। वह समस्त इन्द्रियों का नियामक नहीं है (कठ० ५,५) में, `तुम` के भास से केवल अहंजन्य परिस्थितियों तक का ही बोध होता है, अर्थात् इन सब का ज्ञान जिन ज्ञानेन्द्रियों से होता है तथा समस्त कर्मों की पूर्ति जिन कर्मेन्द्रियों द्वारा होती है, उन सब का नियामक, ज्ञाता एवं स्वामी कौन है ? इसी प्रश्न को हल करने के लिए आत्म तत्व या जीव तत्व की कल्पना की गई है। यही सब का स्वामी एवं ज्ञाता है, इस लिए उसको होने वाले ज्ञान का यदि वह स्वयं विषय न हो तो कोई आश्चर्य जनक घटना नहीं। इसी अर्थ में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि `अरे ! जो व्यक्ति सब बातों का ज्ञानी है उसका भी ज्ञाता कहां से आता है ?` (विज्ञातारमरे केन विजानीयात्) ((वृह० २,४,१४)। अंत में हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि इस चेतन एवं विशिष्ट शरीर में एक ऐसी शक्ति विद्यमान है जो कि घटावयवों से अपनी कुछ भिन्न स्थिति रखता है और इसी के द्वारा समस्त कार्य व्यापारों का नियमन भी होता है। इस प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार और चेतना समस्त अदैहिक हैं और इन सब का संचालन जिस विशिष्ट एवं उत्कृष्ट शक्ति द्वारा होता है वह इन सबसे स्वतंत्र एवं परे है। इस बात का `गीता भी समर्थन करती है।[१] 'सांख्यशास्त्र' में इसी का नाम पुरुष है एवं 'वेदान्त' में इसी को आत्मा कहा गया है। `मैं` की प्रतीति ही आत्मा का सर्वोपरि प्रमाण स्वीकार किया जा सकता है (वेदांत सूत्र, शा०भा०, ३।३।५३-५४)। इस प्रकार स्थूल शरीर स्वतः प्रकाशित नहीं, दूसरों के आश्रित है और इनकी आड़ में निवसित आत्मा ही उनका

---

१. गीता ३।४२ इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।४२।।

दृष्टा, भोक्ता, और अभिव्यंजक परमतत्व है। यह सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ है और अहंकार, बुद्धि, मन, इन्द्रियां एवं शरीर सब इसी के आश्रित हैं और सब इसी से शासित भी।

सृष्टि विषयक प्रसंग में जिस तत्व को `ब्रह्म` कह कर पुकारा गया है, उसे ही मनोविज्ञान में `आत्मा` की संज्ञा दी गई, उपनिषदों के आधार पर उक्त विषय के लिए दो सिद्धान्त निरूपित किये हैं :—

(१) विश्व ब्रह्म है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)

— छान्दोग्य, ३।१४।१।

(२) आत्मा ब्रह्म है (अयमात्मा ब्रह्म)

— बृहदारण्यक २।५,१६७,१।४।१०

उपनिषदों में जहां जहां ऐसे वाक्य मिलते हैं जिनमें कि परमात्मा के लिए `नेत्र में के पुरुष` (अक्षिणि पुरुष:) जैसा सूक्ष्म रूप प्रदान किया गया है[1]। इसका अर्थ नेत्र गोलक के सम्मुख उपस्थित व्यक्ति के प्रतिबिम्ब से ग्रहण किया गया है। इस मत की ऐतिहासिक महत्ता अधिक है, क्योंकि निर्गुणी संतों की साधना में प्रतिपादित विहंगम योग की कल्पना सम्भवत: इसी का परिणाम है और इसीलिए सत्पुरुष को आंखों के द्विदल कमल (आज्ञा चक्र) में स्थित माना गया। `श्वेताश्वतरोपनिषद्` में आत्मा एवं परमात्मा के लिए कितनी ही मनमोहक उक्तियां प्रस्तुत की गई हैं।

दो पक्षी अति सख्य भाव से एक विटप थे बसते।
रहता एक फलों को चखता अन्य विना खाये हंसते।।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् — ४।६

उपनिषद काल से लेकर रहस्यवाद का जो क्रम चला आ रहा है, उन सब का प्रभाव कबीर एवं दरिया आदि समस्त संत मतानुयायियों आदि पर अवश्य ही पड़ा। बहुत कुछ सम्भावना है कि इन सबके प्रभाव से वे वंचित न रह सके, और इसी विचारधारा को इन कवियों ने भी अपनाया। प्राचीन काल से लेकर जीवतत्व पर अत्यधिक विचार विमर्श किया गया है, परन्तु अभी तक कोई सुनिश्चित धारणा निरूपित न हो सकी। सर्व सम्मति से आत्मतत्व एवं परमात्मा की एकता पर

---

१. छान्दोग्य०, ८।७।४

बल दिया गया है ।

'सांख्य' मतानुसार यदि हम चल अचल सृष्टि के संहार के अनन्तर पुन: सृष्टि के विकास के विषय में अध्ययन करें तो पता चलता है कि अन्त में प्रकृति एवं पुरुष ही अनादिमूल तत्व के रूप में अवशिष्ट रह जाते हैं। पुरुष को समस्त मायावी जंजालों से मुक्ति पाकर मोक्षानन्द के लिए प्रकृति से अपना पार्थक्य अथवा मोक्ष ज्ञान प्राप्त कर त्रिगुणातीत होना चाहिए । प्रकृति और पुरुष के द्वारा ही समस्त सृष्टि का प्रवर्तन प्रारम्भ होता है । पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड के मूल में कौन सा श्रेष्ठ तत्व है ? यही वेदान्त का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। मानव शक्ति किस प्रकार उस उत्कृष्ट एवं सर्वश्रेष्ठ तत्व में तदाकार होती है ? सांख्य दर्शन के अध्ययन से हमें निर्णय लेना होगा कि प्रकृति एवं पुरुष दोनों एक दूसरे से पृथक् स्थित में रहते हैं, क्योंकि एक जड़ है एवं दूसरा चेतन । समस्त सृष्टि को जिस रूप में प्रत्यक्ष देखा जाता है, क्या वही रूप सत्य है या उसका कुछ भिन्न अस्तित्व भी है। सांख्यदर्शन इन प्रश्नों का यथोचित उत्तर न प्रस्तुत कर सका । अंत में यह स्वीकार कर सकते हैं कि दोनों तत्व मूल रूप में स्वतन्त्र एवं पृथक् हैं, किन्तु यह मत आधिभौतिक शास्त्रवेत्ताओं की धारणा से समीचीन नहीं । इसका कारण यह है कि प्रकृति के अन्य पदार्थों को हम जिस प्रकार देख सकते हैं अथवा उसके गुणधर्मों के सम्बन्ध में ऊहापोह कर सकते हैं इस प्रकार द्रष्टा पुरुष जिसे 'वेदान्त' में आत्मा बताया गया है, अपनी इन्द्रियों से कभी भी गोचर नहीं हो पाता । इस प्रकार जिसे हम नहीं देख सकते अर्थात् जो इन्द्रियातीत है, उसकी परीक्षा फिर मानव इन्द्रियों द्वारा किस प्रकार शक्य है ? इसके लिए गीता में कुछ पग लिये गये हैं।[१] अखिल सृष्टि की मूल प्रकृति से भी पृथक जो तत्व है वह इस प्रकार अचिंत्य है :—

> अचिन्त्या: खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत ।
> प्रकृतिभ्य: परं यत्तु तदचिंत्यस्य लक्षणम् ।।
>
> —भीष्म, ५०५।१२

---

[१]. गीता २।२३

(नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:)
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत: ।।

अर्थात् जिसे हम प्रत्यक्ष देखने में पूर्ण असमर्थ हैं, उसका चिंतन भी असम्भव है, किन्तु उसका निर्णय तर्क पर नहीं करना चाहिए । सम्पूर्ण जगत् अर्थात् प्रकृति से भी जो मूलवस्तु परे है वह अचिन्त्य है । `मुण्डकोपनिषद्` एवं `कठोपनिषद्` में भी यह धारणा व्यक्त की गई है कि आत्मज्ञानकी प्राप्ति तर्क के बल पर असम्भव है । आध्यात्मिक क्षेत्र में ज्ञान प्राप्ति के लिए उपनिषदों का बहुत बड़ा सहयोग रहा है । `महाभारत` में भृगु ऋषि ने भरद्वाज से परमात्मा के विषय में संकेत किया है कि :—

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्त: संयुक्त: प्राकृतैर्गुणै : ।
तैरेव तु विनिर्मुक्त: परमात्मेत्युदाहृत: ।।

—म०भा०शा० १८७।२४

अर्थात् जब आत्मा प्रकृति में या शरीर में लिप्त रहती है तब उसे `जीवात्मा` कहते हैं और वही प्राकृत गुणों से अर्थात् शरीरिगुणों से मुक्त होने पर `परमात्मा` कहलाता है । इस प्रकार की उक्ति से ईश्वर के दो स्वरूप हमारे समक्ष निरूपित होते हैं किन्तु तात्त्विक दृष्टि से वे अभिन्न हैं । जीव एवं आत्मा के लिए क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ एवं क्षर तथा अक्षर नामों की भी कल्पना की गई है । `सांख्य शास्त्र` में अव्यक्त प्रकृति एवं पुरुष के लिए भी परमात्मा का अस्तित्व बताये जाने का प्रयास किया गया है, परन्तु इस प्रकार के दो रूप प्रदान करने के लिए उनके पास कोई युक्तिपूर्ण एवं सबल आधार नहीं हैं । 'श्रीमद्भगवत गीता ` में श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन से इस बात का समर्थन किया है कि ` मम योनि-र्महद्ब्रह्म` यह प्रकृति मेरी योनि या मेरा एक स्वरूप है ।[१] और जीव या आत्मा भी मेरा ही अंश है ।[२] ` सांख्य` एवं ` वेदान्त ` का अध्ययन करने पर दोनों में पृथकता की अनुभूति होती है क्योंकि'सांख्य'की द्वैत कल्पना अर्थात् जीव एवं आत्मा के परे'वेदान्त'ने एक तीसरे पुरुष की भी कल्पना की, जो जड़ जगत् में परमेश्वर रूपी एक तृतीय नित्य तत्व है और प्रकृति एवं पुरुष दोनों उसकी

---

१. गीता १४।३
२. गीता, १५।७

विभूतियाँ हैं। परन्तु हमें उनके पार्थक्य पर विशेष ध्यान नहीं देना है। अब जहाँ तक कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ द्वारा कल्पित किये गये जीव तत्व के विषय का प्रश्न है, इनकी धारणा पर मूल रूप से उपनिषदों एवं इन्हीं दर्शनों का स्पष्टत: प्रभाव देखा जा सकता है। यद्यपि इन पंथों में भी एक ऐसे अव्यक्त पुरुष की कल्पना की गई है जो कि सगुण एवं निर्गुण के भी परे घोषित किया गया है, परन्तु इस प्रकार की धारणा के समक्ष उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भक्ति सिद्धान्तों की गहनता काम करती हुई देखी जाती है।

आत्मतत्व एवं परमात्म तत्व की एकता —

कबीर-पंथ एवं दरियापंथ में जीव एवं ब्रह्म में तात्त्विक दृष्टि से पूर्ण अभिन्नता स्वीकार की गई है, इनके पूर्व ही से यह परम्परा चली आती हुई ज्ञात होती है, क्योंकि इन संतों के अतिरिक्त शास्त्रों एवं अन्य महात्माओं ने जीवों को ईश्वर का सनातन अंश स्वीकार किया है :—

'ममैवांशो जीव लोके जीव भूत: सनातन: ।'

— गीता १५।७

इसी प्रकार कबीर-पंथी रचनाओं में भी जीव को ईश्वर का अंश स्वीकार किया गया है :—

जीवरा अंश पुरुष का आहीं । आदि अन्त कोउ जानत नाहीं ।।

—अनुराग सागर, पृ० १४

आदि ब्रह्म ज्यों जल हैं भाई, जीव तरंग समान ।
मदन विषै वैपारि जब मिटिगै, थोरे माँहि थिरान ।।

—शब्द विलास, पृ० ७५

सकल जीव हैं साहिब केरा । मोह विवश बिसरे अँधेरा ।।

—अनुराग सागर, पृ० ८५

'सत्य दर्शन' में भी जीव को ईश्वर का अंश सिद्ध किया गया है :—

'जीव को कर्ता कहें सब कोई या तो अंश कहाई हो ।
अंशहि ते जे मिले सतपुरुष से, तब नहिं खोज चलाई हो ।।'

—सत्यदर्शन, पृ० १०

जीववादी विचारधारा के अनुयायी संत पूरण साहब ने जीव को ही सब कुछ बताया है, क्योंकि जीववादी संत जीव को छोड़कर ईश्वरादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते । उनका कथन है कि :—

'जानहि मात्र जीव है सोई । जानते अधिक और नहिं कोई ।।४२।।

—निर्णयसार ।

सद्गुरु श्री पूरण साहब कहते हैं कि, स्वयं ज्ञान मात्र केवल ज्ञान स्वरूप ही चेतन जीव हैं, तिनसे श्रेष्ठ जगत में और कोई पदार्थ नहीं है ।

कबीर-पंथ के अनुरूप ही दरियापंथ में भी जीव को ईश्वर का अंश स्वीकार किया गया है ।—

सभे जीव साहब कर अहई । बूझि बिचारि ग्यान एह कहई ।।

—दरिया सागर, पृ० ६१

उपर्युक्त विवरणों से निर्णय लेने पर पता चलता है कि समस्त जीव को परमात्मा का चैतन्य प्रकाश रूप अंश स्वीकार किया गया है । क्योंकि प्रकाश प्रकाशक से निकलने के कारण प्रकाश अंश और प्रकाशक अंशी कहा जाता है, एवं जैसे गुण गुणी का प्रकाश, ज्ञान ज्ञाता का प्रकाश, पारख पारखी का प्रकाश तथा सुरति आत्मा का प्रकाश, मन सुरति का प्रकाश रूप अंश हैं । आत्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध प्रकाश-प्रकाशक , पिता-पुत्र, गुण-गुणी , अंश एवं अंशी का सम्बन्ध है । किन्तु ईश्वर का अंश होते हुए भी जीव अपने स्वरूप तथा परमेश्वर तक को भूल चुका है, इसका कारण यह है कि मोह अंधकार में फंसने के कारण वह अज्ञानी बन गया है ।

संत कबीर ने आत्मतत्त्व एवं परमात्म तत्त्व को दर्पण के प्रतिबिम्ब एवं सत्यस्वरूप की तरह अभिन्न बताया है ।[१] कबीर-पंथ की मान्यता के अनुसार आत्मा को ही परमात्मा स्वीकार किया गया और परमात्मा की एक पंछी का रूपक देकर आत्मा को उसका प्रतिबिम्ब बताया गया ।[२] 'अमर मूल' के कवि ने आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध सूर्य एवं उसके प्रतिबिम्ब से जोड़ा है और उनके

---

१. बीजक शब्द, पृ० १२५

२. जीवधर्म बोध, पृ० ७८, आगम बोध, पृ० २३

अभिनत्व को स्पष्ट करने के लिए नदी लहर, कंचन-आभूषण और सूर्य-प्रकाश का रूपक दिया है।[1] इस प्रकार के वर्णनों को देखकर पाठकों के मन में एक शंका उठ सकती है कि इनके अभिन्नत्व में भिन्नत्व की प्रतीति किस प्रकार सम्भव है ? अखिल दृष्टि में अंतर एक मात्र रूप या आकार का होता है, क्योंकि जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो सर्वप्रथम उसका स्वरूप ही हमारे सम्मुख आता है। कुम्भकार बर्तनों को गीली मिट्टी से बनाता है, किन्तु क्या मिट्टी के तात्विक गुणों के विषय में कभी द्रष्टाका ध्यान जाता है ? उसकी दृष्टि केवल उन पात्रों तक ही सीमित रह जाती है, किन्तु यदि मिट्टी का गहन अध्ययन करें तो निश्चय ही पता चलेगा कि उसमें चिकनाहट, द्रवपदार्थ एवं गंदले पन आदि का संयोग है और इन्हीं से बर्तनों की रचना होती है।[2] बहुत कुछ यही सम्भावना जीव के लिए भी है कि इसी प्रकार का सम्बन्ध परमात्मा से हो। जब हम किसी पदार्थ के तात्विक गुणों का संस्कार मन में स्थिर कर लेते हैं तब उसके तथ्य एवं उसके विभिन्न नामों का रहस्य भली भाँति समझ में आ जाता है। कबीर-पंथ में विभिन्न नामों -रूपों के लिए जिन उपमाओं का प्रयोग हुआ है, उनका मूल स्रोत 'छान्दोग्य' (३ और ४) एवं वृहदारण्यक (४।७) में प्राप्त होता है जिनमें परमात्म तत्व एवं आत्म तत्व को समुद्र एवं उसकी तरंग तथा कंचन एवं आभूषण स्वीकार किया गया है। कंचन तो मूलत: एक है किन्तु भिन्न भिन्न परिस्थितियों में हम उसे कड़ा, अँगूठी, पंचलड़ी, पहुँची, कंगन आदि रूप में देखते हैं, इस प्रकार की भिन्नता को उपनिषदों ने नाम रूप की संज्ञा से अभिहित किया है। इसी प्रकार अखिल विश्व के आधारभूत अव्यक्त तत्व के सम्बन्ध की कल्पना करते हैं कि वह सत् और वही सर्वथा सब के मूल में निवास करता है, जो पक्षी का रूपक पहले कबीर-पंथी रचना में आया है, उस पर भी स्पष्टत: उपनिषदों का ही प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है।[3]

कबीर-पंथ के सदृश दरिया-पंथ में भी आत्म तत्व एवं परमात्म तत्व के एकत्व पर बल दिया गया है साथ ही दरिया साहब ने स्पष्टत: स्वीकार किया

---

१. अमर मूल, पृ० २००, २६४

२. आत्मबोध, पृ० २१

३. श्वेताश्वर, उ० ४।६

है कि आत्मतत्व की परख करने से जीव ब्रह्म मय होजाता है।[१] उन्होंने कायों के अन्दर ही परमात्मा का निवास बताया है।[२] दरिया साहब ने सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार किया है।[३] आत्मा को उन्होंने एक स्वतंत्र पंछी स्वीकार किया है, जो कि अपने वास्तविक घर से बिछुड़कर भटक रहा है।[४]

दोनों पंथों में यह धारणा प्रकट की गई है कि परमात्म तत्व जब शरीरी बन्धनों में बंधा रहता है तब मायाच्छादन के कारण उसकी उपाधि जीव की होती है और इनके पाश या आवरण से मुक्त हो जाने पर उसकी संज्ञा ब्रह्म की हो जाती है। कबीर पंथी रचनाओं में इस प्रकार का वर्णन आया है कि ब्रह्म उसी प्रकार सबमें समाहित है जिस प्रकार आकाश में सूर्य जीवकायिक बंधनों में बंधने के कारण ही माया मय अनंत कर्मों के जंजाल में सर्वदा लीन रहता है पर यदि वह मायातीत हो जाय तो स्वयं ही ब्रह्म हो जायगा।[५] कबीर दास जी स्वयं इसी बात के समर्थक थे कि कर्म के बन्धन में पड़ने के कारण ही जीव की उपाधि मिलती है अन्यथा आत्म तत्व एवं परमात्म तत्व में यत्किंचित भी अंतर नहीं।[६] इसी प्रकार के विचार, 'जीवधर्म बोध' (पृ० ७६-८०) एवं 'ज्ञान प्रकाश' (पृ० ३२) में भी द्रष्टव्य है।

दरिया पंथ में भी यही मान्यता स्वीकार की गई है कि माया का आवरण ही ईश्वर एवं जीव के वैभिन्य का मूल कारण है। दरिया साहब ने माया

---

१. दरिया सागर, पृ० ३७
२. वही, पृ० ८६
३. वही, पृ० ६०
४. ज्ञान सरोदै, पृ० ७८
५. उग्रगीता, पृ० ४२-४३
६. बीजक साखी, २६

से आवृत्त जीव को लता-वेलि से आवृत्त वृक्ष के सदृश बताया है।[१] कबीर पंथ में की गई कल्पना के अनुरूप ही दरिया साहब ने भी विचार व्यक्त किया है कि आत्मा माया निर्मित इस पार्थिव शरीर में प्रवेश कर जीव की उपाधि धारण करता है, और जब वह इनके पाश से स्वच्छन्द हो जाता है तो वह स्वत: ब्रह्म हो जाता है। वह शरीर में इस प्रकार अवस्थित है जिस प्रकार अंगूठी में स्वर्ण ।

जीव ब्रह्म कहं देखु, बीच माया मद सनी ।
यह वह एकै लेखु, कनक बीज ज्यों कनी ।।

—अमरसार, पृ० २३ (पाण्डुलिपि)

भारतीय अध्यात्म साहित्य में प्राय: आत्मा एवं परमात्मा के अभिन्नत्व पर मतैक्य दृष्टिगोचर होता है। यही कारण रहा है कि सुदूर काल से चली आती हुई परम्परा के प्रति दोनों पंथों ने किसी प्रकार उपेक्षा न प्रकट की ।

स्वरूप—

संत कबीर ने आत्म तत्व के विषय में कहा है कि आत्मान तो मनुष्य है, न देव है, न यती है, न योगी है और न अवधूत है। इससे न तो कोई उत्पन्न होता है, न तो इसे ही कोई पैदा करता है। यह सर्वातीत है, यह न तो गृही है, न उदासी है, न नरेश है और न तो रंक ही है।[२] यह आत्म तत्व न केवल मानव शरीर में प्रत्युत समस्त संसार में परिव्याप्त है। न यह बालक है न बूढ़ा, न वह भेजने से कहीं जाता है, न आज्ञा देने से कहीं आता ही। वह सहज रूप में सारी दुनिया में व्याप्त है :—

मैं सबहिन्ह महिं औरनि (न ?) में हूं सब
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो ।।
नां हम बार बूढ़ नांहीं हम नां हमरै चिलकाई हो ।
पठएं न जाउं अढवा नहिं आउं सहजि रहूं दुनियाई हो ।।

—क० ग्र०, परिशिष्ट, पद ५३

---

१. अमर सार, पृ० २० (पाण्डुलिपि)

२. कबीर ग्रन्थावली, (सभा संस्करण), पृ० ३०१

संत कबीर द्वारा वर्णित आत्म स्वरूप 'उपनिषद' एवं 'गीता' से भी तुलनीय है :-

> न जायते म्रियते वा कदाचिन्नयं भूत्वा भविता वान भूय: ।
> अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।
>
> —गीता (२।२०)

अर्थात् वह न तो जन्म लेता है न मृत्यु को प्राप्त होता है। ऐसा भी नहीं कि वह कभी था नहीं, है नहीं अथवा होगा नहीं। वह अजन्मा, नित्य शाश्वत एवं सनातन है। शरीर का हनन होने पर भी वह अमर ही रहता है। कबीर पंथी साहित्य में भी आत्मतत्व के विषय में ऐसी ही विचित्र कल्पना देखने को उपलब्ध होती है कि आत्मा ही सर्वज्ञ, अल्पज्ञ, नरेश, रंक, गृही, उदासी, पुरुष, ब्रह्म एवं सब कुछ है। वही योग साधना करता है, उसी के द्वारा समस्त कर्मजाल प्रसारित होते हैं। वह योनि संकट से मुक्त है, न तो उसका कोई कर्ता ही है।[१]

कबीर पंथ के अनुरूप ही दरियापंथी साहित्य में आत्मा को अजर अमर एवं शाश्वत गुणों से युक्त बताया गया है।[२]

<u>आत्मा की एकता</u> —

संत कबीर ने जन मानस के समक्ष जिस समन्वय वादी एवं एकेश्वरवादी विचार धारा का आलोक प्रदान करना चाहा था, उसका मूलाधार आत्म तत्व की अभिन्नता को ही स्वीकार कर सकते हैं, जिसके द्वारा केवल मानव प्राणी के प्रति ही नहीं प्रत्युत समस्त चेतन जगत् के प्रति समभाव एवं दया भाव की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। संत कबीर ने अपनी साधना एवं तपश्चर्या के बल पर अखिल मानव जगत् में एक पूत संदेश देना चाहा था कि समस्त जीवों में एक ही आत्मा का वास है और सब एक ही परमपिता की संतान है, इसीलिए किसी में भी भिन्नत्व

---

१. जीवधर्म बोध, पृ० ७८

२. ज्ञानसरोदे, पृ० २६६

की कल्पना नहीं करनी चाहिए । इन्हीं भावनाओं की उत्कृष्टता का उत्तुंग श्रृंग तब दीख पड़ता है जबकि वे अहिंसावादी विचारधारा रूपी मंदाकिनी का जन-मानस से संगम कराना चाहते हैं यही कारण है कि उन्होंने अखिल जगत् के लिए एकत्व पर बल देते हुए कहा है :—

एकहि ते अनन्त अनन्त, अंत एक ह्वै आया ।
परिचय माया जु एक ते, एकहि माह समाया ।। १३२ ।।
—बीजक साखी, पृ० १३२

संत कबीर की इस उत्कृष्ट कल्पना ने कबीर-पंथ में पूर्ण रूपेण सम्मान प्राप्त किया, इतना ही नहीं सर्वसमन्वय एवं एकता का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया वह किसी भी संत साधना की मूल चेतना बनने में सक्षम सिद्ध होगा । परम तत्व की एकता एवं सर्वव्यापकता के समर्थन में जीव धर्म बोध में वर्णन आया है कि :—

आतम तो निरलेप, एक सम सब में सरसे ।
—जीवधर्म बोध, पृ० ३७

इसी मूल चेतना के आधार पर विश्व बन्धुत्व का उपदेश प्रदान किया गया जिसके परिणामस्वरूप प्राणी समस्त जीवों को अपने सदृश ही स्वीकार कर व्यवहार करना चाहेगा । कबीर-पंथ में यह धारणा बहुत ही प्रबल दीख पड़ती है । मानव समाज में प्रचलित वर्णाश्रम धर्म एवं वर्ण वैभिन्य को तो आमूल नष्ट करने का प्रयास किया ही गया साथ ही कीट पतंग एवं छोटे से छोटे जीव के प्रति भी समत्व की कल्पना करके दया भाव प्रदर्शन अपेक्षित बताया गया, साथ ही इन्हीं उत्कृष्ट विचारों के आधार पर अहिंसा वाद का विशाल भवन खड़ा किया गया ।

दरियापंथ में भी कबीर-पंथ की भांति आत्मतत्व की एकता पर बल दिया गया है । दरिया साहब ने घट घट में एक ही आत्मा का निवास बताया है ।[1] उन्होंने सबमें ब्रह्मैक्य के स्पष्टीकरण करने के लिए धेनु का रूपक लेकर यह बतलाया है कि जिस प्रकार अनेक वर्णों वाली गायों में दुग्ध का एक ही रंग

---

१. दरिया सागर, पृ० ५४

होता है ठीक उसी प्रकार से जगत् के नाना उपादानों में एक ही ब्रह्म का निवास है :—

एक ब्रह्म सकल घट बासी । बेद किताबै दुनों परगासी ।। ३१७।।
धेनु अनेक बरन जिवजानी । छीर सेत एक रंग बखानी ।।३१८।।
जो कोइ सुनै ऊंच भो करई । ब्रिच्छ एक सभ मेवा फरई ।। ३१९ ।।
—ग्यान सरोदै, पृ० २७२

इसी प्रकार की एकता ' भक्तिहेतु ' (पृ० २९८—२९९) में भी मिलती है दरिया साहब की ब्रह्मैक्य की भावना का चरम विकास हमें तब दीख पड़ता है जब वे कीट पतंग तक में एक ही ईश्वर का निवास सिद्ध करते हैं :—

जिया जन्तु एक जिव जाना । एकै ब्रह्म समन्हि पह्चाना ।।२१४।।
— दरिया सागर, पृ० २१

इस प्रकार कबीर पंथ एवं दरियापंथ दोनों में जीवों की एकता पर समान रूप से बल दिया गया है ।

आत्मा एवं परमात्मा अभिन्न रूप से आदि अंत तक एक से ही बने रहते हैं । चूंकि आत्मा एवं परमात्मा के अतिरिक्त तीसरी वस्तु रह ही नहीं जाती इसलिए प्रश्न उठता है कि ब्रह्म आत्मा के आकार का है या इससे भिन्न स्वरूप को ? इस परिस्थिति में यदि हम इन्हें पृथक स्वीकार करें तो निश्चय ही दोनों के कार्यों में भी भिन्नता होगी , जिस प्रकार दो वृक्षों के फल फूलादि में तात्त्विक दृष्टि से समता है ठीक उसी प्रकार आत्मा एवं परमात्मा भी एक स्वरूप हैं, क्योंकि यह स्वयं सिद्ध बात है कि इस काया के अन्दर आत्मा ही एक ऐसा यंत्र है जो असंख्य संस्कारों के मूल रूप का एकीकरण कर सकता है । आत्माके एकीकरण एवं भिन्न भिन्न वस्तुओं के मूल में जो ब्रह्म उनकी विविधता को मेट कर पक्ष रहित बनाता है उसके एकीकरण में यदि साम्य न हो तो सम्पूर्ण ज्ञान असत्य एवं व्यर्थ सिद्ध होगा । कहने का अभिप्राय यह है कि आत्मा एवं परमात्मा दोनों एक रूप हैं, इस प्रकार सिद्ध होता है कि सृष्टि के प्रत्येक वस्तुके वाह्य नाम रूप के सदृश ब्रह्म जड़ न होकर वासनात्मक ब्रह्म, मनोमय ब्रह्म, ज्ञान मय, ब्रह्म, प्राण ब्रह्म अथवा ओंकार रूपी शब्द ब्रह्म —ये ब्रह्म के रूप निम्न-श्रेणी के हैं और उसका सत्य स्वरूप इनसे पृथक होकर इनसे अधिक गुणवान् विशुद्ध आत्म -

स्वरूपी है । इन बातों का समर्थन स्पष्टत: 'गीता' में भी उपलब्ध होता है ।[१]
इन सबका उक्त वर्णन यह पोतित नहीं करता कि जीव तत्व एवं परमतत्व की
एकता का सिद्धांत हमारे ऋषियों ने ऐसी युक्ति प्रयुक्तियों से ही पूर्व ढूंढ़
निकाला था, अपितु इसके लिए एक मात्र निरा बुद्धि पर आश्रित न रह कर
सदैव सुदृढ़ आत्मपरक का आधार ग्रहण किया । इसके साथ ही सर्वथा यह देखा
जाता है कि अध्यात्म पक्ष में किसी वस्तु की कल्पना या अनुभव पहले और
उसकी उपपत्ति या तो इसके अनन्तर होती है या गढ़ ली जाया करती है । इसी
निर्णयात्मक पहलू का अवलम्ब लेकर प्राचीन भारतीय ऋषियों ने यह सिद्धान्त
प्रतिपादित किया था कि 'नेह नानाऽस्ति किंचन' (बृह० ४।४।१६, कठ०४।११)
सृष्टि में जो स्थूल रूप द्रष्टव्य है, वह सर्वथा मिथ्या है और उसके मूल में जो
सूक्ष्म वस्तु चारों ओर समाई हुई है वह सर्वथा अव्यक्त एवं नित्य है ।[२]साथही
उन अमर साधकों ने अपनी अन्त:साधना केवल पर यह भी सिद्धान्त प्रतिपादित
किया जो सृष्टि के वाह्य रूपों को आच्छादित किये हुए अविनाशी तत्व है
और जो इस शरीर में वास करने वाला अमर तत्व जो सर्वथा अगम, अगोचर है,
इन दोनों में कोई पार्थक्य नहीं है, वे सदा अजर अमर हैं इसको दूसरे रूप में
कहा जा सकता है कि जो तत्व ब्रह्मांड में है वही पिंड में भी है ।[३] इसीलिए
उपनिषद में यह भी बताया गया है कि जिसने इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर
लिया कि 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं ईश्वर हूं ।' —उसने सब कुछ ज्ञान प्राप्त कर
लिया (बृ० १४।१०) । इसीप्रकार के दृष्टान्त के आधार पर 'छान्दोग्य उप-
निषद्' के छठें अध्याय में श्वेतकेतु को उसके पिता ने अद्वैत वेदान्त का रहस्य भली
भांति समझाया है ।[४]

इस प्रसंग में मैंने कबीरपंथी एवं दरियापंथी साहित्य में अध्यात्म
सम्बन्धी विचारधारा के समुचित स्पष्टीकरण करने के लिए उपनिषदों को
आधार बनाया है, क्योंकि इनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त उपनिषदों के अनु-

---

१. गीता २।२०, ७।५, ८।४, १३।३१,१५।७।८
२. गीता १८।२०
३. बृह०, १।४।१०
४. छान्दोग्य० ६८—१६

कूल जान पड़ते हैं। उपनिषदों में वर्णित ब्रह्मांड एवं पिंड की एकता दोनों पंथों की काव्यकृतियों में समादरित है, साथ ही इस बात का भी समर्थन किया गया है कि आत्म परख से ही उस परमतत्व की उपलब्धि सम्भव है और उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना ही एक अध्यात्म सेवी के लिए सब कुछ प्राप्त करना है। कबीर-पंथी साहित्य `जीवधर्म बोध` (पृ० १२६-१३६) में ब्रह्मांड एवं पिंड के ऐक्य का विशद चित्रण प्रस्तुत किया गया है :—

जो सबही ब्रह्मांड में देखो । पिंड केर सोई है लेखो ।।
सुर नर मुनि गंध्रव अरु देवा । पिंड अण्ड में एकै भेवा ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० १३५

खेल ब्रह्मांड का पिंड में देखिया, जगत की भरमना दूर भागी ।
बाहिराभीतरा आकाशवत, सुषुम्ना डोरी तहां उलटि लागी ।।

— आत्मबोध, पृ० १४

दरिया-पंथ में भी पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड की एकता के प्रमाण उपलब्ध होते हैं :—

करता अजर अमर तुह मूला । प्रानपिंड रहै समतूला ।।२७६।।
एकै पिंड एक है प्राना । एकै मुख रसना है काना ।। २१५ ।।

— भक्ति हेतु, पृ० ३०४, २६८

जिस ईश्वर की कल्पना ब्रह्मांड में की जाती है उसी का अंश इस घट-स्थात्मा के रूप में प्रत्येक जीवों में विद्यमान है तो इसकी प्रतीति एवं प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार सम्भव है ? इसके लिए लगभग समान रूप से दोनों पंथों के सिद्ध सेवियों ने उन व्यक्तियों को जो कि अपने आत्म ज्ञान या आत्म परख से वंचित होकर बहुदेव देवियों की उपासना में अनेक प्रकार से काया क्लेश के माध्यम से परमतत्व के प्राप्ति की तीव्र लालसा रखते हैं उन्हें स्पष्टतः पथ भ्रष्ट सिद्ध किया है। दोनों पंथों में आत्म शुद्धि एवं आत्म ज्ञान जिसे कि उपनिषदों ने आत्म परख बताया है एक मात्र उस परमतत्व के साक्षात्कार का परमोपाय एवं चरमोद्देश्य स्वीकार किया जा सकता है। संत कबीर ने स्पष्टतः ऐसे व्यर्थ के ढोंगियों के प्रति भरपूर उपेक्षा प्रकट की है जो कि इस जगत् के मायावी जाल में पड़कर उलझे हुए हैं। सबको आत्मदर्शन अपेक्षित है, इससे ही भवसागर के जंजालों से मुक्ति सम्भव है। `बीजक` में कहा गया है कि —

भवर जाल बक जाल है, बूड़े बहुत अचेत ।
कहहिं कबीर ते बाँचि है, जाके हृदय विवेक ।।६६।।

— बीजक, पृ० १२६

जिह्वा तो बन्धन देइ, बहु बोलन निरुवार ।
सारथी सो सङ्ग०करी, गुरुमुख शब्द बिचार ।।६।।

—बीजक, पृ० १२८

कबीर की ही भाँति कबीर पंथ में ब्रह्म दर्शन के हेतु बाह्याचारों एवं ढोंगों के प्रति पूर्ण उपेक्षा एवं अन्त:शुचिता की अपेक्षा प्रदर्शित की गई है। साथ ही इन संतों को यह भी मान्य है कि अन्त: साधना के माध्यम से ईश्वरानुभूति सम्भव है।[1] और जब आत्मानुभूति के माध्यम से आत्म प्रतीति होती जाती है तब जीव अपने ही समान समस्त जगत् को समझने लगता है, ऐसी स्थिति में द्वैत की सारी विधाएं विलीन हो जाती हैं, सम्पूर्ण विश्व ही उसमें और वह सब में समाहित हो जाता है।

आतम राम चीन्हजब पावा । सकल पसारा मेट बहावा ।।
आतम राम देख जिव पाई । आप आप सब ठांव समाई ।।
जहँ देखा तहँ आप समाना । ब्रह्म छोड़ दूसर नहिं आना ।।

— ज्ञान बोध, पृ० ३७

मन को भली भाँति स्थिर करने पर ही परम तत्व की परख सम्भव है, क्योंकि चंचल मन के प्रबल होने के कारण प्राणी में जो विकार उत्पन्न होते हैं वही साधक के मार्ग में सबसे बड़ी खाई हैं जिनका लंघन असंभव है, परन्तु जब यह मन शांति में लीन हो जाता है तब जीव की समस्त कुप्रवृत्तियाँ स्वत: लुप्त हो जाती हैं, और उसे ईश्वर की परख हो जाती है।[2] काया के अन्दर ही ब्रह्म का निवास स्वीकार किया गया है, इसलिए दिल की समस्त व्यर्थ की कल्पनाओं एवं जल्पनाओं को त्याग देने पर अन्तर्तम की अन्तःसाधना द्वारा उस ब्रह्म का साक्षात्कार होना सम्भव है। इसीलिए निर्देश भी किया गया है :—

---

१. ज्ञानबोध, पृ० २५३
२. वही, पृ० ३५

गहो विश्वास एक समरत्थ धनी का, आन को छाड़ि अलेख धावो ।
कहें कबीर सब कल्पना दूरि कर, पैसि दिल माहि दिलदार पावो ।।
— आत्मबोध , पृ० २०

आपने आपने साँच सो खेलना, कपट का खेल नहिं काम आवे ।
कपट के खेल से काम कोई ना सरे, अंत की बेर दुख प्राण पावे ।।
— आत्मबोध, पृ० ३१

शील अरु साँच संतोष की सेह जले, दामा अरु दया दिल माहिं धारे ।
नारि अरु पुरुष काकाम कोसा रहा,कहैं कबीरसो आप तारे ।।
—आत्मबोध, पृ० ३४

'जीव धर्म बोध' में उपरोक्त कल्पना और भी मुखरित हो उठी है जबकि इस काया के अन्तर्गत ही समस्त देवदेवियों एवं तीर्थ स्थानों की परिकल्पना की गई, जिससे कि साधक को व्यर्थ इतस्त: भटकना न पड़े, और इस प्रकार का मार्ग सुलझाया गया है कि जिस पर राही स्वत: अपनी साधना के बल पर आगे बढ़ता हुआ अपने चरमोद्देश्य तक पहुँच सके । दिल ही में मंदिर, देव एवं पुजारी, पूजा की सामग्री, ठाकुर द्वारा, तीर्थ स्थान, पवित्र मूर्तियां आदि सब वर्तमान हैं, तो किस हेतु जीव अपने कान में अंगुली डाले हुए रात दिन उठ बैठ कर व्यर्थ की कुढ़न एवं कसक की वेदना सह रहा है । जब इस हृदय के भीतर ही अल्लाह या परमेश्वर का निवास है तो किस हेतु मस्जिद आदि में जा कर अजान की टंकार की जा सक रही है । अर्थात् व्यर्थ की जल्पना त्याग कर अन्त: साधना केवल पर ही चरम लक्ष्य की सिद्धि सम्भव है ।[1]

इस प्रकार अन्त: साधना एवं अन्त: शुद्धता पर सम्पूर्ण कबीर-पंथी साहित्य समान रूप से बल देते हैं, जिसका स्पष्टत: प्रभाव हमें दरिया-पंथ पर भी परिलक्षित होता है । जब हम दरिया-पंथी साहित्य का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि उसमें आत्मज्ञान के विषय में चर्चा कबीर-पंथ के अनुरूप ही प्रस्तुत की गई है । दरिया साहब ने आत्मा की पूजा श्रेष्ठ घोषित कर, फूल-पत्ती तोड़ कर पत्थर पर जल चढ़ाने आदि को पूर्ण रूपेण नि:सार एवं व्यर्थ बताया है । यथा: ।

---

१. जीवधर्म बोध, पृ० १३

आतम देव पूजहु तुम भाई । का जगपाती तोरहु जाई ।।२६१।।
पथल पूजे निरगुन नहि पाई । आतम जीव घात इन्ह लाई ।।२६२।।
आत्मदरस ग्यान जो जाने । तबही लोक पयाना ठाने ।।२६३।।
तन सरवर मन देखु बिचारी । तह्वां खोज आतम बनवारी ।।२६४।।
—दरिया सागर, पृ० २७

आतम दरस दिसे जेहि प्रानी। कबहिं न होवे भव जल हानी ।।५६२।।
—द०सा०, पृ० ५५

पढ़ि पाखंड पथल की पूजा । आतम देव अउरि ना दूजा ।।७६६।।
—द०सा०, पृ० ७७

काया अंदर ब्रह्म निजुबासा । ताहि चिन्हहु प्रेम परगासा ।।८८८।।
—द०सा०, पृ० ८६

दरिया साहब ने कबीर पंथ के सदृश ही इसी शरीर में ईश्वर का वास स्वीकार किया है जो कि युक्ति करने पर ही प्राप्त हो सकता है । साथ ही तीर्थ स्थानों को भी इसी शरीर में बताया, जहां देवगण रहते हैं ।

दरिया तन से नहिं जुदा , सब कुछ तन के मांहि
जुगुति जोग से पाइये, बिना जुगुति कछु नाहिं ।।३६।।
— ज्ञान सरोदै , पृ० २६६

उभय पंथों में यह मत व्यक्त किया गया है कि व्यर्थ की जल्पना त्याग देने पर जब आत्मा के दर्शन द्वारा अन्तरानुभूति मुखरित हो उठती है तब परम अभीष्ट की उपलब्धि होती है, किन्तु जो लोग उस परम सत्य एवं चरमोद्देश्य से विमुख होकर व्यर्थ के माया वादी थोथे एवं निःसार प्रपंच पूर्ण देव-देवियों की उपासना में लगे रहते हैं, उनके भाग में अपार वेदना एवं घोर निराशा के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता । ऐसे व्यक्तियों के प्रति जो इस जगत् में मद मोह एवं माया के इस अंधकूप में गुमराह बने नाना विपत्तियों एवं घोर यातनाओं का शिकार हो रहे हैं, उनके प्रति दोनों पंथों में बड़े ही तीखे व्यंग्य किए गए हैं । जो व्यक्ति अपने इस पवित्र काया मन्दिर में स्थित परम तत्व की खोज अन्तःशुचिता के माध्यम से न कर जगत् जंजाल रूपी माया मय देव-देवियों एवं नाना तीर्थों में ~~पर्यटन~~ विश्वास करता है, उसके लिए स्पष्टतः दोनों पंथों में एक ऐसा रूपक किया गया है कि वह व्यक्ति ऐसे श्वान के सदृश है जो कि कांच मन्दिर में

अपना प्रतिबिम्ब देख कर भूंक भूंक कर प्राण गवां देता है, ऐसे गज के समान जो स्फटिक शिला में अपने प्रतिबिम्ब को ही प्रतिद्वन्द्वी हाथी समझता हुआ लड़कर अपना शिर तोड़ डालता है, ऐसे मरकट की भांति है जो कि दूसरे के हाथों में पड़ कर गले में जंजीर बांधे हुए परवश बना द्वार द्वार पर नाच रहा है और उस नलिनी के तोते के समान है जो कि भ्रांति वश नलिनी यंत्र को ही व्याध का फंदा स्वीकार कर अपने को फंसा देता है। इसी प्रकार नलिनी के तोते के सदृश जीव इस मायावी जगत् को ही सब कुछ स्वीकार करते हुए, अपने को मात्र भोगों का दास समझ कर अपने अभीष्ट से भ्रष्ट होता है:

अपन को आप ही बिसरो।
जैसे श्वान कांच मंदिर में भर्मत भूसि मरो।।
ज्यों केहरि वपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो।
ऐसे ही गज लखि स्फटिक शिला में दरसनहित्ते अरो।।
मरकट मूठी स्वाद न छोड़े घर घर रटत फिरो।
कहै कबीर नलिन को सुगना कौने तोहि पकरो।।

—जीवधर्म बोध, पृ० ७०

इसी प्रकार मृग और कस्तूरी का प्रसिद्ध दृष्टान्त भी उल्लिखित है। यथा :—

नाभि कस्तूरि का मृग बारे फिरै, उलटिकरि आप में नाहिं जोवै।
भर्मता भर्मता योनिपूरी करै, अंधयो आपुनी बस्तु खोवै।।
नाभि निज नाम सो ठाम पावै नाहीं, जगत सब तीर्थ गर्भ भूला।
कहैं कबीर हरिपंथ के नाल हैं, अंध भव सिंधु में फिरत भूला।।

—आत्मबोध, पृ० १०

इसी प्रकार दरिया साहब ने भी कबीर पंथ के अनुरूप ही विचार व्यक्त किया है :—

दाया करो दीदारिया हो तो नारिका फंद में मति परै।
जैसे काचु महल में स्वान भुकै एह जान दिए बिनु नाहिं टरै।।

—शब्द पृ० ९८ परि०(संत कवि दरियाएक अनु०)

केहरि प्रतिमा देखे उभारी।झपटि परातन प्रान बिसारी ।।४५१।
काचु महल में स्वान जो पैठा। भुंकि भवन में प्रतिमा ऐंठा ।।४५२।।

फिटिक सिला गज दसनन्हिअरई । टूटिगो मुंह उलटि जिमि परई ।।४५३

— ज्ञानरतन, पृ० १५०

म्रिग मद माति आपु पै खोवै । काल हाथ जिव जन्म बिगोवै ।।४३।।

नाभि फारि कस्तूरी आना । एक दैखि मद एक दैवाना ।।४४।।

— भक्तिहैतु, पृ० २८१

कबीर पंथी रचना 'जीवधर्म बोध' मैं आत्मा को निर्विकार एवं दोष-हीन सिद्ध किया है परंतु कर्म पाश से बंध जाने के कारण गले में पड़े हुए जंजीर के मरकट के सदृश नचाया जा रहा है। यथा :-

निर्विकार आतम सदा, बंधा कर्म की डोर ।

मरकटनहाथ जिमि, फिरता खोरिन खोर ।।

— जीवधर्म बोध, पृ० ३६

जिमि कपि कण्ठ लगी जंजीरा । बंधा रहै बांस के तीरा ।।

कबहुं के बांस ऊपर चढ़ि आवो । कबहुंक हैठ उतरि सो आवे ।।

उतरा चढ़ी न छूटे ताको । दृढ़ जंजीर परी गल वाको ।।

तिमि जिव क्रम ही क्रम लह दैही । बिन सतगुरु पद पावन यै ही ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० ७१

बाजीगर जैवं बांध बंधाई । नाचहिं मरकट द्वारे जाई ।। २४० ।।

ग्यान होए तब करै बिचारा । बिनु गुरु ग्यान परा मझधारा ।।२४१

— ग्यानमूल, पृ० ३६३

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है कि साधना के क्षेत्र में आत्मज्ञान अथवा आत्म दर्शन की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि बिना ज्ञान के सबव्यर्थ है। प्रश्न उठना सरल है कि इस प्रकार के ज्ञानकी प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है, इसीलिए इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दोनों पंथों में एक सद्गुरु की आवश्यकता बताई गई है, जिसके सदुपदेश को प्राप्त कर लेने पर आत्मानुभूति के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है, जिसके विषय में आगे चर्चा की जायगी। गुरु की महत्ता वैसे भी अतीत काल से ही गाई जाती रही है।

जिस व्यक्ति को आत्म चिंतन द्वारा परम तत्व की उपलब्धि हो जाती है वह व्यक्ति साक्षात ब्रह्म हो जाता है अर्थात् उसमें तथा ईश्वर में कुछ पार्थक्य

रह ही नहीं जाता । और जब तक मनुष्य में विभेद मूलक परिस्थितियां घर किए हुए हैं तब तक उसका ज्ञान अधूरा ही है क्योंकि सच्चा आत्मज्ञान होते ही वैभिन्य परक परिस्थिति लुप्त हो जाती है । जिस प्रकार नदी समुद्र में जा कर तदाकार हो जाती है, वैसे ही तत्त्व का ज्ञाता ब्रह्म में विलीन हो जाता है, इसी ब्रह्मलीन परिस्थिति को गीता में 'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मानि ' अर्थात् 'समस्त प्राणी हमी में हैं और मैं सब में समाहित हूं ।'[1] यह उत्कृष्ट कल्पना साकार हो उठती है । इसी प्रकार का वर्णन हमें दोनों पंथों में देखने को मिलता है ।

> बुंद समाना सिंधु में, यह जाने सब कोय ।
> सिन्धु समाना बुंद में, जाने बिरला कोय ।।
>
> —जीवन धर्म बोध, पृ० १३५

> सिंधु समानो बुंद मों, बुन्द ही सिन्धु समान ।
> सिंधु बुंद एकै भयो, बहुरन आवा जान ।।
>
> — पंचमुद्रा, २२४

इसी प्रकार की कल्पना दरिया पंथ में भी उपलब्ध होती है :—

> निकट जाय जमराज नहिं, सिर धुनि धुनि पछताय ।
> बुंद सिंधु में मिलि रहा, कवन सकै विलगाय ।।१४ ।।
>
> — ग्यान सरोदै, पृ० २५६

---

१. गीता ६।२६

(ग) शरीर

जीव तत्व या आत्म तत्व के पृथक् हो जाने पर जो अवयव शेष रह जाते हैं, उन्हें एकनिष्ठ रूप से शरीर कहा जा सकता है। यह रूप अनित्य एवं मरणशील है, और जैसा कि कह आए हैं, जीव तत्व अमर एवं नित्य है। यह इन्द्रियातीत अर्थात् अव्यक्त, सूक्ष्म एवं चारों ओर अखंडित रूप से विद्यमान है। एक ही निरवयव मूल तत्व से सम्पूर्ण स्थूल सृष्टि का विकास सम्भव हुआ। आत्म तत्व के पृथक हो जाने पर ही, एक ऐसी परिस्थिति आती है, जब कि सम्पूर्ण अवयवों के विद्यमान रहते हुए भी हमारी गणना निर्जीव रूप में की जाएगी। इस प्रकार सिद्ध होता है कि इसी परम तत्व को छोड़कर शेष समस्त जिन्हें शरीर कहा जाता है, विनाशशील है। आत्म तत्व वाले प्रसंग में जैसा कि मैंने जीव तत्व की कल्पना परमतत्व के रूप में करने के लिए उसे माया से अलग स्वीकार किया है, उसी को इस स्थूल जगत् में मायाच्छन्न हो कर जीव बताया गया, इस प्रसंग में यदि हम कहीं जीव की चर्चा करेंगे तो सर्वथा माया से घिरे हुए जीव की। मानव जाति की कल्पना आदि काल से ही समस्त प्राणियों में सर्वोपरि की जाती रही है।

शरीर का निर्माण—

इन्द्रियां—

शरीर की रचना के लिए कबीर-पंथ एवं दरियापंथ दोनों में समान रूप से धारणा व्यक्त की गई है कि इसका दैहिक बन्धन दस इन्द्रियों द्वारा निर्मित है। जिनमें से पांच कर्मेन्द्रियां हैं, जिनका नाम :—कर, गुदा-लिंग,

पद एवं मुख और पांच ज्ञानेन्द्रियां :—नेत्र, नासिका, त्वचा, जिह्वा एवं कर्ण। जिनका वर्णन उभयपंथों में निम्नरूप से प्राप्त होता है :—

दश इन्द्री कीन्हों बन्धाना। कर्म पांच पांच है ज्ञाना।

— उग्रगीता, पृ० ४२

आंख नाक जिभ्या तचुकाना। पाचों इन्द्री ग्यान प्रधाना ।।१६६।।
कर गुद लिंग पाव मुख होई। पांचों इन्द्री करम समोई ।।१७०।।

— ग्यान सरोदै, पृ० २६०-२६१

दरियापंथ में मन को एकादश इन्द्री भी स्वीकार कर उसे समग्र इन्द्रियों का राजा बताया गया है :—

मन एकादस सभ को राजा। जो जीतै सो साधु समाजा ।।१७२ ।।

— ग्यान सरोदै, पृ० २६१

कबीर पंथ में मन को समस्त इन्द्रियों का भूत बताया गया है :—

मन इन्द्रिन को भूत कहावे। मन को बहुरि अकाश बतावे ।।

— आगम निगम बोध,पृ० ७५

उपनिषदों में तो इन्द्रियों को प्राण तक की संज्ञा दी गई है। इन्द्रियों की संख्या उपनिषदों में कहीं सात, कहीं दश, ग्यारह, बारह एवं तेरह तक बताई गई। परन्तु वेदान्त सूत्रों के अनुसार श्री शंकराचार्य ने यह मत प्रतिपादित किया है कि उपनिषदों के सब सिद्धांतों की एक रूपता करने पर इन्द्रियों की संख्या कुल ग्यारह हो जाती है।[१] 'गीता' में तो इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि 'इन्द्रियाणि दशैकं च'[२] अर्थात् इन्द्रियां कुल ग्यारह हैं। इस प्रकार देखा जाता है कि इन्द्रियों के विषय में इन पंथों की कोई मौलिक उद्भावना नहीं है। बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में इनकी संख्या निर्धारित हो गई थी।

पंच तत्त्व एवं पच्चीस प्रकृतियां —

आदि काल से ही समस्त अध्यात्म साहित्य में पंचतत्व एवं पच्चीस

---

१. वे सू० शां भा०, २।४।५।६
२. गीता १३|५

प्रकृतियों की चर्चा समान रूप से की गई प्रतीत होती है। दोनों पंथों के साहित्य में इन सबके विषय में बाहुल्य के साथ चर्चा की गई है। कबीर पंथी साहित्य में इनका बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है।

पांच पच्चीस तीन गुण आई। यह लै सकल शरीर बनाई ।।
— निरंजन बोध, पृ० ८

पांच पच्चीस का एक मंडान है, एक प्रकाश ब्रह्मांड कीया।
— आत्मबोध, पृ० ६

इसीप्रकार दरिया पंथ में भी इनके विषय में चर्चा मिलती है :—

पचीस प्रकृति अब तीनू धारी । पांच ततु है आतम धारी ।।३६० ।।
— दरियासागर, पृ० ३६

प्रकृतियों की कल्पना में दोनों पंथों में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। कबीर पंथी साहित्य ' स्वसम्वेद बोध ' (पृ० ८०) में प्रस्तुत उत्पत्ति कथा का सारांस इस प्रकार है, जिससे जीव के विषय में कुछ संकेत प्राप्त होंगे। " सर्वप्रथम प्रारम्भ में स्वयं जीव स्वतंत्र एवं अकेला था, उसके अंग पक्के तत्वों से निर्मित थे। मानवीय शरीर की रचना कच्चे तत्वों से की गई, उस समय जब वह पक्के तत्व का था तब अंड पिंड दोनों एक ही थे। अपनी माया से पुरुष ने जीव को उत्पन्न किया, पहले वह सत्य स्वरूपी था, परन्तु जब जन्म लेकर अपने रूप को देखा तब उसे अपने विषय में कुछ ज्ञान रह ही न गया, और अपने सत्यस्वरूप का विस्मरण कर दिया, तब उसके पक्के अंड एवं पिंड दोनों कच्चे हो गये, इस प्रकार जीव की रचना हुई। ऐसी अवस्था में जीव अनन्त योनियों में चक्कर लगाता रहा।[१]

पक्के तत्वों के नाम पांच बताये गये हैं :—

(१) सत्य, (२) विचार, (३) शील, (४) दया , (५) धीरज।

तीन गुण:—

(१) सत्य और विचार का गुण विवेक, (२) शील और दया का गुण गुरु भक्ति और साधु भाव और (३) धीरज का गुण वैराग।

---

१. स्वसम्वेद बोध, पृ० ७९

पच्चीस प्रकृति का वर्णन —

(१) सत्य की प्रकृतियां :—

१. निर्णय, २. निर्बन्ध, ३. प्रकार, ४. धीर, ५. क्षमा

(२) विचार की प्रकृतियां :—

१. अस्ति, २. नास्ति पद में भान, ३. यथार्थ, ४. शुद्ध भाव एवं (५) सत्यता

(३) शील की प्रकृतियां :—

१. क्षुधा,निवारन, २. प्रिय वचन, ३. शांति बुद्धि, ४. प्रत्यक्ष पारख एवं (५) सब सुख प्रकट

(४) दया की प्रकृतियां :—

(१) अद्रोह, (२) मित्र जीव, (३) सम, (४) अभय एवं (५) सम दृष्टि

(५) धीरज की प्रकृतियां :—

१. मिथ्या त्याग, २. सत्य ग्रहणा,३. निस्संदेह, ४. हंता-नासने एवं ५. अचल

इस प्रकार इन्हीं पंचतत्वों की ये पच्चीस प्रकृतियां हैं जिनमें सर्वप्रथम जीव सतस्वरूप में पक्काकहा गया है। जब सभी तत्वों की प्रकृति उलटी तब वह पक्के रूप से कच्चे पिंड में जन्म लिया तब उनके पक्के पंच तत्वों से पांच कच्चे तत्व बनें :—

(१) धीरज से आकाश, (२) दया से वायु , (३) शील से तेज (४) विचा से जल एवं (५) सत्य से धरती का रूप निर्मित हुआ। इन्हीं कच्चे तत्वों से तीन कच्चे गुण निर्मित हुए। (१) धरती और जल से —सतोगुण, (२) अग्नि और वायु से —रजो गुण एवं (३) आकाश से तमोगुण। इन्हीं के विकार स्वरूप मानव शरीर की सृष्टि हुई। जब पक्के से कच्चा रूप परिवर्तित हुआ तब सम्पूर्ण सृष्टि चारिखानि एवं चौरासी लक्ष योनियों की रचना हुई।[१] स्वरोदय में पुन:

---

१. स्वसम्वेद बोध, पृ० ८०—८५

प्रसंग वश इनका सविस्तार वर्णन किया जायगा ।

दरिया पंथ में पक्के तथा कच्चे तत्वों का कोई भी विधान नहीं प्राप्त होता । इसमें आकाश तत्व को सब तत्वों का मूल स्वीकार किया गया है । इसी से पंच तत्वों का क्रमिक विकास हुआ: आकाश – पवन – अग्नि – जल – पृथ्वी । कबीर पंथ में वर्णित प्रकृतियों से भिन्न रूप दरिया पंथी साहित्य में दृष्टिगत होता है । 'निर्भय ज्ञान' में आये हुए वर्णनानुसार प्रकृतियों का रूप इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है — १. झूठ बोलना, २. तीर्थयात्रा, ३. पत्थर की मूर्ति पूजा, ४. मूर्तियों के सम्मुख जीव का बलिदान, (५) जीव हिंसा, (६) षड्-दर्शन का अध्ययन और सूर्य को अर्घ्य देकर नमस्कार करना , (७. भूत प्रेत की पूजा, ८. पाखंड पूर्ण व्रत और नियम , ६. झूठमूठ बड़ाई करना , १०. काम क्रिया में रति, ११. झगड़ा लगाना, १२. बरबस बोलना, १३. चंचलता-कुमति, १४. पाषण्ड, १५. सत्य की हंसी उड़ाना, १६. माया में फंसे रहना, १७. कंजूसी से धन बटोरना, १८. मोह पाश, १६. कुल कर्म में अंध विश्वास , २० नैराश्य २१. लोभ, २२. मूर्खों की संगति, २३. त्रिगुण संसार, २४. भ्रमजाल में फंसे रहना और २५. सगुणोपासना की नवधा भक्ति ।[१] इस ग्रन्थ में दरिया साहबने जिन प्रकृतियों का उल्लेख किया है, उनका विश्लेषण करने पर यह धारणा अनुचित न होगी कि इस प्रकार की कल्पना का मुख्योद्देश्य एक मात्र मानवीय दोषों एवं दुर्बलताओं का जीता जागता चित्रण करना ही रहा है ।

त्रिगुणों के विषय में कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों में समान धारणा व्यक्त की गई है । ये गुण हैं :—(१) सतो गुण (२) रजोगुण एवं तमोगुण ।[२]

इन्हीं उपर्युक्त तत्वों, प्रकृतियों एवं गुणों के माध्यम से इस मानव शरीर की रचना हुई जिसके विषय में कहा गया है :—

> हद कारिगर हुन्नर कीन्हा । जैसे दूध में जामन कीन्हा ।।
> धन कारीगर सिरजि संवारी । मानुख तन सभ ऊपर सारी ।। ८४।।
>
> — ग्यान सरोदै, पृ० २६६

---

१. ~~स्वसम्वेद बोध, पृ० ८०-८५~~ निर्भय ज्ञान, पृ० १०-१२ (पाण्डुलिपि)

गर्भ यातना—

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों में समान रूप से जीवों के लिए गर्भ-यातना का विशद् चित्रण उपलब्ध होता है। कबीर-पंथी संतों की धारणा है कि जब जीव गर्भ में आता है तब उसे नाना प्रकार के संकल्प करने पड़ते हैं, वह संकल्प सद्चरित्र एवं सुकर्मों के लिए होता है, किन्तु विडम्बना यह है कि वह जन्म धारण करते ही अपना कौल जो कि सत्पुरुष के समक्ष कर चुका है, भूल जाता है।[१] आदि काल से ८४ लक्ष योनियों की कल्पना की गई है, ऐसी कल्पना से उभयपंथी साहित्य ओत प्रोत है जिसकी चर्चा हम पुनर्जन्म वाले शीर्षक में करेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जन्म धारण कर गर्भ यातना से किसी की मुक्ति नहीं यहाँ तक कि नवोनाथ चौरासी सिद्ध भी गर्भ यातना से मुक्त न हो सके। विष्णु के भी अनेक अवतार इस बात के द्योतक हैं कि वे भी अपने को इस जंजाल से मुक्त न कर सके। यहाँ तक कि तैंतिस करोड़ देवों तक को भी गर्भ वास में जाना पड़ा :—

नौ नाथ सिद्धि चौरासि भारी। अहूं देह गरभ में धारी ।।
नौ अवतार विष्णु जो लीन्हा। उनहूं गरभ बसेरा कीन्हा ।।
तैतिस कोटि देव कहाये। गरभ बास मंह देह बनाये ।।
जोगी जंगम औ तप धारी। गर्भबास में देह संवारी ।।

—जगजीवन बोध, पृ० २१,२२

इसी प्रकार दरियापंथ में भी गर्भ यातना का वर्णन मिलता है। करोड़ों ब्रह्मा, इन्द्र-कृष्ण एवं शिव जन्मलेकर काल गाल में चले गये, और उन्हें बार बार देह धारण करना पड़ा।[२]

भव सागर —

संसार को अतीत काल से एक महान् उदधि के रूप में माना जाता रहा है, जिसके अवगाहन में सर्वथा अशक्तता बताई गई है। दोनों पंथों में इस भवसागर

---

१. जगजीवन बोध, पृ० २१, ५५

२. दरिया सागर, पृ० ७८

को संसय सागर एवं दुख का आगार स्वीकार किया गया है, इसीलिए बिरले ही इससे मुक्त हो सकते हैं। कबीर पंथ में बताया गया है कि तीनों लोक के जीव अनेक बार जन्म धारण कर इस जगत में आते जाते रहते हैं।[१] धर्मदास ने इस संसार को बहुत बड़ा दरियाव माना है जिसमें यम के पाश अति कठिन हैं, इससे योग साधना करने वाले एवं तीर्थ व्रतादि सम्पन्न करने वाले मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते[२]। समस्त जगत् को कबीर दास ने अंधा एवं उलटी रीति का पोषक बताया है।[३] 'पंच ग्रन्थी' में इस संसार को झूठ का प्रसार बताया गया है कि 'सांच झूठ का यह संसार। सांच आत्मा झूठ पसार ।।' इस प्रकार इस जगत् की रचना सत्य एवं असत्य दोनों के संयोग से संभव हुई है। सत्य पर जब असत्य अधिकार प्राप्त कर लेता है तब सत्य की प्रतीति समाप्त हो जाती है।

शारीरिक अंग मायाच्छन्न और व्यर्थ के दिखावा मात्र हैं जिन्हें पूर्ण तया असत्य स्वीकार किया गया है। केवल आत्मा ही शुद्ध एवं सत्य है। जन्म धारण कर जीव नाना शोक एवं सन्ताप का शिकार हो जाता है। निरंजन की महिमा अखिल जगत् पर परिव्याप्त है जिससे सब चतुलीन बने हुए भटक रहे हैं। निरंजनने स्वयं कबीरदास से जीवों के बन्धन के लिए स्वीकार किया है कि मैंने इस जगत् में तीन सौ साठ फांस (बन्धन) बनाया है जिसमें सब इस प्रकार बंधे हुए हैं, कि उनसे बँच निकलना दुष्कर प्रतीत होता है। पंच तत्वों, पच्चीस प्रकृतियों एवं त्रिगुणों के मेल से इस काया का स्वरूप निर्मित हुआ है, जिसमें पाप एवं पुण्य का समावेश हुआ है।[४] कर्म की रेख से सुरनर मुनि आदि बंधे हुए हैं, जिससे यमपुर की यातना भुगतनी पड़ रही है।[५] निरंजन स्वत: कबीर दास को चुनौती देता है कि तुम एक ही पंथ के प्रवर्तक हो किन्तु मैंने दश पंथ तक जीवों

---

१. निरंजन बोध, पृ० १२,१४

२. भवतारण बोध, पृ० ४३

३. उग्रगीता, पृ० ३८

४. निरंजन बोध, पृ० ६,७,८

५. वही, पृ० १०

के लिए बंधन का प्रसार किया है, तो किस प्रकार तुम्हारे शब्द मात्र से मुक्ति संभव है ?[1]

इस संसार की निःसारता प्रकट करते हुए इसमें अनुरक्तशील प्राणियों के लिए एक मधुर संकेत निर्णयसार में द्रष्टव्य है :-

जस सुवना नलिनी फंदो, कीट कुस्यारी मांझ ।
ऐसी गति या जीव की, भई दिवस ते सांझ ।।

—निर्णय सार, पृ० १३

अर्थात तोता जो वश नलिनी में उलटा टंग जाता है, वह कीड़ाओं कि बबूर, बेर, आदि के वृक्षों में स्वयं घर बना कर निवास करता है, कालान्तर में वह इस प्रकार कड़ा हो जाता है कि चाकू से काटने पर भी नहीं कटता, और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो जाती है। ठीक इसके अनुरूप ही इस जगत् के अनुरागियों की स्थिति है कि क्रमिक ढंग से उनके माया जाल गहन बनते चले जाते हैं, जिनके पाश से जीवन पर्यन्त निकलना दुष्कर एवं असम्भव हो जाता है, अंततः एक दिन मृत्यु हो जाती है।

जब हम दरिया पंथ का अध्ययन करते हैं तो ठीक कबीर पंथ के अनुरूप ही भवसागर का विशद् चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है। दरिया साहब ने एक ईश्वर को छोड़ कर जगत् को मिथ्या बताया हैं।[2] उन्होंने इस भवसागर को काम जल से पूर्ण माना है।[3] और ऐसे जलधि के जल की उपमा त्रिविध तापों (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) से दी गई है। बड़े बड़े लोग इससे पराजित हो रहे हैं। पंडितजन ;· 'सत्पुरुष' की परख से विमुख होकर ग्रन्थ ग्यान में उलझे हुए हैं, कबीर पंथ के सदृश इसमें भी वर्णन मिलता है कि निरंजन ने अपने अनेक कर्म फांस द्वारा अखिल सृष्टि को बांध लिया है।[4] इस संसार में सब दुख ही दुख है। सुख मात्र स्वप्नवत है।[5] जगत् के काया क्लेशों एवं भ्रमजालों के अवि-

---

१. निरंजन बोध, पृ० ८
२. दरियासागर, पृ० ४६
३. वही, ३८,६४, ८६
४. वही, ६५,६६, ग्यान सारेदै, पृ० २५२
५. ग्यान सरोदै, पृ० २५४

च्छिन्न प्रसार को देखकर प्रतीत होता है कि दरिया साहब इससे पूर्णरूपेण निराश हो चुके थे। इसीलिए इस जगत् से प्रेम करने वालों को उन्होंने रेखा चित्र का प्रेमी बताया है अर्थात् जगत् की प्रीति रेखा चित्र के प्रेम के तुल्य है जिसमें निराधार एवं व्यर्थ की प्रीति भावना निहित होती है, और उसका प्रसार पूर्ण रूपेण असत्य एवं व्यर्थ का ही होता है।

जग की प्रीति चित्र की रेखा। मोहनि प्रीति जगत सम देखा ।।

— अमर सार, पृ० २२ (पाण्डुलिपि)

रोग —

संसार में दुःख के उपद्रवी तत्वों के मूल ये विविध रोग ही हैं, जिनसे काया क्षीण होती है। दोनों पंथों में रोगों के विविध रूप देखने को मिलते हैं तीनों ताप इस प्रकार से लोगों को भयाकुल करते हैं कि इनका क्रम प्रत्येक जीवों के लिए आजीवन चलता रहता है। कबीर-पंथ में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गई है कि जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ, तब कालान्तर में यह विकास इतना उन्नतशील हुआ कि प्राणियों के भार से पृथ्वी आकुल हो उठी, इस लिए पृथ्वी का भार हल्का करने के निमित्त धर्मराय (निरंजन) ने स्वयं मृत्यु को बुलाकर जीवों का हनन करके अपने पास पकड़ लाने का आदेश दिया। साथ ही आंशी, जूड़ी, ताप एवं तिजारी रोगों का रूप धारण करके जीवों को प्रताड़ित करने के लिए कहा।[१]

इसी प्रकार हम दरिया-पंथ में देखते हैं कि जिन त्रिविध तापों की चर्चा से साहित्य ओत-प्रोत है वे इन्हीं रोगों के ही भयावह सूचना देने वाले प्रतीक हैं। इस संसार को दरिया साहब ने शोक एवं संताप का एक क्रीड़ा-क्षेत्र स्वीकार किया है, जिसमें माया के कांटे और भी नुकीले हैं, जिनसे प्राणियों का दुःख और भी प्रगाढ़ रहा है :—

यह भव सोग संतापना, निकलि सिताबी आए।
माया कांट अति कठिन है, अब जनि करु फैलाए ।।

— ध्यान सरोद, पृ० २५३

---

१. भोपाल बोध, पृ० ५१

मृत्यु एवं यम यातना—

मृत्यु एवं यम यातना की कल्पना तो लगभग सभी धार्मिक साहित्य में मिलती है। प्रत्येक जीव के लिए यह स्थिति अवश्य ही किसी न किसी क्षण आती ही है। मृत्यु के कारण जीव समस्त अवयवों के विद्यमान रहते हुए भी अचेत हो जाता है। ऐसी अवस्था तब सम्भव है जब कि शरीर से परमतत्व अपना अस्तित्व विलग कर लेता है। कबीर पंथी साहित्य में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि निरंजन एक लाख जीवों को प्रतिदिन भक्षण करता है।[१] कहीं कहीं पर यह संख्या सवा लाख भी मिलती है। त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी काल से अपनी रक्षा न कर सके।[२] सुर नर मुनि बार बार जन्म लेकर पुनः मृत्यु को प्राप्त होते हैं।[३] कबीर ने मरणशील प्राणियों को देख कर इस शरीर को कच्चा कुम्भ स्वीकार किया है।[४] तीनों लोकों में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे कि यम के सिकंजे में न फंसना पड़े। ब्रह्मा, शिव, कृष्ण, नाथ मच्छन्दर, गोरख, व्यास, राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, कौरव, पाण्डव, एवं हरिश्चन्द्र आदि सब यमपुर गये।[५]

इसी प्रकार दरिया साहब ने अपनी रचनाओं में मृत्युलोक के विषय में जिन भयावह कल्पनाओं का आधार लिया है, वे बड़ी ही रोमांचकारी एवं यथार्थ प्रतीत होती हैं। उनके इन वर्णनों का अध्ययन करने पर महान से महान विषय सेवी एवं जगत अनुरागी एक बार अवश्य ही अपने को कोसने के लिए उद्यत हो उठेगा। उन्होंने मृत्यु के जो धधकते हुए चित्र खींचे हैं उनका अवलोकन करने से ही इस संसार की मोह लिप्सा यदि पूर्णरूपेण नहीं तो कुछ क्षण के लिए तो अवश्य ही झुलस सी जाती है। दरियासाहब ने सीधे इस मायावी जगत् की पूर्ण रूपेण निःसारता एवं मृत्यु के तांडव नृत्य को देख इसे 'जरा मरन' का देश

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० १६
२. वही, पृ० १७
३. ज्ञानस्थिति बोध, पृ० १२
४. बीजक, पृ० ८२
५. वही, पृ० २४, ६८

कह कर सम्बोधित किया है।[1] साथ ही जिन गूढ़ भावनाओं का इसमें प्रश्रय उन्होंने लिया है उनका उद्देश्य उन अज्ञानांधकारियों के प्रति प्रकाश एवं ज्ञान का आलोक प्रदान करना ही है। दरिया साहब ने इस मरणशील जगत् को मुरदों का गांव बताया है, जहां पर यत्किंचित भी सुख नहीं है, यहां पर बार बार मर कर जन्म धारण करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में जो व्यक्ति सतनाम की परख न कर सका उसका सुख स्वप्न के सदृश है।[2] पंच तत्वों की कोठरी में जहां जीव निवास करता है, उसके समीप ही काल का निवास है।[3] दरिया साहब ने कबीर के सदृश ही मानव काया का पतन देख कर इसे कच्चा पिंड एवं कच्चा महल बताया है जो कि आशु ही धूल में मिल जाने वाला है :—

जन्म भया फिरि मरि मरि गयेऊ। कंचापिंड अमर नहिं रहेऊ।।५१

— ग्यान मूल, पृ० ३७८

काया की नि:सारता की दुहाई संत कवियों की मूल उद्भावना रही है, अतीत काल से ही शरीर को नाशशील बताया जाता रहा है। कबीर पंथ के अनुसार ही दरिया-पंथ में बताया गया है कि किसी की भी काया अमर नहीं, योगी एवं सन्यासी आदि सभी को इसी मिट्टी में मिल जाना पड़ता है। यहां तक कि शिव, जिन्होंने इन्द्रिय निग्रह किया, गोरख ने योग साधना की, किन्तु इन्हें भी काल - गाल का शिकार होना पड़ा, इसी प्रकार असंख्य योगी मृत्यु को प्राप्त हुए। सत्पुरुष के अतिरिक्त अखिल सृष्टि ही नाश शील है।[4]

यम यातना —

मृत्यु के अनन्तर भी सांसारिक क्लेशों का अंत नहीं हो पाता। यह भव सागर दुख का महान् उदधि है ही, किन्तु इसके साथ साथ जब जीव अपनी अंतिम

---

१. ज्ञान सरोदे, पृ० २५४

२. वही, पृ० २५४

३. वही, पृ० २६०

४. भक्तिहेतु, पृ० ३१३

श्वास लेता है, तब भी ये महान् विपत्तियाँ इसका साथ नहीं छोड़तीं क्योंकि इन्हें अपने कर्मानुसार पुन: यम यातना के सिकंजों में बंधना पड़ता है, इसका सविस्तार वर्णन 'स्वर्ग एवं नरक' वाले शीर्षक में किया जायगा।

कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ में यमयातना के विषय में समान रूप से वर्णन उपलब्ध होता है। कबीर-पंथ में निरंजन को ही यमराज स्वीकार किया गया है, जिससे सब भयभीत रहते हैं, वह सवा लाख जन्मों का नित्य प्रति भक्षण करता है, जिससे सुर नर मुनि आदि कोई भी नहीं बच पाते।[१] अनुराग सागर (पृ०६८, ७७, ८५) में इस प्रकार का वर्णन आता है कि यम जीवों को मर्कट के सदृश नचा रहा है। इस जगत् को यम प्रदेश स्वीकार किया गया है।[२] सम्पूर्ण संसार अज्ञान में लिपटा हुआ ईश्वर की भक्ति से विमुख होकर माया में लिप्त होने के कारण यम का शिकार हो रहा है।[३]

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी यम यातना के विषय में हृदय द्रावक चित्र उपस्थित किये गये हैं। दरिया साहब ने यमलोक को एक ऐसा सदृढ़ दुर्ग स्वीकार किया है, जिसका लंघन असम्भव ही है, यम समस्त जीवों को मार कर भक्षण करता है।[४] तीनों लोकों में यम का दुरूह घेरा घिर चुका है, जिसमें मुनि एवं पंडित सब उसका दास बन रहे हैं। कबीर-पंथ के सदृश ही दरियापंथ में भी निरंजन के लिए कल्पना उपलब्ध होती है कि वह समस्त जीवों को अपने वशवर्ती बनाकर नचा रहा है, यहाँ तक कि ब्रह्मा एवं इन्द्रादिक महान देव भी इससे अपनी रक्षा न कर सके तो साधारण जीवों की क्या बात चलाई जाय ?[५]

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ८-९

२. वही, पृ० ६१

३. ज्ञान बोध, पृ० २०

४. दरिया सागर, पृ० ८-९

५. वही, पृ० २१-२२

(घ) जगत्

सृष्टि प्रक्रिया की कल्पना—

भारतीय दर्शन में जहां परमात्मा की विभूतियों का वर्णन है, वहां उसकी माया सम्बन्धिनी शक्ति से सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया की भी परिकल्पना का विवरण मिलता है, जिसका स्वरूप विविध सम्प्रदायों में विभिन्न प्रकार से मिलता है। जीव की उत्पत्ति तथा सृष्टि का निर्माण दोनों का ही साधना पक्ष में प्रमुख स्थान है। अत: संत साहित्य में विशेष रूप से दोनों का ज्ञान अपेक्षित है। प्रस्तुत निबंध में कबीर पंथ एवं दरिया पंथ के साहित्य में सृष्टि निर्माण के लिए जो मान्यताएं निरूपित की गई है, उन पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

सृष्टि प्रारम्भ होने के पूर्व कबीर पंथ एवं दरिया पंथ ने समान रूप से इस मान्यता को प्रतिष्ठा दी है कि विश्व शून्याकार था। कबीर पंथी साहित्य में बताया गया है कि सृष्टि के पूर्व चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था, तब आकाश, पाताल, कूर्म, बाराह, शेष, शारद, गौरि, गणेश, निरंजन, तैंतीस-कोटि देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शास्त्र, वेद, कुरान आदि कुछ भी न थे। इन सब का अस्तित्व बट में छाया की भांति पुरुष समाहित था।[1]

इसी प्रकार की कल्पना दरियासाहब की रचनाओं में भी मिलती है यदि अन्तर है तो केवल इतना ही कि उसमें कबीर पंथी वर्णन कुछ शब्दांतर के साथ प्रस्तुत हुआ है। दरिया साहब ने अपनी एक रचना 'ग्यान रतन' में यह धारणा प्रकट की है कि सत्तर युग तक विश्व शून्याकार था, तब पाप-पुण्य,

---

१. अनुराग सागर, पृ० ८

, राम, वेद, पवन, पानी, शिव, भवानी, गर्व, ज्ञान, कच्छप, बराह, राव-रंक, फल -फूल, गंगा, कृष्ण एवं उनकी मुरली, सूर्य-चन्द्र आदि किसी प्रकार की रचना नहीं हो सकी थी ।[१] इसी प्रकार की विचार धाणा उनकी एक अन्य रचना " दरिया सागर " (पद सं० ६७०-६७४) में भी प्राप्त होती है ।

प्रश्न उठता है कि क्या उपरोक्त धारणाएं उन पंथों की मौलिक उद्भावनाएं हैं ? परन्तु इस प्रश्न का समाधान सहज ही हो जाता है, जब हम देखते हैं कि उक्त मान्यता भारतीय साहित्य में अतीत काल से ही प्रतिष्ठित है और परंपरा गत रूप में इन सम्प्रदायों को विरासत के रूप में मिलती है । इनका मूल स्रोत वैदिक साहित्य में ही नहीं अपितु, विश्व के अन्य धार्मिक साहित्य में भी ढूंढ़ा जा सकता है । क्योंकि इसी प्रकार का वर्णन `बृहदारण्यक` १।३।१, छान्दोग्य, २।१।१-६ एवं ऋग्वेद, १।३।१०-१२ में भी उपलब्ध है । साथ ही इसाई तथा इस्लामी परपराओं में उपर्युक्त विचार धारा लग भग समान रूप से मिलती है ।

कबीर पंथी साहित्य के अनुसार जब हम सृष्टि प्रक्रिया पर विचार करना चाहते हैं, तो हमें अनुराग सागर को ही अध्ययन का केन्द्र स्वीकार करना होगा, यद्यपि इस विषय से सम्बद्ध अन्य अनेक कबीर पंथी ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर सृष्टि विकास का क्रम चित्रित किया जा सकता है किन्तु सृष्टि के विषय में समीचीन निर्णय लेने के लिए हमें कबीर पंथी साहित्य में ~~सर्वप्राचीनतम~~ ग्रन्थ को मान्यता देनी होगी । वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित `अनुराग सागर` के संपादक श्री युगलानन्द बिहारी ने इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों का परिचय देते हुए यह बतलाया है कि उसकी सर्वाधिक प्राचीन प्रति प्रमोद नाम गुरु बालापीर के समय की है, जो अठारह सौ ई० के आस पास कबीर पंथी छत्तीसगढ़ी शाखा के आचार्य थे । एक दूसरी भी विशेषता इस ग्रन्थ में प्राप्त होती है, वह यह कि इसमें ही सृष्टि विकास का पूर्ण कथा शिल्प चित्रित हुआ है और जिन अन्य रचनाओं में ऐसे प्रसंग आए हैं, वे फुटकल रूप में ही देख पड़ते हैं, जिनके आधार पर हमारा मन्तव्य आंशिक रूप से ही पूर्ण हो सकेगा । सृष्टि विकास का उल्लेख यद्यपि `कबीर मन्सूर` में भी आता है, किन्तु यह रचना बिल्कुल अर्वा-

---

१. ज्ञान रतन, पद सं० ६१- ७०

चीन है ।

दरिया पंथी रचना `ब्रह्म विवेक` सृष्टि विकास के लिए विशेष उल्लेखनीय है , इसके आधार पर उसका पूर्ण समन्वित चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है, और इन दोनों रचनाओं से जो हमें उल्लेख प्राप्त होता है उनमें पर्याप्त समानता है । इस प्रकार `अनुराग सागर` एवं `ब्रह्म विवेक` दोनों को ध्यान में रखते हुए सृष्टि का क्रम निर्धारित करना है । और जिनका स्थान इस प्रसंग में महत्वपूर्ण है, उनका भी यथावश्यक निर्देश कर दिया गया है ।

आदि पुरुष—

दोनों पंथों ने सृष्टि का प्रारम्भ एक आदि पुरुष से स्वीकार किया है, जिसके समस्त गुण अलौकिक एवं सर्वथा अद्वितीय चित्रित किये गये हैं । आदि पुरुष का स्थान सृष्टि विषयक विवरण में सर्वथा सर्वोपरि स्वीकार करने की चेष्टा की गई है । सत्पुरुष के द्वारा ही अनन्त सृष्टि का विकास हुआ है ।

किन्तु आदि पुरुष की परिकल्पना भी इन दोनों सम्प्रदायों की कोई अपनी निजी देन नहीं है, न तो इसमें उनकी कोई मौलिक सूझ बूझ ही दृष्टिगोचर होती है । सृष्टि का प्रारम्भ तो आदि पुरुष से ही वेदों में भी स्वीकार किया गया है, और सत्पुरुष की चर्चा लगभग इसी प्रसंग के अनुसार ही पूर्ववर्ती अनेकानेक धार्मिक ग्रन्थों ने भी प्रस्तुत की है । अन्तर केवल इतना ही ढूंढ़ा जा सकता है कि उनकी संज्ञायें कुछ भिन्न सी हैं, जो विशेष महत्व की बात नहीं । इसाई इसलाम एवं हिन्दू आदि सभी धर्मों में आदि पुरुष को यही सम्मान प्रदान किया गया है । ऐसी अवस्था में उपर्युक्त सम्प्रदायों के लिए आदि पुरुष की मान्यता के सम्बन्ध में उपरोक्त वैदिक एवं धार्मिक ग्रन्थ ही मूलाधार रहे होंगे ।

निरंजन :—

आदि पुरुष को जब सृष्टि विकास की इच्छा हुई तब उसने निरंजन नामक पुत्र को जन्म दिया, यह मत लगभग दोनों पंथों में समान रूप से ग्राह्य है । 'अनुराग सागर' में यह उल्लेख आता है कि सत्पुरुष ने सृष्टि प्रारंभ करने वाली बलवती इच्छा को पूर्ण करने के लिए कमल पुरुष की उत्पत्ति की । [illegible]

अनन्तर उन्होंने कूर्म, ज्ञानी, विवेक, धर्मराय सहज, संतोष, सुरति, आनन्द, क्षमा, निष्काम, जलरंग, अचिंत, प्रेम दीनदयाल, धैर्य और योग संतापन उन सोलह अंशों को उत्पन्न किया। 'अनुराग सागर' के अनुसार धर्म राय का अन्य नाम ही निरंजन है।[1] 'वंश पांजी' नामक एक पूर्ववर्ती कबीर-पंथी रचना में इन सोलह पुत्रों का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। निरंजन सत्तर युग तक तप के निमित्त समाधि लगाकर आसीन रहे, इसके अनन्तर अपने तप बल से उन्होंने सत्पुरुष को प्रसन्न कर सृष्टि निर्माण की समस्त सामग्री अपने अधिकार में कर ली। इसी प्रसंग में इन पंथों ने एक कूर्म की भी कल्पना की है, जिसका कि सृष्टि विषयक प्रसंग में अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि दोनों पंथों की धारणा के अनुसार इस कूर्म से ही सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है, परन्तु इस कल्पना का मूल रूप हमें 'ब्राह्मण साहित्य' तथा 'महाभारत' से प्राप्त हो जाता है जिनके अनुसार 'प्रजापति संतति निर्माण के लिए कूर्म रूप से पानी में संचार करता है।'[2]

सृष्टि निर्माण करने के लिए समस्त सामग्री को निरंजन ने कूर्म के कई मुंडों में से तीन को काट कर हस्तगत किया था पर कूर्म ने निरंजन के इस अविनीत व्यवहार से क्षुब्ध होकर सत्पुरुष से शिकायत की। इस पर निरंजन ने पुन: आराधना करके सत्पुरुष को प्रसन्न कर लिया, और सृष्टि के लिए बीज और खेत मांग लिया।

निरंजन का प्रसंग कबीर-पंथी रचना 'कबीर मन्सूर' में कुछ नवीनता लिए हुए आया है, उसके अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्म सृष्टि हुई। ब्रह्म ने सहज, अंकुर, इच्छा, सोहं अचिंत और अक्षर नामक छ: पुत्रों को जन्म दिया। सत्पुरुष ने अपनी प्रतिभा से एक सातवें पुत्र की उत्पत्ति की, जिसे काल पुरुष या निरंजन के नाम से पुकारा गया, इसके जन्म की कहानी कुछ विलक्षण ढंग से दिखलाई गई है।[3]

'निरंजन' शब्द भी इन पंथों अथवा अन्य संत सम्प्रदायों की कोई नई

---

१. अनुराग सागर, पृ० १४

२. (शत०ब्रा०७।५।१, ५-१० महाभारत, आ०प०, १६ पद्मपुराण उ० २५६
—श्री सिद्धेश्वर शास्त्री भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० १५५

३. कबीर मन्सूर, पृ० २३

उद्भावना नहीं है, प्रत्युत् इसकी परम्परा वेदकालीन साहित्य से चली आ रही है। 'मुण्डकोपनिषद्' में परब्रह्म सूचक अर्थ की योजना बड़ी ही आकर्षक शैली में की गई है। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में निर्गुण ब्रह्म के लिए 'निरंजन' शब्द का प्रयोग किया गया है, इसी प्रकार ' श्वेताश्वेतरोपनिषद्' में भी निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवंध निरंजनम्।' कह कर ब्रह्म के समनार्थक रूप में उसे सादर स्वीकार किया गया है।

हिन्दी साहित्य के स्वर्ण काल में भी निरंजन शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है विशेष रूप से योगमंत्र एवं भक्ति साहित्य में यह नाम अत्यधिक प्रयुक्त हुआ है। साथ ही निरंजन शब्द कालान्तर में इस प्रकार अपनी महत्ता के शीर्षबिन्दु पर पहुंच गया कि मध्ययुग में निरंजन के नाम पर नाना पंथ भी चल पड़े। निरंजन शब्द का प्रयोग कबीर ने अपनी रचनाओं में बड़ी ही पवित्रता एवं सद्भावना के साथ किया है, और जहां तक सम्भावना है, वे निरंजन शब्द के प्रयोग के लिए नाथपंथियों से प्रभावित रहे होंगे। यदि इस दृष्टि से हम कबीर-साहित्य का अध्ययन करें तो देखेंगे कि वे निरंजन का कृपा पात्र बनकर उसके अभय शरण की तीव्र लालसा रखते थे। वे कहते हैं कि हे गोविन्द ! तूं ही निरंजन है, तू ही राजा है, मेरा निरंजन तो अरूप, अरेख है और वह माया मुक्त है, उसका न आदि है न अन्त है। वह धरती आकाश से परे है और नाद विन्दु से भी परे है।[१]

कबीर ने जिस निरंजन शब्द का प्रयोग अपने साहित्य में पुनीत आस्था एवं सद्भावना के साथ किया था, कालान्तर में कबीर-पंथ में वही निरंजन छल, छद्म एवं प्रपंचकारी कुरीतियों का द्योतक बन गया और इसी पवित्र मूर्ति पर पंथावलम्बियों ने कलंक के छींटे फेंकना प्रारम्भ किया। 'नीरंजन' के इस भाग्य विपर्यय पर विद्वानों ने विचार किया है।

उक्त समस्या का समाधान तत्कालीन सम्प्रदायगत साधनाओं एवं वैचारिक

---

१. कबीर ग्रन्थावली, पृ० १२६ (हिन्दी परि०)

मान्यताओं के अध्ययन से हो सकता है। जब हम उस समय के वातावरण को देखते हैं तब पता चलता है कि जिस समय कबीर-पंथ अपने विकास का मार्ग ढूंढ़ रहा था, उसके अपने निश्चय के समक्ष दो शक्तिशाली सम्प्रदाय थे, जिन्हें कबीर-पंथ से निम्न स्तर का सिद्ध करने का प्रयास कबीर-पंथी संतों को वांछनीय समझ पड़ा होगा। उड़ीसा का धर्म सम्प्रदाय जिसमें गुह्य रूप से बौद्ध धर्म के बीज बिखरे पड़े थे, पर्याप्त विकास की ओर गति शील था ऐसी ही अवस्था में वैष्णव धर्म कम उन्नति के शिखर पर न था, यही कारण रहा होगा कि इन उभय भक्ति सम्प्रदायों का प्रभाव स्पष्ट ही पड़ा हो। परन्तु भिन्नता इस बात की थी कि उनके उपास्यदेवों को कबीर-पंथ ने तिरस्कार एवं हेय दृष्टि से देखने का प्रयास किया। धर्म सम्प्रदाय के उपास्य देव निरंजन थे कबीर-साहित्य में तो निरंजन का स्थान परमदेवाधिदेव के रूप में स्वीकृत था, परन्तु कबीर-पंथ में वही निरंजन माया मय एवं अनेक प्रकार की छल प्रपंच की शक्तियों का द्योतक बन गया, उसका चरित्र उद्दंडता एवं दुष्टता से पूर्ण दूषित है। सृष्टि रचना की सम्पूर्ण सामग्री कूर्म जी से छीन कर सम्पूर्ण सृष्टि का नियामक बन गया और प्रतिदिन तप्त शिला पर भून कर एक लक्ष जीवों का भोजन किया करता है।[1] कबीर-पंथ की छतीस गढ़ी शाखा में निरंजन का अर्थ काल या निरंजन का द्योतक स्वीकार किया गया है।

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है कि उड़ीसा में अभी निरंजन-पंथ प्रचलित है, जिससे निर्गुण साधना प्रभावित है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार धर्म सम्प्रदाय झारखण्ड से लेकर रीवां तक प्रचलित था, जिसकी सारी मान्यताओं को कालान्तर में कबीर-पंथ ने आत्मसात कर लिया सम्भवतः इसीलिए निरंजन सम्बन्धी विचित्र आख्यानों की कल्पना कबीर-पंथ में चल पड़ी।

उड़ीसा का धर्म सम्प्रदाय के प्रभाव के साथ साथ रमाई पंडित के 'शून्य-पुराण', सीता रामदास के 'धर्म मंगल' का प्रभाव भी कबीर-पंथ पर पड़ा है। 'श्रीमद्भागवत' (गीता प्रेस प्रथम खण्ड पृ० १६६) में निरंजन वाली कल्पना पर लक्षित होता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि निरंजन का सम्बन्ध बुद्ध से भी जोड़ा जा सकता है।[2]

---

१. कबीर मन्सूर, पृ० २६-२७
२. देखिए वि०भा०प०, खण्ड ५, अंक ३ में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का लेख।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं आचार्य क्षितिमोहन सेन का उपर्युक्त मत समीचीन ही जान पड़ता है। कबीर पंथ का सम्बन्ध अवश्य ही उड़ीसा से रहा होगा, क्योंकि कबीर पंथी रचनाओं में प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि कबीर ने जगन्नाथ जी के मन्दिर की कई बार समुद्र की बाढ़ से रक्षा की थी, और वहां के पंडे के जलते हुए पैर को पानी के छींटे से शीतल किया था। इन कहानियों से ~~कबीर के जिस अलौकिकएवं अद्भुत चरित्र की परिकल्पना की जा सकती है, उससे~~ इस निष्कर्ष पर पहुंचना ~~जा सकता~~ है कि कबीर पंथ का अवश्य ही अभिन्न सम्बन्ध उड़ीसा से रहा होगा। यह बात डा० केदारनाथ द्विवेदी की इस धारणा से और भी पुष्ट हो जाती है कि सुखदास साहब जो कबीर पंथ के ८ वें गुरु थे, के पूर्व के अधिकांश आचार्यों की समाधियां पुरी में प्राप्त होती हैं।[1] इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि अवश्य ही काशी में कबीर चौरा मठ स्थापित होने के पूर्व कबीर पंथ का पूरा प्रभाव पुरी में रहा होगा।

दरिया साहब की रचनाओं में निरंजन के लिए अब्दुल्ला नाम का प्रयोग भी मिलता है, जिससे उन पर इसलामी प्रभाव परिलक्षित होता है। अब्दुल्ला के क्रिया कलाप का चित्रण दरियापंथी साहित्य में ठीक उसी प्रकार का है जैसा कबीर पंथी साहित्य में निरंजन का है।

आद्या —

निरंजन की उत्पत्ति मात्र से सृष्टि का विकास असम्भव था, इसलिए आदि पुरुष को एक आद्या नाम्नी स्त्री को जन्म देना पड़ा। आद्या सम्बन्धी कल्पना में भी दोनों पंथों में बहुत कुछ साम्य है। इस नारी के रूप लावण्य को देखकर निरंजन कामासक्त हुए परंतु सवप्रथम आद्या ने उनके प्रणय निवेदन को अस्वीकार कर दिया, जिससे कुपित होकर निरंजन उसे निगल गया, अन्तत: योगजीत के प्रयास से पुन: आद्या की उत्पत्ति हुई और कालान्तर में निरंजन एवं आद्या दाम्पत्य बन्धन में बंध गए और दोनों के संयोग से (संसर्ग से) ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की उत्पत्ति हुई। दरिया साहब ने इसका संकेत निम्नलिखित रूप से किया है।

---

१. कबीर और कबीर पंथ, पृ० १६४

साखी

तीन अंश है जोति से ब्रह्मा,बिस्नु महेस ।
आदि ब्रह्म वोए पुर्बहहीं, ताको सुनो संदेस ।। १० ।।

—दरिया सागर, पृ० १५

आद्या नाम्नी स्त्री की परिकल्पना दोनों पंथों में समान रूप से प्राप्त होती है। दरियापंथी साहित्य में इसके और भी अनेक नाम आए हैं :— यथा —आदि ज्योति जगज्जननी एवं आदि भवानी आदि । इस आदि ज्योति या आद्या नाम्नी स्त्री के विषय में भी इन पंथों के अपने मस्तिष्क की कोई नई उपज नहीं है । क्योंकि भारतीय दर्शन में परमात्मा के साथ उसकी शक्ति की कल्पना अतीत काल से चली आ रही है ।'सांख्य दर्शन' में इस निरंजन एवं आदि शक्ति को पुरुष एवं प्रकृति कहा गया है । कबीर साहब या अन्य निर्गुण विचार धारा वाले संतों ने निरंजन और आदि शक्ति (आदि ज्योति, आदि भवानी, माया) तथा सगुण उपासकों ने उन्हें ब्रह्म एवं माया का रूप प्रदान किया है । इन्हीं आदि पुरुष एवं आदि शक्ति के संयोग से अनंत सृष्टि की रचना मानी गई ।

संतानोत्पत्ति के पश्चात् निरंजन आदि शक्ति से यह कहा कि मेरे विषय में किसी प्रकार की बात पुत्रों से न बताना, न तो मेरे पते से ही उन्हें अवगत कराना । इसके अनन्तर वे अन्तर्धान हो गए । इस प्रकार का प्रसंग दोनों पंथों में समान रूप से प्राप्त होता है । इसके पश्चात् आद्या ने अपने शरीर से तीन पुत्रियों को उत्पन्न किया जिन्हें समुद्र में जाकर छिप जाने का आदेश दिया । आद्या ने अपने पुत्रों को समुद्र मंथन के लिए भेजा ।[१] 'ज्ञान सागर' में इस प्रकार का वर्णन आता है कि पर्वत को मथानी एवं शेष नाग को रज्जु बनाया गया । समुद्र मंथन के अनन्तर तीनों कन्याएं प्रकट हुईं जिन्हें सरस्वती , सावित्री तथा पार्वती के नाम से अभिहित किया गया । उन्होंने क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश को वरण किया । साथ ही मंथन से जो वेद निकला उसे ब्रह्मा , अमृत को विष्णु एवं हलाहल को शिव ने ग्रहण किया । मंथन में इस प्रकार [illegible] कुल १४

---

१. अनुराग सागर, पृ० २६

रत्न प्राप्त हुए थे, जिनके विचरण का अधिकार आधा को ही था ।[१]

उपर्युक्त विवरण में सरस्वती नाम्नी कन्या के लिए एक और पौराणिक कहानी मिलती है । 'मत्स्य पुराण' में ब्रह्मा की पत्नी शतरूपा के लिए सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्माणी आदि अनेक नामांतर प्रस्तुत किये गये हैं । शतरूपा ब्रह्मा की पुत्री एवं पत्नी भी है, प्रजापति एवं ब्रह्मा दोनों के चरित्रों में दुहितृ गमन की यह कथा समान रूप से मिलती है ।[२]

समुद्र मंथन का वृत्तान्त इसी रूप में 'अनुराग सागर' में भी हमें देखने को मिलता है ।[३]

'ज्ञान सागर' ~~से प्राप्त हुए समुद्र मंथन के प्रसंग से~~ एवं 'कबीर मन्सूर' के समुद्र मंथन के प्रसंग में पर्याप्त समानता है, अन्तर केवल राहु और केतु के प्रसंग का है जिसे 'ज्ञान सागर' के रचयिता ने त्याज्य समझा है । पुन: आधा ने अपने पुत्रों को सृष्टि रचना के लिए आदेश दिया, इस प्रकार अंडज की आधा ने, पिंडज ब्रह्मा ने, उष्मज विष्णु ने तथा उद्भिज की सृष्टि शिव ने की । इस प्रकार ८४ लाख योनियों का निर्माण हुआ । दरिया-पंथी साहित्य में समुद्र मंथन का प्रसंग कबीर-पंथ के सदृश ही देखा जा सकता है ।[४]

समुद्र-मंथन के प्रसंग 'विष्णु पुराण' एवं 'भागवत् पुराण' आदि में मिलते हैं, इसलिए उस प्रसंग में भी इन पंथों का अपना कोई नूतन ~~संदेश~~ उद्भावना नहीं प्रतीत होती ।

वेद के अध्ययन से ब्रह्मा को जब इस वास्तविकता का ज्ञान हो गया कि उनका जन्म दाता एक ऐसा दिव्य पुरुष है जिसका आकार विराट शिर आकाश में एवं पांव पाताल में है । चारों दिशायें, उसके कान और सूर्य और चन्द्र उसके

---

१. ज्ञान सागर, १६-२०

२. भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ० ५२८-२६

३. अनुराग सागर, पृ० २७

४. ज्ञान दीपक, पृ० ४४-४५

नेत्र हैं। तब उन्हें शंका हुई, और उत्सुकतावश अपनी माँ से ऐसे पुरुष के विषय में प्रश्न किया, जिसके विषय में कबीर दास ने एक रमैनी में संकेत किया है :—

तब बरम्हा पूछा महतारी । को तोर पुरुष कवन तैं नारी ।।

इस पर आद्या ने उत्तर दिया —

हम तुम तुम हम और न कोई ।

तुमहि पुरुष हमहीं तोर जोई ।।

—बीजक प्रथम रमैनी ।

कबीर के इस वर्णन के अनुरूप ही 'अनुराग सागर' में इस प्रकार के पद्य द्रष्टव्य हैं —

ब्रह्मा कहे जननी सुनो कहहु कहा कंत तुम्हार है ।

x x x

कहै जननी सुनहु ब्रह्मा, कोउ नहिं जनक तुम्हार हो ।।

हमहि ते भई सब उत्पत्ति, हमहि सबकीन सम्हार हो ।।२१।।

— अनुराग सागर, पृ० ३०

दरिया साहब कृत 'ब्रह्म विवेक' में भी इसी प्रकार का प्रसंग देखने को मिलता है, जिसमें कबीर पंथी साहित्य के ठीक अनुरूप ही ब्रह्मा अपनी जननी से जनक के विषय में प्रश्न करते हैं कि कौन ऐसा पुरुष है जिसकी तुम पत्नी हो, तब उत्तर में आद्या कहती है कि तब हमें और तुम्हें छोड़कर और कोई न था तुम्हीं पुरुष थे और मैं नारी ।[१]

आद्या के इस प्रत्युत्तर पर ब्रह्मा की जिज्ञासा तुष्ट न हुई और पर्वत पर जा कर पितु दर्शनार्थ एकांत में घोर व्रत धारण करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया, इस प्रसंग का वर्णन दोनों पंथों के साहित्य में समान रूप से प्रस्तुत किया गया है। अंतत: ब्रह्मा को अपने उद्देश्य की सफलता के लिए पर्वत की ही शरण लेनी पड़ी, परन्तु अभाग्यवश एकांत में घोर तपश्चर्या के बावजूद भी वे अपने दृढ़ निश्चय में

---

१. ब्रह्म विवेक, पृ० ३३६

असफल ही रहे। पर्याप्त समय समाप्त होने पर माता को सृष्टि विषयक चिंता उत्पन्न हुई, अस्तु आद्या ने ब्रह्मा को वापस बुला लाने के लिए गायत्री को भेजा।

ब्रह्मा को घोर समाधि में लीन हुआ देखकर, गायत्री ने साहस सम्हालते हुए, मातृ संदेश सुनाया जिससे उनकी समाधि टूटी, परन्तु उन्हें मातृ आदेश पालन करने में बहुत बड़ी लज्जा का अनुभव हो रहा था क्योंकि उनका व्रत अभी तक अपूर्ण ही था, परन्तु जब गायत्री ने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि "पितृ दर्शन की झूठी साक्षी माता के समक्ष देकर आप के उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं उद्यत हूं।" साथ ही वहीं पर गायत्री ने एक पुष्पावती नामक कन्या को भी उत्पन्न किया, और उसको भी इस प्रकार की साक्षी का समर्थक बनाया। इस प्रकार अपना उद्देश्य सिद्ध होते देख कर सहर्ष माता के समक्ष उपस्थित होने का प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार कर लिया।

आद्या के समक्ष जब उक्त प्रसंग स्तुत किया गया तब उसने अपनी शक्ति से उनके ऐसे षड्यंत्र को भलीभांति समझ लिया। इस प्रकार ब्रह्मा के इस असत्य-वादन पर कुपित होकर आद्या ने उन्हें शाप दिया कि मिथ्यावादन के परिणाम-स्वरूप तुम्हारी पूजा न होगी और तुम्हारी संतान भी मिथ्याचार करेगी। गायत्री को यह शाप दिया कि तुम्हारा पति वृषभ होगा और तुम गाय बनोगी और विष्ठा भक्षण करोगी और उसकी कन्या पुष्पावती को केतकी बन कर दुर्गन्ध का प्रसार करने का शाप दिया।[१]

कबीर पंथ में ब्रह्मा के लिए शाप भ्रष्ट होने के लिए जिस प्रसंग का अवलम्ब लिया गया है उसका मूल रूप हम संस्कृत पौराणिक गाथाओं में भी पाते हैं। 'स्कन्दपुराण' में इस प्रकार का वर्णन आया है कि सृष्टि निर्माण के लिए सर्व-प्रथम ब्रह्मा एवं नारायण की उत्पत्ति हुई, दोनों में यह विवाद कि कौन श्रेष्ठ है? शंकर ने प्रस्ताव रखा कि जो शिवलिंग के आदि अंत का शोध कर सर्वप्रथम उसकी सूचना देगा वही श्रेष्ठ माना जाय। ब्रह्मा ने उर्ध्वमार्ग से शोध आरम्भ किया,

---

१. अनुराग सागर, पृ० २७-२८

किन्तु सफलता न मिली । तब इसने गौ एवं केतकी को अपना झूठा साक्षी बना कर शिव के सम्मुख प्रस्तुत किया । परिणामत: ब्रह्मा को श्रेष्ठ पद दिया गया । किन्तु तथ्य से अवगत होने पर नारायण को श्रेष्ठ पद देकर ब्रह्मा को अपूज्य ठहराया गया ।[१]

दरिया-पंथ में भी उक्त प्रसंग लगभग समान रूप से मिलता है । ब्रह्मा आदि के शाप भ्रष्ट होने का प्रसंग `ब्रह्मविवेक` (पृ० ३४२) में आया है, जिनसे निस्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों पंथों के साहित्यों में इस दृष्टि से पर्याप्त एक-रूपता है । डा० केदारनाथ द्विवेदी ने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ब्रह्मा को आद्या द्वारा जो शाप दिया गया वह सम्भवत: शैव साधकों एवं ब्राह्मणों के प्रति कबीर-पंथी साधकों की अवहेलना के परिणामस्वरूप है ।[२]

किन्तु जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, ब्रह्मा के शाप भ्रष्ट होने की कथा भी किंचित् भिन्नता के साथ'स्कंदपुराण'में मिल जाती है जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान अभी तक आकृष्ट नहीं हुआ था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि विकास की परिकल्पना कबीर-पंथ तथा दरिया-पंथ में लगभग समान रूप में मिलती है, और यह स्पष्ट है कि दरियापंथ इस दृष्टि से कबीर-पंथ का ऋणी है । साथ ही यह भी स्पष्ट रूपसे कहा जा सकता है कि स्वत: कबीर-पंथी सृष्टि प्रक्रिया वर्णन संस्कृत पौराणिक आख्यानों द्वारा प्रभावित है, और उसमें कोई भी ऐसी महत्त्वपूर्ण कल्पना नहीं मिलती जो मौलिक मानी जा सके ।

ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध कोसमझने के लिए कार्य-कारण सम्बन्धी कुछ मत वैभिन्य भी प्रचलित हैं :- आरम्भ वाद, परिणामवाद और विवर्तवाद । आरम्भवाद में कार्य को उत्पत्ति से पूर्व असत् माना जाता है । यथा: मिट्टी से जब तक घड़े का निर्माण नहीं हो जाता तब तक वह असत है, यह सिद्धान्त न्याय

---

१. स्कन्दपुराण, १।१।६, १।३।२, १।६।१५, ३।१।१४

२. वैदिक सम्मेलन पत्रिका भाग ४६, संख्या १, सं० १९८४: कबीर पंथ पर पौराणिक प्रभाव शीर्षक लेख, पृ० ११

वैशेषिकों द्वारा प्रतिपादित किया गया । इसके अनुसार जगत् का मूल कारण परमाणु है । इसलिए इसे परिणामवाद भी कहते हैं, यह मत 'सांख्य' का है । इसके अनुसार कार्य को उत्पत्ति से पहले भी सत स्वीकार किया जाता है, जैसे घड़ा या दही बनने से पूर्व अव्यक्त रूप-में मिट्टी या दूध में विद्यमान रहते हैं बनने पर प्रत्यक्ष हो जाते हैं, इसी प्रकार मूल प्रकृति वस्तुत: परिवर्तित होकर जगत् के रूप में हो जाती है । विवर्तवाद मानता है कि कारण ही सत् है कार्य नहीं । मिट्टी घड़ा बनने की पूर्व अवस्था में थी और बाद में भी रहेगी । और घड़ा न तो पहले था और न बाद में रहेगा । जो वस्तु आदि, मध्य एवं अन्त तक सत् रहे वही सत है । यह अद्वैत वेदांतियों का सिद्धान्त है इनके द्वारा ब्रह्म को छोड़ कर समस्त जगत् असत् सिद्ध किया गया और उसे वास्तविक विकार स्वीकार किया गया । रस्सी में सांप के भास होने को ही विवर्त्त कहते हैं । कबीर ने आरम्भवाद को पूर्णतया तिरस्कृत समझा है, उनका कुछ विश्वास परिणाम वाद में अवश्य रहा है, वैसे वे विवर्तवाद के ही पूर्ण समर्थक थे ।

---

(६०) माया

सम्पूर्ण सृष्टि-व्यापार का अवलोकन करने पर इस प्रकार की जिज्ञासा होती है कि अखिल सृष्टि का विकास किन तत्वों से सम्भव हुआ ? सृष्टि के जिन रूपों का प्रत्यक्षीकरण हमारे सम्मुख होता है , उनके गुणों को हम जिस रूप में देखते हैं मूल रूप में उन्हें वैसे ही होना चाहिए । `सांख्य` मतानुसार जिस सत्कार्यवाद की मान्यता को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है उसका तात्त्विक विवेचन करने पर इस प्रकार का विचार सुनिश्चित किया जाता है कि किसी वस्तु अथवा कार्य में जिन गुणों का भान होता है जिससे उनकी उत्पत्ति हुई, उसमें सूक्ष्म रूप से अवयव अनिवार्य रूप से विद्यमान होना चाहिए (सां० का० ६) । बौद्ध एवं कणाद् आदि इसी प्रकार की धारणा में विश्वास करते हैं कि किसी भी पदार्थ का पूर्ण रूपेण विनाश सम्भव नहीं क्योंकि किसी न किसी रूप में उसका परिणाम स्थिर होता रहता है, वैसे ही किसी वस्तु का नाश न होकर केवल रूप परिवर्तन ही सम्भव है । एक वस्तु के नाश के पश्चात् दूसरे पदार्थ की रचना होती है । जिस प्रकार बीज वपन के पश्चात् उसका एक मात्र आकार परिवर्तन होता है, नाश नहीं । अंतत: पेड़ की सृष्टि होती है । ` सांख्य शास्त्र` की मान्यतानुसार इस संसार में जिस वस्तु का पहले कुछ अस्तित्व नहीं वह कभी उत्पन्न नहीं हो सकती । अर्थात् नई वस्तुओं का उत्पादन सर्वथा असम्भव है — क्योंकि शून्य से एक मात्र शून्य की ही उत्पत्ति सम्भव है और कुछ नहीं । `छान्दोग्य उपनिषद` में बताया गया है कि` कथमसत: संजायेत्` जो है ही नहीं उसके द्वारा जो है वह किस प्रकार प्राप्य है ?[1] सृष्टि के मूल कारण के लिए उपनिषदों में `असत्` शब्द का प्रयोग मिलता[2] है । असत् शब्द का अभिप्राय अभाव नहीं है किंतु 'वेदान्त' सूत्रों में इस प्रकार का

वर्णन आता है कि `असत्` शब्द से नाम रूपात्मक प्रत्यक्ष स्वरूप अर्थात् अवस्था का अभाव ही विवक्षित है। दूध के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ से दही की सम्भावना नहीं है इस विषय पर ध्यान से विचार विमर्श करने पर निर्णय लिया जा सकता है कि पानी से दही नहीं निकल सकता, तिल के अतिरिक्त बालू से तेल नहीं निकाला जा सकता। इन सबका अभिप्राय यह है कि जिसमें मूल रूप में गुण विद्यमान ही नहीं है उससे अभी जो अस्तित्व में है वह किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। यही एकमात्र कारण है कि 'सांख्य' मतानुयायियों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि किसी कार्य के वर्तमान द्रव्यांश मूल कारण में भी किसी न किसी रूप में अवश्य ही विद्यमान रहते हैं। इसी सिद्धान्त को `सत्कार्य वाद` कहा गया।

अखिल सृष्टि में हमें अनेक नाम रूप देखने को मिलते हैं। उदाहरणार्थ वृक्ष, पशु-पक्षी, कीट, पतंग, पत्थर, सोना, चांदी हीरा जल, वायु आदि। इनके अनन्तर (विविध) नामों के साथ गुणों में भी पर्याप्त पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। 'सांख्य' मतावलम्बियों का विचार है कि वास्तव में यह पार्थक्य उन वस्तुओं के मूल रूप में नहीं, प्रत्युत समष्टिगत रूप से समग्र पदार्थ मूलत: एक ही हैं। अर्वाचीन रसायन शास्त्रवेत्ताओं ने गवेषणा किया किन्तु अब पाश्चात्य विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ये मूल तत्व स्वयं सिद्ध एवं स्वतंत्र नहीं हैं क्योंकि इन सबका आधार कुछ और ही है। इन सब में समष्टि रूप से कोई एक ऐसी शक्ति अथवा सत्ता केन्द्रित है जो कि समान रूप से सब में निहित है। उदाहरणार्थ सूर्य-चन्द्र, तारागण, पृथ्वी आदि यावत् रचना हुई है, उन्हीं का समष्टिगत नाम ` सांख्य दर्शन` में `प्रकृति ` है। जिस प्रकार से किसी जंगल के समस्त वृक्षों को एक एक करके नाम देना चाहें तो उनके अनेक नाम गिनाये जा सकते हैं, किन्तु उन सब के संयोग से जिस समूह का निर्माण होता है, उसे हम जंगल के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकते। उसी प्रकार से सम्पूर्ण सृष्टि के एक कण कण का यदि हम समीचीन नाम रखना चाहें तो `प्रकृति` को ही स्थान देना होगा। प्रकृति का अभिप्राय ` मूल का` है, इस प्रकृति के अनन्तर जिन वस्तुओं की रचना होती है उन्हें विकृति अथवा मूल द्रव्य के परिणामस्वरूप माना जा सकता है।

नामों के अनन्तर सृष्टि के अनन्त अंगों उपांगों में निहित गुणों की ओर ध्यानाकर्षित करना है कि यदि इस मूल द्रव्य में गुणों के विषय में एकता हो तो 'सांख्य' मत द्वारा प्रतिपादित सत्कार्यवादानुसार इन एक ही गुण से जगत् के असंख्य गुण वाले पदार्थों की सृष्टि कदापि सम्भव नहीं। साथ ही जब हम सृष्टि का निरीक्षण करते हैं तो पता चलता है कि इसके विभिन्न अवयवों या अंगों में अनेक गुण पाये जाते हैं, इन विभिन्न गुणों वाली सृष्टि के विषय में भी दार्शनिकों एवं चिंतकों ने सुचारु रूप से मान्यता स्थापित की कि चाहे किसी भी प्रकार के गुण वाली वस्तु क्यों न हो परंतु उसकी गणना अपने गुणों के दृष्टिकोण से किसी एक के अन्तर्गत हो सकती है। अर्थात् उन्होंने समस्त गुणों को तीन कोटियों में विभक्त किया जो कि इस प्रकार है :—सत्व, रज एवं तम। प्रथम पूर्ण रूपेण विशुद्ध एवं पवित्र या पूर्णावस्था, द्वितीय ठीक उसके प्रतिकूलावस्था जो कि अधमावस्था स्वीकार की जा सकती है और तृतीय अवस्था का जन्म तब होता है जब द्वितीय गुणों वाली अवस्था का चरमोत्कर्ष होने लगता है। इस प्रकार शुद्धावस्था अर्थात् पूर्णावस्था को सत्व गुण, अधमावस्था को तमो गुण इसके चरमोत्कर्ष वाली अवस्था का नाम रजोगुण है। सांख्य-वादियों की धारणा है कि जगत् के समस्त पदार्थों में इन गुणों में कोई न कोई गुण अवश्य ही विद्यमान रहते हैं। प्रारम्भ में इन गुणों की गति समान रूप से रहती है। इसीलिए इस प्रकार की साम्यावस्था सृष्टि के आदि में थी, एवं प्रलय के पश्चात् भी प्रकृति की इस प्रकार साम्यावस्था तद्रूप ही रहेगी। साम्यावस्था का अभिप्राय पूर्णशांत अथवा पूर्ण गतिहीनता है किन्तु जब ऐसी अवस्था का आगमन होता है कि इन गुणों का विकास साम्यावस्था को छोड़ कर न्यूनाधिक क्रम से होने लगता है तभी सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन गुणों में इस प्रकार का अंतर क्यों आ जाता है? किन्तु इस प्रकार के क्रम को सांख्यवादियों ने एक सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार किया है कि यही तो प्रकृति का धर्म है।

प्रकृति के इन तीनों गुणों के कारण ही इसे त्रिगुणात्मिका कहा गया है, जो कि अव्यक्त स्वयंभू और सम भाव से अखिल सृष्टि में परिव्याप्त है, आकाश वायु प्रभृति भेद तो कालान्तर में हो सके, यद्यपि समस्त पदार्थ पृथक् रूप

से सूक्ष्म एवं व्यक्त हैं, और इनमें विद्यमान होने वाली शक्ति सर्वथा जिसे कि मूल प्रकृति कहा गया है वह सर्वव्यापी एवं अव्यक्त । पर ध्यान देने की बात है कि 'वेदान्त'में प्रतिष्ठित परब्रह्म एवं'सांख्यदर्शन' की प्रकृति में पर्याप्त पार्थक्य है । इसका कारण है कि परब्रह्म तो चैतन्य एवं निर्गुण स्वीकार किया गया है किन्तु इसके प्रतिकूल त्रिगुणों की साम्यावस्था रखने वाली प्रकृति तो जड़ एवं सगुण सिद्ध हुई, इसलिए दोनों में विरोधाभास के लक्षण प्रतीत होते हैं। प्रकृति को'सांख्य दर्शन' में अक्षर भी नाम दिया गया है और इसके द्वारा उत्पन्न सभी पदार्थों को क्षर, किन्तु इसका अभिप्राय पूर्ण विनाश नहीं अपितु रूप परिवर्तन ही है। प्रकृति के अन्य अनेक क्रियाओं के कारण इसके विविध नाम गिनाये गये हैं। यथा: —' प्रधान' , 'गुण-क्षोभिणी' — बहुधानक' एवं 'प्रसव-धर्मिणी' आदि सृष्टि के मुख्य सम्पादन कार्य अपने ऊपर लेने के कारण इसे प्रधान कहा गया , प्रकृति अपने साम्यावस्था का भंग स्वतः करती है इसलिए ' गुण-क्षोभिणी , कहा गया , समस्त पदार्थों के त्रिगुण रूपी बीज वपन करने में एक मात्र प्रकृति ही सक्षम है, इसलिए 'बहुधानक' और इसी के माध्यम से सब की उत्पत्ति सम्भव है, इस कारण से उसे प्रसवधर्मिणी कहा गया । इसी प्रकृति को वेदान्तियों ने 'माया' नाम दिया । हिगैल के मतानुसार अखिल सृष्टि का मूल कारण जड़ और अव्यक्त प्रकृति ही है इसीकारण से उसने अपने सिद्धान्त को अद्वैत कहा है।

सांख्य दार्शनिकों की धारणा है कि मन , बुद्धि एवं अहंकार पंचभूतात्मक जड़ प्रकृति के ही धर्म हैं साथ ही इससे ही इन सब की उत्पत्ति भी सम्भव है। जड़ प्रकृति से चेतन जगत् की सृष्टि कैसे हुई, इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार प्रकृति का ज्ञाता जब तक प्रकृति से पृथक् नहीं तब तक ऐसी परिस्थिति का उत्पन्न होना भी पूर्ण असम्भव है।" मैं यह जानता हूं —वह जानता हूं, " आदि भाषा का प्रयोग भी वह नहीं कर सकता । व्यवहारिक दृष्टि से भी देखा जाता है कि हम जो प्रत्यक्ष देखते हैं वह मुझसे भिन्न है। इसीलिए सांख्य वेत्ताओं का विचार है कि ज्ञाता एवं ज्ञेय , देखने वाला और देखने की वस्तु या प्रकृति को मूलत: भिन्न भिन्न स्वीकार करना चाहिए ।[१]

एक मात्र प्रकृति के माध्यम से ही सृष्टि का विकास तो सम्भव नहीं, इसीलिए सर्वप्रथम सर्वनियंता परब्रह्म, की परिकल्पना की गई, जिसका स्थान सर्वोपरि प्रतिष्ठित कर उसे पुरुष के नाम से अभिहित किया गया। सृष्टि का विकास इन्हीं 'प्रकृति एवं पुरुष' के योग से स्वीकार किया गया है। पुरुष का अस्तित्व तो प्रकृति से भिन्न है, त्रिगुणात्मिका प्रकृति जो कि सगुण है उसके प्रतिकूल पुरुष निर्विकार एवं निर्गुण है। प्रकृति स्वयं जड़ है किन्तु पुरुष सचेतन है, प्रकृति के माध्यम से ही समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं और पुरुष उदासीन एवं अकर्ता है, प्रकृति अंधी है पर पुरुष साक्षी। पुरुष एवं प्रकृति को अनादि स्वीकार किया गया है।[1] वैसे इनकी मान्यता समष्टि गत रूप से सर्वग्राह्य है। प्रकृति एवं पुरुष को छोड़ कर तीसरा और कोई सृष्टि का कारण नहीं। निर्गुण पुरुष जब कुछ नहीं करता, तब किस प्रकार सृष्टि का विकास हुआ? इसका समाधान यह है कि बछड़े के निकट रहने पर जिस प्रकार गाय के स्तन से दूध आ जाता है, लौह चुंबक पास होने से लोहे में आकर्षण शक्ति का संचार हो जाता है, उसी प्रकार जब प्रकृति एवं पुरुष का संयोग होता है, तब प्रकृति अपने गुणों का प्रसार पुरुष के समक्ष करने लगती है।[2] यद्यपि पुरुष चेतन एवं ज्ञाता है तथापि निर्गुण सिद्ध होने के कारण वह स्वयं कोई कार्य करने में अशक्त है, और इस प्रकार की क्षमता प्रकृति में निहित है, फिर भी विडम्बना इस बात की है कि उसमें कार्य क्षमता के बावजूद ज्ञान का अभाव है, जिसके परिणामस्वरूप उसको भान नहीं होता कि क्या करना है? ऐसी अवस्था में प्रकृति एवं पुरुष का संयोग अंधे एवं लंगड़े की जोड़ी के सदृश बैठ जाता है कि जिस प्रकार अंधा लंगड़े के कंधे पर बैठ कर लंगड़ा पथ प्रदर्शन करे तथा पंगु उसकी सहायता से मार्ग पर चले, वैसे ही इनके योग से सृष्टि का कार्य सम्पन्न होता है।

सृष्टि के प्रारम्भ में अव्यक्त और अनित्य परम तत्व जिस देश काल आदि नाम रूपात्मक सगुण शक्ति से, व्यक्त अर्थात् इस दृष्टिगोचर होने वाली

---

१. गीता, १३।१६

२. सांका०, ५७

सृष्टि का निरूपण हुआ, उसी को वेदांतियों ने माया कहा है।[1] ब्रह्म अविनाशी एवं प्रकृति नाशशीला है ब्रह्म द्वारा माया पर अस्थाई जो आवरण हमें प्रत्यक्ष इन्द्रियगोचर है, उसी को 'सांख्यशास्त्र' में 'त्रिगुणात्मिका' प्रकृति के नाम से अभिहित किया गया। सांख्य मतानुयायियों की धारणा है कि पुरुष एवं प्रकृति दोनों स्वयंभू एवं स्वतंत्र हैं, परन्तु माया का अस्तित्व सदा परिवर्तन शील है, इसलिए उनके अनुसार यह मान्यता समीचीन नहीं। 'नासदीय सूक्त' की शब्दावली में कहा जा सकता है कि यह विषय मनुष्य के लिए ही नहीं प्रत्युत देवताओं के लिए भी गूढ़ एवं अगम्य है।[2] इसीलिए इससे अधिक नहीं कहा जा सकता कि 'ज्ञान दृष्टि से निश्चित किये हुए निर्गुण परब्रह्म की ही यह अतर्क्य लीला है[3]।' 'वेदांत सूत्र' में इस प्रकार का वर्णन आया है कि मायात्मक कार्य अनादि है।[4] 'श्रीमद्भगवतगीता' में भगवान ने भी इस बात का समर्थन किया है कि प्रकृति स्वतंत्र नहीं है -- 'मेरी माया है।[5] पुन: उन्होंने बताया है कि प्रकृति अर्थात् माया और पुरुष दोनों अनादि हैं।

माया को ब्रह्म की शक्ति स्वीकार किया गया है, जब वह माया के संयोग से विश्व की रचना करता है, तब उसकी उपाधि ईश्वर की हो जाती है। इसीलिए श्रुति में प्रयुक्त 'कारणोपाधिरीश्वर:' के अनुसार आत्मा अपने कारण शरीर माया से मिल कर ईश्वर के नाम से विभूषित किया जाता है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में कहा गया है कि 'माया को प्रकृति जानना चाहिए' और माया से युक्त आत्मा को ईश्वर। मायाच्छन्न होने पर उस ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप सगुण रूप में परिवर्तित हो जाता है। अखिल सृष्टि के समस्त कार्य - व्यापारों का हेतु एक मात्र माया को स्वीकार किया जा सकता है। 'वेदांत' में जगत् ब्रह्म का विवर्त अथवा अवास्तविक भ्रामक प्रतीत होने वाला परिवर्तित रूप

---

१. गीता, ७।१४-२५
२. ऋ०, १०।१२६, तै०ब्रा० २।८।६
३. वे०सू०, २।१।३३
४. वही २।१।३५-३७
५. गीता ७।१४

स्वीकार किया गया है। किन्तु जगत् माया का परिणाम है। दृष्टा भ्रमवश रज्जु में सर्प की प्रतीति कर लेता है, इस प्रकार की कल्पना का आधार उसकी विवर्त शक्ति ही समझी जायगी। ठीक उसी प्रकार यह जगत् भी अज्ञान स्वरूप ही समझा जाता है।

सृष्टि विषयक प्रसंग में ईश्वर माया पर निर्भर करता है, एवं ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि में केन्द्रित है। माया को परमेश्वर की बीज शक्ति स्वीकार किया गया है, जिसके कारण ब्रह्म एक होते हुए भी अनन्त नाम रूपों से विभूषित किया जाता है (एक एव परमेश्वर: कूटस्थ नित्यो नामधातु: यविद्या मायाविवत् अनेकधा विभाव्यते)। ब्रह्म को इस जगत् का निमित्त एवं उपादान कारण बताया गया है, परन्तु वह निर्विकार एवं निष्क्रिय है। प्रश्न उठता है कि फिर वह ब्रह्म सृष्टि किस प्रकार से सम्पन्न करता है? इसीलिए माया को ब्रह्म की शक्ति स्वीकार किया गया और माया एवं ब्रह्म के द्वारा सृष्टि का विधान माना गया है। किन्तु इन सब का तात्पर्य यह नहीं कि माया एवं ब्रह्म दो विभिन्न सत्तायें हैं ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् में कुछ और है ही नहीं। माया एवं ब्रह्म का सम्बन्ध उसी प्रकार से एक है जिस प्रकार से अग्नि एवं उसकी दाहक शक्ति। व्यवहारिक दृष्टि से हम देखते हैं कि व्यक्ति की इच्छा शक्ति के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता, साथ ही व्यक्ति बिना इच्छा के भी रह सकता है परन्तु इच्छा की सम्भावना बिना व्यक्ति के नहीं। उसी प्रकार माया ईश्वर की इच्छा शक्ति है, साथ ही मानसिक क्रिया भी। जिस प्रकार स्वप्न में मानसिक शक्ति का ताना बाना बुना जाता है, उसी प्रकार यह विश्व भी ईश्वर की मानसिक शक्ति माया द्वारा ही रचा गया। माया संवलित ब्रह्म विश्व का हेतु बन कर ईश्वर कहा जाता है। जगत् के कारण भूत ब्रह्म से जिसकी सत्ता है, जो आकाश आदि कार्यभूत पदार्थों से पहचानी जाती है और जो आकाश आदि कार्यों के उत्पादन में समर्थ, सद्वस्तु (ब्रह्म) की शक्ति रूपा, वह माया है। उसका कोई स्वरूप नहीं है, इसीलिए उसका निर्वचन सत् एवं असत् दोनों रूपों से नहीं हो सकता, इसलिए वह सद् सद् अनिर्वचनीय है। वह न तो सत् है न असत् है और न उभयस्वरूप ही। वह न भिन्न है न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न उभय रूप ही। माया सद् सद् विलक्षण तथा भिन्नाभिन्न विलक्षण है, वह न सांग है न अंगहीन। इस प्रकार उसे अनिर्वचनीय बताया गया, इन गुणों के होते

है, और जगत् रूपी महा प्रपंच का केन्द्र भी माया ही है ऐसी अवस्था में माया की स्थिति भाव रूप है। वह जगत् का कारण है, इसीलिए उसमें सत्व, रज एवं तम गुण भी विद्यमान हैं, यही उसके गुण एवं स्वरूप दोनों हैं। जिसके परिणामस्वरूप माया को त्रिगुणात्मिका नाम से सम्बोधित किया गया। जैसा ऊपर बताया गया है कि माया भाव रूप ही है तब भी जब मनुष्य में ज्ञान का प्रकाश होता है,तब सारी द्विधा लुप्त प्राय हो जाती है, जिस प्रकार सूर्य के आलोक से अंधकार का नाश होता है। किन्तु इस प्रकार का ज्ञान तार्किक धरातल पर अप्राप्य है। इसीलिए माया को ज्ञान विरोधी बताया गया, अर्थात् आत्मचिंतन द्वारा जब जीव में मूल चेतना एवं तत्व ज्ञान मुखरित हो उठते हैं तब इस अंधकार-मय माया के समस्त प्रपंच विलीन हो जाते हैं। 'गीता' में भगवान ने बताया है ' मामेव में प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।'[1] माया की सत्ता न तो पर-मार्थिक है और न प्रातिभासिक ही, अपितु एक मात्र व्यावहारिक ही है। उसका आश्रय जीव है एवं मूल विषय ब्रह्म, माया मनुष्य पर एक ऐसा आवरण डाल देती है, जिससे वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है।

श्रुतियों में माया को निम्न स्थान प्रदान किया गया है। युक्ति के द्वारा उसका स्वरूप अनिर्वचनीय है और लौकिक जगत् में उसकी क्रियाएं पूर्ण रूपेण सत्य प्रतिभासित होती हैं। शंकराचार्य माया को इस जगत् का हेतु सिद्ध करते हुए उसके गुणों एवं विशेषणों को इस प्रकार से बताया है :—

अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्ति:
अनाद्य विद्या त्रिगुणात्मिकापरा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया
यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ।।

माया को दो शक्तियाँ स्वीकार की गई प्रथम तो आवरण एवं दूसरी विक्षेप। माया के इन शक्तियों के परिणामस्वरूप जगत् का यथार्थ स्वरूप लुप्त हो जाता है, और एक ऐसे रूप का प्रतिपादन हो जाता है जो तात्त्विक रूप से पूर्णरूपेण नि:सार एवं असत्य है किंतु उससे बढ़ कर सत्य एवं श्रेष्ठ और कोई

---

१. [illegible] ७।१४

रूप रह ही नहीं पाता, जिसमें लिप्त होकर संसारी जीव अपने अभीष्ट से विमुख हो जाते हैं। इस प्रकार इन्हीं शक्तियों के परिणामस्वरूप ब्रह्म का वास्तविक रूप छिप जाता है और उस में अवस्तु रूप जगत् का भान होने लगता है। उपर्युक्त दोनों शक्तियां क्रमश: तमो एवं रजो -रूपा हैं, जो कि परस्पर पूरक हैं। आवरण का अर्थ है पर्दा डालना एवं विक्षेप का अर्थ वास्तविक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु ला देना। `वेदान्त` में इस प्रकार की चर्चा मिलती है। माया की आवरण शक्ति जीव के ज्ञान नेत्रों के आगे आकर ब्रह्म के वास्तविक रूप को उसी प्रकार ढक लेती, जैसे एक छोटा सा मेघ का टुकड़ा द्रष्टा के नेत्रों को ढक कर अनेक योजन विस्तृत सूर्य को छिपा लेता है।[१]

आवरण शक्ति के माध्यम से ईश्वर का वास्तविक रूप ढक जाता है, तब माया की दूसरी शक्ति विक्षेप जगत् के विविध मायिक प्रपंचों में जीव को उलझा देती है और ~~जीव को~~ उसे तात्विक रूप में उसी प्रकार भ्रम होने लगता है जिस प्रकार द्रष्टा को रज्जु में सर्प की भ्रांति सुनिश्चित हो जाती है।

माया के अस्त्र काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि हैं जो कि इस जगत् में अनन्त रूप धारण करके जीवों के नेत्र, बुद्धि और दर्शन शक्ति पर शरीर, अस्मिता अभिमान का पर्दा छोड़ देते हैं, जिसके कारण जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर यह समझने लगता है कि `मैं` अनन्त अनादि शाश्वत, अजर अमर परमात्मा नहीं हूं, मैं हाड़, मांस का एक पुतला मात्र हूं, अर्थात् विनाश शील प्राणी हूं।` और माया के दुर्दमनीय प्रकोपों के कारण ही सम्पूर्ण जगत् चक्षु-हीन एवं ज्ञानहीन होकर संसारिक असंख्य कायाक्लेशों से विक्षिप्त होकर अनन्त-जन्मों के भयावह चक्कर में चक्की के आटे के सदृश पिसता रहता है और माया सदा उसे सत्य एवं सन्मार्ग से विचलित करती रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अखिल विश्व ही माया के अनन्त प्रपंचों का मात्र क्रीड़ा स्थल है। इस क्रीड़ा में माया एक ऐसी सुषुप्ति है, जिसमें संसारी जीव अपने अभीष्ट को भूल कर सो जाते हैं। यह समस्त खेल एक मात्र जीवों के लिए ही है, ईश्वर इस माया से अप्रभावित या निर्लेप भाव से अपना सम्बन्ध रखता

१. हस्तामलक स्तोत्र, १०

है। यही जीवों को सीधी राह से उलटी ओर खींच ले जाती है, इसीकारण से माया को अविद्या तथा अज्ञान कहा गया है।

माया के गुणों के अनुसार इसके दो रूप निरूपित किए गये :-एक विशुद्ध सत्व गुण प्रधान माया एवं दूसरा मलिन सतोगुण प्रधान अर्थात् अविद्या।[१] माया का विशुद्ध 'सत्व स्वरूप' उसकी एकमात्रति सूक्ष्म अवस्था है ऐसी अवस्था में सतोगुण की ही प्रधानता होती है। माया के कारण जब उस परमतत्व में क्रिया उत्पन्न होती है, तब उसके अलग अलग अनंत स्वरूप निर्मित हो जाते हैं। माया का जब विश्लेषण किया जाता है तब उसे समष्टि गत रूप में माया एवं व्यक्ति-गत रूप में अविद्या कहा जाता है। अविद्या माया जीवगत अभाव रूप तथा अज्ञानी रूपी होती है।

जिस माया का चित्रण 'ऋग्वेद' में अलौकिक पराक्रम अथवा कलाबाजी के रूप में हुआ, उपनिषदों में उसे दृढ़ दार्शनिक पृष्ठ भूमि प्राप्त हुई और 'सांख्य' तथा 'वेदांत' में इसका इतना गहन विवेचन हुआ कि उसका लेखा जोखा लगाने के लिए स्वतंत्र ग्रन्थ की आवश्यकता है।

उपर्युक्त मान्यताओं का प्रभाव निर्विवाद रूप से सम्पूर्ण संत साधना पर पड़ा जिससे कि संत कबीर एवं दरिया भी अपने को उन्मुक्त न कर सके। अब किस प्रकार और किस रूप में मायावाद का ताना बाना इनके द्वारा बुना गया, इसका उल्लेख करना वांछनीय है।

दोनों पंथों में माया का जो विशद वर्णन किया गया है उसमें पर्याप्त सादृश्य विन्दु ढूंढे जा सकते हैं। इन संतों की रचनाओं में जहां कहीं भी ईश्वर की विभूतियों का वर्णन हुआ है वहां प्रसंगवश उसकी माया की शक्तिमत्ता का भी चित्रण हुआ है। सृष्टि का विकास ... इन्हीं के अस्तित्व एवं सहयोग से सम्भव हुआ। सृष्टि का विकास जैसा कि हम कह आए हैं सत्पुरुष द्वारा प्रारम्भ होता है।[२] सत्पुरुष नित्य त्रिगुणातीत है और सृष्टि त्रिगुणमय।

---

१. चिदानन्द मय ब्रह्म प्रतिबिम्ब समन्विता।
तमोरज: सत्व गुणा प्रकृतिर्द्विविधाचसा।। पंचदशी, १।१५

२. वैदिक सृष्टि विषयक प्रसंग

इसीलिए जीव तत्व वाले प्रसंग में स्पष्ट ही बताया जा चुका है कि जब परमात्म तत्व माया के आवरण से घिरा होता है तब वह जीव कहा जाता है और जब वह माया का आवरण हट जाता है तब उसे परब्रह्म की उपाधि से विभूषित किया जाता है। इस प्रकार के वो असंख्य उदाहरण संत साहित्य में उपलब्ध होंगे।

उपनिषदों में इस बात का स्पष्ट ही उल्लेख मिलता है कि सृष्टि के पूर्व एक मात्र सत् अथवा अद्वैत ब्रह्म का ही अस्तित्व था। 'तदैच्छत बहुस्याम् प्रजायेति' अर्थात् उसके हृदय में जब अनेकत्व या बहुत्व की लिप्सा जागृत हुई, तब उसने सृष्टि प्रारम्भ किया। इस प्रकार की धारणा का समर्थन लगभग अनेक भारतीय धर्मग्रन्थ करते हैं। इन दोनों पंथों की मान्यतानुसार इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि के पहले, वह परमतत्व अमरलोक में विराजमान था तब विश्व शून्याकार था अथवा चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। ऐसी अवस्था में सत्पुरुष के मन में सृष्टीच्छा जागृत हुई, तब उसने निरंजन तथा आद्या नाम्नी नारी का जन्म दिया निरंजन एवं आद्या दोनों क्रमशः मन एवं माया के प्रतीक हैं, समस्त सुख दुख इन्हीं के संयोग से विकसित हुए। इस प्रकार इन्ही के माध्यम से अखिल सृष्टि का निर्माण हुआ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं माया एवं जगत् का अटूट सम्बन्ध है और यहां तक कहा जा सकता है कि अखिल जगत् माया का ही परिणाम है, इसलिए सृष्टि के लिए माया की इतनी अधिक महत्ता स्वीकार की जा सकती है कि यदि इसे सृष्टि या अखिल जगत् से विलग कर दिया जाय तो शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दृष्टिगत होगा। सारतः हम कह सकते हैं कि माया के कारण अखिल जगत् के निर्माण की सृष्टि सम्भव हुई। इसीलिए तुलसीदास ने स्पष्टतः उल्लेख किया है कि अखिल ब्रह्माण्ड की माया है, जहां तक मैं मेरा और तूं तेरा का सम्बन्ध था द्वैत भाव की होड़ है वहां तक माया का सुविशाल साम्राज्य छाया हुआ है।[२]

---

१. देखिए सृष्टि विषयक प्रसंग

२. मैं अरु मोर तोर मैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।।
गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

— रा० ३।१५।२

किन्तु माया को सृष्टि का मूल कारण मानना समीचीन नहीं । मूल कारण तो पुरुष को ही स्वीकार किया जा सकता है, माया को उपादान कारण माना जा सकता है, मायाश्रो सृष्टि का विकास करने में सक्षम नहीं । सम्पूर्ण जगत् के प्रत्येक जीव के ऊपर माया का भयावह प्रकोप इस प्रकार छाया हुआ है कि सबके सब अपने अभीष्ट से वंचित हो चुके हैं, और उनके व्यवहारिक जीवन में उसके क्रिया कलाप कितने मोहक एवं सत्य से प्रतीत होते हैं कि उन्हें छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाने का विवेक रह ही नहीं जाता, यही कारण है कि संत साधना वाले समस्त कवियों ने जीवन में जितने भी सुख एवं विलास के प्रसाधन हो सकते हैं, उन्हें माया जनित ही स्वीकार किया है, और माया के लिए उनसे तुलनीय रूपक भी ढूंढ निकालने का प्रयास किया है। मानवीय धरातल पर लौकिक एवं पारलौकिक दो पहलू ही अपना विशेष महत्व रखते हैं, जिनमें तात्विक दृष्टि से पूर्ण विरोधाभास परलक्षित होता है, यही एक मात्र कारण है कि लौकिक जीवन का सत्य आध्यात्मिक जगत् के लिए असत्य एवं व्यर्थ सिद्ध हो ता है। और दूसरी ओर माया का आवरण आध्यात्मिक जगत् के विकास को रोकने के लिए इस प्रकार सक्षम है कि भौतिक जीवन में आध्यात्मिक या पारलौकिक सत्य भी मिथ्या एवं व्यर्थ सिद्ध होता है। यही तो माया की सफलता है कि जीव को अपने कठोर फंदे में बांध कर अपने अभीष्ट से बहुत दूर ले जाकर भटकाती फिरती है, किन्तु माया का यह मिथ्या एवं भयावह कुचक्र पूर्ण आडम्बर आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण असत्य है। कबीर एवं दरिया दोनों इस विषय के पूर्ण समर्थक हैं।

आगे के विवेचन में इस बात का प्रयास किया जायगा कि कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ में माया के विषय में किस प्रकार की धारणा प्रकट की गई है? कबीर-पंथ की मान्यतानुसार माया का प्रभाव अखिल विश्व पर बताया गया है, साथ ही अखिल विश्व को यमप्रदेश स्वीकार किया गया है।[1] 'ज्ञान प्रकाश' में इस प्रकार का उल्लेख आया है कि माया जाल में जगत् बंधा हुआ है और त्रिविध काल

---

१. अनुराग सागर, पृ० ७६

.... की कला में सब चूर हो रहे हैं।[१] माया में लिप्त होकर समस्त जीव अपने अभीष्ट अर्थात् आदि परब्रह्म की स्मृति पूर्ण रूपेण भूल कर अपने मार्ग से विचलित हो गए हैं।[२] सम्पूर्ण जगत् पर माया का आतंक इस प्रकार छाया हुआ है कि सब ज्ञानहीन होकर इसके इन्द्रजाल में उलझे हुए हैं, एवं नित्य यमपुर का प्रस्थान करते रहते हैं।[३] यहां तक कि त्रिदेवों की भी इस माया से रक्षा न हो सकी।[४]

इसी प्रकार दरिया-पंथी साहित्य में वर्णन देखने को मिलता है कि इस संसार में जरा एवं मरण का जो भीषण प्रकोप चला आ रहा है उससे किसी भी प्रकार त्राण पाना दुष्कर है। काल के इस प्रकार के भयावह प्रकोप को देखकर दरिया साहब ने स्पष्टत: इस विश्व को मुर्दों का गांव कह कर पुकारा है।[५] माया के कला एवं चरित्र की परख इस प्रकार दुष्कर है कि त्रिदेव भी जब अपनी रक्षा न कर सके तो सामान्य जीवों का क्या कहना ?[६]

माया का असीम प्रभुत्व —

संत कबीर ने स्वयं माया के असीम प्रभुत्व को स्वीकार किया है, जिससे सुरनर मुनि एवं समस्त जीवों में से किसी की भी रक्षा न हो सकी। इसीलिए उन्होंने कहा कि :—

माया के बशि सब परे, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सनक सनन्दन नारदहुं, गौरी पूत गणेश ।।१५१।।
— बीजक, पृ० १३४

मन माया के चोट ते, मारे सकल जहान।
सुर नर मुनि घायल भये, ऐसो जोर कमान ।। ३३४ ।।
— बीजक, पृ० १५४

---

१. ज्ञानप्रकाश, पृ० ८
२. ज्ञानबोध, पृ० १५
३. वही, पृ० ३०
४. अनुरागसागर, पृ० १५४
५. ग्यान सरोदै, पृ० २५४
६. ग्यान रतन, पृ० १५०

इसी प्रकार कबीर-पंथ एवं दरियापंथ में भी माया की महिमा का वर्णन हमें देखने को मिलता है। कबीर-पंथी साहित्य में बताया गया है :-

माया डारी सब पर फांसी । योगी यती तपी सन्यासी ।।

—अम्बु सागर, पृ० १८

इनमें जिन दशावतारों की चर्चा की गई है, उन्हें ही अज्ञानी जीव परब्रह्म समझ लेते हैं, पर इन दोनों पंथों के संतों ने स्पष्टत: इन देवों को माया का ही अवतार सिद्ध किया है। कबीर-पंथी साहित्य में इस प्रकार का वर्णन आया है कि माया ने इसी प्रकार से दशअवतार धारण किया, इसी प्रकार के अवतारी रूप में श्रीरामचन्द्र जी ने रावण का विनाश किया, प्रबल काल अपने कपटपूर्ण आचरण द्वारा समस्त जगत् को पीस रहा है, किन्तु सब विवेकहीन होकर माया रूपी राम की सेवा में लिपटे हुए हैं एवं आदि ब्रह्म की परख, लोग नहीं कर पा रहे हैं।[१]

दरिया-पंथ में भी यही बात दुहराई गई है कि रामकृष्ण जो कि अवतार धारण कर इस धरा पर आए, वह सब कुछ त्रिगुणी माया की ही लीला है।[२] कबीर-पंथी साहित्य में इस प्रकार का उल्लेख किया गया है कि शिव, गोरख एवं कितने ब्रह्मचारियों को माया ने वशीभूत कर रखा है और उसके कठिन फन्दे में बंध कर सब पराजित हो चुके हैं।[३] अखिल सृष्टि में माया के सैनिक कामदेव का जो भयावह प्रकोप छाया हुआ है, उसमें सुरनर मुनि एवं पशु पक्षी सब पिस रहे हैं तो मनुष्यों की क्या बात चलाई जाय ? माया के पाश में आबद्ध होने के परिणाम स्वरूप उन्हें बार बार अनेक योनियों में जन्म धारण करना पड़ता है।[४] इसी प्रकार की कल्पना दरिया-पंथ में भी मुखरित हुई है कि माया के

---

१. ज्ञान बोध, पृ० २०

२. ज्ञान रतन, पृ० १५०

३. ज्ञान बोध, पृ० २२

४. स्वसमवेद, बोध, पृ० ३६

पाश अनन्त एवं अगाध हैं वह अपने त्रिगुणों से अखिल सृष्टि को वशीभूत किए हुए है।[१] वेदपाठी ब्रह्मा भी इससे पराजित हो गये।[२] माया के चरित्र की कोई परख नहीं कर सकता, उसने सृष्टि में अपने अनेक जंत्र मंत्र एवं मोह मद की ठगोरी डाल रखी है जिससे ब्रह्मा विष्णु एवं शिव तथा वेद पाठी पंडित जन सब पराजित हो गये।[३] पंडित वेदों का पाठ करते हुए काल गाल में विलीन हो गए किन्तु उन्हें भी जीवन के अभीष्ट अर्थात् परब्रह्म की परख न हो सकी, कितने पंथावलंबियों ने घोर प्रयास किया परन्तु वे भ्रम में पड़ कर असफल सिद्ध हुए। इन सब का कारण यह है कि माया के विषम इन्द्रजाल के विषय में किसी को विवेक न हो सका, जिसके कारण अग्नि में पतिंगे के सदृश सब नष्ट भ्रष्ट हो गये। सुर नर मुनि सब बिना सतनाम की परख के सब इतस्त: भटकते रहे, जिसके परिणामस्वरूप जल हीन मछली की भांति माया जाल में फंस कर समस्त जीव दारुण यम यातना के शिकार बने। सब विविधतीर्थाचारों एवं अनेक कर्मकांडों में फंस कर चंचल मन के बहकावे से चारों तरफ दौड़ते ही रह जाते हैं जिससे उन्हें बहुत बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। माया का कौतुक पूर्ण रूपेण असाध्य है जोकि आठोयाम चलता रहता है।[४]

'भक्ति हेतु'(पृ० ३०६) में इस प्रकार का विवरण मिलता है कि माया के कारण ही मन सब को नचाता फिरता है, इससे बड़े बड़े नरेश भी अपनी सुरक्षा कर सके। यह भाव एक भक्ति में सबसे बड़ा बाधक तत्व है। मन एवं माया सुरनर मुनि एवं तपी सन्यासी सब के गले में अपने त्रिगुण रूपी डोर से कस कर बांध कर सब को नाच नचा रही है। माया सम्पूर्ण जगत् का चुन चुन कर भक्षण कर रही है, इसी के वशवर्ती अखिल जगत् बना हुआ है, यहां तक कि मायवी सीता की परख बहुत बड़ा पंडित रावण भी न कर सका, जिससे उसका

---

१. ग्यान रतन, पृ० १३६
२. वही, पृ० १४६
३. वही, पृ० १५०
४. वही, पृ० १५१

क्षण में ही सर्वनाश हुआ । करोड़ों ब्रह्मा, इन्द्र एवं कृष्ण चले गए किन्तु माया के रहस्य का ज्ञान किसी को न हो सका ।[१]

दोनों पंथों में इस प्रकार का वर्णन आया है कि माया रूपी नारी के रूप एवं लावण्य पर मुग्ध होकर निरंजन कामाशक्त हुए और दोनों के संयोग से त्रिदेवों की उत्पत्ति हुई किन्तु माया ने उनको भी मुक्त न किया । उन्हें भी भ्रम में डाल पथभ्रष्ट किया । आप स्वयं उनसे सेवा कराती है, वही ब्रह्मा के घर ब्रह्मानी विष्णु के घर लक्ष्मी एवं शिव के घर पार्वती का वेश बनाया है । इस प्रकार का चित्रण दोनों पंथों के साहित्य में प्रस्तुत किया गया है । यथा :-

माया महा ठगिनि हम जानी ।
त्रिगुणी फांस लिये कर डोले बोले मधुरी बानी ।।
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी ।।
पण्डा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ हूं में पानी ।।

× × ×

भक्ता के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, ई सब अकथ कहानी ।।

— बीजक, पृ० ३७

ब्रह्मा की ब्रह्माइनि जानी । बिस्नु की बिस्नाइन रानी ।।९८३
संकर के देवी संग भयऊ । त्रिबिध ग्यान तीनि मिलि ठयऊ ।।९८४

— दरिया सागर, पृ० ९९

दरिया साहब ने इस बात का उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण जगत् में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो कि अपने को माया से विमुख कर सका हो ।[२]

माया का प्रभाव अखिल सृष्टि पर छाया हुआ है । दोनों पंथों में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गई है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा उसके भ्रम में आ पड़े जिन्होंने जगत् में कर्मकांडों का प्रसार किया जिससे तीर्थ व्रत, एवं विविध षट्कर्मों की दुहाई दी जा रही है । योगी यती इन्हीं से प्रभावित होकर नाना प्रकार के साम्प्रदायिक पचड़े में पड़कर आत्मज्ञान एवं योग से शून्य हो रहे हैं । अनन्त वेश

---

१. दरिया सागर, पृ० ७७-७८
२. ग्यान रतन, पृ० १२९

...... धारी पंडित जन अपने ग्रन्थ ज्ञान एवं आत्मज्ञान के अभिमान में फूले हुए भटक रहे हैं, जिन्हें काल के हिंडोले पर निश्चय ही ढूंढना पड़ेगा। यह ब्रह्मा का ही कौतुक है जो कि इस जगत् में झूठी रीति का प्रचलन कर समस्त जगत् को भ्रम में डाले हुए हैं।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि माया ने त्रिलोकी में आग लगा दिया है और समस्त प्राणी दग्ध हो रहे हैं।

<u>माया की वास्तविकता</u>—
ह

जीव के लिए माया ही एक ऐसा बाधक तत्व है जिसके कारण जीव परमात्म-तत्व का अंश होते हुए भी अज्ञान से घिरा हुआ अपने को भिन्न स्वीकार करता है। व्यवहार में हमें माया के समस्त क्रिया कलाप कितने सुन्दर एवं वास्तविक लगते हैं, पर इस प्रकार की भ्रांति संतों के मतानुसार एक मात्र अज्ञानी जीवों को ही होती है, परन्तु विवेकी साधकों के समक्ष माया पूर्ण रूपेण अवास्तविक एवं नि:सार सिद्ध होती है। कबीर-पंथी साहित्य में माया को अवास्तविक एवं सार हीन बताया गया है। `अमर मूल` में बताया गया है कि झूठी माया के फंदे में सम्पूर्ण विश्व बंधा हुआ है किन्तु बिना इससे अलग हुए जीवन की द्विधा एवं बाधा दूर नहीं हो सकती।[२] इसी प्रकार `ज्ञान प्रकाश` में भी उल्लेख आया है कि माया ठगिनी के कुचालों में जो विश्वास करता है तो उसका यह विश्वास स्वप्नवत असत्य ही सिद्ध होगा और जो इसे सब कुछ समझ कर लीन है, वह अपना समग्र जीवन मटियामेट कर रहा है। सुख सम्पत्ति, स्त्री, पुत्रादि सब स्वप्नवत ही हैं।[३]

माया द्वारा अर्जित साम्राज्य को इन संत साधकों ने सेमर के फूल की तरह व्यर्थ बताया है, जिसमें घोर वेदना एवं अपार निराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसीलिए माया के इस मोहक एवं मनोमुग्धकारी जगत् की प्रतीति समेर के फूल की उपमा देकर बताया गया है कि जिस प्रकार तोता उसकी असाधारण लालिमा के कारण आकर्षित होता है, परन्तु ज्यों ही उसे तोड़ना चाहता है उसमें से रेशे निकलते हैं, परिणाम स्वरूप उसका सम्पूर्ण प्रयास असफल हो

---

१. ज्ञान बोध, पृ० २२-२३ (कबीर पंथ) एवं ग्यानरतन, पृ० २०३ (दरिया पंथ)
२. अमर मूल, पृ० २१४ ३. ज्ञान प्रकाश, पृ० ४६, [illegible]

जाता है और बहुत बड़ी अभिलाषा के बदले उसको प्राप्त होती है मात्र निराशा। ऐसी ही मायावी जगत् का प्रेम प्रत्यक्ष रूप से कितना आकर्षक एवं अनुपम लगता है किन्तु अंत समय में हाथ आती है मात्र कठोर यम यातना।[१] इसी प्रकार 'ज्ञान बोध' (पृ० ३५) काया एवं माया दोनों के प्रसार को अवास्तविक एवं असत्य घोषित किया गया है।

इसी प्रकार दरियापंथ में भी मायवी दुनियां से प्रेम रखने वालों को दाख छोहारे जैसे अमृत फल के भोग से विमुख होकर विषमय सेमर फूल में अनुरक्त घोषित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर-पंथ एवं दरियापंथ दोनों प्रकार के साहित्य में बड़े ही अच्छे रूपकों के माध्यम से जगत् प्रेम को निःसार एवं व्यर्थ सिद्ध कर अज्ञानी जीव के लिए एक अमर संदेश दिया गया है। यथा —

सुगना सीमर सेइया, दो ढेढी की आश।
ढेढी फुटी चनाक दै, सुगना चला निराश।।१६२।।
सुगना सीमर बेगि तजु, घनी बिगूचन पाउ।
ऐसा सीमरस सेवै, जाके हृदय न आंख।।१६३।।

—बीजक, पृ० १३५

सेमर फूल जस किरुवा आवा। देखि फूल बहु हरष बढ़ावा।।
चुंगल मारत सुआ उड़ाने। रोम रोम मिथ्या कर जानो।।
जाना नहीं विवेक बिचारा। ठोक कपार चलो भ्रमारा।।
माया रूप आहि इमि भाई। जिमि फुल सेमर सुन्दरताई।।

—ज्ञानस्थिति बोध, पृ० १३६

दाख छोड़ि सुगना उड़ि गयऊ। मास बिते इह वां चलि अयऊ।। १५५
अब सुगना तुम करो उपासा। बहुरि गए सेमर के पासा।। १५६
चोंच के मारे सुआ उड़ि गयऊ। मुरछि गए तावर तन अयऊ।।१५७
लाल फूल बिसवास लोभेऊ। उड़ि गइ माया भवन नहि रहेऊ।।१५८

—ग्यान मूल, पृ० ३८७

---

१. ज्ञान स्थिति बोध, पृ० १३६

<u>माया के विविध रूपक —</u>

अतीत काल से ही माया को त्रिगुणात्मिका स्वीकार किया गया है, इस विचार से कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों सहमत हैं। इन ग्रन्थों में जिस प्रकार सृष्टि का विकास होता है, उसी प्रकार इसी से अखिल सृष्टि बंधती जाती है, इस प्रकार इन त्रिगुणों के रूप में माया का एक ऐसे कठोर फन्दा निर्मित होता है, जिसमें समस्त जीव बंधे हुए हैं, इससे किसी भी रूप में रक्षा सम्भव नहीं है। इसीलिए श्रीशंकराचार्य ने माया को बन्धन रूपा स्वीकार किया है, और इसी मान्यता के अनुयायी कबीर भी ज्ञात होते हैं, क्योंकि उन्होंने भी माया को बन्धन रूपा बताया है। उन्होंने अपने एक पद में कहा है कि रघुनाथजी की माया शिकार खेलने के लिए निकली, तो उसने सबको अपना लक्ष्य बनाया कोई रक्षित नहीं। मौनी, वीर, दिगम्बर, योगी, जंगम, वेदवाणी पंडित, शृंगी ऋषि, ब्रह्मा, गोरख मछन्दर आदि सब पर अपना प्रभाव स्थापित किया। यदि किसी की रक्षा हो सकी तो मात्र हरि भक्तों की।[१] कबीर दास जी ने पुन: माया को एक विषैली नागिन ठहराया जो कि विषधारण कर जीवन पथ में पैठ सब जगत् का भक्षण एवं सर्वनाश कर रही है एक संत कबीर ही ऐसे थे जो उससे बच कर भाग निकले।[२] उन्होंने माया को एक चूहड़ी भी सिद्ध किया है:--

> ई माया है चूहड़ी , औ चूहड़े की जोय।
> बाप पुत हि अरुझावई, संगनकाहू होय ।। १४६ ।।
>
> —बीजक, पृ० १३४

कबीर-पंथी साहित्य में भी कबीर के सदृश ही माया को बन्धन रूपा स्वीकार किया गया है। अमर मूल में बताया गया है कि इसके बन्धन के कारण ही जगत में द्वैत की परिस्थिति उत्पन्न हुई है, इसलिए इसका नाश होना नितांत आवश्यक है।[३] इसीप्रकार एक अन्य रचना में इसे स्वप्न की आशा के सदृश अवा-

---

१. कबीर ग्रन्थावली (परि०) पृ० ६४

२. बीजक, पृ० १३६

३. अमर मूल, पृ० ३२४

स्तविक ठहराया गया है, इसीलिए जो इसमें विश्वास करते हैं उनका पतन अवश्य-म्भावी है :—

> मोहि निश्चय तुव पद विश्वास । यह माया स्वपने की आशा ।
> जिन्ह जिन्ह माया नेह बढ़ाया । तिन्ह तिन्ह निज निज जन्म गंवाया।।
>
> —ज्ञान प्रकाश, पृ० ४६

मदन साहब ने माया की उपमा एक ऐसे नाउन से दी है जो कि वेश परिवर्तन कर कर्मरूपी उस्तरा, नहन्नी एवं कैंची से अखिल जगत का मुंडन कर रही है। वह एक मोहिनी का रूप परिवर्तित कर मनुष्यों को अपने कुचक्रों में फांस रही है जिसके रहस्य के विषय में किसी को विवेक नहीं है। उसने क्रमश: ब्रह्मा, सनक, सनन्दन, नारद, शारदा, गौरी गणेश, गोपीचन्द्र भरथरी को अपना शिकार बना लिया है। अपने कुचाल से वह इस प्रकार सब पर ठग विद्या का प्रभाव डाले हुए है कि किसी को इन कष्टों के प्रति ज्ञान नहीं होता।[१] माया की अपार महिमा एवं विशद् लीला के चित्रण का होली से रूपक बांध कर धनी धरमदास ने बड़ा ही मनोग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है कि वह पंचतत्व एवं पच्चीस प्रकृतिरूपी सखियों के साथ हंसते हुए गीत गा रही है। कुमति एवं छल का डफ लेकर बड़ी तीव्र गति से बाजा बजाती हुई सबको अपने मोह पाश में बांध रही है। त्रिगुणों का तमूरा एवं आशा तृष्णा की स्वर लहरी बड़े ही लय के साथ बज रही है। प्रत्येक दृष्टि से साज बाज हो चुका है, लोभ मोह रूपी पिचकारियों से दुर्मति का रंग घोल कर सब पर इस प्रकार फेंक रही है कि उसके इस कपटपूर्ण आचरण का शिकार सम्पूर्ण जगत् ही हो रहा है। सुर, नर, मुनि आदि में से कोई भी इसके कुकृत्य रक्षित नहीं। माया अज्ञानी जीवों पर ही विजय प्राप्त कर सकती है क्योंकि इन्हें ही उसके इन्द्र जाल का कुछ भी ज्ञान नहीं, जिसके कारण वे इस सांसारिक सुख वैभवादिक नश्वर प्रसाधनों को सर्वस्व स्वीकार कर लीन हो चुके हैं। इस रहस्य से सुरक्षा ~~मात्र~~ कुशल एवं विवेक शील व्यक्तियों की ही संभव है, जिनके सन्निकट मायावी बन्धन पहुंच ही नहीं सकते।[२]

---

१. शब्द विलास, पृ० ५३,५४

२. धनी धरमदास की शब्दावली, पृ० ६१-६२

माया को गुरुदयाल साहब ने एक कर्कशा नारी स्वीकार किया है, साथ ही उसकी गणना डाइन एवं भूतनी की श्रेणी में करते हुए, उसके प्रति पूर्ण अविश्वास प्रकट किया है।[१] माया के कार्यों में कोई स्थिरता नहीं है क्योंकि किसी परिस्थिति में कुछ लोगों को नि:शंक बना देती है और कभी मनुष्यों को विविध चिन्ताओं से व्यग्र कर अद्वैत ब्रह्म के विषय में विविध रहस्य उत्पन्न करती है।[२] कबीर-पंथी संतों के सदृश गुरुदयाल साहब ने इसे कोई स्थूल रूप प्रदान नहीं किया है। माया का आधार अनन्त मानवीय कल्पनाएं हैं, साधारण जीवों की माया का निराकरण तो सम्भव है किन्तु गुरुओं की वाणियों में जो भ्रमजाल रूपी मायाजनित कल्पनाएं हैं उनका कुछ भी निदान नहीं है।[३]

दरिया-पंथी साहित्य का अध्ययन करने से मालूम होता है कि उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए माया के चित्रण पर कबीर-पंथ का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। दरियासाहब ने भी कबीर के सदृश माया को चूहड़ी बताया है :--

> यह माया है चूहड़ी, अब चूहड़े की जोए।
> बीच में झगड़ा लायके आपु किनारे होए।।
>
> --सब्ज्ञानी, पृ० १५ (पाण्डुलिपि)

उन्होंने इसे काली नागिन बताया है, पुन: उसकी उपमा विषमय वेलि एवं वेश्या से दी है, जो कि व्यसनी जीवों को अपने वशवर्ती बनाए हुए है किन्तु साधु लोगों से दूर भागती है।[४] माया मद में मस्तजनों को दरियासाहब ने अमृत से विमुख, एवं विषपान करने वाला बताया है, तिस पर भी माया के कांटे और भी नुकीले हैं, यह माया न तो किसी की अभी तक हुई है और न तो भविष्य में किसी की होगी।[५] इसीलिए उन्होंने इस संसार को शोक एवं संतापना का सरोवर घोषित किया है।[६] सांसारिक माया को उन्होंने एक कलवारिन से उपमा दी है जो कि नशीली मदिरा-पान करा कर समस्त संसारी जनों को मोह

---

१. कबीर परिचय साखी, ५७

२. वही साखी, ८५
३. वही साखी, १८६
४. सब्ज्ञानी, पृ० १८२ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
५. वही, परि०, पृ० १८२ वही
६. ध्यान सारदे, पृ० २५२

लिए हैं। माया का रूपक मृगतृष्णा से बांधते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार मृग की प्यास कभी नहीं बुझती ठीक उसी प्रकार मायाग्रस्त लोगों की मोह लिप्सा कभी शान्त नहीं हो सकती।[१] कबीर पंथ के अनुरूप ही दरिया साहब ने भी माया के लिए कल्पना की है कि वह एक ऐसी नारी है जो कि पंचतत्वों एवं पच्चीस प्रकृतियों रूपी सखियों के साथ अपना वृहद् श्रृंगार करके, मधुर चाल चलते हुए जगत् में यत्र-तत्र-सर्वत्र कलह का बीज अंकुरित कर रही है।[२] 'ज्ञान रतन' (पृ० १५१) में माया की तुलना एक दीपक से की गई है, जिस पर जीव रूपी पतिंगे मुग्ध हो, भस्मीभूत हो रहे हैं। मायावी जगत् के रंगसाज को देखकर दरिया साहब ने इसे मीना बाजार कहा है, जिसके चमत्कार को देख जीवों की दृष्टि भ्रमित हो जाती है।[३]

मायावी जगत् में अनुरक्त शील प्राणियों की उपमा दोनों पंथों में चिर प्रचलित विविध दृष्टान्तों (श्वान् , केहरि, गज, कपि एवं नलिनी के तोते आदि) द्वारा की गयी है, जिनसे उनके हृदय शून्यता एवं अज्ञानता का भण्डाफोड़ हो सके।[४]

माया के अस्त्र शस्त्र —

माया के विविध क्रिया कलापों पर दृष्टिपात करने पर प्रश्न उठता है कि वह अपने किन उपादानों के माध्यम से जगत् पर अपनी महिमा एवं गुण का प्रसार करती है ? वे अवयव हैं —काम, क्रोध, मद एवं लोभ। इन्हीं के परिणाम-स्वरूप माया के अनन्त जगतजंजालों की सृष्टि होती है जिससे विषयी एवं अज्ञानी जीव अपना सर्वनाश करते हैं। इन्हें कहीं कहीं सैनिक बताया गया है

---

१. भक्तिहेतु, पृ० २८७

२. शब्द परि०, पृ० १५६(संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

३. शब्द परि०, पृ० १०४-१०५ ,, ,,

४. देखिए ज्ञान विषयक प्रसंग

और कहीं पर स्वतंत्र अस्त्र के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

माया को दो रूप प्रदान किया गया है :-एक तो मोटी माया एवं दूसरी झीनी। दोनों का लक्ष्य जीवों को अपने वशवर्ती बनाकर नाना क्लेशों से पीड़ित करना है। कबीर-पंथी रचना 'सर्वज्ञ सागर' में इस प्रकार का वर्णन आया है :--

ठग भरमावे बहु विधि लूटे। यम धन्धा से कबहुन छूटे।।
मोटि अविद्या छुड़ावन लागे। झीनी महा अविद्या पागे।।
झीनी मोटी दोउ कष्ट सरूपा। कारण नास्ति परे त्यहि कूपा।।
— सर्वज्ञ सागर, पृ० १४६

मोटी माया के यही काम,क्रोध,मद,लोभ आदि सहायक माने गये हैं, जिनसे माया की आकर्षण जीवों को अनुरक्त करने में सफल सिद्ध होता है कबीर तथा उनके अनुयायी संत साधकों ने इनकी भरपूर भर्त्सना की है, और जीवों के लिए माया के इन उपादानों को भ्रम कूप एवं विषवेलि की उपमा प्रदान की है जिसमें समस्त जीव इस प्रकार उलझे हुए हैं कि उनसे विरक्ति असंभव ज्ञात होती है।

जड़ चेतन दोउ नारि स्वरूपा। कनक कामिनी जिव भ्रम कूपा।
विष की वेलि दो हू को जानी। लोग ताहि में जिव अज्ञानी।।
— जीवधर्म बोध, पृ० १५

माया के इन्द्रजाल का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी ने भूमि परत भा ढावर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी।' कह कर बड़े अच्छे ढंग से किया है जिसका पूर्ण साम्य कबीर-पंथी साहित्य की निम्न पंक्तियों में ढूंढ़ा जा सकता :-

भूमि परी डाबर पह्वानी। इमि जीवहि माया लपटानी।।
— अमर मूल, पृ० १७८

कहने का तात्पर्य यह है कि माया का कुचक्र एवं भयावह प्रकोप ज्यों ही जीव जन्म लेता है कि देर नहीं लगती, त्यों ही आकर घेर लेता है और इस प्रकार का क्रम जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त चलता रहता है। 'निरंजनबोध' में काम एवं क्रोध का बंधन अति ही कठिन बताया गया है।[1] बार बार क्रोधी जीवों

---

१. निरंजन बोध, पृ० ५

को जन्म धारण करके नरक की खानि में गिरना पड़ता है ।[१] लोभियों को सर्प एवंसूकर योनियों में जन्म लेना पड़ता है ।[२] 'ज्ञान प्रकाश' में काम, क्रोध, तृष्णा, अहंकार, लोभ एवं मोह सब मन के विकार बताए गए हैं, जिसके अनुसार सब पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं ।[३] सुख सम्पत्ति पुत्रादि मायावी तत्व स्वप्नवत व्यर्थ एवं असत्य बताए गए ।[४]

काम,क्रोध,मद,लोभ आदि के कारण ही जीवों को चौरासी लक्ष योनियों में कुम्भार के चाक सदृश बार बार नाचना पड़ता है ।

काम —

कबीर-पंथी रचनाओं में इस प्रकार का उल्लेख आता है कि हृदयमें काम का प्रवेश होते ही जीव विवेक शून्य हो जाता है ।[५]

प्रथम काम को यह गुन जानू । दहन ज्ञान बन कठिन कृशानू ।। जीवनधर्मबोध,१३
दुष्ट काम उर प्रकटे आयी । ज्ञान विचार बिसरि सब जाय ।।

— विवेक सागर, पृ० ७०

इस संसार में विरले होंगे जो कामासक्त न हुए हों ।[६] मैथुन विकारों में अखिल जगत् लिपटा हुआ है, जिसमें सब भस्मीभूत हो रहे हैं । यावत् कथाएं जगत् में प्रचलित हैं, उन सब का मूल कारण स्त्रियां ही है, जिनसे मुक्ति कदापि सम्भव नहीं । भोगों में अनुरक्त होकर जो भक्ति का ढोंग करता है वह बार बार जन्म धारण करता है । कनक एवं कामिनी दोनों जीवों के लिए भ्रम कूप हैं, जिसमें समस्त अज्ञानी जीव उलझे हुए हैं ।[७] महर्षियों तक को कामदेव हत्यारे ने

---

१. निरंजन बोध, पृ० ७
२. वही, पृ० ८
३. ज्ञान प्रकाश, पृ० ३६
४. वही, पृ० ६०
५. जीवनधर्म बोध, पृ० १३ एवं विवेक सागर पृ० ७०
६. वही, पृ० १५
७. वही, पृ० १५

ने अपने वशीभूत कर उनके जप तप को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ।[१]

कबीर-पंथी साहित्य 'विवेक सागर' में काम के प्रचंड प्रभाव का बड़ा ही अच्छा वर्णन हुआ है ।

यह काम अति प्रचण्ड है, होत उत्पन्न तिय अंग ।
सैन वैन अतिही बढे, चढे काम रति रंग ।।
तन मन अस्तिर ना रहे, काम बान उर साल ।।
एक बाण से सब यिं, सुर नर मुनी विहाल ।।

— विवेक सागर, पृ० ७०

काम के प्रचंड प्रभाव से कोई रक्षित नहीं । बड़े बड़े ऋषि, सुर नर मुनि (जिनकी अतीत काल से कहानियां प्रचलित हैं) काम से प्रभावित हुए हैं । यथा शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, शृंगी ऋषि , नारद, दशरथ एवं रावणादि सब काम से प्रेरित हुए ।[२]

क्रोध—

क्रोध जगत् में इस प्रकार शक्तिशाली है, जिसके प्रचंड महिमा के कारण समस्त शुभ गुण लुप्त हो चुके हैं । क्रोध के कारण धर्म का नाम निशान तक रह ही नहीं जाता, प्रलय तक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है एवं सद्गुण का प्रभाव विलीन हो जाता है/ क्रोधी व्यक्ति स्वयं दुख प्राप्त करता है साथ ही दूसरों को भी दुख देता है । हजारों वर्ष तपश्चर्या करने वाले मुनियों का सारा धर्माचरण क्रोध के कारण क्षण में ही विनष्ट हो जाता है । अंतत: सब नरक गामी होते हैं । जब क्रोध का प्रवेश शरीर में हो जाता है, तब फिर किसी प्रकार का जप तप सम्भव नहीं है ।[३]

'विवेक' सागर में यह उल्लेख आया है कि काम से भी बढ़ कर क्रोध

---

१. जीवधर्मबोध, पृ० १६

२. विवेक सागर, पृ० ७०—७२

३. जीव धर्म बोध, पृ० १७—१८

प्रचण्ड है, जिसके भय से नोखण्ड त्रसित है। क्रोध प्रवेश करते ही शरीर थर थर कांपने लगता है, भौंहे टेढ़ी हो जाती हैं एवं अशुभ तथा निःसार वचन निकलने लगते हैं। क्रोध के विषय में भी इसी ग्रन्थ में चिर प्रसिद्ध अनेक कथाएं उद्धृत की गई हैं, जिनका लक्ष्य क्रोध के दुष्परिणामों का स्पष्टीकरण करना मात्र है। यथा, ब्रह्मा, सनकादिक, शिव राम, दुर्वासा, कौरव-पांडव आदि का क्रोध जगत् विख्यात है जिनसे संसार में विनाशमूलक परिस्थितियां उत्पन्न हुई।[१] इस प्रकार दशों दिशायें क्रोधाग्नि से भभक रही हैं और सब जल कर ख़ाक हो रहे हैं:—

दशो दिशाते उठी, परबल क्रोध की आग।
संगति शीतल साधु की, शरण उबरिये भाग।।

— विवेक सागर, पृ० ७३

बहुत जतन तप कीनेऊ , सब फल क्रोध नसाय।
कहै कबीर बन संचे, चोर मुसि लै जाय ।।
कहै कबीर विचारि कै, क्रोध अग्नि बहु जाग।।
संगति साधु सतनाम की, शरन उबरिये भाग।।
क्रोध अग्नि घटघट बरी, जरत सकल संसार।
दीन लीन निज भक्ति सो, ताकर निकट उबार।।

—विवेक सागर, पृ० ७३-७४

लोभ -

लोभी व्यक्ति को कदापि सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती। लोभी व्यक्ति अपने हित के निमित्त नित्य माला फेरा करता है तब पर भी उसे नरक की यातना से मुक्ति नहीं प्राप्त होती, वह बार बार पापाचार एवं अनरीति करने में संलग्न रहा करता है।[२] जो धन एवं सम्पत्ति का लोभी होता है वह कदापि भाव एवं भक्ति नहीं कर सकता। लोभ से बुरा और कुछ भी नहीं, समस्त अधर्म लोभ के ही परिणाम हैं, जिस प्रकार से मदारी [illegible] हाथ में लकुट धारण कर बन्दरको नचाता फिरता है, ठीक उसी प्रकार से लोभ जीवों को भ्रम में नचा रहा है। लोभी व्यक्ति जब धनार्जन में लीन रहते हैं तब उन्हें अहर्निश न तो नींद ही आती है न चैन ही। लोग गुरु भी ऐसा खोजते हैं, जो धनार्जन का सुगम मार्ग बता सके।

१. विवेक सागर, पृ० ७३ २. जीवधर्म बोध, पृ० १७-१८

और जो गुरु इस प्रकार के कपट पूर्ण आचरण वाले शिष्य से सम्पर्क रखता है तो वह अपने जीवन से खिलवाड़ करता है, जिस प्रकार से कोई पत्थर की नाँव पर चढ़कर डूब कर मर जाय।[1]

गुरु लोभी शिष लालची, दोनों खेलें दाव।
दोऊ बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर के नाव ।।
—विवेक सागर, पृ० ७४

कलियुग में लोग दुख पाने पर वेश परिवर्तन कर चारों तरफ अपनी लोभ पूर्ण आकांक्षा की तृप्ति के लिए भ्रमण करेंगे। भिक्षावृत्ति अपनाने पर यदि कुछ धन एकत्र हो जाता है तो व्याज के लिए ऋण रूप में वही धन बाँटना प्रारम्भ करेंगे जिससे धन में अभिवृद्धि होने लगे। ऐसे तो साधु हैं। जिनका कर्म कसाई का है। लोभ के वशीभूत हो जाने पर विष में विष ही मिलता जाता है, लोभ की बलवती आकांक्षा क्रमश: बढ़ती ही जाती है, अर्थात् एक पैसे की लालच, फिर दो, दो से चार, चार से दश, दश से बीस अर्थात् आजीवन इसी प्रकार से पैसे की आकांक्षा द्विगुणित वेग से वृद्धि पर चलती रहती है।[2] सब प्रकार का ज्ञान एवं परिश्रम लोभ के कारण ही व्यर्थ होता है।[3] लोभ का दुष्परिणाम निम्न साखी में बड़े ही अच्छे ढंग से दिखलाया गया है :—

भेष भक्ति मुदित सबै, ज्ञानी गुनी अपार।
षट् दर्शन फीके परे, एक लोभ के लार ।।
भगत मुखिया जटा धारी, ज्ञानी गुनी अपार ।
षट दर्शन भटकतफिरे, एक लोभ की लार ।।
— विवेक सागर, पृ० ७६

---

१. जीव धर्म बोध, १७,१८
२. विवेक सागर, पृ० ७५
३. वही, पृ० ७६

मद—

अभिमान विशेष रूप से कष्ट दायक सिद्ध होता है। अभिमानी व्यक्ति इस संसार में ऐंठ कर चलता है, मुछों पर ताव देता हुआ अपनी परिछाई देख कर इठलाता है, और दूसरे के कंधे पर शान से हाथ रख कर चलता है। पगड़ी टेढ़ी कर हृदय में गर्व धारण कर मतवाला होकर सर्वत्र भ्रमण करता है। अनीतिपूर्ण वचन सबसे कहता है, सम्पूर्णजगत् अपने को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि समझता है, और अपना ही सम्मान चाहता है, किन्तु प्रबल काल के आने पर समस्त अभिमान चूर हो जाता है।

ऊर्ध्व गर्व अति सर्व सुख, विषय विकार न भूल।
कहै कबीर काल शिर पर, लिये हाथ त्रिशूल।।
—विवेक सागर, पृ० ७७

दरिया-पंथी साहित्य पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि कबीर-पंथ के सदृश ही इसमें काम, क्रोध, मद,लोभ का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं विकारों को जीवन के नि:सारता का मूल कारण स्वीकार किया गया है।

काम—

माया के दो ही प्रधान अस्त्र कामिनी एवं कनक हैं। नारी प्रसंग एक ऐसा इन्द्रजाल है जो कि देवताओं एवं मुनियों तक को तो विद्ध ही कर देता है तो संसारी मनुष्यों की क्या बात चलाई जाय? शंकर, विष्णु, ब्रह्मा एवं श्री रामचन्द्र जी आदि स्वयं अपनी स्त्रियों से विवश थे। 'ज्ञान रतन' में कामिनी एवं कनक को ही जगत् के समस्त जंजालों का केन्द्र बताया गया है।[2] दरिया साहब ने जीवन को अत्यल्प बताया है और संसार को एक कुसुम जिसके मोहक रंग को देखकर सब भूल जाते हैं, संसार को उन्होंने चित्रसारी बताया है जिससे नट एवं नागरिकाएं तालो बजाबजा कर नृत्य कर रही हैं, बेस्या एवं भांड़ राग अलाप रहे हैं, और सब

---

१. शब्द परि० पृ० ८८, १४३, १६१ (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. ग्यान रतन, पृ० १२३

गर्व एवं गुमान से भरे हुए मतवाले बने अपने को धोखा देकर काल गाल में विलीन हो रहे हैं।[1] मन एवं माया ने सुर नर मुनि सब को मोह लिया है, और सब के गले में बेड़ी पड़ी हुई है, मोहिनी सब के गले में जंजीर बांध कर नचा रही है। लोभ के वशीभूत होकर सब कामासक्त हो रहे हैं।[2] कामिनी के संग पड़ने से भक्ति भाव एवं जोग कुछ भी नहीं हो सकता, नारिप्रेमबहुत बड़ा विकार है, और इससे प्रीति करना जान बूझ कर अग्नि में पांव डालने के सदृश है।[3] जिस प्रकार अग्नि में कपास पड़ने पर जल कर खाक हो जाती है, ठीक उसी प्रकार से जिस व्यक्ति की दृष्टि नारि-स्नेह में रत हो गई वह अपने शीतल शरीर को भी दग्ध कर देता है जिस प्रकार हांड़ी में अदहन पकाया जाता है और अग्नि लगाकर ही गरम हो सकता है, और तभी भाप निकलती है, उसी प्रकार कामिनी का संयोग होते ही काम तीव्र गति से शरीर में संचार करता है।[4] यहां तक देखा जाता है कि लोग अपने एक स्त्री से तुष्टि न पाकर वेश्या गमन करते हैं।[5] काम के प्रचंड प्रभाव का एक जीता-जागता चित्र निम्न पद्य में द्रष्टव्य है :—

> कामिनि काल खेले पर चंडा । सात दीप कहिए नवखंडा ।।३३०।।
> जोगी जोग बहुत जो कीन्हा । कामिनि काल घेंचि जिव लीन्हा ।।३३१
>
> — ब्रह्म विवेक, पृ० ३५६

कबीर पंथ के सदृश दरिया पंथ में भी काम विषयक कथाओं का वर्णनहुआ है यथा कृष्ण, नारद, शृंगी ऋषि आदि।[6]

क्रोध —

दरिया साहब ने बड़े जोरदार शब्दों में इस बात का समर्थन किया है

---

१. भक्तिहेतु, पृ० ३०३
२. वही , पृ० ३०९
३. ब्रह्मविवेक, पृ० ३५४
४. वही, पृ० ३५५

कि क्रोध के कारण बड़े बड़े मुनि एवं ज्ञानी नष्ट भ्रष्ट हो गये । क्रोध ही समस्त विनाश मूल परिस्थिति का मूल कारण है, क्रोध के कारण ही रावण का क्षण भर में नाश हो गया, और विभीषण लंका का विराट राज्य प्राप्त किया । क्रोध के कारण यादवों का संहार हुआ ।[१]

लोभ —

लोभ ही एक ऐसा विकार है जो कि संसारी जीवों को भौतिक पदार्थों की ओर अनुरक्त कर परमार्थिक अथवा आध्यात्मिक जगत् से दूर ले जाता है । लोभी व्यक्ति को कभी कहीं शांति नहीं । लोभ ही प्राणी को वास्तविक जगत् से बहुत दूर ले जाकर भटकाता रहता है, यहां तक कि व्यवहार का भी ज्ञान नहीं रह जाता और अनेक दुष्कर्म करने के लिए विवश करता है । हम इस संसार में जन्म लेते ही माया से अनुरक्त होते हैं, और कूप मण्डूक के सदृश अपने स्त्री, पुत्र-कलत्र एवं सुख-सम्पत्ति वाले अवास्तविक एवं नि:सार जगत् को अपना सर्वस्व स्वीकार कर जीवन के यथार्थ एवं परमार्थ सत्ता से विमुख हो जाते हैं, जिससे कि जीवन मूल की उपलब्धि सम्भव है, किन्तु माया के कारण जीवों की मुक्ति कहां ? दरिया साहब ने स्पष्ट ही उल्लेख किया है कि जब लंकेश इतना सम्पत्तिवान, शक्तिवान, ज्ञानी एवं सर्व समर्थ खुले हाथों इस संसार से चल बसा और उसका तिल मात्र भी प्रतीक इस जगत् में स्थिर नहीं । दुर्योधन जिसकी अपार सेना थी, का पूर्ण विनाश हुआ तो इन सब की तुलना में हम साधारणजनों की क्या गणना ?[२]

दरिया साहब ने कबीर पंथ के अनुरूप ही ऐसे व्यक्तियों को जो कि सांसारिक सुखों में लिप्त रहते हैं, उनकी उपमा सेमर फूल के प्रेमी तोते से दी है, जो कि अपने बंधु बांधव, द्रव्य, खजाना आदि की लालसा में मग्न रहते हैं, पर यह सब मृत्यु के अनन्तर साथ में जाने वाले नहीं है, अंत में यम दूतों द्वारा मुसकें चढ़ा कर यातना दी जायगी । माता-पिता एवं स्त्री के समक्ष ही प्राण

---

१. ज्ञान रतन, पृ० १२५

२. शब्द पृ० १७१, परि० (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

निकल जायंगे और जो संपति संचित की गई, वह सब यहीं की यहीं छूट जायगी, लाश घसीट कर बाहर फेंक दी जायगी और सब सम्बन्धी घेरकर रोयेंगे और अंतत: लाश एक अर्थीपर उठाकर श्मशान घाट पर जला दी जायगी, अवशेष अवयव भी अग्नि की प्रचंड ज्वाला में भस्मीभूत हो जायंगे, यही सब का अंत है। दो चार दिन तक शोक छाया रहेगा, पुन: सब अपने मायावी धंधे में संलग्न हो जाएंगे, और नाम निशान तक मिट जायगा यहीं तक इस जीवन का इतिहास है। धन-सम्पत्ति,हाथी आदि में से कोई एक भी साथ न जायगा, समस्त सम्बन्धी साथ न जाकर केवल तुम्हें भुला देने वालों में से हों[1] इस प्रकार सिद्ध होता है कि इस अखिल विश्व का समस्त प्रसार एवं विकास अवास्तविक एवं नि:सार है।

कबीर-पंथ में जिस प्रकार से धन लोलुपता का चित्रण हुआ है ठीक उसी प्रकार से दरियापंथी साहित्य में भी उल्लेख आया है कि यदि किसी को एक पैसे मिले तो वह दो की इच्छा करता है, दो से चार, चार से आठ, आठ से दश एवं दश से बीस इसी प्रकार धन की बलवती इच्छा कभी भी शांत नहीं होती। लोग हिंसात्मक भोजन की भी इच्छा करते हैं, किन्तु यदि अभाग्य से समस्त धनलुट जाय तो लोग अन्तत: वही रंक पुन: बन जायंगे। अंत में क्षण मात्र में ही मुर्दे के घाट लग कर जल कर खाक हो जाएंगे। चाहे महान् से महान् व्यक्ति हो या अधमाधम सब का यही अन्त है।[2]

मद —

दरिया साहब ने भी अभिमान को विनाश का कारण स्वीकार किया है, जब जीव में अभिमान का प्रवेश होता है तभी उसका सर्वनाश सम्भव है। संसार के जीवों में `अहं` अर्थात मैं और तुम की स्थिति ही विषमता की परि-

---

१: शब्द, पृ०१४८,१४९,१५४ परिशिष्ट (संतकवि दरिया एक अनुशीलन)
२. शब्द पृ० १४४, १६१ परि० (संतकवि दरिया एक अनुशीलन)

स्थिति उत्पन्न करने वाली है। लोग इस संसार में अहंजन्य भावनाओं से प्रेरित हैं, परन्तु उनकी सब भावनाएं व्यर्थ हैं।[१] इसी `अहं` से अभिमान की उत्पत्ति होती है, जो कि मनुष्य के पतन का मूल कारण है।

काम क्रोध मदलोभ के अतिरिक्त दोनों पंथों में एक और माया जन्य स्थिति स्वीकार की गई, वह है मोहजनित भावना।

मोह -

कबीर-पंथी साहित्य में मोह को बहुत बड़ा दुख प्रद तत्व स्वीकार किया गया है। भव सागर में डूबने का सबसे बड़ा कारण मोह ही है। स्त्री, पुत्र, कलत्र एवं कुटुम्ब का मोह वैसे ही जीव के लिए नाशक है जैसे काई लोहा के लिए। स्त्री के घर में प्रवेश करते ही विपत्ति के बीज अंकुरित होने लगते हैं, पर यह सब व्यर्थ का पसारा है, इनसे कोई भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। दशों दिशाओं में दृष्टि-गोचर होने वाले जगत में देखो, क्या कोई भी तुम्हारा है? सब स्वार्थ का संसार वसा हुआ है। यह सब जीवन के अभीष्ट के लिए बाधक तत्व हैं, समस्त प्रपंच जीवों को ठगने के लिए किए जाते हैं, ऐसे वंचकों से प्रीति करने पर अमर फल की हानि होकर विष ही हाथ आता है[२]। `विवेक सागर` में मोह को एक राजा स्वीकार किया गया है जिसकी प्रबल घटा त्रिलोकों पर छाई हुई है। अज्ञान जिसकी राज-धानी, आलस महल, आशा पटरानी, इच्छा वेदी, कुमति सखी, कुल लोंड़ी एवं टहलुआ, लालच नौकर, रोग, शोक संसय, द्वन्द, राजा के पुत्र हैं। अधर्म ध्वजा है, कलह बाजा, दम्भ छत्र, कपट, वजीर, असत्य रखवास एवं पाखण्ड मन्त्री है।[३]

---

१. शब्द पृ० १४८, परि० (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. जीव धर्म बोध, पृ० ९८। १६
३. विवेक सागर, पृ० ६६-७०

कबीर-पंथी साहित्य में उपर्युक्त चित्रण का अभिप्राय मोह के प्रति घृणा उत्पन्न करना ~~मात्र~~ समझा जा सकता है :-

यह सेना सब मोह की, कहै कबीर समझाय ।
इतने जो को बाचई भौसागर तरि जाय ।।

— बिवेक सागर, पृ० ७०

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी मोह का बड़ा ही अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया गया है। दरिया साहब ने बताया है कि मोह के कारण ही सब विकल हुए से भ्रमण कर रहे हैं। मोह जगत् में इस प्रकार छाया हुआ है कि बड़े बड़े मुनि भी इससे पराजित हो गये। मोह रूपी तड़ाग में कूप सदृश जल भरा हुआ है, और समस्त जीव उसे अमृत की भांति छक कर पी रहे हैं। मोह ही एक ऐसी वाटिका है जिसमें नाना भांति के फल-फूल लगे हुए हैं, एवं मन रूपी भ्रमर उन सब के रस एवं सुगंधि से मद मस्त होकर भ्रमण कर रहा है। मोह अग्नि के समान है जिसमें समस्त घर जल रहे हैं। मोह रूपी वृक्ष पर ही जीव बसेरा डाले हुए हैं, । मोह रूपी सरिता में जीव रूपी मछलियां गोता लगा रही हैं। मोह रूपी अमर कोष में जीव मृगमद के सदृश लीन है, इस प्रकार सब मोह के वशीभूत हैं। गुरु एवं शिष्य का सम्बन्ध मोह का ही परिणाम है।[१] उसी से धरती एवं पुरुष की सृष्टि हुई, उसी से अन्न का उत्पादन कियाजाता है। मोह के वशीभूत होकर कृषक कृषि करता है । यहां तक कि स्वयं भगवान भी मोह से वंचित न रह सके । मोह के कारण ही जगत् का सम्पूर्ण सम्बन्ध नियोजित होता है । इस प्रकार मोह की बेड़ी से ही सब जकड़े हुए से प्रतीत होते हैं। [२]

उपर्युक्त वर्णनों का विश्लेषण करने पर निष्कर्ष निकाला जा सकता

---

१. ज्ञान रतन, पृ० २११

२. वही, पृ० २१२

है कि कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों में काम, क्रोध, मद, लोभ एवं मोह को माया का अंग स्वीकार किया गया है जिसके माध्यम से माया अखिल सृष्टि पर अपने त्रिगुणों के फन्दे का विस्तार करती है। दरियापंथी माया का चित्रण पूर्णरूपेण कबीर-पंथी साहित्य के वर्णनों पर निर्भर करता है, रूपक दृष्टान्त एवं अन्तर्कथा की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त समानता है।

(च) मुक्ति

तत्व चिंतकों एवं संत साधकों के लिए मुक्ति ही परम अभीष्ट है, जिसके लिए वे अपने जीवन का बलिदान करते हैं। मुक्ति का अभिप्राय प्रायः मोक्ष अर्थात् संसार के इस मायामय आवागमन अथवा जन्म मरण के दारुण क्लेशों से छुटकारा प्राप्त करनेसे है।

'सत्पुरुष' एवं 'माया' शीर्षक के अन्तर्गत हम सिद्ध कर आये हैं कि ईश्वर एवं प्रकृति में परमार्थिक दृष्टि से अन्तर नहीं है, परन्तु माया का परिणाम अथवा अज्ञान ही सब पर ऐसा आवरण निक्षिप्त कर देता है कि जीव ईश्वर का अंश होते हुए भी अपने को कुछ और सा स्वीकार करने लगता है। अज्ञान ही समस्त विषमता का मूल कारण है। ईश्वर के विभिन्न रूप एवं नाम एक मायाके ही परिणाम हैं जो कि अनित्य है, परन्तु उसका अव्यक्त स्वरूप ही सर्वोपरि एवं नित्य है। ईश्वर की निर्गुण अर्थात् नाम रूप विहीन स्थिति ही सर्वश्रेष्ठ है। जब इन सिद्धान्तों का प्रवेश हमारे बुद्धिमन, हृदय एवं शरीर के नस नस एवं रग रग में समा जावे, तभी परमेश्वर की पूर्ण परख सम्भव है कि ईश्वर सब में विद्यमान है। किंतु यह स्थिति इतनी सरल नहीं कि सहज ही सब में इस प्रकार की समता की कल्पनाकी जा सके। इस प्रकार की स्थिति तब सम्भव है जब सुख एवं दुख सब में समत्व का आचरण किया जा सके, और इसके लिए अनेक सुसंस्कारों का संचय, इन्द्रिय निग्रह, ध्यान एवं उपासना पूर्ण रूपेण अपेक्षित है। 'गीता' में उल्लेख आया है कि जब इस प्रकार की धारणा सहज ही सुनिश्चित हो जाती है कि सब में समान रूप से एक ही आत्मा का वास है, तभी पूर्ण मोक्ष की स्थिति सम्भव है (गी० ५।१८।२०, ६।२१-२२)। जब किसी

व्यक्ति की व्यवसायात्मिका बुद्धि आत्मअनात्म के चिंतन में पूर्ण स्थिर हो जाती है, और उसका मन सब जीवों के आत्मा की परख कर लेता है, तो उसकी व्यसनी बुद्धि भी निर्मल एवं विशुद्ध हो जाती है।

प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के समत्व की स्थिति की परख किस प्रकार सम्भव है? ग्रन्थ ज्ञान प्राप्त कर वाक्य चातुर्य प्रदर्शन कर समाज को रिझाने वाले लोगों की किसी तरह कमी इस संसार में नहीं है, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। ध्यान से इस पहलू पर विचार विमर्श करने पर इसकी निस्सारता स्वत: सिद्ध हो जायगी। परन्तु जिस परम अभीष्ट की प्राप्तिएक साधक का लक्ष्य है, वह साधना के क्षेत्र में पुस्तकी विद्या का आधार ग्रहण करने पर केवल अंधकूप में चक्कर लगाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो कि संत साधकों एवं महात्माओं द्वारा वांछनीय समझी गई वह है आचरण की शुद्धता, जिसकी तुलना में ग्रन्थ ज्ञान को कुछ भी महत्ता न मिल सकी। क्योंकि पुस्तकी ज्ञान का आधार व्यर्थ है। जिस प्रकार वैज्ञानिक जब तक प्रत्यक्ष रूप से किसी वस्तु का प्रयोगीकरण करके देख नहीं लेता तब तक वह शाब्दिक आधारों पर कोई निर्णय नहीं लेता है, उसी प्रकार एक संत प्रयोग के प्रत्यक्षीकरण में ही विश्वास करता है। जो मनुष्य आन्तरिक एवं बाह्य शुद्धियों की चरमावस्था पर पहुंच गया, वही समत्व बुद्धिवाला, सच्चा आत्म द्रष्टा एवं मोक्ष का अधिकारी है, क्योंकि जब मनुष्य में ज्ञानाग्नि प्रज्वलित हो जाती है तब उसकी समस्त आशायें एवं वासनाएं तृणवत् भस्म हो जाती हैं। इसी बात का समर्थन उपनिषदों में भी प्राप्त होता है कि 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया बहुना श्रुतेन।'[१]

उपर्युक्त सिद्धान्तों के समर्थन में संत तुकाराम जी कहते हैं — 'यदि तू पंडित होगा, तो तू पुराण-कथा कहेगा, परन्तु तू यह नहीं जान सकता कि मैं कौन हूं?' देखिए इस प्रकार का ज्ञान कितना अपूर्ण है? औ यदि हम इस प्रकार का ढिंढोरा भी पीटना प्रारम्भ करें कि मुझे मुक्ति प्राप्त हो गई तो कितनी मूर्खता की बात होगी कि लगता है कि मुक्ति किसी बाह्य जगत् में अवस्थित वस्तु

---

१. कठ० २।२२, मुंड० ३।२।३

का नाम है, और यदि कोई यह भी कहे कि मुझे ज्ञान हो गया, तब भी यह अवस्था अधूरी ही है क्योंकि ब्रह्मज्ञान हो जाने पर द्वैत की स्थिति समाप्त हो जाती है। ब्रह्मज्ञान होने के पूर्व ही ब्रह्म और आत्मा के भिन्नत्व की प्रतीति सम्भव है, और जब ज्ञान हो जाता है तब ब्रह्म एवं आत्मा में यत्किंचित पार्थक्य नहीं। इसी को तद्रूपता या तदाकारिता भी कहा जाता है। ऐसी ही स्थिति को अध्यात्म में निर्वाण या मोक्ष कहते हैं।

संत साहित्य का अध्ययन करने से उपर्युक्त बातों की पुष्टि और भी हो जाती है। संत कबीर एवं दरिया दोनों ने ग्रन्थ ज्ञान को पूर्ण रूपेण नि:सार समझा है। दोनों ने इस प्रकार के थोथे ज्ञान के आधार को ब्रह्मानन्द जैसी उत्कृष्ट साधना के लिए पूर्ण उपेक्षित समझते हुए उनके प्रति बड़े ही तीखे व्यंग्य भी किये हैं यही कारण है कि उनकी वाणियों में स्वानुभूति की चर्चा उपनिषदों के समान ही है, यत्र तत्र उसकी मात्रा कुछ अधिक ही जान पड़ती है। कबीर ने स्पष्टत: वेद एवं वेद पाठियों के प्रति अनादर प्रदर्शित किया है :—

> सुस्मृति वेद पढ़े असरारा। पाखण्ड रूप करें हंकारा
> पढ़ें वेद औ करें बढ़ाई। संशय (गाँठि) अजहुं नहि जाई।।
> जस खर चन्दन लादै भारा। परिमल बास न जानु गमारा।।

—बीजक रमैनी ३१-३३ (पृ० १५-१६

संतों के अनुसार मुक्ति के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं या मुक्ति किसी इतर लोक में जाने पर सम्भव नहीं है, अपितु इसकी प्राप्ति एक मात्र आत्म दर्शन पर ही निर्भर है। आत्म दर्शन के माध्यम से साधक अपने अन्त:करण के समस्त विकारों को त्यागपूर्ण रूपेण पवित्र हो जाता है, इसी प्रकार की चर्चा 'शिव गीता' में भी द्रष्टव्य है :—

> मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
> अज्ञान हृदय ग्रंथिनाशो मोक्ष इति स्मृत: ।। शिवगीता १३।३२

इसका अभिप्राय यह है कि 'मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कहीं पर रखी हो, अथवा यह भी नहीं कि उसके लिए किसी अन्य ग्राम या दूसरे प्रदेश में

जाना पड़े, अपितु अन्त: करण के अन्धकार के दूर हो जाने पर जब प्रकाश होता है तब उसे ही मोक्ष कहा जाता है।" इसी प्रकार का समर्थन 'गीता'[१] एवं 'उपनिषद'[२] में भी मिलता है।

ब्रह्म भी कोई वस्तु नहीं है कि वह किसी स्थान पर हो और किसी स्थान पर न हो।[३] जिसने ब्रह्म को जान लिया वह ब्रह्म हो गया। जिस मनुष्य को ब्रह्म ज्ञान हो जाता है उसे इस जगत् में किसी प्रकार की द्विधा रह ही नहीं जाती और अद्वैत की परिस्थिति में द्वैत की कल्पना समाप्त सी हो जाती है। तब ऐसे व्यक्ति के मन में इस प्रकार का भाव जग जाता है कि "यस्य सर्वमात्मैवा भूत" (बृह० २।४।१४)। या "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छा० ३।१४।१), अथवा मैं ही ब्रह्म हूं (बृह० १।४।१०)

इस प्रकार जिसके मन में समस्त प्राणियों के प्रति अनेकत्व की भावना लुप्त होकर ब्रह्मात्मैक्य रूपी समानता कूट कूट कर समा जाती है, वही जन्म मरण को जीत लेता है अर्थात् "भूत पृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति" जिसकी ज्ञान दृष्टि में समस्त प्राणियों में निहित अनेकत्व लुप्त हो गया वह साक्षात् ईश्वर के सदृश प्रतीत होता है, वह ब्रह्म में मिल जाता है। (मुण्ड० ३।२।६)

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जब हम समस्त संत सम्प्रदायों का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि इनके मूल बीज ही इन सम्प्रदायों की साधना के मूलाधार हैं। साथ ही जहां तक कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ का प्रश्न है तो स्पष्टत: इन महासंतों ने बड़े ही जोरदार शब्दों में व्यर्थ के बाह्याचारों एवं एक विशिष्ट स्थान में स्वर्ग एवं नरक स्वी करने वाले लकीर के फकीरों को कस कर फटकारा है और उन्होंने अपने साहित्य में अन्त: शुचिता एवं आत्म दर्शन पर विशेष बल दिया है। पौराणिक साहित्य द्वारा प्रस्तुत किए गए किसी प्रदेशीय या स्थलीय स्वर्ग एवं नरक की कल्पना को संत कबीर ने पूर्ण

---

१. गीता ५।२८ "य: सदा मुक्त एवं स:"

२. मुण्ड० ३।२।६ "ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" (जिसने ब्रह्म को जान लिया वह ब्रह्म ही हो जाता है)

३. छान्दोग्यपनिषद, ७।२५, मुण्ड० २।२।११

रूपेण निराधार एवं नि:सार सिद्ध किया है। और न इसके विषय में उनके साहित्य में अतिरंजना की रूपरेखा ही देखने को मिलती है, जब भी इस प्रसंग से सम्बद्ध किसी बात की चर्चा की गई है, वहीं उनका लक्ष्य अखिल मानव समाज को अपनी विचारधारा रूपी पूत मन्दाकिनी की अजस्रधारा में स्नान करा कर एक मात्र अन्त:शुचिता लाना रहा है। कबीर पंथी विभिन्न शाखाओं में यथा: बुरहानपुर, काशी, फतुहा इत्यादि यद्यपि उक्त विचारधारा का खण्डन देखने को मिलता है, तथापि इनमें से छत्तीस गढ़ी शाखा के साहित्य में सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य एवं सायुज्य आदि मुक्ति के स्वरूपों की चर्चा प्रस्तुत की गई है। इसके साहित्य में इनका वर्णन भी बड़े ही अनूठे ढंग से हुआ है। इस शाखा ने सालोक्य मुक्ति के स्थान को मानसरोवर सिद्ध करने का प्रयास किया है, यहीं पर धीरज अंश का भी निवास बताया गया है। वाममार्गी ही ऐसी मुक्ति के अधिकारी हैं। वैकुण्ठ का स्थान इसके ऊपर आता है, जहां पर धर्मराय विराजमान हैं, जो कि जीवों द्वारा सम्पन्न किये गये पाप पुण्यों का हिसाब रखते हैं। यहां तक सामीप्य मुक्ति वाले लोगों की पहुंच है, जहां पर रम्भा अपने नौ सौ सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही है। इसके ऊपर सारूप्य मुक्ति के अधिकारियों का स्थान है। यहीं अष्टांगी कुमारी का निवास स्थान बताया जाता है। सायुज्य मुक्ति का स्थान तो सारूप्य मुक्ति के भी ऊपर आता है। कबीर पंथी संतों का विश्वास है कि इसके बाद आगे बढ़ना असम्भव सा हो जाता है।[१] कबीर पंथियों का विश्वास है कि सायुज्य मुक्ति के ऊपर अचिंत्य द्वीप, सोहंग द्वीप, इच्छीद्वीप अंकुर द्वीप और सहज द्वीप हैं। सहजपुर द्वीप के ऊपर असंख्य लाख योजन और भी ऊपर सत्पुरुष का निवास स्थान स्वीकार किया गया है जिसे अमरलोक बताया जाता है। कबीर साहब यहीं से सत्पुरुष के आदेशानुसार पृथ्वी पर जीवों को चेताने आते हैं। सत्यलोक ही में पहुंचने पर इस मायिक आवागमन से छुटकारा सम्भव है, इसी स्थिति को मोक्ष की वास्तविक स्थिति स्वीकार की गयी है। अमरलोक का वर्णन कबीरपंथी एवं दरियापंथी दोनों प्रकार के साहित्य में बड़े ही अतिरंजना के साथ हुआ है। कबीर पंथी 'ज्ञान सागर' में अमरलोक के विषय में पूर्ण समन्वित रूप देखने को मिलता है।[२]

---

१. कबीर बानी, पृ० १०७

२. ज्ञान सागर, पृ० २

कबीर-पंथी साहित्य 'मुक्तिबोध' में मुक्ति के विषय में विशेष रूप से चर्चा की गई है, इसमें स्पष्ट ही बताया गया है कि गुरुपदेश द्वारा ही ब्रह्मपरख सम्भव है।[१] मुक्ति के लिए गुप्त जाप जिसे कबीर-पंथी शैली में अजपाजप कहा गया है पूर्ण रूपेण वांछनीय है। मुक्ति नृत्य, संगीत, वाद्य आदि सम्पन्न करने से असम्भव है।[२] छत्तीसगढ़ी शाखा में जिन चार प्रकार की मुक्तियों की चर्चा की गई है, उनके विषय में 'ज्ञान स्थिति बोध' में भी उल्लेख आया है कि सालोक्य मुक्ति वाममार्गीय है, सामीप्य निर्वाण मार्गीय, सारूप्य अघोर मार्गीय एवं चौथी मुक्ति सायुज्य मार्गीय है जो कि निरंजन के अधिकार में है, इसी कारण वह समस्त जीवों को अपने वश में किये हुए है। पांचवीं मुक्ति जीवन्मुक्ति होने पर ही सम्भव है। जिसके लिए सत्य धारण नाम धारण एवं शुद्धाचारण आदि अपेक्षित हैं। सुरति निरति के माध्यम से नाम धारण करना वांछनीय समझा गया है। लोभ, मोह, क्रोध एवं षट्-कर्म आदि साधना क्षेत्र में वर्जित हैं।[३] मुक्ति के उपर्युक्त श्रेणियों का तात्पर्य यह है कि प्रथम चार प्रकार की मुक्ति जो पौराणिक मतवाद में उल्लिखित हैं, ये कबीर-पंथियों के अनुसार निचले स्तर की हैं। वास्तविक मुक्ति पांचवें प्रकार की अर्थात् जीवन्मुक्ति है। दूसरी बात यह है कि संतों का मरण के पश्चात् मुक्ति में विश्वास नहीं (जैसा कि उपरोक्त चारों प्रकार की मुक्ति में माना गया है), वल्कि वे जीते जी ही मुक्ति प्राप्त करने में विश्वास करते हैं। 'जीवधर्म बोध' में इस प्रकार का वर्णन आया है कि जो अपने को अद्वैत स्वीकार कार अपने सदृश समस्त जगत् को स्वीकार करता है, वही जीवन्मुक्त है।[४] कबीर-पंथ में जीवों को मोक्ष प्राप्ति के लिए सत्य, अहिंसा, गुरु, दया, ज्ञान प्राप्ति

---

१. मुक्ति बोध, पृ० ६१

२. वही, पृ० ६६

३. ज्ञान स्थिति बोध, पृ० १३६

४. जीव धर्म बोध, पृ० ७

आदि अमोघ अस्त्र शस्त्र बताये गये हैं। इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति अपने लक्ष्य में सफल होकर सांसारिक क्लेशों से मुक्त हो सकता है :—

पान पाय सत्यहिं मुज भाखे , सद्गुरु चरण हृिय में राखे ।।
सद्गुरु केर निछावर करई । साधु चरण चित निश्चय धरई ।।
तन मन धन संतन पर वारे । सतगुरु चरण हृदय में धारे ।।
सुत नारी कर मोह न आवे । सबही त्याग चरण चितलावे ।।
चरण धोय चरणामृत लीजे । सत्यलोक कहं अमृत पीजे ।।
— अमर मूल, पृ० २०७

कबीर पंथ के अनुरूप ही दरियापंथ में भी मुक्ति की कल्पना की गई है। दरिया साहब ने इस बात पर विशेष जोर दिया है कि जीव को काल के कठोर चंगुल से छुटकारा प्राप्ति करने के लिए शुभ कर्मों की संख्या दुष्कर्मों की तुलना में अधिक या तो समान ही होनी चाहिए, तभी आचरण की शुद्धता सम्भव है।[१] प्रश्न उठता है कि जब इस 'मायावी भव सागर जिसमें आपत्तियों की तरंगे बड़े ही अभेद्य रूप से तरंगायित हो रही हैं, तिस पर भी त्रिविध एवं त्रिगुणों की महिमा छाई हुई है , तो ऐसी संकटमय परिस्थिति में बिना जहाज के पार पाना पूर्ण असम्भव है।[२] परन्तु दरिया साहब ने इसका उत्तर भी स्पष्ट रूप से दिया है कि नाम ही जहाज है एवं सुकृत ही जहाज को पार लगाने वाला माझी —जिस पर संत जन चढ़ कर पार हो सकते हैं। इस प्रकार की कल्पना पर स्पष्टत: कबीर पंथ का ही प्रभाव दृष्टिगत होता है। दरियासाहब ने उपदेश दिया है कि सद्गुरु की कृपा से अपने को कलंकहीन कर पूर्णरूपेण पवित्र बन जाओ और हृदय के समस्त विकारों को त्याग कर कपट एवं छल आदि को त्याग कर अपने हृदय को पवित्र कर लो तभी परब्रह्म की परख

---

१. शब्द, पृ० १८० परि० (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. ग्यान सरोदै, पृ० २५२

हो सकेगी । वेदों उपनिषदों तथा अन्य भारतीय धार्मिक साहित्य में जिस साम्य पर बल दिया गया है, उसका प्रभाव कबीर-पंथ पर पड़ा ही है, साथ ही दरिया साहब तो इस धारणा के और भी विशेष रूप से समर्थक प्रतीत होते हैं, इसीलिए सब में एक ही आत्मा की कल्पना में उन्होंने बड़े ही जोर-दार शब्दों में कहा है कि:—

साखी

जस पियार जिब आपनो, तस जिव सभै पियार ।
जानहिं संत सुबुद्धिजन, जाके विमल विचार ।।४।।

— ग्यान सरोदै, पृ० २५०

मुकुर महल नहिं होए, दिल चसमा केह साफ करु ।
सम घट एकै सोए, मह्ल मेहरमी होए रहो ।।१।।

— ग्यान सरोदै, पृ० २५१

इस प्रकार उनका यह उपदेश विश्वव्यापी कल्पना से मुखरित होता हुआ प्रतीत होता है, जिसमें कि सब जीवों में पूर्ण साम्य एवं अमित प्रेम का चरमोद्देश्य प्रतिफलित दृष्टिगोचर होता है । दरिया साहब ने कबीर-पंथ के सदृश ही इस बात का समर्थन किया है कि यदि संसार कारागार एवं दुख के आगार से मुक्ति प्राप्त करनी है तो हृदय में शुचिता का प्रवेश अति आवश्यक है जो कि बिना सद्गुरु के सम्भव नहीं । उन्होंने यह भी बताया है कि यदि आत्म परख करनी है तो ज्ञान रूपी तलवार हाथ में लेकर काम एवं पंच तत्वों पच्चीस प्रकृतियों का हनन करो । साथ ही पाखण्ड को त्याग कर ईश्वर के प्रेम में निमग्न हो जाओ ।[1]

अन्त: शुचिताकी जो विधि "ग्यान सारोदै" में दरिया साहब ने प्रस्तुत की है, वह संत साधना की रीढ़ स्वीकार की जा सकती है । दरिया साहब ने हृदय रूपी चसमें की निर्मलता पर बल दिया है, जिसमें कि प्रीतम की परछाई पवित्र होते ही पड़ने लगती है । उन्होंने हृदय का दीप बना कर ज्ञान का

---

१. ग्यान सरोदै, पृ० २५२

तेल , प्रीति की बाती, एवं सत्य की चिनगारी से पूरे दीपक को जलाने की शिक्षा दिया है, जिससे जो दीपशिखा निकले उससे आंखों का आंजन बनेगा और ऐसी साधना के अनन्तर ही दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होगी। ऐसी ही स्थिति में हृदय का अंध कपाट खुलेगा और तभी व्यक्ति सांसारिक क्लेशों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।[१]

जीवन्मुक्ति:—

जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि ब्रह्म ज्ञान होते ही जीव में जगत् की सारी द्विधा एवं द्वैत की स्थिति समाप्त हो जाती है, यदि कोई ब्रह्म पारखी होने का दम्भ करने वाला व्यक्ति कहे कि मैंने ईश्वर को जान लिया इसका अभिप्राय यह है कि उसके अभीष्ट में अब तक अपूर्णता एवं असफलता की स्थिति बनी ही है, क्योंकि जिसे ब्रह्म ज्ञान हो गया उसे तो इस प्रकार के विभेद का भान रह ही नहीं जाता । और उसके मन के समस्त विकार अब तक भी जैसे के तैसे ही बने हुए हैं क्योंकि जो ईश्वर प्राप्ति में बाधक द्वैत स्थिति वैसी ही है तब ज्ञान कैसा ? और जब यह द्वैत परिस्थिति समाप्त हो जाती है तब जीव में ब्रह्मात्मैक्य का आलोक जाग उठता है, इस प्रकार ब्रह्म ज्ञान का अभिप्राय परब्रह्म के ज्ञान में सर्वथा डूब जाना, लय प्राप्त कर लेना, एवं एकम् एक हो जाना है । प्रख्यात भक्त श्री तुकाराम जी ने अपने इस चरमावस्था की स्थिति को बड़े ही अच्छे ढंग से व्यक्त किया है कि " हमने अपनी मृत्यु अपनी आंखों देख ली यह भी एक उत्सव हो गया ।" ब्रह्म पारखी अपने साधना की ओर उन्मुख होता हुआ स्वयं अपने को ही 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृह० १।४।१०) स्वीकार करने लगता है, और ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है कि ब्रह्मात्मैक्य स्थिति का उसे पूर्ण अनुभव होने लगता है । फिर ब्रह्मानन्द में इस प्रकार अपने को लय कर लेता है कि उसे अपने परित: परिस्थितियों का भी लेश ज्ञान नहीं रह जाता । ऐसी अवस्था को हम न स्वप्न ही कह सकते हैं, न सुषुप्ति एवं न जागृति ही । इसीलिए इन तीनों से भी बढ़ कर शास्त्रकारों ने एक चौथी स्थिति की कल्पना की है जिसे तुरीयावस्था

---

१ ज्ञान सरोदे, पृ० २५८—२५९

कहते हैं जो ऐसी अवस्था तक दौड़ लगा लेता है, तब स्वत: जन्म मरण से मुक्त हो जायगा, क्योंकि ये तो नाम रूप मात्र हैं, और मनुष्य इन सब की सीमा से भी आगे पहुंचता है। ऐसी ही अवस्था को महात्माओं ने मरण का मरण बताया है। इसीकारण याज्ञवल्क्य ने इस परिस्थिति को अपने चरमोद्देश्य की पराकाष्ठा कह कर पुकारा है। इसे ही संत साधकों ने जीवन्मुक्तावस्था नाम दिया है।

जैसा कि हम कह आये हैं कि मुक्ति के लिए आत्म परख ही सब कुछ है क्योंकि कबीर की धारणा के अनुसार तो 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय' ग्रन्थ ज्ञान से तो कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता, साथ ही यह मार्ग साधक न बन कर लक्ष्य प्राप्ति में बाधक ही सिद्ध होगा। संसार के महान् संतसाधकों एवं दार्शनिकों ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है। पाश्चात्य दार्शनिक 'बर्गसाँ' ने तर्क चैतन्य एवं अन्तरानुभूति का विश्लेषण करके यह स्थापना की कि अन्तरानुभूति बुद्धिचैतन्य से भी महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ है। क्योंकि तार्किक धरातल विश्वसनीय एवं अविश्वसनीय दो पहलुओं का समर्थक होता है, जिसके माध्यम से उचित एवं समीचीन निष्कर्ष निकालना वैज्ञानिक नहीं जान पड़ता।[१]

प्रश्न उठता है कि यह अन्तरानुभूति किस प्रकार सम्भव है? कबीर ने जीवन्मुक्तावस्था की प्राप्ति के लिए मन को स्थिर करने पर बड़ा ही जोर दिया है कि चंचल मन को भली भांति स्थिर एवं अपने में केन्द्रित करने पर ही आत्म दर्शन अथवा आत्म परख सम्भव है। जब मन में शांति एवं संतोष का प्रवेश होगा तभी व्यक्ति समस्त क्रियाओं को करते हुए भी उनसे विरक्त रह सकेगा। यह ऐसी अवस्था है जब कि मनुष्य के अन्त:करण में ऐसा दिव्य प्रकाश फूट निकलता है, जिससे वह संसार के समस्त यातनाओं से पूर्ण मुक्त हो जाता है। मन केन्द्रित होते ही मनुष्य में आमूल परिवर्तन हो जाता है। ऐसी अवस्था को संत कबीर ने सर्वोत्तम स्वीकार किया है, इसीलिए उन्होंने कहा है :—

---

१. गीता रहस्य, १९९

अब मन उलटि सनातन हूवा । तब जाँनां जब जीवत मूवा ।।५।।

—कबीर ग्रन्थावली (परि०)पृ० ६२

जीवन तैं मरिबौ भलौ, जौ मरि जानैं कोई ।
मरनै पहिलै जौ मरै , तौ कलि अजरावर होइ ।१३।।
मरतां मरतां जग मुवा, मुवै न जाना कोइ ।
दास कबीरा यौं मुवा, ज्यौं बहुरिन मरना होइ ।।१।।

--कबीर ग्रन्थावली (परि०),पृ०२०८,२०६

तैरा जनु एक आध है कोई ।
काम क्रोध लोभ मोह बिबरजित हरि पद चीन्हैं सोई ।।

< <   < <   < <

रजगुन तमगुन सत गुन कहिऐ यह सभ तैरी माया ।
चउथे पद कौ जोजन चीन्हैं तिनहीं परम पदु पाया ।।२।।

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६ (परि०)

इस प्रकार कबीर-साहित्य मैं जीवन्मुक्ति से श्रेष्ठ और कोई अवस्था का विवरण नहीं है किन्तु कबीर-पंथ मैं इस प्रकार की धारणा कौ विशेष महत्व दिया गया कि इससे भी आनन्द एवं सुख प्रद अमर पुर का निवास है । जीवन्मुक्त व्यक्ति के विषय मैं कबीर-पंथियों ने एक अपवाद भी ढूंढ़ निकालने का प्रयास किया है कि ऐसा व्यक्ति बार बार जन्म धारण करता है किन्तु अमरपुर का निवासी सदा के लिए सांसारिक आवागमन से मुक्त हौ जाता है ।[१] राम रहस साहब ने ऐसी मुक्ति कौ सहजवृत्ति की संज्ञा दी है, जिसे राघवदास ने `पंचग्रन्थी` की टीका मैं स्पष्ट रूप से बताया है । राम रहस साहब ने इसके लक्षणों के विषय मैं संकेत किया है :-

सच्च वचन सो सांचता, दया रूप अनुहार ।
शील हंस समीता लखे, जीवन कैर विचार ।
चरिउ विधि पूरण सोई, मानुष करियै सोय ।
षट त्यागै अनुमानते, सहज वृत्तिता होय ।

—पंचग्रन्थी (टीकाकार राघवदास),पृ०३२१

संत कबीर के जीवन्मुक्ति की कल्पना का दरिया पर स्पष्ट ही प्रभाव पड़ा है, इसीलिए उन्होंने जीवित रहते ही मुक्ति प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ बताया है। उनका विश्वास था कि यदि किसी व्यक्ति में चिरंतन सत्य का प्रवेश हो गया तो वह सदा के लिए निरतिशय आनन्द का पात्र बन गया। अन्य संतों के सदृश ही दरिया साहब भी जीते ही मुक्ति प्राप्त करने की तीव्र लालसा रखते थे, इसीलिए उन्होंने संत कबीर की भांति बड़े ही पवित्र हृदय से कहा है :—

मरना सो पहिले मरि रहहू। असली जो हद जो तुम चहहू ।।१०१
जीयत ही मुरदा होए रहना। असि तुमहि तब पारा कहना ।।१०२
— ग्यान सरोदै, पृ० २५६

यह भी कितनी उत्कृष्ट कल्पना है कि जगत् में जीवित रहते हुए भी जगत् जंजालों से पूर्ण विरक्त रहने की कितनी अनूठी एवं अनुपम कल्पना दरिया साहब ने की है। ऐसी कल्पना का मूलाधार सांख्य दर्शन ही प्रतीत होता है, क्योंकि 'सांख्य' में प्रतिपादित पुरुष प्रकृति के विकारों से परे रहता है, जैसे पुरइन के पत्ते जल में रहते हुए भी निर्लिप भाव से तैरते रहते हैं अर्थात् पुष्कर पलाशवत निर्लेप।[2] संसार में रहते हुए भी जो व्यक्ति निर्लेप है वही जीवन्मुक्ति का अधिकारी है, इसका वर्णन 'शांकर भाष्य' में भी मिलता है।[3] दरिया साहब ने बताया है कि सद्गुरु के वचनों में दृढ़ विश्वास रखते हुए साधना पथ में अग्रसर होते रहने से अमरलोक सहज ही सुलभ हो जाता है जहां पर पहुंच कर व्यक्ति ब्रह्मानन्द रूपी अमृत का छक छक के पान करता है। इस प्रकार वह स्वत: परमानन्द का भागी तो बन ही जाता है साथ ही इस भवसागर से अन्य अनेक व्यक्तियों का भी उद्धार करता है।[4] 'सहज्ञानी' में उन्होंने यह भी बतलाया है कि इस

---

१. ग्यान सरोदै, पृ० २७३
२. शब्द पृ० १५७-१५८ परि० (सं० क०द० एक अनुशीलन)
३. देखिए शांकर भाष्य १। १। ४ 'सिद्धं जीवतोऽपि विदुष: अशरीरत्वम्।'
कठ० ६।१४ 'अथ मर्त्योऽमृतो भवन्यत्र ब्रह्म समश्नुते।'
४. दरिया सागर, पृ० ४३

प्रकार से मृत्यु को प्राप्त हो कि पुन: मृत्यु न हो सके अर्थात् अमरत्व को प्राप्त हो जाय।[१] इसी को उपनिषदों में 'न पुनरावर्त्तते' कहा गया है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जो व्यक्ति जीवन्मुक्त हो गया वह सब प्रकार से मुक्त एवं उसका चंचल मन पूर्ण शांत एवं स्थिर हो जाता है, मन का निग्रह करते ही समस्त इन्द्रियाँ स्वत: गतिहीन बन जाती हैं, वह व्यक्ति कर्त्ता हो कर भी अकर्त्ता बन जाता है एवं भोक्ता होते हुए भी अभोक्ता। और उसकी पूर्णावस्था की समस्त कल्पनाएं सम भूमि को प्राप्त होकर एक ऐसे उत्कृष्ट धरातल पर पहुंच जाती हैं कि उसे संसार में भिन्नत्व की प्रतीति रह ही नहीं जाती ऐसी अवस्था को 'आत्मानं सर्व भूतेषु सर्व भूतानि चात्मानि' अर्थात् उसी में सब समाहित हो जाते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जीवन्मुक्त व्यक्ति निर्मल, निर्वैर, नि:शंक, निस्कलुष, निरभिमानी, प्रशांत, नि:कामी एवं निर्मोही बन जाता है।

दरिया पंथ के अतिरिक्त कबीर पंथ में पारख पद को जीवन्मुक्ति से भी श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। इसमें साधक सर्वाधिक सुख की अनुभूति करता है, सम्पूर्णकबीर पंथी साहित्य पारख पद की चर्चा से ओत-प्रोत है। जीव धर्म बोध (७६) में पारख पद की अवस्था को तत्त्व मसि ~~को जन्म से~~ भी श्रेष्ठ बताया गया है। पूरण साहब ने तत्त्वमसि को जन्म मरण का कारण सिद्ध करते हुए पारख पद को विशेष महत्त्व दिया है :—

> पारख पद को पायं साहेब मेटि गयो सब भास हो।
> ब्रह्म जगत् अनेक बानी रहि न काहु की आस हो।

—निर्णय सार (टीका०राघवदास) पृ० ६८

---

१. सत्वानी, पृ० १८२ परि० (स०क०द० एक अनुशीलन)

इसी प्रकार कबीर-पंथी अनेक साहित्य में पारख पद को सर्वोच्च बताते हुए इस प्रकार की मान्यता स्वीकार की गई है कि इस प्रकार के पद प्राप्त होते ही जीव विवेक, वैराग्य, शील, धैर्य आदि गुणों से युक्त हो जाता है।

(छ) स्वर्ग एवं नर्क

कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों ने स्वर्ग एवं नरक सम्बन्धी कल्पना को किसी लोक विशेष सम्बन्धित न करके विशेष रूप से इस काया तक ही सीमित रखने में अपना गौरव स्वीकार किया है। कबीर ने तो स्वर्ग नरक की कल्पना का मूलोद्देश्य मानव को सन्मार्ग एवं सत्य की ओर उन्मुख करना ही स्वीकार किया है।[1] वे स्वर्ग एवं नरक की कल्पना को पूर्णरूपेण निराधार एवं काल्पनिक समझते थे। यद्यपि पौराणिक आख्यानों में स्वर्ग नरक की कल्पना बड़ी ही अतिरंजना के साथ निरूपित की गई है, परन्तु इनके प्रति संत साधकों ने पूर्ण उपेक्षा भाव ही प्रदर्शित किया है, और इनके मतानुयायियों को उन्होंने स्पष्टत: लकीर का फकीर घोषित किया है। कबीर ने इसी कायागढ़ को सर्वस्वस्वीकार कर समस्त देव देवियों, तीर्थों एवं पवित्र नदियों तक की कल्पना की है, जिससे मानव के प्रकृति के किसी बहिरंग प्रदेश में व्यर्थ भटकना न पड़े। उन्होंने समष्टि के समक्ष एक सुलझा मार्ग प्रशस्त किया है, जिसमें व्यर्थ के ढोंगों एवं बाह्याचारों की लेशमात्र गुंजाइश नहीं।

कालान्तर में कुछ कबीर-पंथी शाखाओं में इन लोकों के विषय में स्थूल वर्णनों को भी स्थान प्रदान किया गया। यह विश्वास भी व्यक्त किया गया कि पृथ्वी से साठ सहस्र योजन ऊपर वैकुंठ है, जहां विष्णु अवस्थित हैं। ये ही समस्त मनुष्यों के शुभ एवं अशुभ कर्मों का लेखा जोखा रखते हैं, चित्रगुप्त इनके मंत्री हैं। इसी प्रकार पृथ्वी के नीचे नाना पातालों की भी कल्पना द्रष्टव्य है, जिनमें चौरासी-भयावह कुंडों का भय प्रदर्शित किया गया है, पापियों को यहीं दण्डित किया जाता है।

कबीर-पंथी साहित्य में स्वर्गलोक के विषय में विशेष चित्रण तो नहीं उपलब्ध होता है, वैसे संत साधकों में मताधिक्य अवश्य है कि इन व्यर्थ की कल्पनाएं छोड़, यम, नियम एवं संयम द्वारा जब जीवको पारख एवं ज्ञान हो जाता है, तब उसे सच्चिदानन्द परमात्मा की परख स्वत: हो जाती है, और जीव ईश्वर में समाहित हो जाता है। जहां पर वह 'ब्रह्मानन्द सहोदरम्' की अनुभूति करताहै, इसे ही परम सुख कहा जाता है, जिसके अधिकारी सच्चे भक्त ही हो सकते हैं। ईश्वरानुभूति की स्थिति से बढ़ कर और कौन सा सुख एवं आनन्द हो सकता है? जिसके अनुभूत होते ही, संसार के समस्त त्रिविध ताप क्षण में ही लुप्त हो जाते हैं। इसी परमानन्द की अवस्था को स्वर्ग स्वीकार किया जा सकता है। और इसके विमुख परिस्थिति में जीव इस भवसागर के महा अंधकार में पड़ कर नाना क्लेशों, परितापों एवं पीड़ाओं को सहन करता हुआ अनन्त बार जन्म मरण के चक्कर में घूमता रहता है। और उसके भाग्य में निराशा, पीड़ा एवं अपार वेदना का ही प्राचुर्य देखने को मिलेगा यही सब नरक है। अर्थात् कबीर के मौलिक साहित्य में जीतेजी ही मुक्ति पा लेने में विश्वास प्रकट किया गया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है :—

राम मोहिं तारि कहां ले जइहो।
सो बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि पसाउ मोहि दइहो ।। टेक०
जउ तुम मोकौं दूरि करत हो तो मोहि मुकुति बतावहु।
एक मेक रमि रह्यौ सभनि में तौ काहे भरमावहु ।।१।।

—कबीर ग्रन्थवली (परिषद), पृ३१

उन्होंने वैकुंठ की भावना को भक्ति के लिए बाधक माना है, उनकी दृष्टि से साधुओं का सत्संग ही वैकुंठ है :—

जब लगि मनि बैकुंठ की आसा। तब लग नहिं हरि चरन निवासा ।।
कहै कबीर यहु कहिऐ काहि। साध संगति बैकुंठहि आहि ।।

—कबीर ग्रन्थावली (परि०) पृ० ६८

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलत: कबीर की रचनाओं में बैकुंठ अथवा नरक के सम्बन्ध में जो विचार मिलते हैं उनहे कबीर-पंथी साहित्य में आमूल परिवर्तन हो

गया है, और स्पष्ट रूप से उस पर पौराणिक स्वर्ग नरक का प्रभाव दिखलाई पड़ता है, दरिया साहब की रचनाओं में तत्सम्बन्धी सभी विचारधारा कबीर से पूर्ण साम्य रखती हैं। मध्यकाल के प्रारम्भिक संतों की रचनाओं में नरक की कल्पना के सम्बन्ध में इस्लामी विचारधारा से अत्यधिक नैकट्य प्रतीत होता है।

वैसे तो प्रत्येक धर्म में सत्कर्म करने वालों के लिए स्वर्ग का लोभ तथा दुष्कर्म करने वालों के लिए नरक का भय दिखलाया गया है किन्तु इसलाम धर्म में कदाचित दोजख अर्थात् नरक का भय सर्वाधिक दिखाया गया है। `कुरआन मजीद` की प्रत्येक सूर: (अध्याय) की अधिकांश आयतों में इसके उदाहरण देखने को मिल जायेंगे `सूर: आले इमरान` में कहा गया है, `जिन लोगों ने कुफ्र किया, अल्लाह के मुकाबले में न तो उनका धन उनके कुछ काम आयेगा, और न उनकी औलाद। यही लोग आग (दोज़क) का ईंधन हैं। और अल्लाह ऐसे लोगों को कड़ी सजा देने वाला है। जिन लोगों ने कुफ्र का रास्ता अपनाया है, उनसे कह दो कि तुम जल्द ही दबा दिये जाओगे, और दोज़क की ओर फेंके जाओगे, और वह क्या ही बुरा विश्राम स्थल है?`[१]

इसी प्रकार `सूर: अर-रअ्द` में कहा गया है कि `वे ही लोग हैं जिन्होंने अपने रब के साथ कुफ्र किया है, ये वही लोग हैं जिनकी गरदनों में तौक पड़े हुए हैं, यही आग अर्थात् दोज़क में जाने वाले हैं जहां ये सदा रहेंगे।`[२]

इसी प्रकार दोज़क की त्रास का भय पग पग पर दिखलाया गया है और इस प्रकार के स्थल `कुरआन मजीद` में सैकड़ों की संख्या में होंगे। संतों के आविर्भाव काल तक इस्लाम की विचारधारा का भारतवर्ष में पूर्ण रूप से प्रचलन हो हो चुका था, अत: स्वाभाविक है कि हिन्दू पुराणों में मिलने वाली स्वर्ग नरक की भावना में `कुरआन` द्वारा प्रतिपादित बिहिश्त और दोजक सम्बन्धी कथनों से और अधिक तीव्रता आ गई हो। प्रारम्भिक संतों की वाणियों में जिस प्रकार से दुष्क-

---

१. कुरआन मजीद हिन्दी अनुवाद (मुहम्मद फारुख खाँ `आनन्द` कृत), पृ०५५
२. वही, पृ० २५६

मियों के लिए नरक का भय दिखलाया गया है, उसका स्वर इस्लामी धारा से अधिक मिलता जुलता है ।

दरिया साहब भी स्वतः स्वर्ग एवं नरक की स्थली या प्रदेशीय कल्पना के विषय में पूर्ण उदासीन से लगते हैं । साथ ही अतीत से चली आती हुई पौराणिक रूढ़ियों को उन्होंने अपनी कृतियों में कुछ भी स्थान न दिया । उनके लिए तो ईश्वरानुभूति से बढ़ कर और किसी प्रकार के सुख की इच्छा थी ही नहीं, और न तो ईश्वर से विमुख स्थिति से बढ़ कर दुख की । इसीलिए उन्होंने कहा है :—

साखी

बिनु मासूक की आस का, एह दोजक की आंच ।
मिलि रहना महबूब से सोई भिस्ति है सांच ।।५।।

— ग्यान सारोदै , पृ० २५१

दरिया साहब ने इस बात का समर्थन किया है कि कहीं भी स्वर्ग एवं नरक नहीं है केवल सुख ही स्वर्ग है और दुख को ही नरक । जो व्यक्ति रोग एवं शोक से मुक्त है तो इससे बढ़ कर और कौन सा स्वर्ग स्वर्ग है :—

सरग नरक दुइ देखु बिचारी । सुख है सरग नरक दुख भारी ।।२६४
जो नहिं रोग सोग दुख सहहीं । एह तजि सरग भिस्ति कहं चहहीं ।।२६५

— ग्यान सारोदै, पृ० २६८

सर्ग नरक कर दुख सुख दाता । दुख है नरक सोई उतपाता ।।११४ ।।

— ग्यानमूल, पृ ० ३८३

कबीर पंथ में नरक का वर्णन कुछ विस्तृत ढंग से किया गया है । इसमें यह बताया गया है कि जो लोग ईश्वर से विमुख हो कर ग्रन्थ ज्ञान के मद में चूर रहते हैं उन्हें घोर रौरव नरक की यातना सहन करनी पड़ती है । जिस प्रकार बैल चक्की को घुमाता है ठीक उसी प्रकार से यम उस जीव को नचाता है । `स्वसम्वेदबोध` में नरक कुंडों की कल्पना उपलब्ध होती है, जिसमें पापियों का झुंड निवास करता है, वहां पर यम दूत उन्हें घोर यातना देते हैं, उसी प्रसंग में कई यमदूतों के नाम भी गिनाये गये हैं । `अमर सिंह बोध` में भी नरक का वर्णन किया गया है कि

चित्रगुप्त समस्त जीवों के कर्मों का लेखा जोखा रखता है और कर्मानुसार दण्ड दिया जाता है। किन्तु यहाँ स्पष्टतया निर्देश कर देना आवश्यक है कि परवर्ती कबीर-पंथी साहित्य में पौराणिक मतवाद का ही प्रभाव प्रधान हो गया है, और उनमें कबीर की विचारधारा से पर्याप्त वैषम्य है।

(ज) कर्म एवं पुनर्जन्म

अखिल सृष्टि पर ध्यानाकर्षित करने पर एक मात्र विचित्रता एवं विषमता दृष्टिगोचर होती है, ये दोनों शब्द लगभग एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। अनन्तकाल से साम्यवादियों की समानता के लिए पुकार रही है, परन्तु विडम्बना की बात है कि यह विषमता क्रमश: जटिल बनती गई। सृष्टि के दो रूप हैं :— चरम एवं अचल। मिट्टी, पत्थर, स्थल, जल, पहाड़, नदी, धातु आदि सभी स्थावर या अचल श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं, जिनकी सृष्टि निर्जीव तत्वों द्वारा हुई है, जब इन निर्जीव पदार्थों में इस प्रकार विभिन्नता है तो जीवधारियों की क्या बात चलाई जाय ? जीवों का जब प्रश्न उठता है तब हम इतना कह कर शांत हो सकते हैं कि जीवों की गणाना तो असम्भव है क्योंकि इस प्रकार का कौन आंकड़ा तैयार कर सकता है कि संसार में जीवों की कितनी श्रेणियां एवं उप श्रेणियां हैं, और प्रत्येक जाति में कितनी उपजातियां हैं ? अब इस प्रकार की विषमताओं पर यदि सचमुच ध्यान दिया जाय तो हमें सहसा किंकर्तव्य विमूढ़ होना होगा। सृष्टि का क्रम एक के ऊपर एक है यथा: पशुओं के ऊपर जिस प्रकार मानवीय सृष्टि है, ठीक उसी प्रकार से इनके ऊपर देव सृष्टि, किन्तु इस प्रकार की सृष्टि का हमें किसी प्रकार का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो पाता। वैसे जिस वस्तु को हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते उनका अनुमान हम ग्रन्थों के ज्ञान के माध्यम से लगा सकते हैं। कुछ भी हो यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि मानवीय सृष्टि की तुलना में दैवी सृष्टि पर्याप्त उत्कृष्ट है। कहने का अभिप्राय यह कि अभी तक जो कुछ कहा गया वह जगत् के वैषम्य को सिद्ध करने के लिए।

जगत की विषमता का और भी उग्र रूप हम तब देखते हैं जब कि एक ही प्रकार के जीवों को गुण, रूप एवं शीलादि में पर्याप्त पार्थक्य है। इस दृष्टि से

जब हम मानव जाति का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि इनमें ही परस्पर कितनी विषमता है ? कोई धनवान् है, तो कोई धनहीन, कोई पंडित है तो कोई मूर्ख, कोई बलवान है तो कोई बलहीन । इस प्रकार स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा होती है कि हममें प्रत्येक दृष्टिकोण से ये नाना भिन्नताएं आदिकाल से क्यों घेरे हुए हैं ?

यह प्रश्न कुछ टेढ़ा सा है, क्योंकि चिरकाल से ही लगभग वेद-उपनिषद्, दर्शन एवं अनेक धार्मिक ग्रन्थों में अखिल जगत् को एक ही परमपिता परमेश्वर की संतान स्वीकार किया गया है । तब इस प्रकार की अनेकता का क्या कारण है ? `गीता` में कहा गया है :- `समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय:` (गीता ९।२९), अर्थात् सब मेरे लिए समान हैं न मुझे कोई प्रिय है न कोई अप्रिय । तब इसका निर्णय किस प्रकार हो ?

यूरोप के दार्शनिकों द्वारा जगत् की अनेकता के विषय में जांच की गई , उनमें लाइबनिट्ज एवं कान्ट अग्रिम हैं । लाइबनिट्ज का कथन है कि सृष्टि के समस्त पदार्थ सीमा के बन्धन से युक्त होंगे, सृष्टि का अर्थ है सीमा का ज्ञान । अस्तु सीमा के परे सृष्टि सम्भव नहीं । इस प्रकार जीव भी सीमा युक्त हुआ, और उसे असम्पूर्ण भी होना पड़ेगा, और जब ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई तो पूर्ण निश्चय है कि वह पाप करे, पाप का दुष्परिणाम ही दुख है, किन्तु वे भी विषमता के विषय में समीचीन समाधान प्रस्तुत न कर सके । दार्शनिक कांट ने भी इनके समकक्ष तक ही पहुंच सके । उनकी धारणा है कि पुण्य का परिणाम सुख एवं पाप का दुख है । किन्तु यदि कान्ट की विचारधारा का सही परीक्षण किया जाय तो निश्चय ही पता चलता है कि उनके कथन के प्रतिकूल भी व्यवहार देखने को मिलते हैं । इन प्रश्नों को सुलझाने के लिए हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा अवशेष रह जाती है, अर्थात् वह अजर एवं अमर है । इसीलिए कालान्तर वह सुख दुख का भागी भी बनती है ।

पाश्चात्य दार्शनिकों का आयास प्रयास भी इन प्रश्नों का कोई

उचित एवं समीचीन समाधान न प्रस्तुत कर सका। भारतीय तत्वदर्शी ऋषियों ने इस सत्य की कुछ गवेषणा की है, इस समस्या का आधार उन्होंने कर्म को स्वीकार किया, उनकी धारणा है कि आत्मा अज, नित्य, पुरातन, सत्य एवं शाश्वत है। आत्मा अजर-अमर है, इतना अवश्य है कि उसे अनेकश: काया बन्धनों में बंधना पड़ता है। इसी का नाम पुनर्जन्म है, जिसकी आगे चर्चा की जायगी। आज जो हमारा जीवन प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका अभिप्राय यह नहीं कि यही सर्वप्रथम चरण है, अपितु इसके पूर्व भी न मालूम कितने जन्म हो चुके हैं, इसकी कुछ भी गणना नहीं हो सकती। जीव के सभी शुभ अशुभ कर्म, चिंतन एवं आयास-प्रयास आगामी जीवन का शिलान्यास करते हैं। उसकी समस्त भावनाओं, वासनाओं एवं क्रियाओं के माध्यम से इस जन्म की प्रकृति एवं भोग का निर्धारण हुआ, अर्थात् जैसा इसने किया वैसा ही फल प्राप्त किया। सब अपने सुकर्मों के परिणाम स्वरूप संसार में सुख प्राप्त करते हैं एवं दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप दुख, यदि इस वर्तमान जीवन में सुप्रवृत्तियों से प्रेरित होकर व्यक्ति शुभकर्मों में रत है तो निश्चय है कि उस आगामी जीवन में वह सुखी एवं अच्छी योनि में जन्म धारण करेगा। और इसकी प्रतिकूलावस्था में यदि उसका झुकाव दुष्कर्मों की ओर है तो निश्चित है कि उसको दुख का भागी बनना पड़ेगा। और जन्म भी निश्चय ही निकृष्ट योनि में होगा। कर्म सिद्धान्तों की यही मोटी रूप रेखा स्वीकार की गई है। इसके विषय में बादरायण ने वेदान्त सूत्र में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है :-

वैषम्यनैर्घृण्ये सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ।।

—ब्रह्म सूत्र, २।१।३४

शंकराचार्य भी उपरोक्त सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं और, उन्होंने बताया है कि ईश्वर जीवों के संचित कर्मों के आधार पर ही इस भिन्नत्व वाली सृष्टि की रचना करता है, इस प्रकार जीव के कर्म ही सृष्टि के मूलाधार हैं और ईश्वर तो निमित्त कारण मात्र।

सापेक्षो हीश्वरो विषमां सृष्टिं निर्मिमीते। किमपेक्षते इति चेत। धर्माधर्मों अपेक्षते इदि वदाम:। . . देवमनुष्यादिवैषम्ये तु तत्तज्जीवगतानि-एव असाधारणानि कर्माणि कारणानि भवन्ति। एवं ईश्वर: सापेक्षत्वान्न वैषम्य नैर्घृण्याभ्यां दुष्यति।

रामानुजाचार्य ने भी कर्म को ही जन्म प्रधान कारण स्वीकार किया है। मीमांसकों ने तो कर्मवाद पर इतना अत्यधिक बल दिया है कि उनकी धारणानुसार कर्म ही सर्वस्व है और ईश्वर कुछ भी नहीं। ईश्वर का स्थान लुप्त करते हुए उन्होंने बताया है कि स्वयं कर्म ही प्रवृत्त हो कर यथेष्ट फल प्रदान करने में सक्षम है, साथ ही उनकी यह भी धारणा है कि जब कोई व्यक्ति दुष्कर्म करेगा तो निश्चित ही वह दुष्परिणामों का पात्र बनेगा, इसमें ईश्वर किसी भी प्रकार का निषेध नहीं लगा सकता, दूसरी ओर शुभ कर्मों का फल सुख है।

जब हम जगत् के वैषम्य का आधार कर्म को स्वीकार कर लेते हैं तो इस प्रकार का प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि आदि काल से ही जो यह अन्तर चला आ रहा है इन सबका क्या आधार है ?

तस्माद्द च देवा बहुधा संप्रसुता:
साध्या मनुष्या: पशवो वयांसि ।। - मुंडक । २।१७

उससे (ईश्वर से) सृष्टि के प्रारम्भ में देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि की उत्पत्ति हुई।

तथाक्षराद् विविधा: सौम्य भावा:
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ।

— मुंडक, २।१।१

उसी ईश्वर से सब उत्पन्न होकर (प्रलय के पश्चात्) उसी में लीन हो जाते हैं।

यदि कर्म विधान का आधार स्वीकार किया जाय तो सृष्टि के पहले तो शरीर से जीव का योग ही नहीं रहता, तब तक किसी प्रकार के कर्म का कोई आधार ही नहीं। ऐसी अवस्था में ईश्वर कर्मों के आधार पर किस प्रकार इस विषय की रचना करता है। इसका समाधान हिन्दू धर्म वेत्ताओं ने प्रस्तुत किया है कि सृष्टि अनादि है और क्रमिक रूप से सृष्टि विधान संचालित होता है।

प्रश्न उठता है कि कर्म क्या है ? आत्मा की तीन शक्तियां

बताई जाती हैं :— ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति और क्रिया शक्ति ।

> परास्य शक्तिर्विविधा च माया,
> स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च ।
>
> -- श्वेताश्वतर, ६।८

यदि इन शक्तियों के क्रियाओं का अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि ज्ञान शक्ति का कार्य है —चिंतन, इच्छा शक्ति का - वासना एवं क्रिया-शक्ति का—चेष्टा करना । इन्हीं का समष्टिगत नाम कर्म है, कर्म फल कर्म से स्वतंत्र नहीं क्योंकि कर्म कर्मफल के पहले की स्थिति है एवं कर्मफल कर्म के अनन्तर की । कर्म की निष्फलता असम्भव है, क्योंकि जो कर्म किया जायगा, उसका फल पूर्ण रूपेण निश्चित है । कर्म करने में व्यक्ति स्वतंत्र है पर फल प्राप्ति में नहीं । कर्म का फल प्राय: दो प्रकार का होता है :—प्रथम संस्कार एवं द्वितीय अदृष्ट । ये शक्तियां जिस समय संचालित होती है उस समय ये विभिन्न यथोचित उपाधियां भी उत्पन्न करती है, क्योंकि क्रिया शक्ति के प्रकाश का सम्बन्ध अन्नमय कोष से है, इच्छा शक्ति का प्राणमय कोष एवं ज्ञान शक्ति का मनोमय से है । क्रमश: इन्हीं में स्पन्दन भी प्रारम्भ होगा । स्पंदनों में प्रावल्य होने पर फल से स्पंदित कोष के उपादान आंदोलित होकर स्थान च्युत हो सकते हैं । ऐसी अवस्था में कोष भ्रष्ट होने पर इन उपादानों के स्थान दूसरे नये उपादान ग्रहण कर लेते हैं, इस प्रकार के कोष परिवर्तन होने पर स्पंदनों का संस्कार उन कोषों में संस्कार के रूप में स्थिर हो जाता है । यही कर्म का स्वगत फल है । स्पंदन की स्थिरता उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार ये फोनोग्राफके सन्निकट गाये जाते हुए गीत के शब्द संस्कार के रूप में रक्षित हो जाते हैं , कालान्तर में युक्ति से उनका उद्बोधन करने पर वही गीत पुन: सुनाई पड़ते हैं । उपर्युक्त शक्तियों का संस्कार भी इन्हीं के सदृश हमारे विभिन्न कोषों में जम जाता है ।

मनुष्य के कर्म कभी भी निष्फल नहीं जाते उनका फल अवश्य ही भुगतना पड़ता है :—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
शुभा शुभं च यत्कर्म विना भोगान्न तत्क्षय: ।।
— ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्म खंड, ८४

महाभारत कार ने भी उपर्युक्त कथन का समर्थन किया है :—

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म्म कर्तारमनुगच्छति ।।
— शान्तिपर्व, १८१।१६

'जिस प्रकार गायों के मध्य बछड़ा अपनी मां का परख कर लेता है, ठीक उसी रूप से पूर्वकर्मकर्ता का अनुसरण करता है।' कहने का अभिप्राय यह है कि कर्म के सिकंजे से मुक्ति प्राप्त करना पूर्ण असम्भव है। कर्म के स्वभाव के सदृश ही उसका प्रतिफल भी होगा। अर्थात् पाप का फल दुख एवं पुण्य का फल सुख है, इसी के समर्थन में पतंजलि ने कहा है :—

ते ह्लादपरितापफला: पुण्यापुण्य हेतुत्वात् ।
— योग दर्शन, २।१४

अर्थात् पुण्य का परिणाम सुख है और पाप का दुख। यही कर्मों का परिणाम है।

कर्म इसी जन्म में न होकर पता नहीं कितने युगों से क्रमिक रूप से होते चले आ रहे हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से अनन्त जन्मों के विषय में बताया है :—

बहूनि मेव्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
—गीता ४।५

'हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हुए हैं।

भगवान का यह वाक्य समस्त जीवों के लिए चरितार्थ है। इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इन अनन्त जन्मों में नाना शुभ एवं अशुभ कर्म हुए होंगे जिनके फल भोग के लिए कहा गया है कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।' अर्थात् अवश्य ही शुभ एवं अशुभ कर्मों का परिणाम भुगतना ही पड़ेगा। साथ ही 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि।' अर्थात्

विना भोगे कर्म क्षीण नहीं होते ।

कई जन्मों तक भी कर्मों का भोग समाप्त नहीं होता, वर्तमान जन्म में तो यत्किंचित कर्मों के अंश ही समाप्त हो पाते हैं, शेष अधिकांश तो भविष्य में भुगतने के लिए संचित होते हैं, इन्हें ही संचित कर्म कहा जाता है । कर्म के दो प्रकार बताये जाते हैं :--संचित एवं क्रियमाण ।

क्रियमाणाच्च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते ।

< < <

अनेकजन्मसंजातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम् ।

—देवी भागवत, ६।१०।६-१२

इस प्रकार निश्चित हो जाता है कि कर्म की फलानुभुति पूर्ण रूपेण सम्भव है । महाभारत के शांति पर्व में भी उपर्युक्त बातों की पुष्टि की गई है :-

यथा यथा कर्मगुणं फलार्थी करोत्ययं कर्मफले निविष्ट: ।
तथा तथायं गुणसंप्रयुक्त: शुभाशुभं कर्मफलं भुनक्ति ।।

— शांति पर्व, २०१।२३

अर्थात् फल की इच्छा रखने वाला जीव फलासक्त होकर जैसा कर्म करता है ठीक उसी के अनुसार शुभ एवं अशुभ फलों का पात्र बनता है ।

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर निष्कर्ष लिया जा सकता है कि जहां एक बार कर्म प्रारम्भ हुआ कि उसका कृम अनेक जन्मों तक चाक की तरह संचालित रहता है, और जब प्रलय का समय आता है तब भी ये कर्म बीज के रूप में शेष रह जाते हैं, और ये ही कालान्तर में सृष्टि के समय बीज के सदृश पूर्व रूप से अंकुरित होते हैं ।

मूलत: इन्हीं प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के मूल बीज हमें कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में भी अंकुरित हुए उपलब्ध होते हैं, स्पष्टत: इनके साहित्य के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाल लेना पूर्ण सरल है कि कर्मबन्धन को ही इन्होंने अनन्त

जन्मों का मूलाधार स्वीकार किया था । यह बात जरा और भी सुलझी हुई प्रतीत होती है कि यदि इस प्रकार के कर्म बन्धन का प्रबल एवं दृढ़ सिकंजा जीवों के लिए न होता तो निश्चय ही इस जगत् में सभी सुख, शांति, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य आदि से सुसज्जित होने के साथ ही साथ उत्कृष्ट योनि में अवतरित होते, परन्तु यह व्यवहार में तो दृष्टव्य नहीं । अब कर्मों के विषय में उभय पंथों द्वारा प्रस्तुत की गई चर्चा दृष्टव्य है ।

'बीजक' में कबीर ने इस बात का बड़े जोर दार शब्दों में समर्थन किया है कि अपने कर्म मेटे नहीं जा सकते, क्योंकि जो एक बार लिख दिया गया वह भुगतना ही पड़ेगा ।[१] इसी प्रकार की कल्पना कबीर पंथी ग्रन्थ ' जीवधर्म बोध ' में भी प्राय: प्राप्य है :--

अपनो कर्म न मेटो जाई ।
कर्म को लिखा मिटै धों कैसे जो युग कोटि सिराई ।।
गुरुवशिष्ठ मुनि लगन सोधाई सूर्य मंत्र यक दीना ।
जो सीता रघुनाथ विवाही पलयक संचन कीना ।।
तीन लोक को करता कहिये बालि बधो बरि पाई ।
एक समय ऐसी बनि आई उनहू औसर पाई ।।
नारद मुनि को बदन बिगार्यो कीन्हें कपि के रूपा ।
शिशुपाल की भुजा उखारी आप भये हरि ठूंठा ।।
पारबती को बांझ न कहिये ईश न कही भिखारी ।
कहै कबीर करता की बातें कर्मकि बात है न्यारी ।।

— जीवधर्म बोध, पृ० २४

कबीर पंथी रचनाओं में इस प्रकार का वर्णन आया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही कर्मों के कठिन पाश में बंधा हुआ है, यहां तक कि सुर, नर, मुनि आदि सब बंधे हैं । तीनों लोकों में अवतार धारणा की भयावह परिक्रमा हो रही है, जिसमें सब जीव इस संसार में अनंत बार नाना योनि धारणा कर रहे हैं ।

---

१. बीजक, पृ० ८४

यहाँ तक कि इस आवागमन के भयावह चक्कर में बड़े बड़े सुर मुनि एवं ऋषि तक को मुक्ति नहीं, तो साधारण मनुष्यों का क्या कहना ? सभी जन्म धारण कर काल के गाल में विलीन हो रहे हैं। लोभी व्यक्ति को सर्प एवं सूअर की योनि में जन्म धारण करना पड़ता है।[1] विविध कर्मों के विषय में `कर्म बोध` में बड़ा ही अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया गया है, उसके अनुसार काल पुरुष ने जब सृष्टि उत्पत्ति की तभी इस भवसागर में कर्मों का गहन एवं अभेद्य बन्धन निर्मित किया । इसी ग्रन्थ में दो प्रकार के कर्म बताये गये हैं :— शुभ एवं अशुभ । इन्हीं कर्मों की बेड़ीमें समस्त जगत् जकड़ा हुआ है। जो कोई शुभ कर्म करता है वह भौतिक जगत् में सुख एवं ऐश्वर्य का पात्र बनता है, साथ ही वही स्वर्ग अथवा वैकुंठ का भी अधिकारी है, जिसे कि बड़े बड़े ऋषीश्वर, मुनि एवं तपस्वी कठिन योग साधना एवं घोर तपश्चर्या के अनन्तर प्राप्त करने में असफल सिद्ध होते हैं। व्यर्थ के पूजापाठ एवं ग्रन्थ ज्ञान के घोर जंजालों में फंसने के परिणाम स्वरूप एक मात्र आवागमन के बन्धन तक ही उनका इतिहास बन पाता है। पुन: इसी ग्रन्थ में तीन प्रकार के कर्मों की चर्चा की गई है :—कर्म, अकर्म, एवं विकर्म कर्म।[2] कर्म तो मनुष्य के लिए ग्राह्य है, अकर्म निषिद्ध बताया गया है, साथ ही विकर्म कर्म ही एक ऐसा कार्य बताया गया है जिससे मनुष्य को इस सांसारिक मायाजाल से मुक्ति सम्भव है, तथा उसके सद्भाग्य का निर्माण होता है। कर्म शास्त्रानुसार ईश्वर प्राप्ति के लिये किया जाता है, और अकर्म से कभी सुखोपलब्धि सम्भव नहीं, इसीलिए यह शास्त्रानुसार निषिद्ध बताया गया है। इसके बाद कर्म के तीन रूप और भी निरूपित किये गए हैं :—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण । किसी के द्वारा पूर्वजन्मों से लेकर आज तक जितने भी कर्म किये गये हैं, वे सब संचित कर्मों की श्रेणी में आते हैं, इनका संचयन अथवा स्थिरीकरण होता रहता है, संचित होने के कारण इनका लगाव मनुष्य के कई जन्मों से होता है, यही कारण है कि इनका परिणाम भी कई जन्मों तक भुगतना पड़ता है। इन्हें अदृष्ट भी कहा जाता है,

---

१. निरंजन बोध, पृ० ७—१०

२. कर्म बोध, पृ० १६५

मीमांसकों ने इसे अपूर्व नाम से भी अभिहित किया है, इस नाम का कारण यह है कि ये कर्म जिस समय तक किये जाते रहते हैं तभी तक इनका प्रत्यक्षीकरण हो सकता है, किन्तु कार्य समाप्ति के अनन्तर, इनका कुछ भी स्वरूप शेष नहीं रह जाता, एक मात्र इनके अदृश्य एवं अपूर्व परिणाम ही अवशेष रह जाते हैं[1]। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वर्तमान क्षणों तक जो कर्म किये गये हैं उन सब के परिणामों के एकत्रीकरण को ही संचित कर्म कहते हैं। इन कर्मों को हम पूर्णतया एक ही समय में नहीं भोग सकते क्योंकि इन सब में से कुछ का परिणाम दुखप्रद एवं कुछ का सुखप्रद है। इसीलिए इन विरोधी परिणामों वाले भोगों को एक ही समय नहीं भुगता जा सकता, इसलिए हम इन्हें क्रम से ही भुगत सकते हैं।

संचित कर्मों में से हम जिन्हें सर्वप्रथम भुगतते हैं उन्हें ही प्रारब्ध कहा जाता है। शास्त्र की दृष्टि से समग्र भूतपूर्व कर्मों के संग्रह में से छोटे छोटे अंशों को प्रारब्ध कर्म कहा जाता है। समस्त संचित कर्मों को प्रारब्ध नहीं कहा जा सकता, केवल उन्हीं अंशों को जिनको कि भोग रहे हैं उतना ही प्रारब्ध है। प्रारब्ध का अर्थ कबीरपंथी साहित्य में सीधे भाग्य से लिया गया है, जिनके परिणामों से शरीर की सृष्टि होती है, अर्थात् कर्मानुसार ही जन्म धारण करना पड़ता है। क्रियमाण वह है जो अब हम कर रहे हैं, यही शुभ एवं अशुभ कर्म कहे जाते हैं, क्रियमाण वर्तमान काल का सूचक है। प्रारब्ध एवं क्रियमाण में एक अन्तर ढूंढा जा सकता है, वह यह कि प्रारब्ध यदि किसी कार्य का कारण है तो क्रियमाण उसका फल अर्थात् कर्म है। कबीरपंथी साहित्य में इस प्रकार का वर्णन आया है कि यदि जीव ने अपने शुभ कर्मों के माध्यम से आत्मपरख कर अपने सत्यस्वरूप की परख कर लिया तब तो ठीक है अन्यथा अशुभ या दुष्कर्मों का दास बनने के कारण तो घोर रौरव नरक की कठोर एवं दुःसाध्य यातना का पात्र समझा जायगा।[2] इन्हीं

---

१. वैसू०, शांभा०, ३।२।३८-४०

२. कर्म बोध, पृ० १६६ जीवधर्म बोध, पृ० २७-२८

शुभ एवं अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप पाप एवं पुण्य का भी स्वरूप निर्धारण होता है, अर्थात् हम यह भी कह सकते हैं कि इस प्रकार कर्म के पाप मय एवं पुण्यमय दो स्वरूप होते हैं। शुभ कर्मों का फल पुण्य एवं अशुभ का पाप बताया गया। पाप एवं पुण्य की चर्चा 'अमरसिंह बोध' में मिलती है कि धर्मराय अथवा निरंजन ने जीवों के लिए एक दांव या बाजी लगाने का प्रयास किया, जिसके परिणाम स्वरूप इस जगत् में पाप एवं पुण्य दो प्रकार के उपाय निर्मित किये जिसमें जीवों को बांधने का प्रयास किया। उन्हीं के परिणामस्वरूप जो जैसा कर्म करता है उसे उसी प्रकार का फल भुगतना पड़ता है।[१]

'कर्मबोध' में विविध कर्मों की जटिलता का एक बड़ा ही भीषण रूप हमें देखने को मिलता है, जिसमें यह बताया गया है कि कर्म के परिणामस्वरूप ही चारों खानी, पवन, आकाश, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी आदि की उत्पत्ति हुई, सात बार, पन्द्रह तिथि एवं नवग्रह आदि सब पर कर्म का अधिकार है। कर्म के परिणाम स्वरूप रामकृष्ण अवतार लेते हैं, कर्म के कारण ही रावण एवं कंस का संहार होता है। कर्म के परिणामस्वरूप कृष्ण को वसुदेव, यशोदा के घर ले आते हैं, यशोदा गोद लेती हैं, वहीं कृष्ण वन वन गाय चराते हुए गोपियों के साथ रास क्रीड़ा करते हैं। कर्म के कारण ही -राम का अवतार हुआ, दशरथ को पुत्रशोक हुआ, सीता का रावण ने अपहरण किया एवं राम को वन में भी शांति न मिली। इस प्रकार कर्म से कोई मुक्त नहीं।[२]

निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि कर्म ही समस्त परिणामों का मूलाधार है, जिनसे स्वर्ग एवं नरक की भी कल्पना की जाती है। कर्मों का जहां तक प्रसार है वहीं तक यमराज की भी पहुंच है जिससे कि जीव अवरुद्ध होते हैं। कर्मों के ही इस घोर एवं सुविशाल जंगल में जीव उत्पन्न हो कर उलझ गया है और उसे अपने वास्तविक घर का बोध तक नहीं रह गया, इसीलिए अनेक बार

---

१. अमरसिंह बोध, पृ० १२-१३

२. कर्म बोध, पृ० १६१

यत्न करने पर भी मुक्त नहीं हो रहा है ।

कर्म चिह्न —

कबीर-पंथी रचनाओं में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि जीवधारियों के शरीर में ही काल पुरुष ने कर्मों के चिह्नों का निरूपण किया है, जिनसे उनके पूर्वजन्मों की झलक प्राप्त हो जाती है जैसा उन्होंने कर्म किया है उसी के अनुरूप शरीर पर चिह्न बने हुए हैं। मानव शरीर पर ये प्रतीक स्पष्ट ही परिलक्षित होते हैं, जिससे उनके कर्मों का लेखा जोखा तैयार किया जा सकता है। जिस समय वीर्य स्त्रियों के गर्भ में स्थिर होता है, उसमें जीव की स्थिति रहती है, जिसमें कि उस जीव के पहले किये हुए कर्म रहते हैं। उसके पूर्व कर्मानुसार ही भाग्य एवं शरीर का निर्माण होता है। उनके कर्मों के समस्त प्रतीक उनके शरीर पर बने रहते हैं, तिल एवं मस्सा आदि प्रतीक ही तो हैं। इन सब का विशद् ज्ञान सामुद्रिक शास्त्रज्ञों को विशेष रूप से होता है।[१]

इस प्रकार भवसागर, ब्रह्माण्ड तथा पिंड आदि सब की स्थिति का मूल कारण कर्म ही है। यह जगत् एक महा सागर है जिसमें सब निमग्न हो रहे हैं। कभी स्वर्ग, कभी नरक तथा कभी मृत्युलोक के आरोह एवं अवरोह में जीव नाच रहा है। संसार की चौरासी लक्ष योनियों में किसी को कदापि सुख नहीं है, सम्पूर्ण जगत् ही पाशविक वृत्तियों से ओत-प्रोत है, जिसमें काम, क्रोध, मद, लोभ आदि कुप्रवृत्तियाँ घर किये हुए हैं वह सच्चा मनुष्य नहीं है। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीया जब तक मन में बनी हैं — और सारी कुप्रवृत्तियों का जब तक लोप नहीं होता, तब तक सत्य का प्रत्यक्षीकरण एवं आध्यात्मिक सुख की उपलब्धि असम्भव ही है।[२]

दरिया-पंथ में कबीर-पंथ के सदृश इतना बड़ा व्यापक चित्रण तो नहीं दृष्टिगत होता किन्तु इसमें भी दो प्रकार के कर्म बताये गये हैं। कर्म एवं अकर्म।

---

१. कर्मबोध, पृ० १७६—१७९

२. वही, पृ० १८१-१८५

कुकर्म के कारण ही जीव को यम यातना का शिकार होना पड़ता है।[१]

कुकरम करम काम अरुझाना। फल के कर्म अंत बिलगाना।।

— अमर सार, पृ० १४(पाण्डु०)

तीर्थव्रत के क्षेत्र में इन्हीं कर्मों की संख्या के लिए षट्कर्म का प्रयोग हुआ है, जिन्हें सदा उदासीनता की दृष्टि से देखा गया है। 'ज्ञानरतन' में उन वेद विप्रों के प्रति अनादर प्रदर्शित किया गया है जिन्होंने कर्मकांड का प्रसार किया है, षट्कर्मों में लिप्त होकर जीव सद्गति से विमुख रह जाते हैं। इसी कारण अंत समय में काल के हिंडोले पर झूलना पड़ता है।[२] इसका अभिप्राय संचित कर्म से ही है, जीव को अपने कर्मों को प्रतिफल निरंतर कई जन्मों तक भुगतना पड़ता है। दरियापंथ में में कुछ कपटपूर्ण कर्मों की गणना की गयी है जिनका परिणाम हिम के पुष्प के सदृश निःसार होता है।[३]

जन्म जन्मान्तर में जीवों को उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट योनि की प्राप्ति बताई गई है,उसका मूलाधार यही कर्म ही कहा जा सकता है। उत्कृष्ट योनिप्राप्त करने के लिए बहुत ही अच्छे कर्म करने पड़ते हैं :—

बड़ा पुन्य कीएहु पुर्बिल में भए ब्राह्मन औतारा।
अबकि बार संभारहु पंडित बूड़त हो मझधारा।।

— शब्द पृ० ६८ (परि०)
(संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

दरिया साहब ने भी कबीर-पंथ के सदृश इस बात में विश्वास प्रकट किया है कि दुष्कर्म ही निकृष्ट योनि धारण करने के मूल कारण हैं। निकृष्ट-योनि से उनका अभिप्राय बैल,बकरा, कुत्ता, सूअर, गधा,उल्लू, गीदड़, गोह, भालू, मेढ़क, भुजंग प्रेत आदि निम्नतर जीवों से था :—

---

१. दरिया सागर, पृ० ११०
२. ज्ञान रतन, पृ० २०३
३. ब्रह्म विवेक, पृ० ३३२

उलटि पलटि भवसागर रहटा नधैबहु है ।
संतो चारि चरन दुइ सींध भुसा अरखेबहु है ।।
नहीं रही कुलकर्म सो आपु बंधेबहु है ।
संतो बाजीगर के हाथ पलक नहिं पै बहु है ।।
जंगल मांह के शेर से सोर लगैबहु है ।
संतो स्वान सुकर कर देह बहुत दुख पैबहु है ।।

— शब्द पृ० १६६(परि०)संतकवि दरिया एक अनु०

खर लादी लादे फिरै, स गधन नाहिं गुर ज्ञान ।
स्वान सकंठ भव भरम है, श्रीरवब की मत आन ।।
करम किए कीरम हुआ, नैन बिहुना सोय ।
गधहा अब गादुर हुआ, भग्ति महातम जोय ।।

— सञ्ज्ञानी, पृ० १८१ (परि०) संतकविदरिया एक अनु०

जन्म एवं मृत्यु ही जीव एवं जगत् का मूलाधार है, इसके लिए महाभारत में वर्णन आता है कि " महन्यानि भूतानि गच्छन्ति यमसादनमा" अर्थात् मृत्यु तो जीवन के प्रत्येक दिन की घटना है । "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु" अर्थात् जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु निश्चित है । जन्म एवं मरण एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध रखते हैं और इनमें इस प्रकार का गूढ़ रहस्य भरा हुआ है, जिसके विषय में कोई एक निश्चित समाधान ही नहीं ढूंढा जा सकता । यह एक कुतूहल जनक प्रश्न उठता है कि जीव मृत्यु के अनन्तर क्या हो जाता है ? और इस प्रश्न पर अतीत काल से ही विचार किया जाता रहा है ।

इस प्रश्न पर जड़वादियों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार की कोई बात नहीं क्योंकि इनके अनुसार मृत्यु के अनन्तर तो कुछ गति रह ही नहीं जाती । परन्तु जब जीववादियों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के समक्ष उनका कोई तारतम्य नहीं बन पाता । इस प्रकार मृत्यु के बाद दो स्थितियों की कल्पना की जाती है :
१. जड़वादियों के अनुसार मृत्यु के पश्चात् कुछ अवशेष नहीं रह जाता । और
(२) जीववादियों की धारणानुसार जीव अजर अमर एवं शाश्वत है ।

एवं महात्माओं द्वारा इस बात का समर्थन किया गया है कि 'समस्त कायिक अवयवों की समाप्ति के अनन्तर जीव अमर है, यह शरीर नाशशील और अमृत आत्मा का अधिष्ठान है।[१] 'गीता' में भी इस प्रकार का वर्णन आया है कि आत्मा का न तो मरण होता है, न जन्म, वह शाश्वत अर्थात् समभाव वाला है, न तो इसे कोई मारता है और न तो यही किसी को मार सकता है।[२] इस प्रकार जीव अज, नित्य, पुरातन और सनातन है।

मृत्यु के पश्चात् जब शरीर का नाश हो जाता है तब आत्मा की क्या स्थिति होती है? इसका उत्तर चैतन्य वादियों ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि जीव ईश्वर का अंश है एवं मृत्यु के अनन्तर वह पुन्दकता सिन्धुस्वरूपी ईश्वर में समाहित हो जाता है। इस बात को एक ऐसे उदाहरण से और भी स्पष्ट किया जा सकता है कि जिस प्रकार से घट की अनुपस्थिति में घटाकाश महाकाश में समाहित हो जाता है उसी प्रकार जीव एवं ईश्वर तद्रूप हो जाते हैं। इसाई और इस्लामी संस्कृति की यह धारणा है कि शरीर के नाश होने पर आत्मा अन्य लोक में पदार्पण करती है। और कर्मानुसार स्वर्ग एवं नरक की प्राप्ति होती है। हिन्दू एवं बौद्धादि मतानुयायियों के अनुसार मृत्यु के अनन्तर जीव को दूसरे लोक की प्राप्ति का समर्थन तो मिलता ही है साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि कुछ समय के पुनः पश्चात् पुनः आत्मा का आगमन होता है, इसी को

---

१. मर्त्यं वा इदं शरीरं आर्तं मृत्युना।
तदस्य अशरीरस्यात्मनो धिष्ठानम्।।

—छान्दोग्य, ८।१२।१

२. नजायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। २०।।

— गीता २।२०

जीव का जन्म धारण कहा जाता है। `गीता` में भगवान ने अर्जुन से इस बात की पुष्टि की है ` बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।` अर्थात् ` हमारे तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं।` यूनानी तत्ववेत्ता पीथा गोरस, प्लेटो आदि जन्मान्तर बाद के समर्थक थे। `उपनिषद` में इस प्रकार का वर्णन आया है कि ` अविद्या से मोहित मूढ़ व्यक्ति कर्मानुष्ठान करके अपने को कृतार्थ समझते हैं। कर्म की आसक्ति के मारे उन्हें ज्ञान नहीं हो पाता। इसके परिणाम से वे उच्च लोक से निम्नगति को प्राप्त होते हैं। जो लोग कर्मकांड में आस्था रखते हैं, यह नहीं जानते कि इससे भी उत्कृष्ट कुछ और वस्तु है वे अज्ञानी हैं, वे लोग स्वर्ग में सुख भोगने के अनन्तर (पुण्य क्षीण होने पर) पुन: इस लोक में अवतरित होते हैं।[1]

पुन: इस प्रकार का वर्णन आया है कि उसका यह पुत्र रूप आत्मा पुण्य कर्म के लिए यहाँ उसका प्रतिनिधित्व करता है और उसकी आत्मा अर्थात् स्वत: कृत कृत्य होकर प्राचीन होने पर चला जाता है, अर्थात् यह उसका तीसरा जन्म है।[2] प्रथम उत्पत्ति माता के गर्भ से, द्वितीय पुत्र रूप में, इसी लिए `आत्मा वै जायते पुत्र:` — आत्मा की पुत्र रूप से उत्पत्ति बताई गई है।

इस प्रकार देखा जाता है कि वेद, दर्शन एवं अन्य धार्मिक साहित्य में पुनर्जन्म के विषय में प्रचुर मात्रा में समर्थन किया गया है। इसके साथ ही वेदों तथा अन्य ग्रन्थों में जिस स्वर्ग एवं नरक की कल्पना सुनिश्चित की गई है, इन्हीं के परिणामस्वरूप देवयान एवं पितृयान के मध्य अन्तर ढूंढ़ निकाला गया और इतर लोक में प्राप्त होने वाले शुभ एवं अशुभ परिणामों की जो धारणा स्वीकार की गई, उसका विश्लेषण करने पर हम निर्णय ले सकते हैं कि जीवों का पुनर्जन्म भी होता है। पुनर्जन्म के समर्थक तो लगभग सभी संत मतावलंबी महात्मा रहे ही हैं और जहाँ तक कबीर-पंथी एवं दरियापंथी साहित्य का प्रश्न है, इनके लिए

---

१. मुण्डक, १।२।८।१०

२. ऐतरेय ४।४

पूछना ही क्या है ? पुनर्जन्म की धारणा से इनका सम्पूर्ण साहित्य ओत-प्रोत है। इन पंथों द्वारा प्रस्तुत की गई मान्यताओं के विषय में देखते हैं कि जीवों के विषय में पुनर्जन्म की धारणा के निश्चय के समक्ष मूलाधार के रूप में यही धार्मिक ग्रन्थ रहे होंगे। उभयपंथों में जीवों के इस कठोर आवृत्ति की जो भयावह कल्पना की गई है वह सर्वथा अनूठी एवं अतुलनीय सी ही बनी पड़ी है। मानव योनि में गर्भ धारण के पूर्व ही दोनों पंथों ने इस विषय पर विश्वास किया है कि जीव ईश्वर के समक्ष एक कौल या करार कर अवतरित होता है, वह प्रतिज्ञा सदाचरणों की ही होती है, परन्तु विडम्बना तो यह है कि जन्म लेते ही वह सब कुछ भूल जाता है :—

चूके कौल गरभ का भाई। बारम्बार गरभ में जाई।

— जगजीवन बोध, पृ० २१

कौल किया वे कर्म न छूटा ज्यों मर्कट की मुठी है।

— शब्द अर्थी, पृ० २३ (पाण्डुलिपि)

इस प्रकार सिद्ध होता है कि जीव को बार बार गर्भ में आना पड़ता है। इन जन्मों का चक्कर यदि कुछ कम होता तो सरल भी था परन्तु विडम्बना तो इस बात की है कि दोनों पंथों में इस प्रकार का उल्लेख आया है कि जीव को चौरासी लक्ष योनियों के भयावह आवर्तन में नाव के पक्षी के सदृश चक्कर लगाना पड़ता है। ऐसे उदाहरण इनमें पग पग पर उपलब्ध होंगे। 'उपनिषदों में इस बात की पुष्टि की गई है कि "जिस प्रकार जोंक घास के तिनके के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुंचने पर दूसरे तिनके पर से अपने शरीर के अंतिम भाग को खींच लेती है उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को त्याग कर नूतन शरीर में प्रवेश करती है।"[1] 'गीता' में इसी बात को कुछ और ही ढंग से प्रदर्शित किया गया है कि "जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नूतन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार से आत्मा एक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण करती है।"[2]

---

१. बृ०उ०, ४।४।३

२. गीता, २।२२

इसी प्रकार इन्हीं अतीत की मान्यताओं ने इन पंथों को पुनर्जन्म की धारणा के निश्चय के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इनमें समान रूप से चौरासी लक्ष योनियों की कल्पना सुनिश्चित की गई है।[१] स्पष्टत: इस बात का बड़े ही जोरदार शब्दों में उल्लेख किया है कि राम से विमुखनर को चौरासी लक्ष योनियों में अनेकश: जन्म धारण कर असह्य पीड़ा सहनी पड़ेगी।[२] `निर्णयसागर` में भी इस बात का संकेत हमें दृष्टिगोचर होता है कि निरंजन ने ऐसा जाल का प्रसार किया जिसमें चौरासी लक्ष योनियों का फांस ऐसा कठिन है, कि इनसे कदापि उद्धार नहीं बार बार जन्म लेकर काल गाल का शिकार बनना पड़ता है। भवसागर में अनन्त जन्मों में भटकते हुए डूब जाना पड़ता है।[३]

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी चौरासीलक्ष योनियों एवं बार बार जन्म धारण के प्रसंग बाहुल्य के साथ मिलते हैं। गर्भ यातना में जीवों का क्रम निरंतर संचालित रहता है। इन जन्मों के भयावह परिक्रमा की प्रतीक योजना चाक के परिहर से की गई है जो कि बार बार नाचता रहता है। ठीक उसी प्रकार से यह जीव भी नाना जन्मों में भटकता फिरता है।[४] मानवतन पाकर जब व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर अपने को उस भवसागर के माया जाल से मुक्त न कर सका तब वह मृत्यु के बाद चौरासी लाख योनियों के कठिन बंधन में बंध जाता है।[५] दरिया साहब ने `सहज्ञानी में बताया है :-

चौरासी को जीव, मानुष की खलरी पै न्है।
लोचत मिलै न पीव, कोटि जन्म भरमत फिरै।।

— सहज्ञानी, पृ० ३८ (पाण्डुलिपि)

---

१. अनुराग सागर, पृ० ५३ एवं दरियासागर, पृ० ३०
२. बीजक, पृ० २६
३. निर्णयसागर, पृ० २१
४. ज्ञान मूल, पृ० ८१
५. ज्ञान सरोद, पृ० २६३

अमरसार में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है :—

चौरासी कबहिं नहिं छूटै। धरि धरि काल गर्भ मंह लूटै।।

—अमर सार, पृ० ६८ (पाण्डुलिपि)

चौरासी लक्ष योनियों की मूल कल्पना के लिए भी पौराणिक ग्रन्थों को मूलाधार स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि 'चारवाक दर्शन' को छोड़ कर समस्त धार्मिक ग्रन्थों में इस प्रकार की धारणा को सम्मान प्रदान किया गया है। उत्क्रान्ति तत्व के आधार पर पश्चिमी आधिभौतिक वेत्ताओं का यह मत है कि सृष्टि विकास के प्रारम्भ के उपस्थित एक छोटे से गोल सजीव सूक्ष्म जन्तु से, मनुष्य प्राणी उत्पन्न हुआ। इस कल्पना से यह बात स्पष्ट है कि सूक्ष्म गोल जन्तु का स्थूल गोल जन्तु बनने में, स्थूल जन्तु का पुनश्च छोटा कीड़ा होने में, छोटे कीड़े के बाद उसका अन्य प्राणी होने में, पृथक् योनि अर्थात् जगत् की अनेक पीढ़ियाँ व्यतीत हो गई होंगी। इससे एक आंग्ल जीव शास्त्रज्ञ ने गणित के द्वारा सिद्ध किया है कि, पानी में रहने वाली छोटी छोटी मछलियों के गुण-धर्मों का विकास होते होते उन्हीं को मनुष्य स्वरूप प्राप्त होने में, भिन्न भिन्न जातियों की लगभग ५३ लाख ७५ हजार पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं, और सम्भव है कि इन पीढ़ियों की संख्या कदाचित् इससे दसगुणी भी हो। ये हुई पानी में रहने वाले जलचरों से लेकर मनुष्य तक की योनियाँ। अब यदि इनमें ही छोटे जलचरों से पहले के सूक्ष्म जन्तुओं का समावेश कर दिया जाय, तो न मालूम कितने लाख पीढ़ियों की कल्पना करनी होगी। इससे मालूम हो जायगा कि हमारे पुराणों में वर्णित चौरासी लाख योनियों की कल्पना की अपेक्षा, आधिभौतिक शास्त्रज्ञों के पुराणों में वर्णित पीढ़ियों की कल्पना कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी है। कल्पना सम्बन्धी यह न्याय काल (समय) को भी उपयुक्त हो सकता है। भूगर्भ जीव शास्त्रज्ञों का कथन है कि इस बात का स्थूल दृष्टि से निश्चय नहीं किया जा सकता कि सजीव सृष्टि के सूक्ष्म जन्तुओं का इस पृथ्वी पर कब जन्म हुआ? और सूक्ष्म जलचरों की उत्पत्ति तो कई करोड़ वर्षों पहले हुई है। इस विषय का विवेचन The Last Link by Ernst Haeckel with notes, etc. by Dr. H. Gadow (1898) नामक पुस्तक में किया गया है। हैकी ने इस पुस्तक में जो दो तीन उपयोगी परिशिष्ट जोड़े हैं [illegible] [illegible] बातें दी गई हैं। हमारे पुराणों में चौरासी लाख

योनियों की गिनती इस प्रकार की गई है --६ लाख जलचर, १० लाख पक्षी, ११ लाख कृमि, २० लाख पशु, ३० लाख स्थावर और ४ लाख मनुष्य ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुर्वजन्म पूर्णरूपेण निश्चित है, जो कि व्यक्ति के कर्मों पर ही निर्भर करता है । यदि कोई शुभ कर्म करता है तो निश्चय ही उसे उत्कृष्ट योनि में अवतरित होकर सुख भोग करना पड़ेगा अन्यथा निकृष्ट योनि में जन्म लेकर दुख का पात्र बनना होगा ।

दोनों पंथों में दुष्कर्मों का भुगतान का चित्रण बड़े ही अतिरंजना के साथ मिलता है, जिसका अध्ययन करने से हृदय कांप उठता है । बुरे कर्मों के कारण एक ऐसे बैल की कल्पना की गई है जिसके लिए चार पैर, दो सींग, नंगे अंग, झुकी हुई गर्दन, भारी जुआ, भूसे का भोजन है । और उसे चाबुक की मार टूटी फूटी नासिका और रक्त स्रावी घाव आदि असह्य पीड़ा सहन करनी पड़ेगी :-

चारि पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गई है ।
उठत बैठत ठेंगा परि है तब कत मूड़ लुकई है ।।
हरि बिनु बैल बिराने हुई है ।
फाटे नाकन टूटे का धन कोदव को भुसखई है ।।१।।
सारोदिन डोलत बन महिआ अजहु न पेट अघई है
जन भगतन को कहो न मानो कीओ अपनो पई है ।।२।।

— संत कबीर, पृ० १२८

बैल हुआ तब बहु दुखभारी करके पीछे चलते ।
घास भुआ कई ध्यान लगावहिं दांत खियाने करते ।।
ज्ञान कहैं तब क्यों चितवे भक्का भुक्की करते ।
कहै दरिया मन वारो बीता क्रोध भया तब गलते ।।

— शब्द पृ०१३५(परिशिष्ट)
संत कवि दरिया एक अनुशीलन

---

१. [illegible], पृ० [illegible]

बेदे अरुभि रहा संसारा । फिरि फिरि होए गरभ अवतारा ।।२९९।
चारि चरन सिंध होए होइहैं । जोइनि संकट चौरासी जइहे ।।३०० ।।

— दरिया सागर, पृ० ३०

अंत में निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि दोनों पंथों में पुनर्जन्म के प्रति पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया है, इस बात की पुष्टि इनके साहित्यिक वर्णनों से और भी हो जाती है जब कि कबीर एवं दरिया साहब के सतसुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय आदि के रूप में अनेक बार जन्म धारण के प्रसंग बाहुल्य के साथ उपलब्ध होते हैं ।

अध्याय - ४

योग और स्वास्थ्य

अध्याय—४

योग और स्वरोदय

क—योग—

भारतीय अध्यात्म साधना में योग का बहुत बड़ा महत्व है, यही कारण है कि भारतीय दर्शन में इसे गौरव की दृष्टि से देखा गया । साथ ही इसे मुक्ति का परमोपाय स्वीकार किया गया है । मन के प्रसंग में इस बात का भली भाँति स्पष्टीकरण किया गया है कि इसके प्राबल्य के परिणामस्वरूप मानव जीवन में समस्त आपत्तियाँ जन्म लेती हैं, इसलिये इसका स्थिरीकरण नितान्त आवश्यक है । मन ही इन्द्रियों को सांसारिक प्रपंचों में अनुरक्त करता है, इसलिए मन के स्थिरीकरण की क्रिया का नाम ही योग है, योग का अभिप्राय मन को सोद्देश्य की ओर नियोजित करने से लिया जाता है । मन के शांत होते ही साधक को परमानन्द की अनुभूति होती है इस प्रकार जीव और ब्रह्म का पूर्ण रूप से मिलन अर्थात् विजातीय स्वजातीय एवं स्वगत पार्थक्य से शून्य होकर जीव-ब्रह्म का तादात्म्य ही योग है । जिस अवस्था में साधक की समस्त चित्तवृत्तियाँ एवं कार्य व्यापार सच्चिदानन्द की अनुभूति में नियोजित हो जाते हैं, उस दुर्लभ अवस्था का नाम योग है । योग के प्राचीन व्याख्याता महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है —"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" तदा-द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" —पातंजल योग दर्शन —२।३ " ऐसी स्थिति में द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य के सुख का अधिकारी बन जाता है ।

था । नाथपंथी योगियों एवं शैव साधकों द्वारा प्राण वायु ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचा कर अनहदनाद सुनने की परम्परा कबीर का युग आते आते पर्याप्त गति प्राप्त कर चुकी थी, इसलिए यह बात स्वाभाविक प्रतीत होती है कि कबीर पर इन सबका प्रभाव पड़ता है । वैसे परवर्ती सन्त साहित्य की योग साधना पर नाथ पंथियों के हठयोग का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही पड़ा है । क्योंकि उनकी हठयोग परम्परा का रूप ही सन्त साहित्य की योग साधना में ब्रह्मानन्द के मिलन सुख को प्रकट करने के लिए प्रतीक रूप में संरक्षित रह सका । सन्त कवियों की वाणियों में योग परक शब्दावली तथा रूपक और प्रतीकों का प्रचलन प्राय: दृष्टिगत होता है । संतों की साधना पद्धति स्वानुभूतिमूलक सहजयोग पर अपेक्षाकृत अधिक विश्वास रखती है, उनकी साधना निवृत्ति मूलक न हो कर विशेष रूप से प्रवृत्ति मूलक ही है । जहां तक कबीर का प्रश्न है उनकी प्रामाणिक रचनाओं से निष्कर्ष निकालने पर यही कहा जा सकता है कि उनकी आस्था हठयोग के प्रति अवश्य थी किन्तु उसे उन्होंने साधन रूप में ही ग्राह्य समझा । सन्त कबीर के सम्बन्ध में आचार्य क्षितिमोहन सेन का विचार है कि "कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वग्रासी है । वह कुछ भी नहीं छोड़ना चाहते, इसीलिए वे ग्रहणशील हैं, वर्जनशील नहीं । इसीलिए उन्होंने हिन्दू, मुसलमान सूफी, वैष्णव तथा योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है । कबीर के योगमतवाद के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है । उन्होंने कुछ अंशों में इसे मानलिया है, कुछ अंशों तक विशेष भाव से आत्मसात् कर लिया है, कुछ अंशों तक छोड़ दिया है और फिर किसी किसी अंश पर कठोर प्रहार भी किया है ।"[१]

कबीर-साहित्य में ऐसे योग परक पद उपलब्ध होते हैं जिनमें परस्पर विरोधी अनुभूतियां मिलती हैं, कहीं हठयोग का वर्णन कहीं पर इसका खण्डन, कहीं पर शुष्क साधना करने वालों के प्रति [illegible] भी करते हैं और कहीं पर सहज साधना पर [illegible] देते हैं । कायिक साधना की तुलना में वे

---

१. [illegible] (कबीर का योग) श्री क्षितिमोहन सेन, पृ० [illegible]

मानसिक साधना को विशेष श्रेयस्कर समझते हैं।

यौगिक क्रियाओं को तीन उपश्रेणियों में विभाजित किया जाता है —कायिक साधना, मानसिक साधना और सहज साधना। हठयोग का अभिप्राय कायिक अथवा शारीरिक साधना से लिया जाता है, जिसमें साधक कटु-काया क्लेश द्वारा शारीरिक अंगों को प्रताड़ित करता है। राजयोग हठयोग के अनन्तर की स्थिति है, यह शरीर से सम्बद्ध होते हुए भी पूर्णरूपेण मानसिक स्थिति है, इसमें हठयोग का मात्र साधन रूप ही व्यवहृत होता है। ध्यान योग एवं लय योग का सम्बन्ध पूर्ण मानसिक स्थिति से है। कबीर ने जिस 'सुरति शब्द योग' के प्रति श्रद्धा अर्पित की है उसका पूर्ण तादात्म्य एक प्रकार से लययोग से ही है, और ध्यानायोग की अंतिम परिणति लययोग ही है। संतों की साधना में सर्वाधिक महत्व सहजयोग को देती है जिसमें स्वानुभूतिपरक भावना को ही महत्व दिया जाता है। इसी सहज योग का नाम ही सहज साधना है।

हठयोग—

हठयोग की साधना में जिस अष्टांग योग का प्रतिपादन किया गया है उसके प्रणेता महर्षि पतंजलि रहे हैं उनके समय से ही योग की सफलता के लिये इन साधनों की कठिनताओं ने अपना उग्ररूप धारण कर लिया, इनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का नाम आता है।[1] 'हठयोग प्रदीपिका' में इस बात की चर्चा मिलती है कि शरीर के अन्दर कुल ७२ हजार नाड़ियाँ हैं। इनमें इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा मुख्य हैं। इन्हें क्रम से ललना, रसना और अवधूती भी कहते हैं। संत साहित्य में इन्हें क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती के नाम से भी अभिहित किया गया है। 'शिव संहिता' में कुल नाड़ियों की संख्या ३५००० बताई गई है। काया के अभ्यंतर साधकों ने मेरुदण्ड में अनेक चक्रों की भी कल्पना की है इनके स्थान, रंग एवं इनसे सम्बद्ध देवताओं की ओर भी संकेत किया गया है।

---

१. पातंजलि योग दर्शन

मेरुदण्ड में नीचे से लेकर ऊपर तक क्रमश: मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद्, विशुद्ध व आज्ञा चक्र हैं। सबसे आगे की ओर सातवां सहस्रार चक्र है। सबका आकार कमल के सदृश है, जिनके दलों की कल्पना में अन्तर है। मूलाधार के नीचे कुंडलिनी, सर्पिणी के आकार की साढ़े तीन वलयों में अधोमुख रूप में स्थित है जिसे कि साधक योगाभ्यास द्वारा ऊर्ध्वमुख करता है, इसे ही कुंडलनी की जागृतावस्था कहते हैं। जब साधक प्राणवायु कुंडलिनी के समीप ले जाता है तब वह नानाचक्रों का भेदन करती हुई त्रिकुटी में पहुंचती है, जिसे त्रिवेणी का संगम कहते हैं इसी स्थान पर इड़ा पिंगला एवं सुषुम्णा का संयोग होता है। यहीं से सुषुम्णा ब्रह्म रन्ध्र तक तिरछी गई है, जिसे वंकनालि कहते हैं। जब त्रिकुटी वंकनालि तक पहुंच जाती है तब नाना ध्वनियां होती है, अंतत: वंकनालि से अमृत स्राव होने लगता है, योगी अपने जिह्वा को तालुकेपृष्ठ भाग तक ले जा कर इस अमृत रस का सुमधुर पान करते हैं।

इस बात की पहले ही चर्चा की जा चुकी है कि कबीर हठयोग की कष्टसाधना को विशेष महत्व नहीं देते, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वे इसके प्रति उदासीन रहे हैं, प्रत्युत हठयोग के विषय में उन्होंने बड़ी ही कुशलता एवं विवेक से काम लिया है, वे हठयोग की अन्ध परिपाटी के अन्धानुसरण करने वाले नहीं थे। कबीर-साहित्य में विभिन्न कमल दलों एवं उनसे सम्बद्ध देवताओं की चर्चा भी उपलब्ध होती है। उनकी अष्टदल की कल्पना पूर्णरूपेण मौलिक प्रतीत होती है। प्रत्येक स्थिति में उन्होंने हठयोग को मन स्थिर करने का परमोपाय घोषित किया है।

कबीर पंथी रचनाओं में हठयौगिक क्रियाओं का वर्णन मिलता है। `ज्ञान सागर` में हठयोग के विषय में व्यवस्थित रूप से प्रकाश डाला गया है जिसमें इसके रचयिता ने अष्टदल कमलों का भी उल्लेख किया है :—

(१) चार दल कमल जहां पर गणेश निवास करते हैं।

(२) षट्दल कमल जहां पर सावित्री सहित ब्रह्मा का निवास स्थान है।

(३) अष्टदल कमल पर लक्ष्मी निवसित हैं।

(४) द्वादश कमल यहां पर शिव जी विराजमान हैं।

(५) सोलह दल कमल यहां पर जीवात्मा का निवास स्थान है।

(६) त्रिदल कमल जहां पर सरस्वती है।

(७) ब्रह्मरन्ध्र में दो दल कमल है यहां ब्रह्मा रहते हैं।

(८) सुरति कमल, यह शरीर के बाहर है। इसके बारे में 'ज्ञान सागर' में बताया गया है कि ७ कमलदलों के विषय में सभी जानते हैं किन्तु अष्टदल कमल के विषय में कोई ही जानता है, इसके ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं। इसका रहस्य सद्गुरु ही बता सकता है।[१]

कबीर पंथी-साहित्य 'भवतरण बोध' (पृ० ५७) 'कबीरबानी (पृ० १११) एवं आगम निगम बोध (पृ० ७-७५) आदि में हठयोग के विषय में चर्चा की गई है किन्तु इनमें इन सबके विषय में पूर्ण समन्वित चित्रण नहीं उपस्थित किया गया है और न तो इस प्रकार का कोई उदाहरण ही उपलब्ध होता है, जिससे कि कबीर पंथी महात्माओं की हठयोग के प्रति आस्था प्रदर्शित हो। कबीर पंथी रचना 'ज्ञानसागर' में साधारणतः सात कमलों के स्थान पर अष्टदल कमल की चर्चा की गई है, उसमें आठवें कमल की स्थिति शरीर के बाहर बताई जाती है, जो कि असंगत प्रतीत होता है। साथ ही इसके प्रति अर्पित की गई आस्था परम्परा के प्रतिकूल ज्ञात होती है। कबीर पंथी-साहित्य में वर्णित कमलों एवं उनसे सम्बद्ध देवों की संगति भी कबीर-साहित्य के अनुकूल नहीं है। प्रत्येक कमलों पर स्थित पृथक देवताओं की कल्पना पर कबीर का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। वैसे कबीर ने अष्ट दल वाले कमलों के विषय में विशेष स्पष्टीकरण नहीं किया है और न तो शरीर के बाहर ही किसी कमल की स्थिति ही उन्होंने बताई है। इस प्रकार शरीर से भी बाहर कमल दल की कल्पना कबीर पंथी-महात्माओं की मौलिक उद्भावना की सूचना देती है। कबीर की भांति इन संतों ने किसी प्रकार के यम नियमों की चर्चा नहीं की है और न तो विभिन्न आसनों के प्रति ही इनकी किसी प्रकार की आस्था ज्ञात होती है। कबीर-साहित्य में पिंगला, इड़ा, पिंगला, के प्रति भी ... सुषुम्णा एवं त्रिवेणी आदि नाड़ियों की चर्चा अनेक बार हुई है, उनका भी कबीर पंथी-साहित्य में अति सूक्ष्म ढंग से निर्देश हुआ है।

१ ज्ञान सागर, पृ० ८६ - ८७

शन हुआ है ।

कालान्तर में कबीर पंथ में हठयोगियों की निन्दा करने की परम्परा का भी प्रचलन हो गया । इस पर कबीर का ही प्रभाव पड़ा है । कबीर-साहित्य में ऐसे अनेक स्थल मिले हैं जहां पर उन्होंने केवल कटु काया क्लेश के माध्यम से ईश्वरानन्द की अनुभूति करने वालों पर कटूक्तियाँ की है । कबीर पंथी-साहित्य में महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांगयोग का एक नया रूप भी दृष्टिगत होता है । जिसमें ज्ञान, विचार, विवेक, शील, संतोष, निर्वैर, सहजयोग, शून्य योग की कल्पना की गई है । इनमें इनके आचरण की विधि एवं उनके परिणामों की ओर भी निर्देश किया गया है ।[१]

(१) ज्ञान–

यह कबीर पंथ द्वारा प्रतिपादित अष्टांगयोग की प्रथम स्थिति है जिसमें भक्त को परम पद की उपलब्धि होती है । इस अवस्था में भक्त निरवलम्ब, वासना-शून्य निरवैर एवं निःस्पृहादी बन जाता है, जिससे उसके समस्त कर्म एवं भ्रम विलीन हो जाते हैं और वह शुद्ध बुद्ध बन जाता है ।

(२) विचार –

इस स्थिति में व्यक्ति निर्मोही एवं निर्वैर बन जाता है, वह जगत में रहता हुआ भी उससे अप्रभावित हो जाता है, यह स्थिति निर्लेप भाव की है । वह जगत के विविध अनुरागात्मक सम्बन्धों से अपने को विमुख कर, शब्द में ध्यान धारण करता है परिणाम स्वरूप अनहदनाद सुनते हुए वह परमपद को प्राप्त करता है ।

(३) विवेक–

यह एक ऐसी अनिवार्य स्थिति है, जिसके बिना साधक अपने कार्य क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता । विवेक का प्रवेश होते ही व्यक्ति समदृष्टा बार-

---

१. बीवधर्म बोध, पृष्ठ ८६-८७

ग्राही एवं सम ज्ञानी बन जाता है।

(४) शील—

विनाशील की उत्पत्ति के व्यक्ति ईश्वर की परख नहीं कर सकता। शील के उदय होने से व्यक्ति में वह शुचिता प्रविष्ट होती है जिससे वह समस्त चेतन जगत् के प्रति दयाभाव प्रदर्शित करता है। उसका चंचल मन संयत होकर सत्य का अनुगामी बन जाता है।

(५) संतोष--

संतोष ही मानव-जीवन में सर्वोत्कृष्ट अवस्था है जिसके बिना समस्त जीव इस भवसागर के मायामय प्रपंचों में निमग्न हो रहे हैं। असंतोष ही माया की ओर व्यक्ति को अनुरक्त करता है किंतु जब संतोष उत्पन्न हो गया तब संसार के समस्त प्रपंच विनष्ट हो जाते हैं और न तो उसकी . . किसी प्रकार की लौकिक कामना में ही अनुरक्ति रहती है। उसका प्रबल मन ईश्वरोन्मुखी हो जाता है।

(६) निरवैर—

यह ऐसी उत्कृष्ट अवस्था है जिसमें साधक के लिए कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं रह जाता और वह सब के प्रति आत्मवत् व्यवहार करता है।

(७) सत्ययोग—

इस स्थिति को प्राप्त हुआ व्यक्ति मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है, जिससे उसकी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुष्प्रवृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं और वह सत्य शब्द की प्राप्ति करता है।

(८) शून्य योग —

इस स्थिति में साधक को 'सत्यनाम' ही प्रिय बन जाता है जिसके समक्ष समस्त लौकिक आनन्द शून्य जान पड़ते हैं।

समक्ष समस्त लौकिक आनन्द शून्य जान पड़ते हैं।

कबीर-पंथ में उपर्युक्त नये अष्टांग योग की चर्चा के साथ साथ काया साधना में विश्वास रखने वालों को भर्त्सना का पात्र भी घोषित किया गया है। कबीर-पंथी-महात्माओं ने निष्कामी व्यक्ति को श्रेष्ठ बताया है, जिसके लिए मन की स्थिरता अनिवार्य है।

> योगी बहुत योग जो करई। कृपा योग तै नहिं निस्तरई ।।
> फिर फिर आवै फिर फिर जाई। कर्महि कर्म बहुत अरुझाई ।।
> है निष्कर्म नाम जो ध्यावै। यौनी संकट बहुरि न आवै ।।
> जब लगि मन को कर्म न खोवै। तब लगि मन निर्मल नहिं होवै ।।
> जब मन की किरिया मिटि जाई। तब हरि मिलै सहज में आई।
> तन किरिया छोड़िके, मन किरिया रुचिराख।
> कर्म क्रिया अभिमान तजि सत्यनाम निजु भाष ।।
>
> —जीवधर्म बोध, पृ० ८५

मदन साहब ने तो केवल नाम धारणा पर ही अत्यधिक बल दिया है क्योंकि इसके बिना कुशल नहीं है। बाकी समस्त क्रियाओं को उन्होंने निःसार बताया है।[१]

'जीवधर्म बोध' में हठयोगियों के विषय में यहाँ तक कह दिया गया है कि उनमें भोगी में कुछ भी पार्थक्य नहीं :—

> जिमि योगी तिमि भोगी देखै। कमल भेद दोनों यक लेखै ।।
> द्वन्द्वदीक्ष दोनों को खेला। इत नरनारी उत गुरु चेला ।।
> योगी ऊरध पौन चढ़ावै। भोगी अधपानी ले आवै।
> नाद के बल योगी अविनाशी। बिंद के बल भोगी सुखराशी ।।
> नारि पुरुष जब भा संयोगा। दोनों मिले भोग सुख भोगा ।।
>
> — जीवधर्म बोध, पृ० ८३

---

१. शब्द विलास, पृ० ३६

योग भोग दोनों हैं झूठे । संत सुजान दोहू ते रूठे ।।
योग अरु भोग ब्रह्मजिव माया । नाद बिंद जो कछु उपजाया ।।
रो सब भर्म एक नहिं सांचा । साचे सतगुरु की यह वाचा ।।
— जीवधर्म बोध, पृ० ८४

दरिया-पंथी-साहित्य में भी योग विषयक चर्चा उपलब्ध होती है किन्तु इसमें समस्त यौगिक क्रियाएं दरिया साहब द्वारा प्रतिपादित पिपीलिक योग एवं विहंगम योग में अन्तर्निविष्ट हो गई हैं। पिपीलक योग एवं हठयोग में कुछ भी अन्तर नहीं है। पिपीलक योग को दरिया साहब ने कर्म योग भी कहा है। 'ज्ञानदीपक' में योग का विवेचन दरिया साहब ने किया है :—

छठ चक्र औ पांचों मुन्द्रा । खिचरी भोचरी कहि अनुकारा ।।
चचरी गारिउ ... विचारी । कर्मजोग यह कीन्ह विस्तारी ।।
पपिलक छोड़ि विहंगम कहेउ । मुंद्रा माहंउन्मुनी रहेउ ।।
सुष्ट अग्र तहां द्वार संवारी । झलके मनि तहां जोति उजियारी ।।
अजपा मूल दरस तहां देखे । सोहंग सुरति दृष्टि महं पेखे ।।
सोरह दल कमल फिर्ग सोई । मधुकर ध्रानि रह लपटाई ।।
गंधारी सुपट खुले जब आई । अनुबास नासिका पाई ।।
कुंभ पत्र अंमि अस्थाना । चुवे प्रेम पीवे संत सुजाना ।।
—ज्ञानदीपक, पृ० ७०

दरिया साहब के अनुसार कुंडलिनी को इस प्रकार जागृत किया जाय कि वह अपने मूलस्थान मूलाधार चक्र को छोड़कर, इसके द्वारा सुषुम्णा के रोके गए मार्ग को उन्मुक्त करके स्वत: ऊर्ध्वमुख होकर शेष पंच चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रदल कमल में जा कर विलीन हो जाय, इसी क्रिया को हठयोग कहते हैं। 'ब्रह्मप्रकाश' में मूलाधार चक्र को एक ऐसा केन्द्र स्वीकार किया गया है, ... जिससे ७२००० नाड़ियां निकलती हैं और उसकी कुल शाखाओं प्रशाखाओं का योग निकालने पर उनकी कुल संख्या ३५०,००० हो जाती है।[१] कबीर-पंथी-साहित्य में वर्णित नाड़ियों की संख्या से भी अधिक है। कबीर पंथ के अनुरूप ही दरिया-पंथ

---

१. ब्रह्म प्रकाश, पृ० १६, २०

में भी तीन प्रधान नाड़ियों की कल्पना की गई है यथा इड़ा, (इंगला) पिंगला और सुषुम्णा ।

इड़ा मेरु दण्ड (Spinal coulmn) की बाईं ओर है। वह सुषुम्णा में लिपटती हुई नाक की दाहिनी ओर जाती है। पिंगला नाड़ी मेरुदण्ड की दाहिनी ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की बाईं ओर जाती है। दोनों नाड़ियां समाप्त होने से पहले एक दूसरे को पार कर लेती हैं। ये दोनों मूलाधारचक्र (गुह्य स्थान के समीप Plexus of Nerveves) से आरम्भ होती है और नाक में जाकर समाप्त होती हैं। ये दोनों नाड़ियां आधुनिक शरीर विज्ञान में गैंग्लिएटेड कार्ड्स (Gangliecated chords) के नाम से पुकारी जा सकती हैं ?

तीसरी सुषुम्णा इड़ा और पिंगला के मध्य में हैं। उसकी छ: स्थितियां हैं। छ: शक्तियां हैं और उनमें छ: कमल हैं। वह मेरुदण्ड में से जाती है। वह नाभि प्रदेश से उत्पन्न होकर मेरुदण्ड से होती हुई ब्रह्म चक्र में प्रवेश करती है। जब यह नाड़ी कंठ के समीप आती है तो दो भागों में विभाजित हो जाती है। एक भाग तो त्रिकुटी (दोनों भौंहों के मध्य-स्थान) लोब ऑफ इंटेलिजेंस (Love of Intelligence) में पहुंच कर ब्रह्मरन्ध्र से मिलता है और दूसरा भाग सिर के पीछे से होता हुआ ब्रह्मरन्ध्र से मिलता है और दूसरा भाग सिर के पीछे से होता हुआ ब्रह्म रन्ध्र में आ मिलता है। योग में इसी दूसरे भाग की शक्तियों की वृद्धि करना आवश्यक माना गया है। इन तीन नाड़ियों में सुषुम्णा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है।

इस सुषुम्णा नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी (सर्पाकार दिव्य-शक्ति) निवास करती है। जब कुंडलिनी प्राणायाम से जागृत हो जाती है तो वह सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ सुषुम्णा के भिन्न भिन्न केंद्रों (चक्रों) से होती हुई और उनमें शक्ति डालती हुई वह कुंडलिनी ब्रह्मरन्ध्र की ओर बढ़ती है। जैसे जैसे कुंडलिनी आगे बढ़ती है वैसे मन भी शक्तियां प्राप्त करता जाता है। अन्त

में जब यह कुंडलिनी सहस्र दल कमल में पहुंचती है तो सारी यौगिक क्रियाएं सिद्ध हो जाती हैं और योगी मन और शरीर से अलग हो जाता है । आत्मापूर्ण स्वतंत्र हो जाती है ।[१]

कबीर पंथी साहित्य की भांति ही दरिया पंथी साहित्य में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्णा को क्रमशः गंगा, यमुना एवं सरस्वती कहा गया है और इनके संगम स्थान को त्रिवेणी अथवा त्रिकुटी कहते हैं ।[२]

हठयोग के ग्रन्थों में विभिन्न आसनों का निरूपण किया गया है । दरियापंथ में साधु प्रभुदास के कथनानुसार सात आसनों का प्रचलन है जिन्हें स्वस्तिकासन, सिंहासन, श्वासन, पद्मासन, सिद्धासन, मुक्तासन, एवं उग्रासन या पश्चिमोत्तानासन कहा जाता है ।[३]

दरिया साहब ने हठयोग में कुण्डलिनी जागृत करने की क्रियाओं की तुलना वृक्ष पर चढ़ती हुई चींटी से की है, फलतः इसे पिपीलक योग भी कहा गया । हठयोग को दरिया साहब के पिपीलक योग कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार से चींटी अपनी साधना से वृक्ष पर धीरे धीरे चढ़ती हुई अंत में फल रस को चूस कर पुनः वृक्ष के नीचे उतर आती है ठीक उसी प्रकार से हठ-योगी अपनी काया साधना द्वारा अमीरस की उपलब्धि करता है किन्तु उसको बार-बार योगविरहित पूर्वावस्था में लौट आने का भय बना ही रहता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों के साधना की अंतिम परिणति जीवन्मुक्ति है, जिससे वह (हठयोगी) वंचित रह जाता है । दरिया साहब की रचनाओं का अध्ययन करने से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे कबीर पंथ के अनुरूप ही हठयोग को आस्था की दृष्टि से देखते हैं :-

---

१. कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ८४-८५

२. दरियासागर, पृ० १०८

३. ग्रह्मप्रकाश, पृ० ६४

ऐसन जोगी होवे कोई । गोरख तुल वोर गनिए सोई ।।४०२ ।।
जब लगि जोग तब ले सुख पावे । काया पतन बहुते दुख पावे ।।४०३
— दरिया सागर, पृ० ४०

बहु जोगी जोग विधाना । उन्हहु के धैंचि मारे जम बाना ।।७९८।।
—दरियासागर, पृ० ७२
जंगम जोगी है बहुतेरा । जो न करैं घट भीतर डेरा ।।६९८।।
नहिं पावे छपलोक के वासा । फिरि फिरि करहिं जन्म की आसा।।[1]
— दरियासागर, पृ० ६२-६३
काया अमर केह की ठहराना । जोगी जती सभमाटी समाना ।।३६०।।
हठ निग्रह जोग संकर (जो)ठाना । अंतहु काया नाहिं ठहराना ।।३६।
गोरख जोग काया जो साधा । हठ निग्रह के आसन बांधा ।।३६२ ।।
निद्रा साधि पवन जो पीवै । सो तो जुग जुग कबहि न जीवै ।।३६३ ।।
के तो जोगी हठ निग्रह कीन्हा । रज बींद होवे फेरि हीन्हा ।।३६४।।
जो जोवनी मज्जनमें आई । अमर काया कहु केकी भाई ।।३६५ ।।
काया पतन सभ की होए जाई । महा महा मुनि गए नसाई ।।३६६।।
—भक्ति हेतु, पृ० ३१३

'जीवधर्म बोध'के वर्णन के अनुरूप दरियासाहब ने अपने 'ज्ञानदीपक' में ज्ञान की महत्ता देते हुए काया साधना के प्रति अनास्था प्रदर्शित की है, जिसमें उन्होंने यह भी बताया है कि योगी बिना आत्म ज्ञान के पुन: भोगी बन कर पथ भ्रष्ट होते हैं।

दरिया साहब ने कबीर पंथी साधना के सदृश हठयोग को व्यर्थ सिद्ध करते हुए मन के स्थिरीकरण पर विशेष बल दिया है, जैसा कि उनके निम्न कथन से स्पष्ट है :—

मन के मार बीन्हि बिलाई । कसि कमान ध्यान पर आई ।।४२५।।
—दरिया सागर, पृ० ४२

---

1. ज्ञानदीपक, पृ० ६७

मन पवन पर खेल है, देखहु ग्यान बिचारि ।
साधि साधि एक अंग मिलावै, उतरि जाए सो पार ।।३७।।

—दरियासागर, पृ० ४७

अब इसी प्रसंग में इस बात का विवेचन स्पष्ट रूप से कर लेना आवश्यक है कि हठयोग से इन संत साधकों का क्या सम्बन्ध था ? जब हम इस दृष्टि से कबीर की साधना पद्धति का परीक्षण करते हैं तो पता चलता है कि उन्होंने तत्कालीन यौगिक साधना का भलीभांति निरीक्षण किया था जिसमें उन्हें अपनी स्वानुभूतिमूलक आत्म परख ही प्रिय थी, जिसे सहजयोग भी नाम दिया जाता है- उनकी समस्त यौगिक क्रियाओं का पर्यवसान भक्ति में हुआ है । वैसे उन्हें किसी भी प्रकार की साधना अप्रिय नहीं, उन्हें केवल राम की पिपासा है, वह जिस प्रकार प्राप्त हो वही साधना उनके लिए उत्कृष्ट थी किन्तु इतना अवश्य है कि हठयोग की कटु साधना से उनके उद्देश्य की पूर्ति असंभव प्रतीत होती है, इसीलिए उनकी रचनाओं में हठयोग के जटिल विधानों के प्रति उपेक्षा भाव परिलक्षित होता है । यथा:—

इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं, ब्रह्म अगनि परजारी ।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ।।
मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कछू न सुहाई ।
उलटी गंग नीर बहि आया, अंमृत धार चुवाई ।।
पंच जने सो संग करि लीन्हें, चलत खुमारी लागी ।
प्रेम पियाले पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ।।
सहज सुंनिमैं जिनि रस चाख्या, सतगुर थैं सुधि पाई ।
दास कबीर इहि रस माता, कबहूं उछकि न जाई ।। पद ७४।।

—कबीर ग्रन्थावली (सभा०) पृ० १११

कबीर की यौगिक क्रियाओं का अभीष्ट राम से मिलन है, जिसके लिए चंचल एवं दुष्ट मन का स्थिरीकरण एवं उसकी निर्मलता अनिवार्य है, क्योंकि बिना चित्तवृत्तियों के निरोध के व्यक्ति विकार शून्य हो ही नहीं सकता ।

जब मन स्थिर हो जाता है तब भक्ति का पथ उन्मुक्त हो जाता है क्योंकि भक्ति के बिना समस्त यौगिक क्रियाएं व्यर्थ है। योगियों के प्रति कबीर ने तिलमिला देने वाले व्यंग्य किये हैं, साथ ही वे उनकी दुर्गति एवं मिथ्याभिमान के प्रति तरस भी खाते हैं। उनकी साधना भावभक्ति के प्रति अगाध विश्वास रखती है, इसीलिए उन्होंने कहा है —

> जब लग भाव-भगति नहिं करि हौं, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ।
>
> भावभगति बिसवास बिन, कटै न संसै सूल।
>
> कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नहीं रे मूल।।
>
> —कबीर ग्रन्थावली (सभा०),पृ०२४५

उनका अवधूत योगियों के प्रति किया गया व्यंग्य भी कितना तिलमिला देने वाला है :—

> जो तुम पवना गगन चढ़ावो, करो गुफा में बासा।
>
> गगना पवना दोनों बिनसैं, कहं गयो जोग तुम्हारा ।।१।।
>
> गगना मद्धे जोती झलके, पानी मद्धे तारा।
>
> घटि गै नीर बिनसि गै तारा, निकर गयो केहि द्वारा ।।२।।
>
> मेरुडंड पर डारि दुलैची, जोगिन तारी लाया ।।
>
> इंगला बिनसैं पिंगला बिनसै, बिनसै सुखमनि नाड़ी।
>
> जब उन्मुनि की तारी टूटै तब कहं रही तुम्हारी ।।४।। शब्द ६०
>
> कबीर साहिब की शब्दावली, भाग १, पृ० ४६-५०

कबीर-साहित्य में कुण्डलिनी जागरण की निःसारता की भी वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है, कबीर पूछते हैं कि जब ब्रह्मरन्ध्र से एक बूंद भी नहीं गिरती और नाद न जाने कहां समाहित हो गया ? परब्रह्म परमेश्वर परमहंस को पृथ्वी से ले गये। सुरतिनिरति की साधना करने वाले तथा कथावार्ता करने वाले,

---

१. सन्त कबीर —रामकली, ५३

देह के साथ विचरणशील बाबा कहां हैं ?[1] ऐसे योगी को फटकारते हुए वे कहते है कि अरे तुम ! सर्पिणि सर्पिणि क्या रटते हो ? सर्पिणि तो शक्तिशालिनी माया है , जिससे त्रिदेव भी छले गये, ऐसी सर्पिणी माया का हनन करो जो त्रिलोकों को अधिकृत किये हुए है ।[2] कबीर दास ऐसे योगी की प्रसंशा करते हैं जो मन मे मुद्राधारण कर अहर्निश जागरण करता है उसका मन ही समस्त क्रियाओं काकेन्द्र बन गया है, और मन में ही वह अनहद नाद भी सुनता है । जिसकी इन्द्रियां संयत हैं वही योग का परम अभीष्ट प्राप्त कर सकता है ।[3]

कबीर ने अपनी रचनाओं में ऐसे योगियों की निन्दा की है जो कि अपने प्रपंच पूर्ण अभिनय से अखिल जगत को भ्रम में डालने का प्रयास करते हैं ऐसे योगियों को उन्होंने नट की भांति बाजार में ताड़ी लगाने वाला बताया है किन्तु वास्तव में वे भक्त्यन्ध बनने का भ्रम करते हैं । ऐसे मठ्ठों की आडम्बर पूर्ण साधना को उन्होंने अपूर्ण स्वीकार किया है क्योंकि उन्हें माया का प्रपंच वास्तविक ज्ञान से विमुख किये हुए है ।[4]

नाट बजारे लावै तारी, कच्चा सिद्ध हु माया प्यारी ।।

—बीजक रमैनी ६९, पृ० ७८-७९

कबीर ने ऐसे योगियों के वेशभूषा एवं विलासिता की भी निन्दा की है, साथ ही वे उनके विभिन्न आसनों की नि:सारता के प्रति तरस खाते हुए कहते हैं :—

जटा तोरि पहिरावैं सेली, जोगी युक्ति के गर्व दुहेली ।
आसन उड़ाये कौन बड़ाई, जैसे कौवा चील्ह मंडराई ।

— बीजकरमैनी, ७१, पृ० ८१

उन्होंने ऐसे योगियों के प्रति भी उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया है

---

१. सन्तकबीर, रागु आसा ७
२. वही, १८,२०
३. कबीर ग्रन्थावली (सभा), पद २०६, पृ० १५८
४. बीजक रमैनी, ७१, पृ० ८१

जो शिर मुंडन करते हैं, और उनकी दुष्प्रवृत्तियाँ ज्यों की त्यों ही बनी रहती है तथा वे मायिक प्रपंच में लिप्त रहते हैं, मन विषय वासनाओं से आकर्षित है तो योग किस प्रकार का ? जब तक मन पर अंकुश नहीं तब तक कुछ भी सम्भव नहीं ।[१]

मन मेवासी मूंढ़ि ले, केसौं मूंडे कांइ ।
जो किछु किया सु मन किया, केसौं कीया नाहिं ।।३।।

— कबीर ग्रन्थावली (परि०) पृ०२२१-२२

कबीर साधना भूमि के चप्पे चप्पे को देख चुके थे, परिणामस्वरूप उन्हें इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि व्यक्ति को सांसारिक माया को त्याग कर मन की प्रवृत्तिधारा को विषय बेलियों की ओर से विमुख करते हुए सनातन एवं अविनाशी आत्मा की प्रतीति के लिए संलग्न कर देना चाहिए ।

कबीर के सदृश ही कबीर-पंथी रचनाओं में हठयोगियों के काया साधना के प्रति उपेक्षा भाव व्यक्त किये गए हैं साथ ही उनके प्रति इन रचनाओं में कटूक्तियाँ भी मिलती हैं ।[१]

हठयोग के सम्बन्ध में इसी प्रकार के उल्लेख दरिया साहब की रचनाओं में मिलते हैं ।[२] उन्होंने हठयोगियों की पूर्ण रूप से भर्त्सना की है और दरिया साहब ने पाखण्डी एवं अज्ञानी कहा है क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ संयत नहीं है और वे श्वास चढ़ाकर आसन एवं प्राणायाम द्वारा केवल अपने बगुल ध्यान एवं सर्पवृत्ति का प्रमाण प्रस्तुत करने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते । उन्होंने कहा भी है :—

होम जग्य औ बहुबिधिकर्मा । पढ़ि पुरानदान करि धर्मा ।।
कहीं जोग कहीं भोग बिलासा । कहीं उर्ध बाहु मौनि अकासा ।।

— ज्ञानदीपक, पृ० १०४

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि दोनों की साधना का हठयौगिकक्रियाओं से कोई सामंजस्य नहीं प्रतीत होता प्रस्तुत उनके साहित्य में इसके खंडन के ही विपुल उदाहरण उपलब्ध होते हैं ।

राजयोग-

संत साधना का मूलोद्देश्य मन का निग्रह स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि मनोलय के बिना सांसारिक उपद्रवों से शांति नहीं उपलब्ध हो सकती, इसीलिए सभी संतों ने मनधारणा पर ही विशेष बल दिया है, यही स्थिति कबीर ने राजयोग के लिए भी स्वीकार किया है उन्होंने मनोलय के लिए सुरति निरति के साथ साथ नाद को भी विशेष महत्व दिया है, इसीलिए कबीर ने इस बात का स्पष्टीकरण एक रूपक द्वारा किया है कि जिस प्रकार नाद में मस्त हरिण का शिकार करना सरल है, ठीक उसी प्रकार नाद लग्न मन पर भी विजय करना सुगम है। यही कारण है कि उन्होंने मन को वशवर्ती बनाने के लिए सुरति निरति के साथ नादानुसंधान को भी आवश्यक बताया है।[१] कबीर की साधना पूर्णरूपेण मानसिक है, जिसमें शारीरिक व्यापारों के प्रति नि:सारता प्रदर्शित की गई, उनकेलिए मन की एकरसता ही सब कुछ है, परिणामस्वरूप व्यक्ति में एक ऐसा दिव्यगुण प्रविष्ट होता है जिससे उसके समस्त अवगुण विलीन हो जाते हैं। मन की समरसता ही सब कुछ है उसके पश्चात् एक स्थिति अशेष रह जाती है वह है समाधि। इसीलिए कबीर ने कहा है:-

> मम्मा मन सौं काज है, मान साधैं सिधि होइ।
> मन हीं मन सौं कहैं कबीरा, मन सा मिला न कोई ।।३० ।।
>
> -कबीर ग्रन्थावली, पृ० १३३ (परि०)

कबीर-साहित्य के अनुरूप ही कबीर [illegible] पन्थी साहित्य में मनधारणा के लिए नादानुसंधान अनिवार्य बताया गया है।[२] साथ ही कबीरपंथी महात्माओं ने भी साधना की सफलता के लिए मन को वशवर्ती बनाने के लिए अनिवार्यता प्रदर्शित की है।

---

१. कबीर ग्रन्थावली (सभा)पद ६६, पृ० १०६

२. बीजधर्म बोध, पृष्ठ३

मन थिर कर परमातम जाना । यह विधि तत्वलेहु पहिचाना

—अमरमूल, पृ० २२३

जब मन कहँ परबोध हू, सकल मर्म मिट जाय ।

एक नाम कहँ सेवहू, आवा गमन मिटाय ।।

—अमरमूल , पृ० २५५

इसीप्रकार के मिलते जुलते भाव 'भवतरण बोध' (पृ० ४७) एवं 'धर्मबोध' (पृ०१८६) में भी मिलते हैं ।

कबीर-पंथ में मन को केन्द्रित करने के लिए एकांत भजन पर भी बल दिया गया है ।[१]

कबीर-पंथ के अनुरूप ही दरियापंथ में भी मन की स्थिरता पर ही साधना की सफलता स्वीकार की गई है जैसा कि दरिया साहब ने कहा है :—

मन थिर होए तो भगति दिढ़ावै । सार शब्द का परचै पावै ॥९२६॥

—दरिया सागर, पृ० ६३

कबीर-साहित्य में ऐसे योगी की प्रशंसा की गई है जो इस जग के मायावी प्रपंचों से निर्लिप्त रहता हुआ निरति की मुद्रा और सुरति की सुइणी बनाकर नाद की धारा को कभी उच्छिन्न नहीं करता । चेतना की चौकी पर अपना आसन लगा संसार की ओर दृष्टि भी नहीं डालना चाहता, सदव गगनबिहारी बन कर आसन लगाये हुए महारस का पान करता है, वह कन्था में निवास करता हुआ आत्मप्रतीति में ही विश्वास करता है । ब्रह्माग्नि में अपनी काया को भस्म कर त्रिकुटी के संगम में जागरण करता है, ऐसी सच्चे योगी की 'लौ' सहज शून्य से लगी रहती है ।[२] उसकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं कि ऐसा योगी मौन की मुद्रा दया की झोली, विचार का आभूषण, वन मन के संयम की कँथा धारण करता है ।[३] इस प्रकार की सच्ची साधना के अनन्तर बन्द

---

१. धर्मबोध, पृ० १९८

२. कबीर ग्रन्थावली(सभा) पद, ६६, पृ० १०६

३. सन्त कबीर-रागु रामकली ७

और सूर्य की भट्ठी में सुषुम्ना रूपी चिगवा द्वारा जिस अमीरस की उत्पत्ति होती है उसके छक कर पान कर लेने के अनन्तर साधक जगत् के कौतूहल से पूर्ण अप्रभावित हो जाता है और इस अपारसुख की महिमा का गान करने में उसकी जिह्वा मूक सी हो जाती है किन्तु इस निरतिशय सुख की उपलब्धि विरले ही कर पाते हैं।[१]

अनुरूप—

कबीर के अनुरूप ही कबीर पंथ में भी भाव व्यक्त किये गए हैं।[२] कबीर के सदृश दरिया साहब ने भी ऐसे योगी को उत्कृष्ट बताया है जो मोह एवं तृष्णा को त्याग कर निर्मल नाम धारण कर जाति अभिमान से परे बन जाता है और वह सत्य की सेली, संतोष की झोली एवं ज्ञान का लकुट धारण करता हुआ सबसे अमृत मय वचन बोलता है।[३]

सुरति और निरति—

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भक्ति की पूर्णता के लिए साधक को मन का स्थिरी करण पूर्णरूपेण अनिवार्य है। इसी चंचल मन को केन्द्रित करने के लिए सुरति शब्द योग की अनिवार्यता प्रदर्शित की गई है। डा० बड़थ्वाल के अनुसार वह योग जिससे सुरति एवं शब्द का संयोग सिद्ध होता है और उक्त सीमाएं शब्द में फिर से लीन हो जाती हैं, शब्द योग अथवा सुरति शब्द: योग कहलाता है और वह शब्द सर्वप्रथम भगवान्नाम के रूप में मुंह से निकलता है और अन्त में स्वयं शब्द रूप ब्रह्म हो जाता है।[४]

योग साधना के प्रसंग में सुरति के साथ एक शब्द और भी प्रयुक्त

---

१. कबीर ग्रन्थावली, (सभा), पृ० ११०

२. कबीर पंथी शब्दावली, पृ० ६१

३. शब्द, पृ० १०८ (परिशिष्ट) संत कवि दरिया एक अनुशीलन

४. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल —हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० २२८

होता है वह है `निरति` । इन्हें संतों की साधना में अत्यधिक गौरव प्रदान किया गया है किन्तु खेद का विषय है कि इन शब्दों की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। डा० सम्पूर्णानन्द के मत से सुरति स्रोत शब्द का अपभ्रंश है।[१] दर्शन ग्रन्थों में स्रोत का अभिप्राय चित्तवृत्ति के प्रवाह से है इस प्रकार सुरति शब्दयोग वह साधना है जिसमें शब्द की धारणा की जाती है अथवा चित्त की वृत्ति का प्रवाह शब्द में लय किया जाता है। डा० बड़थ्वाल के अनुसार संतों ने इस शब्द का प्रयोग स्मृति के अर्थ में किया है।[२] लेकिन सुरति शब्द के व्युत्पत्ति की दोनों धारणा भाषा विज्ञान की दृष्टि से समीचीन नहीं ठहरतीं, क्योंकि स्रोत का सुरति में परिवर्तित होना असंगत प्रतीत होता है। भाषा वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार `उके` ओ में परिवर्तन के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं किन्तु `ओ` के `उ` में परिवर्तन असम्भव सा ज्ञात होता है। स्मृति का सुरति के रूप में परिवर्तन निराधार है, क्योंकि ऐसे भी उदाहरण नहीं मिलता। डा० पारसनाथ तिवारी के अनुसार `सुरति` शब्द सं० `श्रुति` (श्रवणार्थ) से विकसित हुआ है।[३] आचार्य क्षितिमोहन सेन ने सुरति का अभिप्राय प्रेम एवं निरति का वैराग्य से लिया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार सुरति अन्तर्मुखी वृत्ति है एवं निरति बहिर्मुखी।[४] इसी प्रकार सुरति एवं निरति की समस्या आजतक संदिग्ध ही प्रतीत होती है।

कबीर ने सुरति शब्द का प्रयोग अपनी रचनाओं में `स्मृति` (कबीर ग्रन्थावली` (सभा) पद ८२, पृ० ११४) `सौन्दर्य` ( वही पद ४२, पृ०१०२) `वासना` (संत कबीर, पृ० ३८) एवं वेद (कबीर ग्रन्थावली (सभा) पद ४७, पृ० १०३) के अर्थ में किया है। नाथ साहित्य में सुरति को शब्दोन्मुख चित्त एवं निरति को निरवलम्ब की स्थिति स्वीकार किया गया है।

---

१. कल्याण —साधनांक, सन्तमत में साधना—डा० सम्पूर्णानन्द, पृ० ३८८
२. डा० बड़थ्वाल—योग प्रवाह, पृ० २४-२५
३. हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक में —डा० पारसनाथ तिवारी का संतों द्वारा प्रयुक्त `सुरति` शब्द का अर्थ विकास, पृ० ११६
४. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० २८३

कबीर के अनुसार सुरति के माध्यम से शब्द के भेदने की बात कही गई है, जिसमें साधक आत्म साधना द्वारा जब शब्दब्रह्म में लीन होता है तब उसे ही सुरति योग कहा जाता है। कबीर ने अपने सुरति योग के प्रसंग में प्राप्त आत्मा को सुरति एवं प्राप्तव्य आत्मा को निरति की संज्ञा दी है। इस प्रकार सुरति का अर्थ संसार में लिप्त आत्मा से लिया जाता है और निरति से आत्मा के निर्लेप भाव का। कबीर ने कहा है :—

> सुरति समांणी निरति मैं, निरति भई निरधार।
> सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार।।
>
> —कबीर ग्रन्थावली (सभा) पृ०१४

इसका अर्थ यह है कि जब आत्मा साधना के माध्यम से निरति में लीन हो जाती है तब स्वतः जगत् के समस्त प्रपंच विलीन हो जाते हैं और साधक के लिए निरतिशय शांति एवं परमानन्द के लिए मार्ग उन्मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुरति का अभिप्राय विद्वानों ने चित्त-वृत्तियों के प्रवाह स्मृति, प्रेम, अन्तर्मुखी वृत्ति आदि से लिया है। पं० परशु-राम चतुर्वेदी के अनुसार सुरति हमारे जीव का वह निर्मल रूप है जिसमें हमारे मूल सत्य का प्रतिबिम्ब सतत झलकता रहता है।[१]

संत कवियों के सुरति शब्द के प्रयोग पर स्पष्टतः नाथयोगियों के शब्द सुरति का प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

> सुरति ढीकुली ले जल्यौ, मन नित ढोलन हार।
> कंवल कुवां में प्रेम रस, पीवै बारम्बार।।
>
> —कबीरग्रन्थावली (सभा), पृ० ६८
>
> सुरति समांणीं निरति मैं अजपा माँहै जाप।
> लेख समांणीं अलेख मैं, यूं आपा माँहैं आप।।
>
> —कबीर ग्रन्थावली, पृ० १४

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्तपरम्परा, पृ० २०४

कबीर के उपर्युक्त कथनों से निष्कर्ष निकालने पर हम कह सकते हैं कि 'सुरति' उनकी आत्मलीन परिस्थिति है, जिसमें वे अपनी अन्तर्मुखी वृत्तियों को समेट कर अपने परमप्रिय ईश्वर के प्रेम की ओर उन्मुख कर देते हैं। उनकी 'सुरति' रूपी ढेकुली सचमुच ही उस डोर के समान है जिसके अवलम्बन से वे मन रूपी कूएं के प्रेम रस का निरन्तर पान करते हैं। इस प्रकार चित्तवृत्तियों का सामरस्य एवं उन सबका परमात्म प्रेम में विलयन ही 'सुरति' का 'निरति' में समाहित होना है। 'सुरति' का 'निरति' में, जप का अजपा में, शब्द का शून्य में, ससीम का असीम में विलयन सब एक ही अवस्था के प्रतीक हैं।

कबीर की सुरति सम्बन्धी विचारधारा का प्रभाव कबीर पंथ पर भी पड़ा है। कबीर पंथी धारणा के अनुसार श्वास की प्रक्रिया सहस्रदल कमल तक है उसके आगे पहुंचने के लिए 'सुरति' की डोर धारण करनी पड़ती है, यही कारण है कि कबीरपंथ में मन के आगे पहुंचने वाली चेतनधारा को सुरति और स्वरूप की ओर ले जाने वाली को निरति के नाम से अभिहित किया गया।[१] 'निरति' का प्रयोग सर्वथा इसी अर्थ में नहीं किया गया है। इसका प्रमाण हमें 'ज्ञान स्थिति-बोध' में उपलब्ध होता है, क्योंकि इसमें सुरति एवं 'निरति' को केवल कहने के लिए पृथक्-पृथक् समझा गया, किन्तु वास्तव में जब 'निरति' 'सुरति' में समा जाती है तब 'सुरति' शब्द की स्थिति में आ जाती है।[२]

कबीर पंथ में सुरति एवं निरति को मन की स्थिरता के लिए परमावश्यक बताया गया है। इसीलिए इसकी महत्ता के विषय में कहा गया है :-

> बिना सुरति नहिं गुरु को पाही। बिना सुरति नहिं लोके जाई।
> सुरति होय तब ज्ञान उचारै। सुरति होय तब ध्यान सम्हारै।।
> सुरतिहि पैठि पवन को गहै। बिना सुरति वह प्राणहि दहै।
> सुरति होय तब आगम जानी। भला बुरा सबही पहिचानी।।
>
> — ज्ञानस्थिति बोध, पृ० १३३

---

१. प्रबन्धिकपणानु भूमिका, पृ० ६

२. ज्ञान स्थिति बोध, पृ० १३३

`संतोष बोध` में `सुरति` एवं `निरति` के माध्यम से सत्यनाम की प्राप्ति की ओर संकेत किया गया।[१] इसी प्रकार `सुल्तान बोध` में सुरति एवं निरति को मुक्ति का परमोपाय स्वीकार किया गया है।[२] और `आत्मबोध` में इन्हें मनस्थिर करने को साधन मानते हुए जन्म एवं मरण की बाधा हरने का मूलकारण बताया गया है।[३] `सर्वज्ञसागर` (पृ० १३४) में सहज शब्द की व्युत्पत्ति सुरति से ही बताई गई है। `ज्ञानस्थितिबोध` (पृ० २६०) में `सुरति` कमल के मध्यसद्गुरु का निवास बताया गया है। `श्वांस गूंजार` (पृ० ६) में इसी से निरंजन के सोलह पुत्रों की उत्पत्ति स्वीकार की गई है। कबीर पंथी ग्रन्थ `कबीर बानी` में सुरति की कुल संख्या सात बताई गई है, उसी को सृष्टि का मूल स्रोत भी बताया गया है :—

> सात सुरति सबमूल है, उत्पति सकल पसार ।
> अपार तें सब सृष्टि भई, काल तें भये तिसार ।।
>
> —कबीर बानी, पृ० १२१

इसी प्रसंग में `कबीर बानी` में ही आठवीं सहज `सुरति` की भी कल्पना की गई है, जिसे धारण कर कबीर ने सत्य द्वीप में पदार्पण किया और तब उन्होंने सहज सुरति , इच्छा सुरति, मूल सुरति एवं गौतम सुरति का आधार ग्रहण किया।[४] आत्मबोध में इसकी तुलना ऐसे सूर्य से की गई है जो श्वास और उच्छ्वास का गुदड़ी सीता है।

ध्यान योग एवं लय योग

ध्यान योग एवं लययोग का अभिप्राय ध्यान धारणा अथवा किसी वस्तु के प्रति निश्चल भाव से चित्तवृत्तियों के केन्द्रीय करण से है। साधना पक्ष में यह ध्यान ईश्वर की ओर उन्मुख किया जाता है, जिसके लिए भक्त को अपने मन को शांत रखना नितांत आवश्यक है, क्योंकि जब तक मन ईश्वर के अविरल प्रेम में मग्न नहीं होता तब तक ध्यान की स्थिति असम्भव है। इस स्थिति में

---

१. संतोषबोध, पृ० १०१
२. सुल्तानबोध, पृ० ४२
३. आत्मबोध, पृ० [illegible] एवं ३४
४. कबीरबानी, पृ० १२४

लौकिक वासनाओं की समाप्ति से भी बढ़कर और कौन-सा सुख हो सकता है।
'हठयोग प्रदीपिका' में वासनाओं की समाप्ति को लययोग स्वीकार किया गया है।
संत साधना में सतनाम का जाप ही मन को केन्द्रित करने के लिए ही नहीं
प्रत्युत् भक्ति एवं साधना पक्ष में सर्वस्व प्राप्त कराने में सफल है। सतनाम का
जाप ही अजपा जाप है, जिसके लिए साधकों ने अपने मन की बहिर्मुखी चित्तवृत्तियों
को अन्तर्मुखी बनाने की अनिवार्यता प्रदर्शित की है। चंचल मन की दौड़ समाप्त
हो जाने पर साधक स्वत: ब्रह्ममय हो जाता है और उसका अस्तित्व ब्रह्म में समा-
विष्ट हो जाता है, कबीर ने कहा है :-

तन नहिं जब जब मन नांहि । मन परतीति ब्रह्म मन मांहि ।।

—कबीर ग्रन्थावली, परि०, पृ० ७३

कबीर का ईश्वर-प्रेम में अगाध विश्वास था। इसीलिए वे कहते
हैं कि जब साधक सतनाम के ध्यान में अपने को लीन कर देता है, तब परमानन्दानु-
भूति होते ही इस कलुषित एवं दोषपूर्ण काया का अस्तित्व भी ईश्वर की
सत्ता में तिरोभूत हो जाता है और विषय वासनाओं से संतप्त शरीर ईश्वरानन्द
की शीतल छांह में शांति एवं सुख का अनुभव करता है :-

तब पाया तन बीसरा, जब मन धरिया ध्यांन ।
तपनि मिटी सीतल भया, जब सुन्नि किया असनांन ।।३१।।

— कबीर ग्रन्थावली(परि०) पृ०१७१

कबीर के अनुसार अजपा जाप ही बहिर्मुख मन को अन्तर्मुखी बनाकर
आत्मचिंतन में संलग्न करता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर मन को एकाग्र करते
हुए उसे वशवर्ती बनाया जा सकता है। इस अजपा जाप में साधक बिना ब्रह्म
का ध्यान किये हुए एक श्वास भी व्यर्थ नहीं जाने देता। प्रतिश्वास में ईश्वर
का ध्यानधारणा करने से मन स्वत: ईश्वर में एकनिष्ठ हो जाता है। इस स्थिति

~~१. मानसलोक पृ० १३०४~~

में प्राणायाम साधना द्वारा मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी ने जागृत होकर षट्-चक्रों का भेदन करती हुई सुषुम्ना से सहस्रदल कमल में स्थित ब्रह्मरन्ध्र का द्वार खोलती है तो मस्तिष्क में अनाहदनाद प्रारम्भ हो जाता है, जिससे सांसारिक प्रपंच विलीन हो जाते हैं और साधक अचलानन्द की प्राप्ति करता है। 'अनाहदनाद' के द्वारा साधक के रोम रोम झंकृत हो उठते हैं। कबीर ने नाथपंथियों के अजपा जाप सहज जाप भी कहा है और उस को शून्य में जपने के लिये भी निर्देश किया है :—

अजपा जपत सुनि अभि अंतरि, यहु तत जानैं सोई।'

— कबीर ग्रन्थावली (सभा), पृ० १५६

कबीर के ध्यान धारणा करने की प्रवृत्ति वहां और भी बल पकड़ते हुए ज्ञात होती है जबकि वे बड़े ही निश्चल एवं पवित्र भाव से यह कहते हुए देखे जाते हैं कि हम महाजन रूपी सद्गुरु के समीप चलेंगे, जहां साधुरूपी सौदागर निवास करते हैं, ऐसे सद्गुरु के सम्मुख हम पवित्र मन की मुहर लेकर उपस्थित होंगे, जिससे ज्ञान रूपी घोड़े की प्राप्ति होगी, उस पर सहज की पलान, चित्त की चाबुक और लौ की लगाम लगा कर विवेक एवं विचार से शरीर को ओत-प्रोत कर सुरति का कमान धारण करेंगे। और धीर गम्भीर की तलवार धारण कर माया के किले को धराशायी करेंगे। इस प्रकार माया पर विजय प्राप्त कर मोह रूपी राजा को अधिकृत करेंगे।[1]

कबीर ईश्वर प्रेम में पपीहे की सदृश निश्चलभाव से लीन होना स्वीकार करते हैं और रटन के सदृश वे ईश्वर प्रेम में निरंतर नेत्र से अश्रुधारा प्रवाहित करना चाहते हैं यह है उनके उत्कृष्ट प्रेम की पराकाष्ठा इसीलिए वे कहते हैं :—

नैनां नीझर लाइया, रहट बहै निस धांम।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ करौं, कबरै मिलहुगे राम ॥४८॥

—कबीर ग्रन्थावली (परिषद्) पृ० १४७

कबीर का ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ प्रेम उन पर एकाधिकार चाहता है, परिणामस्वरूप वे कहते हैं :—

नैना अंतरि आव तूं, ज्यौं हौं नैन झंपेउ।
नां हौं देखौं और कौं, नां तुझ देखन देउं ॥१२॥

— कबीर ग्रन्थावली (परि०), पृ० १७६

कबीर की भाँति कबीर-पंथी महात्माओं ने ध्यानयोग के प्रति पूर्ण आस्था प्रदर्शित की है, कबीर-पंथ में कबीर के सदृश निम्नलिखित रूपकों के माध्यम से साधक के मन में ईश्वर के प्रति निश्छल प्रेम जागृत कराने का प्रयास किया है।

जैसे पतंग दीपक को धावै। ऐसे संत ध्यान लपटावै।
जैसे नेह्वारि औ मीना। ऐसे संत नाम लवलीना।।

— पंच मुद्रा, पृ० २०८

'पंचमुद्रा' में बताया गया है कि संसार को विषय का भंडार स्वीकार कर इसको मन से त्याग देना चाहिए एवं कर्म भ्रम को विलीन करके सत्यनाम में अनुरक्त हो कर साधना करनी चाहिए।[१]

'धर्म बोध' में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो तन मन से साधु की सेवा करता हुआ, निरंतर सत्यनाम का जाप करता है वह अपने घर बैठे ही परम पद का अधिकारी बन जाता है इसके लिए योग एवं समाधि की कुछ भी आवश्यकता नहीं-

तन मन साधु जो सेवई जपै निरंतर नाम।
गृही सो पावै परम पद, योग समाधि न काम।।

— 'धर्मबोध', पृ० १७८

इन्हीं बातों का समर्थन 'ज्ञान सागर' में भी किया गया है :-

मूल नाम धकार धुनि वाचा। वै छिवै जीव काल सो बाचा।।

— ज्ञानसागर, पृ० ८२

बाधिं मूल नाम को साधि। दुविधा मिटै एक अराधि।।

— ज्ञान सागर, पृ० ६०

'ज्ञान प्रकाश' (पृ०६१) में भीतत्वस्वरूपी सतनाम के ध्यान के लिए उपदेश किया गया है। इसी प्रकार 'अनुराग सागर' (पृ० ६ एवं पृ० ११) में नाम धारण की महत्ता पर जोर दिया गया है। लययोग में अपनी 'सुरति' को अनाहद नाद से जोड़ना आवश्यक है। इस प्रकार 'सुरति-सम्वाद' में अभ्यास द्वारा शब्द सुरति में ध्यान करना अनिवार्य बताया गया है।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण कबीर-पंथी-साहित्य सत्यनाम धारण की महिमा से ओत-प्रोत है।

कबीर पंथ के अनुरूप ही दरिया पंथ में भी ध्यान योग के विषय में चर्चा की गई है। हठयोग को दरिया साहब ने पिपीलक योग एवं ध्यान योग को विहंगम योग कहा है। उनके इस नामकरण का उद्देश्य उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का भली भांति स्पष्टीकरण ही स्वीकार किया जा सकता है। व्यवहार में साधारणतया पिपीलिका के स्वभाव से ठीक विपरीत स्थिति पक्षी में दृष्टि-गत होता है। चींटी जिस प्रकार धीरे धीरे पेड़ पर चढ़ते हुए अन्त में फलका रसा-स्वादन करती है उसी प्रकार हठयोगी भी अपनी काया साधना से अभीष्ट की प्राप्ति करता है किन्तु ध्यान योग में इस प्रकार की स्थिति नहीं है क्योंकि ध्यान धारण करने वाला योगी पक्षी के सदृश साधनाकाश में विचरण करता हुआ ईश्वरानुभूति की सुमधुरावस्था में रमा जाता है। इसीलिए दरिया साहब ने कहा है :—

> विहंगम चढ़ि गएउ अकासा। बैठि गगन चढ़ि देखु तमासा।। १०२०
>
> — दरियासागर, पृ० १०३

'सुरति' —

दरिया साहब के अनुसार यह ऐसी उत्कृष्टा अवस्था है जिसमें साधक इस पार्थिव जगत् से विमुख होकर साधना की उत्कृष्ट भूमि पर पदार्पण करता है, जिससे उसे निरतिशय आनन्द की उपलब्धि होती है। दरिया साहब ने कहा है :—

> होए निरति तब सुरति देखावै। सार सब्द तब परगट पावै।।
>
> गगन मंडल बिच सुरति सँवारी। ईंगला पिंगला सुखमन नारी।।
>
> साधहु सब्द जीव जग मुक्ता। पाप पुन्य कबहीं नहीं भुगता।।
>
> — दरिया सागर, पृ०६७

कबीर के अनुरूप ही दरिया साहब 'सुरति' के माध्यम से चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए मूल शब्द का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं :—

> सुरति डोरि बैठैविलाई। मूल सब्द के करि उपाई।।१६६
>
> सुरति लगाए के करो सँभारा। मूल करम काढ़ो बैपारा।।१७४।।
>
> जो सब सब्दहिं करो विचारा। सोई संत भव सिंधु उबारा।।१७५

'निरति'

दरिया साहब 'निरति' का 'सुरति' से पृथक् समझते हैं, यह निर्विकल्प की स्थिति है जिसमें दृष्टि परोक्ष हो जाती है। वे योग साधना के लिए कबीर-पंथ के अनुरूप ही 'सुरति एवं निरति' दोनों को महत्त्व देते हैं। इन्हीं के माध्यम से वे इस काया-रूपी मटुकी में दया-रूपी दही का मंथन कर मन के स्थिरता का घृत निकालते हुए देखे जाते हैं।[१]

दरिया साहब ने भी कबीर के सदृश यह विश्वास प्रकट किया है कि जब सुरति के माध्यम से व्यक्ति की चंचल चित्त वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं तब निरति अर्थात् निरवलम्ब की स्थिति का उन्मेष होता है, जिससे व्यक्ति ब्रह्मविद् बन जाता है :-

सुरति लौ तब निरति समाई। पूरन ब्रह्म ध्यान होए जाई।।८६

—दरिया सागर , पृ०८७

दरिया साहब ने अपनी साधना पद्धति में हठयोग अथवा पिपी-लक योग का तिरस्कार नहीं किया है, प्रत्युत वे पिपीलक योग एवं विहंगम योग के सामरस्य में विश्वास करते हैं।[२] प्रथम में षट्चक्र का भेदन एवं दूसरे में अष्टदल कमल का भेदन अनिवार्य बताया गया है किन्तु उन्होंने दूसरी विधि को अधिक महत्त्व दिया है जिसे ध्यानयोग भी कहते हैं। इसी ध्यान योग के प्रति कबीरपंथ में भी विश्वास प्रदर्शित किया गया है। 'दरियासागर' में आये हुए निम्नलिखित वर्णन से इस बात का भलीभाँति स्पष्टीकरण हो जाता है कि दरिया साहब षट्चक्र एवं अष्टदल कमल दोनों के भेदन में विश्वास करते हैं :-

छवों चक्र के करिये भेदा। अस्ट दल कंवल के करहु निवेदा।।३०६॥

—दरिया सागर, पृ० ३१

दल आठ के पावहिं भेदा। तबहीं करिहै सब्द निवेदा।।३२६॥

— दरिया सागर, पृ०३३

इस प्रकार उन्हो षट चक्र एवं अष्ट दल कमल के आधार पर दरिया-पंथ में चौदह तत्वों का अभ्यास करने का उपदेश दिया गया है, किन्तु इस प्रकार

---

१. ज्ञानी(परिशिष्ट), पृ० ८२ संतकवि दरिया एक अनुशीलन
२. संतकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० 104

की कल्पना कबीर पंथ में नहीं दृष्टिगत होती । दरिया साहित्य में कहीं कहीं इनका चौदह मंत्रों के रूप में भी प्रयोग मिलता है । यथा:—

> चौदह मंत्र बान संधाना । मारहु जम के पद निर्बाना ।।
> चौदह मंत्र भेद विस्तारा । एक सब्द ते हंस उबारा ।।
>
> —दरिया सागर, पृ० ६

दरियापंथ में इन्हीं चौदह संख्याओं को यम की चौकी भी स्वीकार किया गया है :—

> चौदह चौकी जम के होई । बिनुसतगुर नहिं पहुंचे कोई ।।३६
> चौदह मंत्र भेद जो पावै । जाए हंसलोक बहुरि नहिं आवे ।।३७
>
> — दरिया सागर, पृ० ५

दरिया साहब ने इन चौदह संख्याओं का प्रयोग नवद्वार एवं पंच तत्व के लिए भी किया है ।[१]

> नवोमिलि एक रूप देखाई । पांचों मिलि गुर पूरा पाई । ३७२ ।।
>
> —दरिया सागर, पृ० ३८

दरिया-साहित्य में प्राप्त १४ यम की कल्पना भी बड़ी ही विलक्षण बन पड़ी है, उनके नाम इस प्रकार है —(१) विश्वम्भर (सगुण देव)(२) मन, (३) नेत्र, (४) काम वासना (५) विषय सुख (६) कामिनी संग (७) विशिष्ट भोग विलास एवं भोजन (८) जीवहिंसा,(९) अंगों को शिथिल करने वाले तत्व, (१०) मांस भक्षण ,(११) मदिरापान, (१२) असत्य श्रवण की उत्सुकता, (१३) क्रोध और (१४) द्वेष । ऐसा प्रतीत होता है कि दरिया साहब ने इन सबकी कल्पना आचरण में शुद्धता लाने के लिए की है, जो अध्यात्म सेवियों के लिए अनिवार्य है ।[१]

साधना पक्ष में कबीर पंथी साधकों के सदृश दरिया साहब ने ध्यान योग की सफलता मन के स्थिरीकरण पर ही सम्भव स्वीकार किया है । ध्यानयोग में कबीर ने जिह्वा उलटकर अमृत रस पान के लिए कोई अनिवार्यता नहीं

---

१. दरिया सागर, पृ० ६

प्रदर्शित की है किन्तु दरिया साहब अजपा जाप करते हुए भी अमृत बूंद के पान के लिए इच्छुक हैं।[१]

नाम के जाप के प्रति दरिया साहब ने भी बड़ी पुनीत आस्था प्रदर्शित की है उन्होंने तो यहाँ तक बताया है कि नाम बाण से विद्ध होने पर ही व्यक्ति में सुरति का जागरण सम्भव है।[२]

दरिया साहब ने इस बात का भलीभाँति स्पष्टीकरण किया है कि जब व्यक्ति का मन स्थिर हो जाता है तब सद्गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान दीपक का प्रकाश उसके मन में भली भाँति फैल जाता है और उसके समस्त संशय एवं संकट समाप्त हो जाते हैं।[३] कबीर के सदृश उन्होंने भी इस बात का समर्थन किया है कि जब जीव ब्रह्म की परख कर लेता है तब वह स्वयं ब्रह्म में समाहित हो जाता है।[४]

'जीव ब्रह्म का कहौं उपाई। खोजि ब्रह्म मिलि जाई ।।३६५।।

—दरिया सागर, पृ० ३७

कबीर की भाँति दरिया साहब ने भी सद्गुरु के प्रति अमित श्रद्धा प्रदर्शित की है, गुरु शब्द में विश्वास धारण करने से ही आवागमन के साधन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है जिसके लिए वे भी ज्ञान का घोड़ा बना कर उसमें लव की लगाम लगा कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा पूरी करना चाहते हैं।[५]

दरिया साहब ने भी सत्यनाम धारण करने के लिए अनिवार्यता प्रदर्शित की है। उन्होंने कबीर के सदृश ही ईश्वर प्रेम के लिए भ्रमर एवं कमल के प्रेम का आदर्श चुना है।

---

१. दरिया सागर, पृ० ६

२. वही, पृ० ६, ४८

३. दरिया सागर, पृ० ३८

४. वही, पृ० ३०, ३४

५. शब्द (परिशिष्ट), पृ० ६२-६३, संत कवि दरिया एक अनुशीलन

ईश्वरानन्द की अनुभूति के लिए दरिया साहब ने मन एवं ज्ञान के सामरस्य पर विशेष बल दिया है। ईश्वर के नाम का माहात्म्य ही ऐसा है, जिससे जन्म जन्मान्तर के पाप विलीन हो जाते हैं।[१]

कबीर पंथी महात्माओं के अनुरूप ही उन्होंने भी ऐसे योगी को श्रेष्ठ सिद्ध माना है जो गगन मंडल में निवास करता हुआ अपने मन की पवित्र भूमि में ही समस्त साधनाओं को केन्द्रित कर देता है। पुन: उसे अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसीलिए उन्होंने कहा है :—

> पंडित सो जो मनहिं बुझावे। मनहीं मन के पूजा चढ़ावे।।३८९।।
> घट में सलिता घटहिं में मुन्द्रा। घटहिं में पातिफूल एक सुन्द्रा।।३८०।।
> अनहद की धुनि करें बिचारा, ब्रह्म द्रिस्टि होए उजियारा।।३८८।।
>
> — दरिया सागर, पृ० ३८

सहज योग—

सहज का अभिप्राय सरल एवं स्वाभाविक से है, जिसमें किसी प्रकार की कृतिमता का प्रभाव न हो। इसका व्युत्पति मूलक अर्थ सहजायते इति सहज:' भी स्वाभाविकता का ही बोध कराता है, इसमें समस्त कार्य व्यापार बिना किसी प्रयास के ही होने लगते हैं इसीलिए साधना पक्ष में सहज साधना अथवा सहजयोग को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।

सहज साधना बौद्ध सिद्धों एवं नाथयोगियों की देन स्वीकार की जाती है, जिसका प्रभाव कबीर आदि संतों पर पड़ा। कबीर ने उनकी साधना का स्वरूप परिवर्तित कर दिया है। बौद्ध सिद्ध शून्य साधना द्वारा महेश्वर तत्त्व की रसानुभूति करते थे और नाथ योगी अपनी काया साधना द्वारा महेश्वर तत्त्व की रसानुभूति में मस्त रहा करते थे किन्तु कबीर ने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया यही कारण है कि उन्होंने योग एवं भक्ति के सामरस्य पर अधिक बल दिया है, परिणाम स्वरूप उन्हें अपने आराध्य देव के प्रेम रस के समक्ष सब कुछ फीका नजर आता है,

---

१. दरिया सागर, पृ० ३८-४०

उनकी साधना वश केवल राम-रसायन तक ही सीमित रह सकी है, जिसके लिए आत्म दर्शन एवं स्वानुभूति ही सर्वस्व है, इसीलिए उन्होंने कहा है :—

> कबीर कंवल प्रकासिया, ऊगा निरमल सूर ।
> रैंनि अंधरी मिटिगई, बागे अनहद तूर ।।३६।।

— कबीर ग्रन्थावली (परिषद),पृ०१७१

अध्यात्म पक्ष में स्वानुभूति की स्थिति अतिचेतन स्थिति स्वीकार की गई है और इससे उपलब्ध सुख भी वर्णनातीत है, जिसे साधक केवल `गूंगे के गुड़ की मिठास` की तरह अनुभव करता है। संतों ने इसी परमानन्द की निरंतर स्थिति में निमग्न रहने को ही सहज साधना बताया है। यह एक ऐसी उत्कृष्टावस्था है जो साधक के प्रतिक्षण के कार्य व्यापार में एकरसता उत्पन्न करती है, जिससे उसका जीवन केवल ईश्वरानन्द में समाहित हो जाता है। आचार्य क्षितिमोहन सेन के अनुसार —`दैनिक गति के साथ शाश्वत गति का जो यह सहज योग है, उसी को ये पन्थ सहज-पन्थ कहते हैं।`[1]

`कबीर साहेब की शब्दावली` में सहज की स्थिति का वर्णन बड़े ही उत्कृष्ट ढंग से मिलता है जिसके अनुसार साधक सहज समाधि में जहां तक अपनी आध्यात्मिक यात्रा करता है वही उसकी `परिक्रमा` है, जो कुछ आचरण करता है वही सेवा है, उसका सुपन ही दण्डवत है, उसका बोलना नाम सुमिरन है और भोजन आदि ही पूजा है। जब इस प्रकार की सहज समाधि लग जाती है तब उसे आंख मूंदने अथवा हरिकीर्तन आदि सुनने की व्यथा से कुछ प्रयोजन ही नहीं रह जाता। वह खुले नेत्रों से निरंतर अपने आराध्य देव को अपनी दिव्यज्योति में देखता रहता है जिसके लिए आसन-प्राणायाम सब निःसार हैं, प्रत्येक स्थिति में उसकी लगन स्वाभाविक रूप से ईश्वरानुभूति में स्थिर हो जाती है, जिसके लिये उसे कुछ आयास-प्रयास नहीं करने पड़ते। यह क्रिया श्वास की स्वाभाविक गति के सदृश होती रहती है। कबीर ने इसी उत्कृष्ट अवस्था की प्राप्ति के लिए विशेषजोर दिया है।[2]

---

1. आचार्य क्षितिमोहन सेन, संस्कृति संगम, पृ० १२१
2. कबीर साहेब की शब्दावली, भाग १, शब्द ३०, पृ० ८८-१६

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार ' सगुणोपासक भक्तगण, भगवान के विग्रह की परिक्रमा , सेवा, नाम,जप आदि द्वारा जो भक्ति दरसाते हैं वह सभी सहज समाधि के साधक के साधारण आचरण द्वारा ही सिद्ध हो जाती है और फिर योगी लोग जिन क्रियाओं से परम लक्ष्य की प्राप्त करने का दावा करते हैं वह भी उसे नहीं करनी पड़ती । यह अनायास ही उसे सिद्ध हो जाती है । स्पष्ट ही ऐसी समाधि वही लगा सकता है जो असीम विश्व ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त अनन्त सत्ता को सदा-सर्वदा अनुभव कर सके ।'[१] इस स्थिति में पहुँचे हुए व्यक्ति की इन्द्रियाँ स्वत: संयत हो जाती हैं और उसके समस्त कार्य व्यापार ईश्वर के प्रेम से अनुप्राणित हो उठते हैं । साधक अपनी समस्त क्रियाओं को ईश्वर के प्रेम की पूर्णता में ही सम्पन्न करता है । ईश्वर में आत्म विश्वास के साथ भक्त अपने समस्त स्वार्थ भगवदर्पण करके संसार के प्रपंच से अप्रभावित हो जाता है । इसीलिए कबीर ने कहा है :—

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझ कों सौंपतां, क्या लागै है मेरा ।।३।।

— कबीर ग्रन्थावली (सभा), पृ०१९

कबीर ने केवल एक राम नाम के प्रति अगाध विश्वास प्रकट किया है, जिसके सम्मुख और समस्त सांसारिक ज्ञान व्यर्थ हैं क्योंकि सम्पूर्ण जगत् ही राम की महिमा से प्रभावित है एवं वही सर्वशक्तिमान है इसीलिए उसका ज्ञान आवश्यक है ।

कबीर के राम रस की प्राप्ति के लिए वेद एवं शास्त्र आदि की कुछ भी आवश्यकता नहीं है इसीलिए वे कहते हैं :—

का पढ़िए का गुनिए । का वेद पुरानां सुनिए ।।
पढ़ें गुनें क्या होई । जड सहज न मिलिओ सोई ।।४।।शब्द ७२

— कबीर ग्रन्थावली(परि०)पृ०२

ऐसे राम के लिए वे इस काया घट को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ६८

जाना चाहते, उनकी धारणा के अनुसार ऐसे भक्त को सफलता मिल सकती है। जो मन के अभ्यंतर ही उस परमतत्व की प्रतीति के लिये प्रयत्न करता है :—

> टार्‌यौ टरै न आवै जाइ। सहज सुन्नि महिं रह्यौ समाइ ।।१४ ।।
> मन मद्धे जानैं जे कोइ। जो बोलै सो आपै होइ ।।१५।।
> जोति मांहि मन अस्थिर करै। कहै कबीर सो प्रांनीं तरै ।।१६।।
>
> —पद—संख्या १३०, कबीर ग्रन्थावली, (परि), पृ०७७

उनकी भगवत्प्रेम की पवित्र भावना वहां और भी प्रखर हो उठी है जबकि वे अपने शरीर को ईश्वर के लिए उत्सर्ग कर देते हैं, और वे अपने शरीर में राम को खोजते हुए समस्त प्रकृति को ही ईश्वर में लय कर लेते हैं।[१]

संत कबीर ने जीवन की सहजता पर अधिक बल दिया है, यही कारण है कि वे गंगा-यमुना (इड़ा-पिंगला) के मध्य सहज शून्य के घाट पर (स्थित प्रज्ञावस्था में) अपना मठ बनाते हैं जो मुनियों का भी परम काम्य है :-

> गंग जमुन के अंतरे, सहज सुन्नि लौघाट।
> तहां कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट ।।७ ।।
>
> — कबीर ग्रन्थावली, परिषद्, साखी १७३

उनकी सहज साधना की सबसे बड़ी मौलिक उद्भावना यह है कि जीवन की समस्त क्रियाओं में वे सहजता की अनुभूति करते हैं, जिसमें विलक्षण साधना के समस्त प्रपंच पता नहीं कहां उड़ जाते हैं :—

> सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
> जिहिं सहजैं विखिया तजै, सहज कहावै सोइ ।।१।।
>
> — कबीर ग्रन्थावली, परि०, पृ० २४२

उपर्युक्त विवरणों का विश्लेषण करने पर हम कह सकते हैं कि कबीर की सहज साधना बौद्ध सिद्धों एवं नाथयोगियों से पूर्ण पृथक् थी और उनकी साधना से कबीर की सहज साधना का कोई सामंजस्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इसमें भक्ति एवं स्वानुभूति का पुट अधिक है। यह बात कुछ और है कि उन्होंने बौद्ध सिद्धों एवं नाथयोगियों के निःसार कायाक्लेश को देखकर उनके शारीरिक व्यायाम

---

१. कबीर ग्रन्थावली (परि०), पृ० ८६

से अपना मानसिक व्यायाम श्रेष्ठ समझा होगा, किन्तु उनकी यह मानसिक साधना अध्यात्म जगत् में किस साधना से सरल है ? इसीलिए कबीर ने इस बात का स्पष्टीकरण बड़े ही मनोयोग से किया है कि ईश्वर की प्राप्ति कोई हंसी खेल नहीं है।

> हंसि हंसि कंत न पाइये, जिन पाया तिन रोइ ,
> हांसी खेलां पिउ मिले, तौ नहीं दुहागिनि कोइ ।।३८।।
>
> —कबीर ग्रन्थावली परिषद,पृ१४६

कबीर ने ऐसे योगी को श्रेष्ठ पद दिया है, जिसके मन का वेग सतत साधना के परिणामस्वरूप स्थिर हो गया है और उसके समस्त कार्यव्यापार मन में ही हो रहे हैं।[1]

सहज साधना की दृष्टि से जब हम कबीरपंथी साहित्य का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि कबीर की विचारधारा कबीरपंथियों द्वारा पूर्ण आत्मसात कर ली गई है, उनके लिए मन की स्थिरता एवं सतनाम के माहात्म्य से श्रेयस्कर और कुछ भी नहीं है।[2]

कबीरपंथी साहित्य ऐसे वर्णनों से ओत-प्रोत है जिसमें साधक को व्यर्थ के ढोंग एवं पाखण्ड की ओर से विमुख रहने तथा संयतेन्द्रिय एवं शुद्ध बुद्ध बने रहने का उपदेश दिया गया है, ये ही साधना जगत् के लिए अनिवार्य हैं। कबीरपंथी ग्रन्थ `आत्मबोध` कबीर द्वारा स्वीकृत किये गये सहज योग के सिद्धान्तों से ओत प्रोत है। इसका एक एक वाक्य व्यक्ति को सच्ची साधना की ओर उन्मुख रहने के लिए विवश करता है।

दरिया साहब ने भी कबीर के अनुरूप ही दुष्प्रवृत्तियों को त्याग कर भक्ति की ओर उन्मुख बने रहने की अनिवार्यता स्वीकार की है, जिससे ऐसी दिव्य ज्योति की उपलब्धि होती है कि साधक स्वतः इस पार्थिव जगत् से मुक्त हो जाता है :-

---

१. कबीर ग्रन्थावली (सभा), पृ० १४८

२. धर्मबोध, पृ० १६१

हौवे जोग्य न नाम बसि आवै । जन्म जन्म ऐसे जहँ डावै ।।४२३
भगति ग्यान का करो बिचारा । सहज मुक्ति भवसिंधु उबारा ।।४२४
— दरिया सागर, पृ० ४२

दरिया साहब का विश्वास है कि बिना सत्य शब्द में विश्वास उत्पन्न हुए हृदय की तिमिराच्छन्न कुत्स दुष्प्रवृत्तियाँ समाप्त नहीं हो सकती, सत्य शब्द की प्राप्ति सद्गुरु से हो सकती है ।[१]

कबीर की भाँति निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए दरियासाहब ने भी शास्त्रगीता आदि का बहिष्कार किया है । उन्होंने नाम में केवल सच्ची लगन लगाने की अपेक्षा प्रकट की है ।

दरिया साहब ने पाषण्डपूर्ण प्रपंचों एवं ऐन्द्रिय सुखों को त्याज्य समझते हुए भक्ति के लिए उपदेश दिया ।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कबीर-पंथी एवं दरिया-पंथी साधना भक्ति समन्वित योग से पूर्णरूपेण प्रभावित है, जिसके लिए मन के संयम, आत्मशुद्धि, सतनाम का जाप, सद्गुरु में विश्वास एवं संयतेन्द्रिय आदि उत्कृष्ट गुणों की अनिवार्यता प्रदर्शित की गई है, जिसमें पाषण्ड एवं कटुकाया साधना को निःसार एवं व्यर्थ बताया गया है ।

---

१. दरिया सागर, पृ० ७२
२. ब्रह्मविवेक, पृ० ३३२

(ख) 'स्वरोदय'

दोनों पंथों के साहित्य में स्वरोदय के सिद्धान्तों में समानता दृष्टि-गत होती है । इनमें स्वरोदय के सिद्धान्तों पर 'ज्ञान स्वरोदय' नामक एक स्वतंत्र रचना भी उपलब्ध होती है, जिनमें अनेक बातों की चर्चा लगभग समान ढंग से की गई है । इनके पूर्व भी इन सिद्धान्तों पर संस्कृत-साहित्य में पुस्तकें लिखी जा चुकीं हैं, इसलिए यह कहना अस्वाभाविक न होगा कि इन्हीं की प्रेरणा से कबीर-पंथ में भी स्वरोदय विज्ञान पर प्रकाश डालने के लिए साहित्यिक रचनाएं हुईं, क्योंकि कबीर-पंथ में 'ज्ञान स्वरोदय' के अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाएं भी हैं जिनमें इनके सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है । यथा: 'चौका स्वरोदय; एवं कायापांजी आदि । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वरोदय सिद्धान्तों की दृष्टि से दोनों पंथ संस्कृत-साहित्य के स्वरोदय ग्रन्थों की मान्यताओं के ऋणी हैं ।

दोनों पंथों के साहित्य में विवेचित सामग्री को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

१. तत्त्व सिद्धान्त
२. स्वर सिद्धान्त
३. भविष्य कथन

इन ग्रन्थों में स्वरोदय सिद्धान्तों की जो रूप रेखा प्रस्तुत की गई है, उसकी सत्यता का दावा तो किया ही गया है साथ ही यह भी बताया गया है, कि जो इन सिद्धान्तों की जानकारी कर लेता है वह भविष्य वक्ता बन जाता है :—

धरनि टरै गिरिवर टरै, ध्रुव टरै सुन मीत ।
ज्ञान स्वरोदय ना टरै, कहै कबीर कबीरु ।।२०

— ज्ञान स्वरोदय (कबीरपंथ) पृ० २०

इसी प्रकार दरिया साहब ने भी अपने स्वरोदय-सिद्धान्तों के प्रति विश्वास दिलाया है :—

दरिया अगम गम्भीर है, लाल रतन की खानि ।
जौजन मीले जौहरी लेहि सब्द पहचानि ।।
सुरस भेद महिमा अगम, चारों बेद का मूल ।
कहो सरोदे ग्यान यह, कंवल मानसर फूल ।।१।।

—ज्ञान सरोदे (द०प०), पृ० २४६

तत्त्व सिद्धान्त—

दोनों ग्रंथों के 'ज्ञान स्वरोदय' में पंच तत्त्वों की कल्पना समान रूप से मिलती है ।[१]

दोनों में वर्णित पंच तत्त्वों के पांच पांच प्राकृतियों की कल्पना पूर्णस्वरूप समान है[२]:—

अग्नि: नींद जमुहाई, भूख प्यास और आलस
पवन: चलना, बोलना, बलकरना, पसारना और संकोचना
पृथ्वी: हाड़, मांस नाड़ी, चाम और रोम
नीर: रक्त, पसीना, थूक, मूत्र और बिंद
आकाश: काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय

दोनों के इन्द्रियों की संख्या भी समान रूप से बताई गई है :—

आंख नाक जिभ्या कहीं, त्वचा जानिये कान ।
पांचों इन्द्रिय ज्ञानकी, जाने ज्ञान सुजान ।।१६६।।
गुदा लिंग [illegible]खरा, हाथ पांव लखिलेह ।
पांचों इन्द्रिय कर्म की, इनही में सब देह ।।१७०।।

— ज्ञान स्वरोदय (क०प०), पृ० २२

तुलना

आँखि नाक जिम्या तनुकाना । पाँचों इन्द्री ध्यान प्रधाना ।।१६६
कर गुद लिंग पांच मुख होई । पाँचो इन्द्री कर्म समोई ।।१७० ।।
— ज्ञानस्वरोदय, (द०पं०),पृ०२६०

त्रिगुणों के विषय में भी इनमें साम्य है ।[१] दोनों `ज्ञान स्वरोदय` में समान रूप से गोचरी, खेचरी, भोचरी तथा उन्मुनी ये पांच मुद्राएं बताई गई हैं ।`[२]

तत्व सिद्धान्तों की दृष्टि दोनों पंथों के `ज्ञान स्वरोदय` में कुछ अन्तर भी आ गया है :—

इनमें पंच तत्त्वों के वर्णों में अन्तर देखा जा सकता है :—

दोनों में पवन एवं पृथ्वी के रंग क्रमश: हरा एवं पीला समान रूप से बताये गये हैं । किन्तु शेष तत्वों के रंगों में पार्थक्य है । कबीर-पंथी `ज्ञान-स्वरोदय` के अनुसार अग्नि , नीर, एवं आकाश का वर्ण क्रमश: लाल, श्वेत और श्याम है किन्तु दरियापंथी ज्ञान स्वरोदय के अनुसार उनका रंग क्रमश: काला, लाल एवं श्वेत है ।[३]

पंच तत्वों के निवास स्थान के विषय में भी दोनों पंथों के `ज्ञान स्वरोदय` में मतभेद है । कबीर-पंथी` ज्ञान स्वरोदय` के अनुसार अग्नि, पवन, पृथ्वी, नीर एवं आकाश का निवास स्थान क्रमश: नेत्र, नासिका, गुदा, लिंग एवं कान को बताया गया है जबकि दरिया-पंथी `ज्ञान-स्वरोदय ` में इनका निवास स्थान क्रमश: चित, नाभि, हृदय, भाल(ललाट) एवं मस्तक है ।[४]

---

१. ज्ञानस्वरोदय (क०पं०), पृ० २१ एवं ज्ञान स्वरोदय (द०पं०) पृ० २६०
२. ज्ञानस्वरोदय (क०पं०), पृ०२१ एवं ज्ञान स्वरोदय (द०पं०) पृ० २६०
३. ज्ञानस्वरोदय (क०पं०), पृ० ७ एवं ज्ञानस्वरोदय (द०पं०), पृ० २५६
४. ज्ञान स्वरोदय (क०पं०), पृ०२२ एवं ज्ञानस्वरोदय (द०पं०), पृ० २६०

स्वर सिद्धान्त—

स्वर सिद्धान्त नासिका द्वार से निकली हुई वायु पर आधारित है, जो निम्नभागों में विभाजित किये जा सकते हैं :—

(१) दक्षिण स्वर

(२) वाम स्वर

(३) उभय स्वर

दोनों पंथों के 'ज्ञान स्वरोदय' में इनका वर्णन समान रूप से किया गया है। इन्हें क्रमशः गंगा, यमुना, एवं सरस्वती तथा चन्द्र, भानु एवं सरस्वती कहते हैं। नासिका में दो छिद्र होते हैं जिनमें से इड़ा (ईगला) बायें को, पिंगला दायें को तथा जब दोनों छिद्रों के स्वर समान चलते हैं तो उसे सुषुम्णा कहते हैं। इड़ा के अन्तर्देवता चन्द्र एवं पिंगला के सूर्य हैं। इन्हीं के आधार पर महीनों के पक्ष भी निर्धारित किये जाते हैं। इड़ा के अन्तर्देवता चन्द्रमा का प्राधान्य होने पर शुक्ल पक्ष एवं पिंगला के सूर्य का प्राधान्य होने पर कृष्ण पक्ष होता है। इनसे सम्बन्धित दिवस भी बताये गये हैं :—चन्द्र के —सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र तथा सूर्य के — रवि, मंगल एवं शनि।[1] इनमें इनसे सम्बन्धित राशियों की भी कल्पना की गयी है : चन्द्र का प्राधान्य होने पर वृश्चिक, सिंह, वृष एवं कुम्भ, सूर्य का प्राधान्य होने पर कर्क मेष, मकर, एवं तुला तथा सुषुम्णा का प्राधान्य होने पर कन्या, मीन, मिथुन, एवं धन राशियां होती हैं।[2]

इन रचनाओं में स्वर की अनुगामिनी क्रियाओं का भी उल्लेख हुआ है। चन्द्रमा की विशेषता स्थिर क्रिया की है और सूर्य की चल। स्थिर क्रियाओं में वस्त्राभूषण की प्राप्ति, विवाह, उपचार, प्रेम, योग, ध्यान, लेखन, भवन-निर्माण, वृक्षारोपण, कूप निर्माण, गृह प्रवेश, एवं बीज वपन आदि कार्य-व्यापार आते हैं। इसी प्रकार चल क्रियाओं में :—ऋण लेना भोजन करना, अध्ययन करना, मित्र या शत्रु के समीप जाना, युद्ध करना, भिक्षावृत्ति, भारवहन करने वाले पशुओं का क्रय एवं स्नानादि कार्य व्यापारों की गणना की जाती है।

दोनों ग्रंथों का वर्णन इस प्रकार है :—

चन्द्रयोग में अस्थिर जानो, थिर कारज सबही पहचानो ।।
करै हवेली छप्पर छावै, बाग बगीचा गुफा बनावै ।।
हाकिम जाय कोट पर चढ़े, चन्द्रयोग आसन पगधरै ।
सत्यकबीर यह खोज बतावैं, चन्द्रयोग थिर काज करावै ।।

—ज्ञानस्वरोदय, (क०प्र०)पृ०१०-११

तुलना

थिर कारज को चंद है, चर कारज को भानु ।
तनु के पारख पाइ कै, जग कारज करि जानु ।।२४
भूषन बसन बिवाह विधाना । औषध प्रीती जोग अरु ध्याना ।।२८५
ग्रन्थ लिखै घर महल बनावै । बाग बाटिका कूप खोदावै ।।२८६।।

—ज्ञानस्वरोदय (द०प्र०),१६२

इसी प्रकार अन्य विवरण भी दोनों में समान रूप से मिलते हैं । दोनों में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि बामस्वर के प्रारम्भ होने पर ही स्थिर क्रियाओं को करना चाहिए साथ ही इसकी प्रधानता में दक्षिण एवं पश्चिम की यात्रा भी शुभ फल देने वाली होती है । इसी प्रकार दायें स्वर की प्रधानता में चल क्रियाओं को करना चाहिए और इसमें उत्तर एवं पूर्व की यात्रा शुभ फलदायी है ।[१]

पहले ही इनके आधार पर बताये गये शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की चर्चा कर चुके हैं, उनसे सम्बद्ध एक आवश्यक बात और भी ध्यान देने योग्य है वह यह कि शुक्ल पक्ष के प्रारम्भिक तीन दिनों तक चन्द्रमा की प्रधानता रहती है और पुनः तीन दिन तक सूर्य की, इसी प्रकार इनका तीन दिनों के पश्चात् क्रम चलता रहता है । इसके विपरीत कृष्ण पक्ष में प्रारम्भिक तीन दिनों में एवं प्रथम तीन दिनों तक सूर्य की प्रधानता रहती है उसके पश्चात् तीन दिनों तक

चन्द्रमा का । अन्त में शुक्ल पक्ष के ही भांति इनका उसकी विपरीत दिशा में क्रम चलता रहता है ।[१]

इसी प्रकार भविष्य कथा के प्रसंग भी छोटे मोटे अन्तरों को छोड़कर दोनों में अत्यधिक साम्य मिलता है । सच कहा जाय तो दोनों पंथों के 'ज्ञान स्वरोदयों' में इतना आश्चर्यजनक साम्य है कि दोनों एक ही रचयिता के ज्ञात होने लगते हैं । कबीर-पंथी 'ज्ञानस्वरोदय' में यद्यपि अनेक स्थलों पर कबीर की छाप मिलती है किन्तु भाषा आदि की दृष्टि से यह रचना निश्चित रूप से परवर्ती जान पड़ती है । दरिया साहब ने पहले 'दरिया नामा' नामक फारसी ग्रन्थ में इस विषय का विवेचन किया बाद में उसकी रचना 'ज्ञानस्वरोदय' नामक हिन्दी में की । दरिया साहब स्वरोदय विज्ञानके पूर्ण ज्ञाता थे और इनके स्वरोदय ग्रन्थ का अध्यात्म तथा ज्योतिष के क्षेत्र में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा । जान पड़ता है इस ग्रन्थ के कारण उनकी ख्याति से आकृष्ट होकर किसी कबीर-पंथी ने भी उसके अनुकरण पर 'ज्ञानस्वरोदय ग्रन्थ' की रचना की । अन्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में हमने यह देखा है कि प्राय: दरिया साहब ही कबीर-पंथी साहित्य से प्रभावित रहे हैं, किन्तु 'ज्ञानस्वरोदय' के सम्बन्ध में ऐसा मानने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है ।

'ज्ञानस्वरोदय' की रचना संत चरनदास ने भी की थी । डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित के अनुसार इनके 'ज्ञानस्वरोदय की रचना सं १८४३ के लगभग हुई थी'[२]। दरियासाहब का देहांत सं० १८३७ में हो गया था अत: 'संतचरनदास कृत' ज्ञानस्वरोदय' की रचना दरिया साहब के 'ज्ञानसागर' के पश्चात् हुई —यह स्वत: सिद्ध है । कबीर-पंथी 'ज्ञानस्वरोदय' और चरनदास के स्वरोदय में अत्यधिक साम्य दिखलाई पड़ता है —यहां तक कि मिलीं दोनों की अनेक पंक्तियां मिलती जुलती हैं, केवल एकाध शब्दों का अन्तर है । अनुमानत: कबीरपंथी 'ज्ञानस्वरोदय' चरनदास का परवर्ती है, अत: दरिया साहब का महत्व इस क्षेत्र में और भी अधिक बढ़ जाता है । इन संतों के स्वरोदय विज्ञान का मूलप्रेरणास्रोत संस्कृत का 'शिव स्वरोदय' तथा 'गणेश स्वरोदय' नामक ग्रन्थ है ।[३]

---

१. ज्ञानस्वरोदय (क०ग्र०) पृ० ६, एवं ज्ञानस्वरोदय (द०ग्र०), पृ० २६३

अध्याय – ५

ज्ञान एवं भक्ति

अध्याय ५

ज्ञान एवं भक्ति

(क) ज्ञान—

सम्पूर्ण जगत् अनन्त जीवों के कर्मों की नाट्यशाला है, जिसमें हम जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं, इसको सुखप्रद समझते हुए हम इसी में लिप्त रहते हैं जिससे हमारे अनन्त जन्मों का चक्कर चलता रहता है। इसके परिणाम-स्वरूप हमें प्राप्त होती है घोर वेदना एवं निराशा। इन महा दुखों के प्रति भी हमें किंचित भी दु:ख का भान नहीं होता, यदि इन्हें दु:ख समझ लिया जाय तो उसमें लिप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अज्ञान की यह अपूर्व सफलता है जिसके माध्यम से वह जीवों पर इस प्रकार का पर्दा डाल रखा है, जिससे जीवों को सांसारिक दुख भी सुख प्रतीत होता है, यह इतनी बड़ी भ्रान्ति है कि जीवन पर्यन्त सत्पथ का अन्वेषण नहीं हो पाता। जिस महानुभाव को माया के रहस्य का भान हो जाता है, उसके नेत्र खुल जाते हैं और वह इस संसार को दुख का आगार समझ कर अपने को उन्मुक्त करना चाहता है। सभी चिंतकों की भांति गौतम बुद्ध ने इस संसार को दुख स्वरूप स्वीकार करने पर अधिक बल दिया है। उन्होंने इस संसार में सब दुख ही दुख स्वीकार किया है। संत विचार धारा भी बौद्ध धर्म से प्रभावित है —

> यह संसार कुबुद्ध दुख दाना। विरल विचारी सन्त सो त्यागा।
>
> — जीवनधर्म बोध, पृ०

जिसे इस रहस्य की प्रतीति नहीं। वह नलिनी के तोते के सदृश इस मायिक जगत् को ही सत्य स्वीकार कर अपना सर्वनाश करता है। प्रश्न उठता

है कि सांसारिक रहस्य का बोध आखिरकार सबको क्यों नहीं हो पाता ? इसका उत्तर बड़ा सरल है कि सब पर इस प्रकार का अन्धकार छाया हुआ है कि वह इसे कुछ समझता है। उसकी दृष्टि पर ऐसा पर्दा पड़ चुका है कि जिससे उसका विवेक लुप्त हो चुका है, इसी की रक्षा के लिए तत्त्वचिंतकों ने ज्ञान को सर्वस्व स्वीकार किया है, जिससे प्राणी में वह दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है कि वह जगत् के समस्त प्रपंचों का विवेक कर इससे दूर भागने का प्रयास करना चाहेगा।

ज्ञान विद्युत शक्ति की भांति जन सामान्य में फैले हुए मोहान्धकार को विदीर्ण कर प्रकाश प्रदान करता है, जिससे प्राणी अपने वास्तविक स्वरूप की परख सहज ढंग से कर सकेगा। इस महत्व पूर्ण कार्य के लिए ज्ञान को छोड़कर और अन्य कोई साधन नहीं है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सांसारिक क्लेशों से चिरंतन शांति प्रदान करने का ज्ञान को एकाधिकार है। ज्ञान की प्रतिकूलावस्था का नाम है अज्ञान जो कि विनाश मूलक परिस्थिति उत्पन्न करता है, और जगत् की आधि-व्याधियों की ओर जीवों को ढकेलता है।

ज्ञान के ही साथ भक्ति एक और शक्ति है, जिससे कि जीव के लिए सन्मार्ग का उद्घाटन होता है। ये एक दूसरे के पूरक हैं। जिस प्रकार पुरुष एवं प्रकृति जगत् की रचना करते हैं ठीक उसी प्रकार से ज्ञान एवं भक्ति के माध्यम से ही जगत् जंजालों से मुक्ति भी सम्भव है। क्योंकि पुरुष एवं प्रकृति में से अकेले कोई भी सृष्टि करने में सक्षम नहीं। इसी प्रकार ज्ञान एवं भक्ति में से किसी एक के माध्यम से संसार के प्रपंचों से मुक्ति नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि ये दोनों घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं और सांसारिक दुखों से छुटकारा प्राप्ति के लिए ये ही अमोघ साधन हैं।

`सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से कहा जा सकता है कि मोक्ष प्राप्ति एवं मायिक सृष्टि के निवृत्ति के लिए तात्त्विक ढंग से दो ही प्रधान साधन हैं — ज्ञान एवं भक्ति, क्योंकि संसार के बन्धन के कारण भी अज्ञान एवं अभक्ति ही है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी ज्ञान की महत्ता `रामचरित मानस` में स्वीकार की है —

धर्म ते विरति जोग ते ज्ञाना । ज्ञान मोच्छ प्रद वेद बखाना ।

रा० ३।१६।१

`भगवत पुराण` में भगवान ने भी उद्धव से तीन मोक्षोपायों की ओर संकेत किया है —

`योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानंकर्म च भक्तिश्चनोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ।।

—भा०पु० ११।२०।६

उपनिषद पुराणादि समस्त भारतीय धार्मिक साहित्य में आत्मा को ही परमात्मा स्वीकार किया गया है —परन्तु मायाच्छादित होने के कारण जीव उसे शरीर, इन्द्रिय, मन, एवं बुद्धि रूप स्वीकार कर अपने को इस जगत् में भोगों का दास समझकर इसी में अनुरक्त है । इसीलिए अपने वास्तविक स्वरूप की परख न करके अनन्त बार अवतार धारण करता है । ज्ञान के माध्यम से इनसे मोक्ष सम्भव है, क्योंकि इन्हीं के द्वारा अविद्या का कटुपाश समाप्त हो जाता है ।

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशया ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिनदृष्टे परावरे ।।

— (मुण्डक० २।२।८)

अर्थात् ज्ञानोदय होते ही समस्त हृदय ग्रन्थि छूट जाती है और समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं और कर्मों के कठोर पाश कट जाते हैं अर्थात् मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।

ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।

—गीता ४।३७

ज्ञान रूपी अग्नि ही समस्त कर्मों को भस्मीभूत करने में सक्षम है ।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्य प्राग्भारं चित्तम् ।।

—पातंजल योग दर्शन ४।२६

इसका अभिप्राय यह है कि अज्ञान वाली परिस्थिति में साधारण

मनुष्यों का चित्त अज्ञान में डूब कर विषय वासनाओं में अनुरक्त रहता है, परन्तु जब विवेक का उदय होता है उस समय साधक अपनी साधनावस्था की चरम सीमा पर पहुँच कर सांसारिक आवागमन एवं मायावी प्रपंचों से विरक्त हो जाता है, वह ज्ञान में निरंतर निमग्न हो कर कैवल्य की ओर उन्मुख हो जाता है अर्थात् अपने कारण में विलीन होना प्रारम्भ कर देता है। जैसा कि आत्मा को ही परमात्मा स्वीकार किया गया, इस लिए "अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः" (मुण्डक० ३।१।५)। अर्थात् वह ज्योतिस्वरूप शुभ्र आत्मा शरीर के अन्दर ही विद्यमान है, उसे योगीजन दोष हीन समझ देखते हैं। इस प्रकार शंका होती है कि जब वह आत्मा व्यापक एवं सर्वज्ञ है (मुण्डक० २।२।२)। तो उसे शारीरिक बन्धन में क्यों बांध दिया गया ? इसका कारण यह है कि ईश्वर सब कुछ जानने वाला सर्वत्र व्याप्त एवं सब कुछ उसी में समाविष्ट है, परन्तु विडम्बना इस बात की है कि इतना [illegible] सब कुछ होते हुए भी उसे हम देख नहीं सकते। शारीरिक अवयव पंच महाभूतों से निर्मित हो कर जड़ एवं अनित्य हैं, किन्तु परमात्मा चेतन एवं नित्य है, न तो वह इनका विषय है, अर्थात् वह इन्द्रियातीत है, इसीलिए श्रुतियों में इस प्रकार का वर्णन आया है कि "अन्तःशरीरे" अर्थात् अन्तर्तम में ही दर्शन की उपलब्धि सम्भव है, जो कि इन्द्रियों से परे है। इन्द्रियाँ बहिर्गम भोग विषयों में अनुरक्त हो कर आनन्द ले सकती है, किन्तु उस परमतत्त्व की परख नहीं कर सकती।

> बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्य रूपं
> सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
> दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
> पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥
>
> — मुण्डक० ३।१।७

वह महान् दिव्य और अचिन्त्य स्वरूपी है, वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है, दूर से भी दूर है, इस शरीर में अत्यन्त निकट भी है और वह समस्त चेतन जगत् में छिपा हुआ है। यह परब्रह्म बहिर्जगत् की ज्योति का विषय नहीं प्रत्युत स्वयं प्रकाश है :—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

—गीता १५।६

ब्रह्म को ज्योतिर्मय कहने में श्रुतियों का विशेष अभिप्राय है, एक तो वह ईश्वर बाह्य ज्योति का विषय नहीं, द्वितीय कि वह स्वयं प्रकाश है, और उसी के प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है। वह स्वयं दिव्य एवं शुभ्र है, ऐसे उत्कृष्ट एवं उन्नत स्वरूप की परख आत्म-दर्शन के लिए यत्नशील व्यक्ति जिसके समस्त दोष समाप्त हो गये हैं, वही इस काया के अन्दर ही उसका दर्शन प्राप्त कर स्वयं भी प्रकाश में मिल कर अमरत्व को प्राप्त हो जायगा। यही व्यक्ति का ज्ञान है जिसके उदय होते ही जगत् की समस्त द्विधा एवं बाधा की परिस्थितियां समाप्त हो जाती हैं। श्रुतियों ने आत्मा की अमरता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है और जिस व्यक्ति ने अपने इस स्वरूप की परख कर ली वह अमरत्व को प्राप्त हो गया।

इस जगत् से मुक्ति का अभिप्राय ही ज्ञान है, या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जिसे ज्ञान हो गया वह मुक्त हो गया। ऐसी अवस्था में समस्त कर्मबाहे जिस स्वभाव के हों सब समाप्त हो गये और भविष्य में उनका किसी भी प्रकार का भुगतान सम्भव नहीं। ज्ञान स्वतंत्र एवं तत्काल फलदायी है। ज्ञान का आलोक व्यक्ति के महा मोहान्धकार को उसी प्रकार समाप्त करने में सक्षम है, जिस प्रकार दीपक के आते ही कमरे का अंधकार विलीन हो जाता है और ऐसा होने में विलम्ब नहीं लगता, सूर्य के निकलते ही रात्रि समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञानोदय होते ही शीघ्र ही अज्ञान का नाश हो जाता है। ऐसा श्रुतियों में भी कहा गया है —

जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य
महिमानमिति वीतशोकः ।

—मुण्डक० ३।१।२

जिस समय ज्ञाता उस सर्वसेव्य एवं सर्वप्रिय परमात्मा की महिमा की परख कर लेता है, वह वीत शोक हो जाता है अर्थात् संसार के आवागमन से स्वतंत्र हो जाता है। उपर्युक्त यदा का अभिप्राय ठीक उसी समय वह व्यक्ति इस मृतशील जगत् से स्वच्छन्द ही ईश्वर के सदृश मायातीत हो जाता है।

जैसा कि प्रारम्भ में कह आये हैं कि इस संसार में सब दुख ही दुख है, इसीलिए जीवको जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनन्तकष्टों का शिकार बनना पड़ता है। स्वर्ण को अग्नि में बराबर तब तक तपाया जाता है कि वह निर्मल एवं कलुष-हीन बन कर चमक न जाय, वैसे ही जब तक जीवधारियों के समस्त कर्म समाप्त नहीं हो जाते उन्हें विपुल कष्ट भोगना पड़ता है। इसलिए इस विश्वरूपी महोदधि से संतरण के लिए आत्मज्ञान पूर्ण रूपेण अपेक्षित समझा गया है। ज्ञान प्राप्ति के पूर्व ही यह बोध हो जाना वांछनीय है कि ज्ञान का स्वरूप क्या है? सत् असत् का विवेक, असत् में अनुरक्ति का त्याग एवं नित्यस्वरूप का चिंतन यही ज्ञान का स्वरूप है। इसकी प्राप्ति के लिए श्रुतियों में भी मार्ग निर्दिष्ट किये गये हैं। संतजनों के समागम से श्रोत्रिय, ब्रह्मपारखी सद्गुरु की शरण में प्रकाश एवं अंधकार के प्रति विवेक पूर्ण ढंग से न्याय करना चाहिए। भोगों से विरक्त होकर दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा एवं समाधान गुणों से युक्त होकर ब्रह्म परख में लीन हो। लोभ, मोह, क्रोध, इत्यादि को त्याग कर निष्काम कर्म की साधना की ओर अग्रसर हो।[१]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ज्ञान की महत्ता अतीत काल से ही पूर्ण रूपेण समादरित है, ज्ञान ही वह विपुल शक्ति है जो कि भक्त या साधक के हृदय में परोक्ष रूप से अपनी अलौकिक शक्ति से ऐसा प्रकाश विकीर्णित करता है कि जिससे साधक इस जगज्जंजालों से उन्मुक्त हो जाता है। अतीत काल से चली आती हुई ज्ञान की प्रबल धारा ने संत कवियों को भी

---

१. मुण्डक० १।२।१२।

भी आत्म सात कर लिया, यही कारण है कि उस अलौकिक शक्ति को सम्मान प्रदान करने के लिए कोई भी संत अछूता न होगा। जहां तक कबीर पंथ एवं दरिया-पंथ का विषय इस प्रसंग में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, तो इन्हें लक्ष्य कर के हम कह सकते हैं कि इन संत कवियों ने ज्ञान को मात्र समादरित ही नहीं समझा प्रत्युत इसकी प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। इनके उपासना एवं साधना का मूल ध्येय आत्म ज्ञानोपलब्धि ही है। यही बहुत कुछ कारण रहा होगा कि उनकी प्रतिष्ठा मात्र साधना एवं उपदेश पर ही नहीं अपितु ज्ञान की पराकाष्ठा की प्राप्ति पर ही विशेष रूप से निर्भर है। उनका स्थान ज्ञान के सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च सीढ़ियों पर आता है जहां पर पहुंचने के बाद पुनः किसी भी साधक के लिए कुछ शेष ही नहीं रह जाता।

ज्ञान की आवश्यकता —

जब आत्मा एवं परमात्मा में तात्त्विक दृष्टि से कुछ भी अन्तर नहीं, तो इस प्रकार की विभेद मूलक परिस्थिति को मोहान्धकार बताया गया जिससे कि सत्यस्वरूप लुप्त हो जाता है। जिस प्रकार मेघ के छोटे छोटे टुकड़े सूर्य को छिपा लेते हैं वैसे ही जीव के वास्तविक स्वरूप को माया आच्छादित कर लेती है और इसी आच्छादन को हटाने के लिए संतों ने निज साधना एवं तपश्चर्या के बल पर ज्ञान मार्ग का अन्वेषण किया, जिस पर अग्रसर होने से न मार्ग भ्रष्ट होने का ही भय है और न उस प्रकाश के धूमिल होने का ही। कबीर ने स्वयं साधाना पक्ष में ज्ञान की महत्ता एवं आवश्यकता इसी दृष्टि से स्वीकार की थी कि इसी के माध्यम से मन के समस्त विकारों का नाश सम्भव है क्योंकि ज्ञान एक ऐसे अंकुश के सदृश है जिसके कारण कलुष का प्रवेश जीव में नहीं हो पाता।[१] ज्ञान का प्रकाश होते ही माया का इन्द्रजाल लुप्त हो जाता है। 'निरंजन बोध' में कबीर ने स्वयं निरंजन से बताया है कि जिसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उसके काम, क्रोध, लोभ, तृष्णादि विषमय तत्व जो कि परमार्थिक सत्ता की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होते

है, स्वत: समाप्त, हो जाते हैं, यम यातना की बात तो दूर है, यहाँ तक कि उस पर यमराज के दूतों की परिछाई तक नहीं पड़ सकती ।[१] 'ज्ञान बोध' में वर्णन आया है कि जो व्यक्ति अज्ञानी है वह यमपुर का निवासी बनता है ।[२] इससे भी सिद्ध होता है कि यमयातना से सुरक्षा सर्वोत्तम अमोघ अस्त्र ज्ञान ही है । सार शब्द का ज्ञान सहज ही इस मायावी जगत् से मुक्ति प्रदान कर अमरलोक की ओर ले जाता है, तब कर्मगत समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि ये कर्म ही जीव के लिए बेड़ी स्वरूप हैं जिससे वह इस संसार में अनन्त दुष्कर्मों में अनुरक्त होकर विषयों के महा-घने जंगल में गुमराह बना भटक रहा है । किंतु जब ज्ञान के माध्यम से कर्मों के घने जंगल समाप्त हो जाते हैं तो स्वत: जीव में उस दिव्य ज्योति का प्रवेश होता है, जिससे अपने में ही सम्पूर्ण जगत् समझने लगता है, तब उसमें अद्वैत की भावना का उन्मेष होता है, और विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर वह परम हंस बन जाता है, तब उसके समस्त संसय विलीन हो जाते हैं ।[३] कबीर पंथी-साहित्य में ज्ञान को एक ऐसा दीपक बताया गया है जिसके जलते ही हृदय के समस्त अन्धकार समाप्त हो जाते हैं । कबीर पंथ में जिस सत्पुरुष की कल्पना की गई है उसे भी ज्ञान स्वरूप ही बताया गया है ।[४] 'जीव धर्म बोध' में यह बताया गया है कि ज्ञान एक ऐसे शक्ति मान सूर्य के सदृश है, जिसके उदय होते ही निशा का अंधकार एवं तारे आदि लुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञानोदय होते ही जगत् गत समस्त द्वैत की परिस्थिति समाप्त हो जाती है और समग्र विश्व ही नि:सार सा प्रतीत होने लगता है ।[५] ज्ञान को ही मुक्ति का अद्वितीय साधन बताया गया है, जिससे कि साधक अपने परम अभीष्ट की प्राप्ति कर सकता है ।[६] मनन साधना में ज्ञान के

---

१. निरंजन बोध, पृ० ८

२. ज्ञानबोध, पृ० २०

३. वही, पृ० ३८

४. अमरमूल, पृ० २००

५. जीवधर्म बोध, पृ० ७२

६. हनुमान बोध, पृ० १३८

माध्यम से जगत् के भ्रम का निवारण स्वीकार किया है। उन्होंने ज्ञान को एक ऐसा साबुन बताया है, जिससे हृदय की समस्त मलीनता समाप्त हो जाती है और दिव्य प्रकाश का विकास होता है —

साबुन ज्ञान बसन मन, गुरु मलु युग युग की मन मैल निथरि गयौ ।
— शब्द विलास, पृ० ७

इसी प्रकार की कल्पना अमर मूल में भी द्रष्टव्य है —

गुरु धोबी सिख कपड़ा जानी । सुमिरन साबुन है परवानी ।।
बस्तर को तब मैल नसाई । तैसे ज्ञान हिये दसाई ।।
हृदय ज्ञान परकट जब होई । कर्म भर्म सब मिट गए दोई ।।
— अमरमूल, पृ० २५७

'अनुराग सागर' (पृ १४५) में इस बात का उल्लेख आया है कि जब ज्ञानोदय हो जाता है, तब जीव गत समस्त मोह भ्रम विनष्ट हो जाते हैं और बुंदवत जीव सिंधुवत ब्रह्म में समाहित हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान ही जगत् से मुक्ति प्रदान करने के लिए परमोपाय है।

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी ज्ञान अनिवार्य समझा गया है, क्योंकि साधना क्षेत्र में ज्ञान बिना कार्य सिद्ध नहीं होता। दरिया साहब ने अपने साहित्य में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि अज्ञान के कारण ही सबको महा-विपत्तियों का भागी बनना पड़ता है, एकमात्र ज्ञानी ही हैं ऐसे जिन्हें इस भव-सागर की दारुण विपत्तियों का शिकार नहीं होना पड़ता।[१] सच्चे ज्ञान में ही वह क्रांतिक शक्ति विद्यमान है जो कि कर्मों के कठोर पहाड़ों को काट सकती है, वह एक ऐसी कुल्हाड़ी है, जिससे जीव अपने कर्मों के भयावह जंगल को काट कर जगत में चिरंतन शान्ति का अनुभव कर सकता है।[२] कबीर-पंथ के अनुरूप दरियापंथ में भी

---

१. शब्द विलास, पृ० ११
२. ज्ञान सरोदे, पृ० २००

निरंजन द्वारा जगत् में नाना जंजालों के प्रसार का समर्थन किया गया है, जिनसे छुटकारा प्राप्ति के लिए दरिया साहब ने ज्ञान को अपेक्षित बताया है। इन संशयों से मुक्त हो जाने पर जीव को अमर पुरका वास मिलता है साथ ही अनेक बार का आवागमन भी सदा के लिए समाप्त हो जाता है। आत्मदर्शन द्वारा ज्ञानोदय होते ही जीव अपने में ही अखिल विश्व की झांकी पा लेता है।[1] यह कल्पना कबीर पंथ से पूर्णरूपेण मिलती जुलती है। 'भक्तिहेतु' (पृ० २७९) में भी आवागमन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए निर्मल ज्ञान की अपेक्षा स्वीकार की गई चौरासी लाख योनियों की भयावह कल्पना के आधार पर कहा जा सकता है कि जीवों को कोटिशः जन्म एवं मृत्यु के सिकंजे में फंसना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बिना ज्ञान के बार बार दुःख सहना पड़ेगा।[2] ज्ञान दीपक जलते ही अंधकूप मय इस जगत् में दौड़ने वाला चंचल मन स्थिर हो जाता है, तभी समस्त बाधाओं का अन्त भी संभव है जिससे अचलानन्द की प्राप्ति होती। ज्ञान द्वारा ही उस ज्योतिर्मय आभा की उत्पत्ति संभव है जिससे अमलोक का परम सुख प्राप्त होता है, और उसी से संसार सागर के संतरण का सुदृढ़ आधार भी प्राप्त होता है, और ज्ञानरूपी सत शब्द की प्रतीति होते ही कलुषित मन निर्मल हो जाता है तथा इस प्रकार की निर्मलता सर्वदा के लिए अमर हो जाती है। कबीर पंथ में वर्णित निर्मलता की रूपरेखा दरियापंथी साहित्य में भी उपलब्ध होती है —

> उग्रध्यान कुकल्पित कुराति नहीं लगाया।
> ममता मैरे साधु सदी धोवै निन्दि तुम्हरो गुन गाया ।।४
> साबुन मिल सबकाटे काया कपड़ा धोवे।
> मया धोवावन निर्मल हुआ अब पातक सब खोवै ।। ५।।
>
> — शब्द अर्थी, पृ० ११ (पाण्डुलिपि)

---

१. दरिया सागर, पृ० ६७
२. दरिया सागर, पृ० ३७
३. वही, पृ० ३८

ज्ञान की महत्ता—

ज्ञान की महत्ता अतीत काल से ही स्वीकार की जाती रही है इसीलिए उभयपंथों में ज्ञान के प्रति यथेष्ट सावधानी बरती गई और साधना क्षेत्र में इसे एक महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया गया। उपनिषदों के सदृश कबीर-पंथी साहित्य 'ब्रह्म निरूपण' ग्रन्थ में वर्णन आया है कि —

"गया गंगा प्रयागश्च, व्रतं दाने तथैव च।
एतानि सार शब्दे न तुलयन्ति कदाचन।।"

— ब्रह्म निरूपण, पृ० २१

"ज्ञानेन सार शब्दस्य, कोटि जन्मकृतं च यत्।
पापं तु दह्यते शीघ्रं, तृण राशिर्यथाग्निना।।"

— ब्रह्म निरूपण, पृ० ६६

अर्थात् गया गंगा प्रयाग आदि तीर्थों में परिभ्रमण कर बहुत सा दान दे और विविध प्रकार के व्रत आदि अनुसरण करे किन्तु सार शब्द से उनकी कुछ भी तुलना नहीं। जो व्यक्ति 'सार शब्द' का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह महान् बन जाता है और उसके करोड़ों जन्मों के पाप तृण समूह की भांति जल जाते हैं। ज्ञान द्वारा ही अमर समाधि लगाई जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है और द्वैत की समस्त परिस्थितियां समाप्त हो जाती हैं, वह स्वयं भय से रहित हो जाता है, किसी प्रकार का रोग नहीं हो सकता, ज्ञानोदय के होते ही मृत्यु मुकुल का दर्शन प्राप्त होता है, तब किसी प्रकार का रोग नहीं होता और न काल खा सकता है।[१]

दरिया-पंथ में भी ज्ञान के द्वारा ही माया के कठिन पाश से मुक्ति सम्भव है।

कर्म पसार यह पाहि डरी, टारि सकै कोई संत।
ज्ञान छैनी से काटिए, यह सतगुरु का मंत।।
कपट काटि फंदा काटेय, काटि बेलि औ पात।

दरिया साहब ने ज्ञान को एक ऐसा खड्ग स्वीकार किया है जिससे कामादिक शत्रुओं की हत्या बड़े सरलतम ढंग से सम्भव है और पंच तत्त्व एवं पच्चीस प्रकृतियों का अन्तर्द्वन्द्व एवं प्रबलता भी समाप्त हो जाती है। [१]"ग्यान सरोदै" (पृ० २५८) में आंख के अंजन तैयार करने की विधि बड़े ही अनुपम ढंग से निर्दिष्ट की गई है जिससे कि समस्त अज्ञान समाप्त हो जाते हैं। इस हृदय दीपक में ज्ञान रूपी तेल डाल कर दीपक प्रकाशित करो जिसे जगत् का समस्त अंधकार विलीन हो जाय।

ज्ञान की कोटियां —

कबीर-साहित्य से पता चलता है कि कबीर ने कभी भी ज्ञान को विभाजित करने का कोई प्रयास नहीं किया। किन्तु कबीर पंथ में ज्ञान को कई श्रेणियों में विभाजित करने का प्रयास किया गया है। कबीर पंथी-साहित्य 'कबीर-बानी' (पृ० ११२-११३) में ४ प्रकार के ज्ञान बताये गये हैं :- ब्रह्म ज्ञान, कर्म-ज्ञान, त्वचा ज्ञान और पाखण्ड ज्ञान। साथ ही इन ज्ञान के विविध परिणामों की भी चर्चा की गई है। ब्रह्मज्ञानी अचिन्त्यलोक का अधिकारी समझा जाता है, जिसकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् वह समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है। कर्मज्ञान संसार लोक की ओर ले जाता है, त्वचा ज्ञानी तीर्थ, व्रत, जप, तप, दान आदि में विश्वास करता है पर उसकी जगत् जंजालों एवं आवागमन से मुक्ति संभव नहीं। पाखण्ड ज्ञानी ~~तन्त्र~~ मंत्रों में विश्वास करता है इसी लिए उसे नरक भुगतना पड़ता है। 'कर्मबोध' (पृ० १७७) में ५ प्रकार के ज्ञान की चर्चा आती है।

मतिज्ञान—

इसका लगाव सीधे बुद्धि से होता है, इसमें संसारी हुनर एवं कारी-गरियां आती हैं, यह ज्ञान जिसे उपलब्ध हो जाता है वह शिल्पकला एवं कारीगरी में प्रवीण हो जाता है।

श्रुति ज्ञान —

बन जाता है।

अवधि ज्ञान —

इस प्रकार के ज्ञान से दूसरे के मन की बात जान ली जाती है।

मन पृजय ज्ञान —

इसके द्वारा हृदय की गति जानी जाती है, अथवा जहाँ तक हृदय दौड़े वह सब कुछ ज्ञान करले और समस्त चाल एवं स्थिरता तक का बोध कर ले। इसकी यह विशेषता है कि इस प्रकार के ज्ञानोदय हो जाने पर पुन: वह लुप्त नहीं होता। यह अवधि ज्ञान से श्रेष्ठ है।

केवल ज्ञान —

यह ज्ञान सर्वोपरि एवं सर्वोत्कृष्ट है, यही वास्तविक ज्ञान है, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है। अमर मूल में भी इस प्रकार की चर्चा आई है कि यह सद्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।[1] केवल ज्ञान की प्राप्ति ही साधक की चरमावस्था स्वीकार की गई है।

'ज्ञान स्थिति बोध' (पृ०७८) में समस्त ज्ञान की श्रेणियों में मूल ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। साथ ही इसमें स्थित ज्ञान की भी चर्चा की गई है जिससे मनुष्य की मुक्ति संभव है। बारिया पंथ में भी ज्ञान को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया। मूलज्ञान, अभौज्ञान, उग्र ज्ञान एवं भुवन ज्ञान। इनमें मूल ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। इसे विरले ही जन प्राप्त कर सकते हैं। मूलज्ञान त्रिगुणों से परे है, जिसके उदय होते ही जन्म एवं मृत्यु आदि के बंधन समाप्त हो जाते हैं। अभौज्ञान किसी किसी को हो सकता है। उग्र ज्ञान द्वारा समस्त बंधन समाप्त हो जाते हैं, और अमरलोक में वास प्राप्त होता है और अंतिम भुवन ज्ञानी संध्यावन्दन आदि नियमों में लीन रहता है।[2] 'भक्ति हेतु' (पृ० ३१४ एवं ३३२) में निर्मल ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया गया है जिससे आवागमन के बंधन समाप्त हो जाते हैं।

कबीर पंथी साहित्य `धर्मबोध` (पृ० १६१) ज्ञान के विभिन्न लक्षणों की ओर भी संकेत किया गया है :—

ज्ञान के लक्षण अब कहौं, दश प्रकार के ज्ञान ।
नित अक्रोध वैराग्ययुत, इन्द्री दमन बखान ।।
दयापाल, परमार्थी, क्षमावन्त निधार ।
शोकहीन निर्लोभकहि-निर्भय चितउदार ।।

इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि आत्मज्ञान उत्पन्न होते ही व्यक्ति समद्रष्टा हो जाता है तब उसके लिए जगत् में न कोई मित्र है न शत्रु । वह शुद्ध बुद्ध हो जाता है और झूठ, सत्य, पाप-पुण्यादि उसके लिए समाप्त हो जाते हैं । वह स्वयं में प्रकाशित होकर ब्रह्म रूप बन जाता है ।[१]

ज्ञान एवं भक्ति —

जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं कि ईश्वरानन्द की प्राप्ति के लिए साधना क्षेत्र में भक्त के लिए ज्ञान एवं भक्ति दोनों पूर्ण रूपेण अपेक्षित तत्व हैं । कबीर-पंथी साहित्य में इस प्रकार का उल्लेख आया है कि जब साधक रजोगुण एवं तमोगुण की अवस्था से विमुख होकर सतोगुण वाली अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब उसे ज्ञानोपलब्धि होती है ।[२] कबीर-पंथ में ज्ञान को भक्ति का आधार स्वीकार किया गया है । `आत्मबोध` (पृ० २६) में इस प्रकार का विवरण दृष्टिगत होता है कि ज्ञान बिना जीव का माया पाश समाप्त नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान एक ऐसा अमोघ अस्त्र है जो कि जीवों के समस्त बंधन को काट कर भवसागर के कष्टों से छुटकारा प्रदान कर परमसुख एवं शान्ति की ओर ले जाता है ।

दरिया-पंथ में भी ज्ञान के प्रति विशेष महत्ता प्रदर्शित की गई है । दरिया साहब ने निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए विशुद्ध प्रेम, भक्ति एवं ज्ञान

तीनों को अनिवार्य समझा है — इसीलिए उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में बतलाया है कि बिना प्रेम के भक्ति नहीं और जब भक्ति नहीं तो ज्ञान कैसा?[१] सर्वप्रथम भक्ति अनिवार्य है, क्योंकि उनके अनुसार भक्ति के अनन्तर ही ज्ञानोपलब्धि सम्भव है। यही कारण है कि उन्होंने ज्ञान को एक पुरुष बताया और भक्ति को स्त्री।

पुरुष ग्यान भगति है नारी। ग्यानहिं भक्तिहिं बिच नहिं डारी।
पहिले भग्ति तब होवै ग्यान, पहिलेसंत तब पुरुष अमाना ।।६५४।।

— द०सा०, पृ० ५६

ज्ञान पुरुष माया है दासी। याते पुरुष है सदा उदासी।
माया भक्ति कबहुंहि भेदा। ए दुवो विरहिन ज्ञान निरवेदा ।।

— ज्ञानदीपक, पृ० ५

भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान करने का कारण यह है कि दरिया साहब तुलसी के 'रामचरितमानस' से अत्यधिक प्रभावित हैं, और दोनों की तुलना में जो तर्क तुलसी ने प्रस्तुत किया था उन्हें दरिया साहब ने यथावत् ग्रहण कर लिया है। तुलसी दास ने ज्ञान विरागादि को पुरुष वर्ग का और भक्ति को स्त्री वर्ग का माना है, और यह तर्क उपस्थित किया है कि जिस प्रकार स्त्री दूसरे स्त्री के रूप पर मुग्ध नहीं होती, उसी प्रकार माया का भक्ति के ऊपर कोई प्रभाव नहीं।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ।।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारी वर्ग जानइ सब कोऊ ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी ।।

— उत्तर काण्ड, दोहा ११५-११६

मध्यकालीन चिंताधारा के विकास पर दृष्टिपात करने से यह विदित होता है कि नाना सम्प्रदाय के साधकों से भक्ति एवं प्रेम के स्थान पर ज्ञान

साधना का अत्यधिक महत्त्व था । कबीर ने इस साधना को प्रेम तथा भक्ति की ओर उन्मुख किया किन्तु उसमें ज्ञान का महत्त्व ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा । कबीर की भक्ति ज्ञान समन्वित भक्ति है । आगे चल कर तुलसी सूर आदि सगुण मार्गियों ने प्रेम और भक्ति के सम्मुख न केवल ज्ञान का महत्त्व कम किया, प्रत्युत उसको व्यर्थ भी बताया । मर्यादावादी तुलसी ने यद्यपि यह कहा था :-

ज्ञानहि भगतहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ।

किन्तु ज्ञानदीपक के रूपक की दुरारूढ़ कल्पना करते हुए भक्ति को उन्होंने चिन्तामणि बताया जो स्वत: उद्भासित है और जिसके बुझने आदि का प्रश्न ही नहीं उठता । संतों का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने भक्ति को महत्त्व प्रदान करते हुए ज्ञान की मर्यादा सुरक्षित रखी । कबीर-वाणी में जप तप , व्रत उपवास आदि के प्रति उपेक्षा अवश्य प्रकट की गई है किन्तु ज्ञान के प्रति उपेक्षा का भाव उसमें नहीं मिलता ।

<u>ज्ञान की महत्ता प्रदर्शित करने वाले साहित्य -</u>

उभय पंथों के साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि इनके वर्ण्य विषयों में सर्वाधिक चर्चा ज्ञान विषयक ही रही है, यही कारण है कि ज्ञान की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए विशेष रूप से ज्ञान के नाम पर ही अधिक ग्रन्थ लिखे गये । कबीर पंथी-साहित्य में इस दृष्टि से `ज्ञान सागर`, `ज्ञान बोध` `ज्ञान स्वरोदय`, 'निर्भय ज्ञान` आदि हैं । दरिया पंथी साहित्य में `ज्ञान-दीपक`, `ज्ञान रत्न`, `ज्ञान मूल`, `ज्ञानस्वरोदय`, `ब्रह्मज्ञान`, `निर्भय ज्ञान`, आदि उल्लेखनीय हैं उभय पंथों में 'विवेक सागर' एवं 'गोष्ठी' नामक ग्रन्थ समान रूप से ज्ञान की महत्ता प्रदर्शित करते हैं । साथ ही उनकी रचना ज्ञान को लक्ष्य रख करके ही की गई ।

इस प्रश्न को हल करने के लिए हमें सुदूर काल से चली आती हुई परम्परा पर ध्यान देना होगा कि निर्गुण संत मतानुयायियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत एवं साधना के पूर्व ज्ञान का अर्थ एक मात्र शास्त्रीय विधा से रहा है जिसका आधार ग्रन्थों को स्वीकार किया गया, इसीलिए इनसे अर्जित ज्ञान को ग्रन्थ ज्ञान कहा गया। यह परम्परा अतीतकाल से ही अबाध गति से चली आ रही थी, जिसके परिणाम स्वरूप ग्रन्थविदों एवं कूप मंडूकों की संख्या इतनी अत्यधिक हो गई कि समाज का धारावाहिक विकास अवरुद्ध हो गया और अध्यात्म साधना का मार्ग भ्रान्तिमूलक बन कर एक मात्र व्यर्थ के आडम्बर एवं ढोंग का केन्द्र बन चला। परिणामस्वरूप धार्मिक भावना विद्वेष एवं नाना क्लेश का कारण मात्र रह सकी। अध्यात्म-साधना का स्थान रक्त साधना की कुप्रथाओं ने ग्रहण किया अर्थात् अपने उपास्य देवों की प्रसन्नता के लिए समाज में बलि प्रथा का प्रचलन हुआ। इस प्रकार के ज्ञान एवं कर्मकाण्डों की जटिलता का सर्वाधिक उत्तरदायित्व ब्राह्मणों पर सौंपा जा सकता है, जिनके मिथ्याचारों से सामाजिक एवं धार्मिक सूत्र ढीले पड़ गये, संक्षेपत: इन मिथ्या-भिमानियोंने शास्त्रीय विधाओं के कुप्रभाव से मानवता कराह उठी, ऐसे ही संतप्त वातावरण में इन निर्गुणी संतों का सद्योग शांति सुरक्षा एवं नव जागृति के रूप में असहाय जनता के लिए सम्बल के रूप में उपस्थित हुआ।

पाखण्डपूर्ण कर्मकाण्ड एवं ग्रन्थ ज्ञान की गणना कबीर की धारणा से पूर्णरूपेण व्यर्थ के तत्वों में की गई क्योंकि साधना के लिए सच्ची भक्ति की आवश्यकता थी, जिसके लिए केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजा करने से कुछ नहीं हो सकता। इसीलिए उन्होंने संकेत किया कि :—

जप तप दीसै थोथरा तीरथ ब्रत बेसास।
सूवै सैंबल सेव्या, यौं जग चला निरास ॥५॥

—कबीर ग्रन्थावली (परिषद), पृ०२४

कबीर पढ़िवा दूरि करि, पुस्तक देहु बहाइ।
बावन आषिर सोधि करि, ररै ममै चित लाइ ॥ १॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ ।।३।।

—कबीर ग्रन्थावली (परि०), पृ०२४१

इस प्रकार निर्णय कर सकते हैं कि संत कबीर ने परब्रह्म की परख ग्रन्थ ज्ञान के आधार पर न करके, आत्मज्ञान के माध्यम से करना चाहा । क्योंकि सर्व-प्रथम ग्रन्थ ज्ञान अमर साधना में पूर्ण रूपेण सहायक न होकर बाधक ही है और इनसे लिया गया तार्किक निर्णय सर्वथा द्वैत परिस्थिति उत्पन्न करता है । इस दृष्टि से स्वानुभूति का आधार मात्र एक सत्य की ओर ही ले जाता है जहाँ तर्कादि दुरूह शक्तियों की पहुँच नहीं । इस प्रकार का ज्ञान साधक अपनी साधना भूमि में कठोर तपश्चर्या एवं अन्तःसाधना के माध्यम से अर्जित करता है और ऐसी सफलता के पश्चात् वह ऐसी दिव्य दृष्टि एवं अलौकिक शक्ति का स्वामी बन जाता है, जिससे स्वतः माया के कठोर पाश विच्छिन्न हो जाते हैं ।

संत कबीर के सदृश ही दोनों पंथों में भी वेदों के प्रति अनास्था प्रकट की गई :—

वेद किताब की छोड़ै आसा । ऐसा करै शब्द विस्वासा ।।
ताकै काल निकट नहिं आवै । निज हीरा जो सुर्त लगावै ।।

— निरंजन बोध, पृ० ६

वेद पुरान में कामिक भाखा । वेद किता जानौं भ्रम राखा ।।
झूठ शास्त्र मिलि झगरा कीन्हा । ब्रह्म स्वरूप काहु नहि चीन्हा ।।

— ज्ञानबोध, पृ० १७

पोथी पढ़ गीता गावहु । भेद नाहिं तब वेद भुलावहु ।। ७४७ ।।

— दरिया सागर, पृ० ७७

वेद [illegible] [illegible] अपारा । इहि फंदा सब जीव बेचारा ।।
जीवन [illegible] [illegible] [illegible] दूजा । करम कीन्ह वेद की भाखा ।

ग्रन्थ के ज्ञान के साथ ही साथ दोनों पंथों में पाखण्डपूर्ण कर्म-काण्डों द्वारा मूर्तिपूजा विधानादि को भी निःसार घोषित किया गया :—

> जो लगि ताहि न चीन्हहु भाई । पाहन पूजि मुक्ति नहिं पाई ।
> कोटि कोटि जो तीर्थ नहाओ । सत्यनाम बिनु मुक्ति न पाओ ।।
>
> —ज्ञान प्रकाश, पृ० ११

> ना कछु बोले ना कछु खाई । ताके पुज मिले का भाई ।। ८३४ ।।
> जो कोई पंडित होवै ग्यानी । भेद समुझिले निरमल बानी ।।८३५
>
> —दरियासागर, पृ० ८४

दोनों पंथों में प्राप्त होने वाली ग्रन्थ ज्ञान एवं कर्मकांड खण्डन की परम्परानुकूल उद्देश्य ~~मात्र~~ स्वानुभूति एवं अन्तः साधना पर बल देना है जिसके माध्यम से व्यक्ति गुरु परख के लिए एक सच्ची कसौटी प्राप्त होती है, किन्तु यह सरल नहीं कि सहज ही उपलब्ध हो सके क्योंकि इसकी प्राप्ति के लिए भक्त को अपने समग्र जीवन के एक एक क्षण को त्याग एवं तपश्चर्या की पवित्र भूमि पर निछावर कर देने पर सम्भव है।[1]

ज्ञान प्राप्ति के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं मन के समस्त विकारों का त्याग वांछनीय है।[2] विषय वासना एवं मायिककर्मों का त्याग कर देने के अनन्तर ही ज्ञानोपलब्धि सम्भव है।[3]

साधना के दुर्गम एवं कंटक मय जंगल में सुरक्षा एवं मार्ग प्रदर्शन के लिए दोनों पंथों में एक सद्गुरु की आवश्यकता समझी गई, जिसका अमर संदेश एवं

---

१. ज्ञान रत्न, पृ० [illegible]
२. ज्ञान प्रकाश, पृ० ८०, अमर मूल, पृ० १६५
३. आगम निगम बोध, पृ० २०, [illegible], पृ० २६

उपदेश भक्त के हृत्तंत्री में विद्ध होकर अहर्निश साधना क्षेत्र में सतत अग्रसर होते रहने के लिए उचित सहयोग प्रदान करता है। इसीलिए दोनों पंथों में गुरु के प्रति अमित श्रद्धा प्रदर्शित की गई है।

बिनु गुरु ज्ञान न मन शुचि होई। रैन दिवस तनु मज्जै कोई ।।

— ज्ञान प्रकाश, पृ० ३६

बिनु गुरु जीव राह नहिं पावे। जप तप दान वृथा सब जावे ।।

गुरु बिन भ्रम रहे नर कैसे। मानुष ज्यों पशु देखी जैसे ।।

— जीवनबोध, क्रमश: पृ०५१—५३

सतगुरु जीव प्रबोध के, नाम लखावै सार।

सार शब्द जो कोई गहे, सोई उतरि है पार ।।

— ज्ञानबोध, पृ० १४

इसी प्रकार दरियापंथ में भी गुरु द्वारा ज्ञानोपलब्धि स्वीकार की गई है :—

जब सतगुरु से परचै पाई। भवजल के भ्रम सबै मेटाई ।। २८८ ।।

—दरिया सागर, पृ० ३८

सतगुरु ज्ञान दीपक बरै, जो मन होवै थीर।

कहै दरिया सो मिलै, तो हंस कबीर ।।३३।।

—दरिया सागर, पृ० ३८

(ख) भक्ति—

अध्यात्म साधना के क्षेत्र में भक्ति एक अनिवार्य तत्व है, जिसके माध्यम से साधक को अपने उद्देश्य में विशेष रूप से सफलता सम्भव है। एक मात्र ज्ञान ही ईश्वरानुभूति प्राप्त कराने में सक्षम नहीं, क्योंकि ज्ञान भक्ति के अनन्तर की स्थिति है, इसलिए हम ज्ञान से भी भक्ति को श्रेष्ठ समझते हैं। भक्ति आध्यात्मिक विकास के लिए एक अनिवार्य तत्व है जिस की महिमा अतीत से गाई जाती रही है, क्योंकि भारत में भक्ति की अगाध धारा प्रागैतिहासिक काल से लेकर सम्प्रति किसी न किसी रूप में तरंगायित होती रही है। पुराणों महाभारत तथा भक्ति शास्त्रीय ग्रन्थों की तो भक्ति ही मूल चेतना है और ईश्वर की अनन्य भक्ति की श्रेष्ठता ही उनका मूल वर्ण्य विषय है। मध्ययुगीन इतिहास जिससे कि कबीर पंथ एवं दरियापंथ का अटूट सम्बन्ध है, हिन्दी-साहित्य का स्वर्णयुग स्वीकार किया जाता है, उसमें भी भक्ति भावना ही मूल रूप से कार्य करती हुई दृष्टिगत होती है। इस युग के प्रबल भक्ति प्रवाह को अनेकानेक दार्शनिकों ने अपनी अनन्य साधना के बल पर विशेष रूप से प्रतिष्ठित रखने का प्रयास किया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भक्ति धारा की मान्यताओं के दृष्टिकोण से कबीर स्वामी रामानन्द के विशेष सन्निकट आये, जिनकी तत्कालीन वातावरण में एक सुविख्यात शिष्य परम्परा देखने को मिलती है। उनकी भक्तिभावना एवं धार्मिक प्रभाव ने कबीर को भी अपनी ओर आकर्षित किया यही कारण रहा है कि कबीर स्वामी रामानन्द को ही अपना गुरु स्वीकार किया। इस प्रकार विरासत के रूप में ही कबीर ने कबीर पंथ एवं दरिया पंथ के लिए अपनी निर्गुणी भक्ति की विचारधारा छोड़ रखी थी।

भक्ति का महत्व—

कबीर ने स्वतः भक्ति के प्रति अटूट एवं अगाध विश्वास प्रकट करते हुए, भक्ति धारा की समस्त चेतना का विकास स्वीकार किया है वहीं भक्त की अपनी अमर साधना के प्रति अमित विश्वास है, जिससे वह अखिल विश्व के कल्याण एवं

दारुण पापों के कटु पाश को विच्छिन्न करने में अपनी सफलता समझता है।

भगति भजन हरि नाउं है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना कबीर सुमिरन सार ।।७।।
— कबीर ग्रन्थावली (परि०),पृ०१५०

भक्ति अत्यन्त कठिन है किन्तु विडम्बना इस बात की है कि बिना भक्ति के कोई इस भवसागर से पार नहीं हो सकता :—

भक्ति कठिन अतिशय कठिनाई। बिना भक्ति कोइ पार न पाई।
भक्ति भवन अति उत्तम ऊंचा। इन सीढ़ी बिरला कोइ पहुंचा ।।
— जीव धर्म बोध, पृ० ४१

'अम्बुसागर' में तप एवं तपस्वी से भी भक्ति को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है।

तपतें राज नर्क है भाई। फिर फिर जन्म धरे भव आई।
बहुतक तपी भये संसारा। अन्तकाल यम कीन्ह अहारा ।।

* * * *

कोइ निष्कर्म नाम आराधो। सत्य भक्ति सतगुरु की साधो ।।
अमर लोक मर्द पहुंचो जाई। आदिपुरुष के दर्शन पाई ।।
— अम्बुसागर, पृ० ३७

'मुक्ति बोध' में यह विश्वास प्रदर्शित किया गया है कि बिना विश्वास भक्ति एवं प्रीति के जगत् में प्रसारित द्वैत एवं द्विधा वाली विनाश मूलक परिस्थिति समाप्त नहीं हो सकती :—

बिन बिस्वास भक्ति परकाशा। प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा ।।
—मुक्तिबोध, पृ० ६८

'भवतारण बोध' में भी भक्ति को अमूल्य निधि स्वीकार किया गया है, जिससे कि जन्म मरण के बंधन समाप्त हो जाते हैं :—

करो भक्ति जो बंधन कारो । जन्म मरण का संशय टारो ।

— भवतारण बोध, पृ० ५०

भक्ति को निम्नलिखित पदों में विशेष रूप से अनिवार्य बताया गया है :—

भरमत बांधल ई जगत कोइ न करै विचार ।
हरि कि भक्ति जाने बिना, बूड़ि मुआ संसार ।।७४ ।।

—बीजक, पृ० ३२

कर्म धर्म से पुन्य है उदय अस्त ले राज ।
भक्ति महातम ना तुलै ई सब कौने काज ।। २३१ ।।

—बीजक , पृ० ३२ १४३

सुनो जो भक्ति तत्त्व मन लावै । देह छोड़ि सत लोक सिधावै ।।

—ज्ञान सागर, पृ० ८४

भक्ति पदारथ नाम फल, मुक्ति चार यहि बार ।
पावै पूरण पुरुष को, जन नहिं ले अवतार ।।

— भवतारण बोध, पृ० ४६

'जीव धर्म बोध' में इस भाव का समर्थन किया गया है कि जो व्यक्ति ईश्वर या सत्पुरुष की भक्ति से विहीन हो जाता है, वही काल-पुरुष के बंधन में बंधता पड़ता है ।[1] 'ज्ञान प्रकाश' में इस भाव की ओर संकेत किया गया है कि निर्गुण ईश्वर जो कि ज्योतिस्वरूप पुरुष का निवासी है, उसी का स्मरण करने से इस माया-मय शरीर के बन्धन से मुक्ति प्राप्त होकर भक्त अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करता है ।[2]

कबीर पंथ के प्रमुख ही धर्मग्रंथों में भी भक्ति की महत्ता स्वीकार की गई है :—

---

१. जीव धर्म बोध, पृ० ३३
२. ज्ञान प्रकाश, पृ० [illegible]

भगति ज्ञान जो जानहिं कोई । प्रेम लखित तब हिरदै होई ।।४०६
अनभय अनहद करै विचारा । सुझि परै तब उतरै पारा ।।४०७

— दरिया सागर, पृ० ४१

भगति बिना जम दारुन अहई । बिना ध्यान कहु कैसे लहई ।।४४३।।
भरमि भरमि फिरि भव जल आवै। मन नहिं थिर तब कवन बचावै ।४४४

—दरिया सागर, पृ० ४४

भक्ति के कारण ही दृढ़ प्रीति के परिणामस्वरूप अनेक बार भक्त वत्सल ईश्वर प्रकट होकर समस्त जीवों का उद्धार करता है। [१] भक्ति के उत्पन्न होते ही ज्ञान की उत्पत्ति सम्भव है, जिसके परिणाम स्वरूप जीव इस सांसारिक क्लेशों से मुक्ति प्राप्त कर शोक-विरहितावस्था अर्थात् परमानन्द की अनुभूति करता है। भक्ति ही इस भवसागर को पार करने के लिए नौका है, जिसके आधार से इस संसार में हम डूबने से अपनी रक्षा कर सकते हैं। [२] `शब्द` में भक्ति का महात्म्य स्वीकार किया गया है :-

भक्ति बिनु भंग रंग केसर बिनु द्रुम बिनु फल अम्रित किमि पीजै ।
पिया बिनु त्रिया तेल बिनु बाती प्रान बिनु नाता नेह किमि कीजै ।।
कुंडल बिनु कुबुवा नव मस्तक बिनु सीध साधु बिनु संत मत किमि लीजै ।
काया निरोग जोग बिनु बाजित बिना प्रेम राम किमि कीजै ।
माया बिनु धर्म धर्म बिनु पचुआ सत बिनु मुक्ति ज्ञान बिनु मीजै ।
दरिया बरस पारस बिनु वैसे मेघ अलेख नाम बिनु छीजै ।।

—शब्द पृ० ६१, परि० (संतकवि दरिया एक अनुशीलन)

---

१. दरिया सागर, पृ० ४३
२. वही, पृ० ५१

दरिया साहब ने भक्ति हीन व्यक्ति का जीवन जलहीन मसक के सदृश निःसार एवं व्यर्थ सिद्ध किया है, और उसका जन्म एवं जीवन पूर्णरूपेण असत्य ठहराया है :—

> भग्ति विहूना सो नर जग्नी । सूनी मसक रहै बिनु पानी ।।३३७
> ताको जीवन जन्म है सांचा । सतनाम प्रेम निसु नाचा ।। ३३८
>
> —दरिया सागर, पृ० ३४

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों पंथों में मानव जीवन की सार्थकता के लिए भक्तिपूर्णरूपेण अपेक्षित समझी गई, जिसके परिणामस्वरूप निरतिशय आनन्द की उपलब्धि होती है और भक्ति ही एक अमूल्य निधि है जिसके माध्यम से जगत् गत द्विधा एवं द्वैत की समस्त परिस्थितियाँ विलीन हो सकती हैं ।

भक्ति तत्व का विवेचन —

जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं कि ज्ञान से ब्रह्मानुभूति में कठिनाई है क्योंकि इस महत् कार्य के लिए दीर्घकालीन अभ्यास एवं अहर्निश साधना के अनन्तर ज्ञान का प्रवेश भलीभाँति हृदय तथा शरीरेन्द्रियों में हो जाना चाहिए । आचरण की शुचिता द्वारा ब्रह्मात्मैक्य बुद्धि ही देहस्वभाव में परिवर्तित हो, ऐसा होने के लिए उपास्यदेव परमेश्वर के स्वरूप का निश्चय पूर्वक चिन्तन द्वारा मन को तदाकार करना ही एक सुलभ उपाय है । इसी प्रकार की साधना पद्धति चिरकाल से चली आ रही है, जिसे कि भक्ति के नाम से अभिहित किया गया है । भक्ति का लक्षण शाण्डिल्य सूत्र (२) में इस प्रकार बताया गया है कि —" सा (भक्तिः) परानुरक्तिरीश्वरे ।" ईश्वर के प्रति 'पर' अर्थात् निरतिशय जो प्रेम है वही भक्ति है । 'पर' शब्द का अभिप्राय केवल निरतिशय ही नहीं, अपितु भागवत पुराण में इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि वह प्रेम निर्हेतुक निष्काम और निरंतर हो —" अहैतुक्य - व्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे" (भागवत पुराण ३।२९।१२) । जैसे [illegible]

काल से ही साधना क्षेत्र में बहुत बड़ा कार्य सम्पादन हुआ है, इसीलिए भारतीय-तत्व वेत्ताओं ने इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के मत मतांतर प्रस्तुत किए हैं, किन्तु इस क्षेत्र में नारद, शाण्डिल्य व्यास अथवा रामानुज ने प्राय: उसे परमाधिदेव के प्रति निरतिशय प्रेम एवं अविरल भक्ति तथा अगाध श्रद्धा अर्पित करने के लिए सदुपदेश दिया है। जहाँ तक इस प्रसंग में दोनों पंथों का विषय है, इनके साहित्य में ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम की पराकाष्ठा दीख पड़ती है, कबीर तो स्वयं ईश्वर के प्रेम पियाले से मदमस्त दृष्टिगत होते हैं :—

हरिरस पीया जांणिये जे कबहुं न जाइ खुमार ।।४।।

— कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६(सभा)

कबीर प्याला प्रेम का भरि भरि पीवै रसाल ।

—क०ग्रं०, चितावणी कौ अंग साखी ४६ (सभा)

कबीर-साहित्य में 'राम रस' की चर्चा भी बड़े ही पुनीत ढंग से की गई है, मीठे रस के सम्मुख सांसारिक षड्रस भी फीके नजर आते हैं। उसकी प्राप्ति के लिए कबीर के अनुसार कलाल को सिर अर्पित करना पड़ता है :—

राम रसाइन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल ।
कबीर पीवण दुलभ है, मांगै सीस कलाल ।।

— क०ग्रं०, रस कौ अंग, साखी २,पृ०१६(सभा)

कबीर-पंथी रचनाओं में भी इस राम रस चर्चा का वर्णन बड़े ही अच्छे ढंग से की गई है, उसे सीधे राम रस स्वीकार कर लिया गया है, जिससे परमानन्द की उपलब्धि सम्भव हो सकती है। इस रस की प्राप्ति के लिए प्रेम पूर्णरूपेण वांछनीय समझा गया है, इसीलिए कबीर से आती हुई प्रेम भावना को प्रदर्शित करने वाले अनेक दृष्टान्तों के भी प्रमाण इनके साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्राप्य हैं।

ऐसे ज्ञान कबीर [illegible] । [illegible] सनेह [illegible] ।।

—[illegible] बोध, पृ० ३५

पहिले प्रेम अंग में आवै । साधु देख सन्मुख होय धावै ।।
चरण धोय चरणामृत लेवै । प्रीति सहित साधु को सेवै ।।
अन्तरछांहि करो सेवकाई । यहि विधि भवके दुख मिटाई ।।
जोई साधु प्रेम गति जाने । ता साधु की सेवा ठाने ।।
परम पुरुष की भक्ति दृढ़ावै । सुर्ती नृत कर तँहं पहुंचावै ।।
तासों प्रीति करो चितलाई । छांडो दुर्मति औ चतुराई ।।
तबहीं परम पुरुष को पावै । भवतर के जग बहुर न आवै ।।

—भवतारण बोध, पृ० ४६

जो व्यक्ति प्रेम पूर्वक ईश्वर की भक्ति करता है और विषय वासनाओं को त्याग कर उसमें अटूट विश्वास रखता है उसे ईश्वर स्वयं प्रकट होकर अपने धाम ले जाते हैं, किन्तु जो व्यक्ति प्रेम एवं भक्ति से विमुख रहते हैं वे यम के दारुण कष्टों में जकड़े जाते हैं ।[१] भक्ति के लिए प्रेम अनिवार्य तत्त्व घोषित करने के लिए कबीर-पंथी-साहित्य में बहुत बड़ा प्रयास किया गया है । भक्ति नाचने, गाने, घंटा बजाने एवं मूर्तिपूजा से संभव नहीं, प्रत्युत् जब भक्त के मन में इस प्रकार की लगन उत्पन्न हो जाती है कि वह मन में ही रोता है, जागता है, सोता है अर्थात् मन में ही समस्त क्रियायें स्थिर हो जाती हैं । सांसारिक ढोंग, बाह्याडम्बर आदि समाप्त हो जाते हैं और मन का समस्त वेग समाप्त हो जाता है, तब उसकी स्थिति शांत सद्गुणवत् हो जाती है, तभी उसमें कुछ परख के लिए दिव्य-ज्योति स्वत: प्रस्फुटित होती है, इसके लिए भी कहा गया है :—

लग्न प्रेम बिन भक्ति न होई । सद्गति को पावे नहिं कोई ।।

— भवतारण बोध, पृ० ४५

दरियापंथी साहित्य में कबीर पंथ के अनुरूप ही भक्ति के लिए प्रेम भाव वांछनीय बताया गया है । दरिया साहब ने स्पष्टत: उल्लेख किया है कि मनुष्य में काम, क्रोध, मद लोभादि विकार लगे हुए हैं, किन्तु उस महा अन्धकार

---

१. बीच धर्म बोध, पृ० ३३

का नाश विमल नाम के प्रति प्रेम उत्पन्न होने से ही सम्भव है :-

काम क्रोध मद लोभ जत, गरबगरूरी झारि ।
विमल प्रेम मनि बारिकै, राखहु दिल उजियारि ।।३८।।
—ज्ञान सरोदै, पृ० २७०

प्रेम पंथ पर आरूढ़ होने के लिए दरिया साहब ने तन, मन आदि सब का बलिदान अपेक्षित बताया है और जब हृदयाकाश में प्रेम उत्पन्न हो जाता है तब सद्गुरु स्वत: इसी काया के अन्दर ही ब्रह्म का साक्षात्कार करा सकता है :-

प्रेम पंथ पर तन मन वारा । इयार मिलन का राह संवारा ।।३०२
— ज्ञान सरोदै, पृ० २७१

तुलसी ने जिस प्रकार एक ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास प्रदर्शित किया है, उसी प्रकार दरिया साहब भी एक ब्रह्म के प्रति अगाध प्रेम एवं विश्वास रखना चाहते हैं, जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति में विश्वास करती है, ठीक उसी प्रकार दरिया साहब भी उस ईश्वर के प्रति अनन्य भाव से प्रेम प्रदर्शित करते हुए देखे जाते हैं । इस अटूट विश्वास के परिणाम स्वरूप ही समस्त द्वैत एवं द्विधा की भ्रमात्मक कल्पना स्वत: विलीन हो जाती है :-

दरिया छत्र मति वारि है, ज्ञान बान लेहि पाय ।
भवन बैपरा साह का, ठग बटवारन्हि नाय ।।
एक नाम चाय चित धरहु । दूजा दो विधा सब परिहरहु ।।३१४।।
—ज्ञान सरोदै, पृ० २७१

दरिया साहब भी कबीर के सदृश ही प्याला छककर पी लेने के अनन्तर सांसारिक प्रपंचों से उदासीन रहना चाहते हैं :-

प्रेम पियाला पाइ कै, तन मन डारहु वारि ।
छोड़ु बैरीन्ह का है रही, ज्ञान सरोद विचारि ।।११ ।।
—ज्ञान सरोदै, पृ० २७३

एकै मन एकैदसा, ह्रिदय होए अनुराग ।
कहै दरिया नर निज पुर, मिटै कर्म का दाग ।। १२३

—ग्यानरतन, पृ० २४१

दरिया साहब ने इस बात का समर्थन किया है कि हृदय में विरह, प्रेम एवं विवेक, भक्ति, ज्ञान, जोग एवं वैराग्य का उदय होते ही समस्त संसय की परिस्थितियाँ लुप्त हो जाती हैं :-

भक्ति ग्यान औ जोग विरागा । ह्रिदय बिबेक प्रेम निजु पागा ।।
संसय सागर गएउ बिहाई । निजु गहि नाम प्रेम लौ लाई ।।९४४।।

—ग्यान रतन, पृ० २४२

जबलगि विरह न ऊपजे, ह्रिय न उपजे प्रेम ।
तब लगि हाथ न आवही धर्म किये ब्रत नेम ।।

—गणेश गोष्ठी, पृ० ५(पाण्डुलिपि)

दोनों पंथों में प्रेम की पराकाष्ठा भी प्रदर्शित की गई है :-

भक्ति भगवान की बहुत बारीक है, शीस सौंपे बिना भक्ति नाहीं।।
होय मजबूत सब आश तनमनतजै, दीनता मरै सौ भक्ति पाहीं ।।
नाचना कूदना ताल को पीटना, रांड़िया खेल की भक्ति नाहीं ।।
रैन दिन तार निर्धारसों लागी रहै, कहै कबीर तब भक्ति पाहीं ।

— आत्मबोध, पृ० ५

प्रेम पंथ नहि पैठे सोई । तामें सबै आस बिनोई ।।१३१ ।।
सीस उतारि धरिआ जो देई । जो हमको तुम्हका कहि लेई ।।१३२

— दरियासागर, पृ० ६३

प्रेम प्रीतिकर नाम सैं, भक्ति काहि न हारि ।
बिना प्रेम नहिं भक्ति है, कमल सुखा बिनु वारि ।।

— प्रेम मूला, पृ० २ (पाण्डुलिपि)

दरिया साहब ने आडम्बर स्वरूप माला जाप के प्रति अनास्था प्रदर्शित कर कबीर पंथी-साहित्य के अनुसार मन में ही माला आदि जपने का विधान बताया है, जिससे सहज ही शब्द की परख सम्भव है। सत् शब्द की परख भली-भांति कर लेने के अनन्तर जीव सप्तलोकनिवासी बन जाता है। अमृतमय प्रेम रस का पान करने से इस काया क्लेश से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और स्वर्ग में निवास प्राप्त हो जाता है। ईश्वर प्रेम के अमृत की कल्पना कबीर पंथी राम रस से पूर्ण साम्य रखती है।

अम्रित प्रेम पियहु तुह दासा। तन छूटै सपलोक में बासा ।।१०२।।
— दरिया सागर, पृ० ११

भक्ति का स्वरूप और प्रकार :-

प्राचीन काल से ही स्थूल रूप से भक्ति के दो रूप स्वीकार किये जाते रहे हैं -सगुण एवं निर्गुण। सगुण में त्रिगुणों अर्थात् तम, रज एवं सत की गणना की जाती है और इन्हीं के योग से उसे सगुण के नाम से अभिहित किया गया है। कहीं कहीं पर इन्हें स्वतंत्र रूप से भक्ति की श्रेणी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। यथा : 'श्रीमद्भागवत' में तामसी, राजसी एवं सात्विकी भक्ति के तीन भेद स्वीकार किये गये हैं, साथ ही निर्गुण को चौथी भक्ति ।[1]

निर्गुण भक्ति को पराभक्ति भी कहा गया है, जिसके प्रति साधकों का अपना अमर विश्वास निहित रहता है, इसी के माध्यम से साधक मोक्ष की कल्पना करता है, और ईश्वर सेवा ही एकमात्र उसका उद्देश्य बन जाता है[2]। 'गीता' में चार प्रकार के भक्त बताये गये हैं -आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी एवं ज्ञानी। नारद ने इनमें से प्रथम तीन को गौणी और अंतिम ज्ञानी को अहेतुकी अर्थात् ज्ञान होने पर पुन: कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा रह ही नहीं जाती। (गीता ३।१८) परन्तु नारद आदि के अनुसार जो 'ज्ञानी' पुरुष केवल कर्तव्य बुद्धि से ईश्वर की भक्ति करता है वही श्रेष्ठ है। (गीता ७।१६-१८) यह भक्ति 'भागवत पुराण'

---

१. श्रीमद्भागवत, ३।२९।८, ३।२९।९, ३।२९।११
२. वही ११।२९।३४

(७।५।२३) के अनुसार नौ प्रकार की है :—जिसे नवधा भक्ति भी कालान्तर में नाम दिया गया ।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम् ।।

नारद के भक्ति सूत्र में इसी भक्ति के ग्यारह वर्गीकरण किये हैं (ना०सू०८२) शाण्डिल्य ने भी भक्ति के दो रूप स्वीकार किये हैं :—मुख्य एवं गौणी ।[१] शाण्डिल्य की मुख्याभक्ति एवं 'भागवत पुराण' के निर्गुणोपासना में तात्त्विक दृष्टि से पर्याप्त समानता है । कबीर पंथ एवं दरियापंथ में भी निर्गुण भक्ति स्वीकार की गई है । साथ ही इन संतों ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक नया योगदान दिया । यह युग परिवर्तन का समय उपस्थित हुआ, जिसमें जीव की तमसाच्छन्न प्रवृत्तियाँ इनके आलोक से जगमगा उठीं, अतीत से आती हुई निराशावादिता एवं संत्रस्त मानवता ने इन मलय-वीथियों के तले शीतलता प्राप्त कर सुख की श्वांस ली । द्वन्द्व, वैषम्य एवं द्वेष की परिस्थिति में एक दूसरे को नये सिरे से देखने के लिए एक दिव्य दृष्टि उपलब्ध हुई और अतीत काल से आती हुई साम्प्रदायिक संघर्षों से उठती हुई चिनगारियाँ, इनके शांत सागर के स्पर्श से तिरोभूत सी हो गईं । यह इन्हीं अमर संत साधकों की निर्गुण ब्रह्म की उपासना का ही प्रतिफल स्वीकार किया जा सकता है । वैसे भक्ति चाहे जिस प्रकार की हो, उसके निमित्त निरतिशय और निर्हेतुक प्रेम की अपेक्षा है जिसके लिए समस्त साधना अपने मन में ही करनी पड़ती है । अर्थात् ईश्वर की अन्वेषणा करने के लिए हमें अन्यत्र कहीं भी भटकने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह तो इसी घटाकाश का निवासी है, जिसमें किसी भी प्रकार के बाह्याचार एवं आडम्बर आदि की अपेक्षा नहीं, इसी को भाव भक्ति भी कहा गया है जिसका सीधा लगाव हृदय से है । भाव भक्ति का एक अच्छा आदर्श हमें 'भवतारण बोध' में दृष्टिगत होता कि भक्तिके पंथमें नाचने-गाने और घंटा बजाने का कोई प्रयोजन नहीं, मूर्तिपूजा किसकाम

---

१. नारद भक्ति सूत्र, ८३

की ? इसका सीधा लगाव हृदय से होता है, जिससे बढ़कर न तो कोई तीर्थस्थान है न देवस्थान। जो इस प्रकार की भक्ति पद्धति का अनुगामी हो जाता है, फिर उसके लिए कुछ भी शेष रह ही नहीं जाता। ऐसी अवस्था में साधक ईश्वर के विमल नाम का जाप एवं रसास्वादन मन में ही करता है और उसके अगाध प्रेम से द्रवित होकर वह भींग जाता है। प्रेम की उफान के कारण उसके नेत्रों से वारिधारा प्रवाहित होने लगती है। वह ऐसी समत्व भूमि पर पहुंचता है कि मन में ही समस्त संकल्प एवं विकल्प होते हैं, और समस्त क्रिया कलापों का केन्द्र बिन्दु उसका मन ही बन जाता है। वह मन ही में हंसता, मन में ही रो लेता है, और उसी में सोने जगने आदि की क्रिया भी सम्पन्न होती है, अर्थात् अन्त: शुचिता एवं अगाध प्रेम ही ऐसी भक्ति पद्धति के अनिवार्य तत्त्व हैं :—

भक्ति होय नहिं नाचे गाये। भक्ति होय नहिं घंट बजाये ।।
भक्ति होय नहिं मूरत पूजा। पाहन सेवे क्या वोहि सूझा ।।
बिलख बिलख गावैं अरु रोवैं। क्षण इक परम जन्म को खोवैं।
जब लग भीतर लग्न न लागे। तब लग सुरति न कबहुं जागे ।।

—भवतारण बोध, पृ० ३५

इसी प्रकार की भक्ति भावना का समर्थन दरिया पंथी साहित्य में उपलब्ध होता है —

नाचे गावै ताल बजावैं। धरै भरम का पोट।
कहै दरिया नहिं पावहिं ठिकाना, है हीरा पै चोट ।।२०।।

—ज्ञानमूल, पृ० ३८६

योग ही उस तत्त्व के साक्षात्कार के लिए पर्याप्त है :—

> आतमदेव अन की पूजा । आतम छोड़ि देव नहिं दूजा ।।५५३
> पढ़ि पढ़ि पंडित वेद बखाना । पत्थल पूजत फिरत भुलाना ।।५५४
> मूरति हिरदे करौ बखाना । तबतुम होई बहु अंमर ग्याना ।।५५५
> जेहि कारन सठ तीरथ जाई । रतन पदारथ इंह बहिआई ।।५५६
> पढ़ि पंडित का वेद बखाना । सो घट घट नहिं खोजे ग्याना ।।५५७
> मन की मथनि करु निज ध्याना । ढूंढि रहो एक गुप्त समाना ।।५५८

—दरिया सागर, पृ० ५५

भक्ति के लिए दोनों पंथों में एक विशेष आवश्यक तत्त्व निष्कामता को भी अनिवार्य समझा गया है। परन्तु विडम्बना इस बात की है कि यह उच्च स्थिति एकाएक नहीं आ सकती, इसीलिए शनैः शनैः शरीरेन्द्रियों पर नियमन करना अति आवश्यक है : वैसू० २।३।४०)| और इसके लिए धैर्य की भी अपेक्षा है (गीता ६।२५), इन्द्रिय निग्रह के उपाय भी छठें अध्याय में बताये गये हैं कि ऐसे इन्द्रियनिग्रहाभ्यास-रूप योग के लिए उचित स्थल, आसन और आहार कौन कौन से है ? इसी प्रकार 'गीता' (६।२५) में इस ओर भी संकेत किया गया है कि " शनैः शनैः " अभ्यास एवं साधना के माध्यम से जब चित्त स्थिर हो जाता है तो कालान्तर में ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान की उपलब्धि होती है और तब पुनः "आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय" —इस ज्ञान से कर्म बन्धन छूट जाता है (गीता ४।३८।४१)। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि भगवान ने सांसारिक समस्त व्यवहारों के त्याग का उपदेश किया है। इन्द्री निग्रह के साथ साथ निष्काम कर्म योग का भी आचरण अपेक्षित है। 'मैत्र्युपनिषद्' में बताया गया है कि यदि कोई इस प्रकार योगाभ्यास करे तो छः महीने में साम्यबुद्धि प्राप्त कर सकता है (मै०६।२८, महा शां० २३६।३२, अश्व० अनुगीता १९।६६)। प्रश्न उठता है कि निष्काम कर्म किसे कहते हैं ? इसका अर्थ कर्म त्याग नहीं, प्रत्युत इसका अर्थ 'फल त्याग' ही उचित सिद्धान्त है।

कर्मों को करते समय फलाशा त्याग दी जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप आवागमन भी छूट जाता है और कर्मों को करते रहने पर अन्तत: मोक्ष रूपी सद्गति भी उपलब्ध हो जाती है (गीता ३।९) । संक्षेपत: हम कह सकते हैं कि ज्ञान एवं वैराग्य से कर्म क्षय हुए बिना मोक्ष सम्भव नहीं । इसलिए समस्त कर्मों को ज्ञान से अर्थात् फलाशा छोड़ कर संचालित करते रहना चाहिए (गीता ३।१७-१९) । कर्मों का दो प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है :-पहला जो शास्त्रोक्त रीति से फल की अभिलाषा रख कर किया जाता है और दूसरा वह जो निष्काम बुद्धि से फलाशा त्याग कर किया जाता है, इस प्रकार ये क्रमश: कर्मकाण्ड एवं ज्ञान मार्ग हुए । इनके फल के विषय में 'गीता' का मत है कि कर्मकांड एवं ज्ञान मार्गियों को स्वर्ग प्राप्ति का अनित्य फल उपलब्ध होता है और ज्ञानियों को निष्काम बुद्धि से रत रहने के कारण मोक्ष रूपी नित्य फल प्राप्त होता है इसी प्रकार कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों में निष्काम कर्म करने वाली उत्कृष्ट भावना को समादर प्रदान किया गया है । संत कबीर ने अपने साहित्य में साधकों के लिए निष्कामी बनने का सदुपदेश किया है और उनके अनुसार सकाम भक्ति नि:सार है ।[1] निष्काम कर्मद्वारा जीवन काल में ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है ।[2] यह ऐसी भक्ति है जिसके माध्यम से साधक परम एवं अभिन्न शांति की अनुभूति करता है । कबीर की ही भाँति कबीर-पंथ में फलाशा त्याग को भक्ति में लीन होने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । साथ ही यह भी दृढ़ विश्वास प्रदर्शित किया गया है कि ऐसी उत्कृष्ट भूमि पर साधक पहुँचकर ब्रह्ममय हो जाता है :-

सकल कामना जो कोई त्यागे । आतम ज्ञान तासु उर जागे ।।

* * * *

जाके कुछ कामना नाहीं । ब्रह्म स्वरूप कही मैं ताहीं ।।

—आगम निगम बोध, पृ० ८८, १९

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी भक्ति के लिए निष्काम भावना वांछनीय समझी गई है। दरिया साहब ने अपने सत्यस्वरूप को इसी घट में स्वीकार करते हुए भक्त को पुरइन के पत्ते अर्थात् कमल-पत्र के सदृश निर्लेप भाव से इस जगत् में रहने का उपदेश दिया है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार कमल-पत्र सर्वथा जल में रहते हुए भी उसके प्रभाव से पूर्ण वंचित है, ठीक उसी प्रकार से भक्त जन को भी इस मायावी जगत् में रहते हुए उसकी माया से पृथक् रहना अपेक्षित है :—

जहँता जगत युक्ति से रहना। आपन सत आपु में गहना ।।५४।।
अपने निर्मल होहु किनारा। ज्यों जल पुरइनि रहत निनारा ।।५५।।
पुरइनि पानी लागु नहिं लागी। ऐसे जन जगता से बागी ।।५६।।

— भक्ति हेतु, पृ० २८२

कबीर पंथ में निर्गुण भक्ति के विषय में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा प्रदान की गई है और इसे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। निर्गुण भक्त तक यमराज की पहुँच सम्भव नहीं है। इसके लिए साधु भक्त तक यमराज का पहुँच सम्भव नहीं है। इसके लिए साधु सेवा भी वांछनीय बताई गई, साधु से बढ़ कर और कोई देव नहीं। सतनाम की भक्ति के लिए भी संकेत किया गया है।[1] निर्गुण भक्त ज्ञानी भक्त की श्रेणी में आता है जो कि काम, क्रोध, तृष्णा, अहंकार, लोभ एवं मोहादि से मुक्त बताया जाता है।[2] 'बीर सिंह बोध' में सगुण एवं निर्गुण दो प्रकार की भक्तिभावना बताई गई है, जिसमें निर्गुण भक्ति श्रेष्ठ है, जिससे कि जीव कल्पनाओं से मुक्त हो जाता है, इसकी उपलब्धि गुरु से होती है और दूसरे प्रकार की सगुण भक्ति, जो कि सांसारिक लोगों से प्राप्त होती है, यह जीवों को अनन्त बार यम के फन्दे में बाँधने का प्रयास करती है।[3]

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० १२
२. वही, पृ० ३४
३. बीरसिंह बोध.

सगुण एवं निर्गुण उपासना पद्धतियों का विवेचन हमें वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध होता है, इनमें इनके दूसरे नाम गिनाये गए हैं जिन्हें `कर्मकाण्ड` एवं `ज्ञान काण्ड` कहा गया है। `कर्म काण्ड` को सगुण कहा जा सकता है एवं ज्ञान काण्ड को निर्गुण। `कर्मकाण्ड` या सगुणोपासना का मूलोद्देश्य सूर्य, अग्नि, इन्द्र, वरुण, रुद्र आदि वैदिक देवताओं का यज्ञ द्वारा पूजन जिससे लौकिक जीवन में सुखोपलब्धि हो सके एवं मृत्यु के अनन्तर सद्गति प्राप्ति हो। सम्प्रति इन विचारों का तिरोधान हो ही चुका है, इनके स्थान पर उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त दान धर्मादि पुण्य कर्म संचालित किये जाते हैं। `ऋग्वेद` में इस बात का स्पष्टत: उल्लेख आया है कि प्राचीन काल में न केवल स्वार्थ के लिए ही प्रत्युत सामाजिक उत्थान या शांति के लिए भी याज्ञिक कर्मों का प्रणय किया जाता था और इन्हीं की उपासना पद्धतियों से 'ऋग्वेद' के सूक्त ओत-प्रोत हैं। यथा: "हे देव! हमें संतति और समृद्धि दो," "हमें शतायु करो", हमें हमारे लड़कों बच्चों को और हमारे वीर पुरुषों तथा हमारे पशुओं को न मारो।"[1] इन्हीं का नाम कर्म धर्म है और इन्हीं को मीमांसा सूत्र अथवा पूर्व मीमांसा भी कहा गया इसीलिए कर्मकाण्ड को मीमांसक मार्ग नाम से अभिहित किया गया। इन्हीं के आधार पर उपनिषदों की भी सृष्टि की गई है, इनके द्वारा प्रतिपादित याज्ञिक-अनुष्ठान आदि गौण एवं ब्रह्म ज्ञान ही प्रधान स्वीकार किया गया है। और इन्हें वेदान्तसूत्र में बादरायण आचार्य ने एकत्रित किया है। इस ग्रन्थ को 'ब्रह्मसूत्र' नाम से पुकारा गया है, और 'उत्तर-मीमांसा भी नाम रखा गया। इस प्रकार 'पूर्व मीमांसा' एवं 'उत्तर मीमांसा' क्रम से कर्म-काण्ड एवं ज्ञान-काण्ड सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। कर्मकाण्डियों की धारणा है कि 'श्रौत-धर्म' में चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम प्रभृति यज्ञ-याग आदि कर्म ही मुख्य हैं और इनके सम्पादन कर्ता को सीधे मोक्ष प्राप्त होगा। ये किसी भी प्रकार से त्याज्य नहीं

---

1. "मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे"

यदि कोई छोड़ता है तो वह धर्म से च्युत स्वीकार किया जायगा। समय की गति विशाल है, परिणामस्वरूप आज इन विधानों का तिरोधान सा हो चुका है, क्योंकि इन कर्मकाण्डों में प्रविष्ट वाह्याडम्बर एवं पशुबलि के कारण इनकी स्थिति गौण सी हो गई, यही कारण है कि इनके बहुत कम उदाहरण उपलब्ध होते हैं। प्रश्न उठता है कि यदि इन कर्मकाण्डों से ही जीव को मोक्ष हो जाय तो ज्ञान-काण्ड की क्या महत्ता? ज्ञान-काण्ड अर्थात् उपनिषदों का स्पष्टतः सिद्धान्त है कि जब ब्रह्मानुभूति न उत्पन्न होकर कर्म के विषय में विराम न हो जाय तब तक जीव माया के आवरण से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता। दूसरी ओर श्रौतस्मार्त-धर्म की विवेचना की जाय तो स्पष्टतः इनके बिना मनुष्य का गार्हस्थ्य धर्म जो कि यज्ञ मय ही है, वह धर्म सिद्ध होगा। वेदों का इस ओर समर्थन भी है कि इनसे स्वर्ग की उपलब्धि सम्भव है। इन सब की कल्पना छोड़ देने पर भी यह नियम अतीत काल से चला आ रहा है कि बिना यज्ञ के देवता गण प्रसन्न नहीं होते और बिना प्रसन्न हुए जलवृष्टि कैसे सम्भव है? इस प्रकार का इनका त्याग कर देने पर विश्व सृष्टि समाप्त होते दृष्टिगत होती है। इसलिए कर्ममय यज्ञ कभी भी न त्यागो (म०भा०शा० ३४०) (गीता ३।१६) । परन्तु उपनिषदों में यह विचारधारा व्यक्त की गई है कि बिना ज्ञान वैराग्य एवं कर्मों के क्षय हुए मोक्षानन्द सम्भव नहीं है। इसीलिए दोनों सिद्धान्तों का निचोड़ लेकर सार रूप में कहा जा सकता है कि चाहे जिस प्रकार के कर्म क्यों न हों, किन्तु उनकी फलाशा छोड़ अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करो (गीता ३।१७।१६) । यदि स्वर्ग की इच्छा से याज्ञिक अनुष्ठान सम्पन्न किये जा रहे हैं तो निश्चित है कि ऐसे सुखोपलब्धि होगी, किन्तु विडम्बना इस बात की है कि स्वर्गफल नित्य अर्थात् सर्वथा स्थिर रहने वाला नहीं, क्योंकि कहा गया है (बृ० ४।४।६, वेसू० ३।१८, म०भा० वन० २६०।३८)

प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् ।
तस्माल्लोकात्पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मणे ।।[1]

---

१. इस मंत्र के दूसरे चरण को पढ़ते समय 'पुनरैति' और 'अस्मै' ऐसा पदच्छेद करके पढ़ना चाहिए, तब इस चरण में अक्षरों की कमी नहीं मालूम होगी, वैदिक छन्दों के पढ़ने का यही विधान है।

इस मंत्र के दूसरे चरण को पढ़ते समय 'पुनरेति' और' अस्मै' ऐसा पदच्छेद करके पढ़ना चाहिए, तब इस चरण में अक्षरों की कमी नहीं मालूम होगी, वैदिक ग्रन्थों के पढ़ने का यही विधान है।

इस लोक में जो यज्ञ-याग आदि पुण्यमय कार्य सम्पन्न होते हैं, उनका परिणाम स्वर्गीय उपभोग से समाप्त हो जाता है, एवं ऐसी अवस्था में यज्ञ करने वाले व्यक्ति को उस नैसर्गिक आनन्द को त्याग कर इस मृत्यु लोक में पुन: आना पड़ता है। 'छान्दोग्योपनिषद्' (५।१०।३-८) में तो स्वर्ग से आने तक का मार्ग निर्दिष्ट है। 'भगवद्गीता' में 'कामात्मान: स्वर्ग परा:' तथा 'त्रैगुण्यविषया: वेदा:' (गीता २।४३,४५) । और नवें अध्याय में पुन: यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि कि 'गता गतं कामकामा लभन्ते' (गीता ९।२१) उन्हें स्वर्ग लोक और इस लोक में बार बार आना पड़ता है।

प्रश्न उठता है कि इस आवागमन की मुक्ति कैसे सम्भव है ? तो यह चक्कर बिना ज्ञान के समाप्त नहीं हो सकता। इसीलिए 'गीता' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि समस्त कर्मों को निष्काम भाव अर्थात् फलाशा त्याग कर करते रहो, तब भी मुक्त ही रहोगे (गीता १८।५।६) । कर्मकाण्डों में जो पशु बलि आदि की अधिकता बढ़ कर चुकी थी उसका 'गीता' में स्पष्टत: खण्डन प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यक्ष पशुओं की हत्या के अतिरिक्त जो इस शरीर में पाशविक वृत्ति यथा ; काम, क्रोध, मद लोभादि को संयमाग्नि में भस्मीभूत कर देना चाहिए (गीता ४।३३) । जिन कर्मों में अहमन्यता या स्वार्थ की गन्ध नहीं ऐसे कर्मों को शुद्ध बुद्धि से करने पर यज्ञ से कहाँ कम पुण्य प्राप्त होने वाला है ? यज्ञ को ही व्यापक अर्थ लेकर जितने कर्म निष्काम भाव से सम्पन्न किये जायेंगे वे सब महायज्ञ की श्रेणी में गिने जायेंगे। अर्थात् निष्काम कर्म करते रहने से आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और सद्गति भी।

पृथक् पृथक् पथों से भिन्न भिन्न लोकों में जाना पड़ता है। (छा० १०, १५, १६) में इन पंथों का नाम क्रम से 'पितृयाण' और 'देवयान' आये हैं और उपनिषदों के आधार पर 'गीता' के अष्टम् अध्याय में भी इन मार्गों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। ज्ञानी मृत्यु के अनन्तर दग्ध होने पर उस अग्नि से ज्योति (ज्वाला) दिवस, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण के छठे महीने में प्रयाण करता हुआ ब्रह्म पद को प्राप्त होता है तथा मोक्ष का अधिकारी भी हो जाता है, ज्ञानहीन कर्मकाण्डी वह उसी अग्नि से धुआँ, रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन के छ: महीने इसी क्रम से प्रस्थान करता हुआ चन्द्रलोक को जाता है और अपनेपुण्यकर्मों का भोग करके पुन: इस लोक में जन्म लेता है, इन दोनों मार्गों में यही भेद है (गीता ८।२३-२७) । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कर्म-काण्ड का मार्ग अंधकारमय है एवं ज्ञान-काण्ड का मार्ग प्रकाशस्वरूप।

वैदिक साहित्य के उपर्युक्त विवेचन का लक्ष्य यह है कि कबीर-पंथी साहित्य मत विवेचित भक्ति पद्धति पर उपसिद्धान्त विशेष प्रभाव का पूर्ण स्पष्टीकरण हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन पर वैदिक साहित्य का पूर्ण-रूपेण प्रभाव पड़ा है।

कबीर-पंथ में अनेक भक्तों के नाम गिनाये गये हैं, परन्तु उन्हें माया के प्रपंच से मुक्ति न प्राप्त हो सकी। यथा: शिव गोरख एवं अनेक ब्रह्म-चारी माया की प्रवंचना से व्याकुल हुए हैं। माया इतनी शक्ति शालिनी है, बड़े बड़े मुनिगण भी इसके पराक्रम के समक्ष पराजित हो जाते हैं, इसीलिए भक्त के लिए सर्वप्रथम उन्होंने मायातीत बनने का उपदेश किया है, उसके अनन्तर साधना भूमि पर पदार्पण करके कुछ पराक्रम किया जा सकता है।[१] समस्त तत्वों एवं प्रकृतियों के गुणों पर विजय प्राप्त कर, कपट का त्याग, क्य-विक्रय एवं अभिमानादि की व्यर्थ कल्पनाओं को भस्मी भूत कर प्रपंचात्मक

---

१. ज्ञानबोध, पृ० ३८

कर्मों से विमुख हो कर दया एवं प्रेम भाव प्रदर्शित करते हुए निर्गुण भक्ति को ही अपेक्षित बताया गया है। ऐसे उत्कृष्ट धरातल पर पहुंच कर भक्त निरभय पद की उपलब्धि करता है जहां पर उसे पुन: किसी प्रकार का भय रह ही नहीं जाता।[१] 'भवतारण बोध' में भी इस बात की ओर संकेत किया गया है कि वेदपाठी ब्राह्मणों आदि की उपासना पद्धति के माध्यम से भक्ति पदारथ की उपलब्धि असम्भव है। इन सबसे केवल भ्रमपूर्ण धारणा का ही विस्तार होता है। इसलिए इन त्रिगुणात्मिका वृत्तिवाली भक्ति, ~~का एकमात्र~~ जीवों केलिए भ्रान्तिमूलक विनाशजन्य परिस्थिति उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करती। इसलिए निर्गुण भक्ति ही [illegible] श्रेष्ठ है, जहां तक योगियों की पहुंच है।[२] इसी प्रसंग में इस बात की चर्चा की गई है कि निरंजन की भक्ति में भी बहुसंख्यक जन लिपटे हुए है जो [illegible] एक मात्र कपटपूर्ण आचारों का आगार है एवं उसकी भक्ति सत्य से विमुख करने वाली है। यही कारण है कि निरंजन के उपासक जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सके, इसलिए निर्गुण अर्थात् गुप्त भक्ति के लिए संकेत किया गया है।[३] निर्गुण भक्ति का नाम कबीर पंथ में निर्मल भक्ति भी कहा गया है जिसके लिए हम पहले ही कह आए हैं कि मन की स्थिरता [illegible] अपेक्षित है।[४] इसी ग्रन्थ में ध्रुव, प्रह्लाद आदि सगुणोपासकों की भी चर्चा आई है जो कि अपने लौकिक अभीष्ट में तो सफल रहे, किन्तु पारलौकिक धरातल पर सगुण भक्त होने के कारण उन्हें सांसारिक क्लेशों से मुक्ति न प्राप्त हो सकी।[४] धर्मदास को उपदेश देते हुए कबीर ने बताया है कि नाम विहीन ~~करतार~~ जिसे कोई नहीं जानता जो कि काल-कराल से परे है, उसकी भक्ति जो करता है, उसका जन्म मरण के कठोर बन्धन

---

१. ज्ञान बोध, पृ०२९
२. भवतारण बोध, पृ० ४२
३. वही, पृ० ४३
४. वही, पृ० ४४

से छुटकारा मिल जाता है।[१]

कबीर पंथ के सदृश दरियापंथ में भी साधना क्षेत्र में निर्गुणोपासना पद्धति विशेष रूप से स्वीकृत है और सगुणोपासना को पूर्णरूपेण बहिष्कृत समझा गया। दरिया साहब कबीर के अनुरूप ~~मात्र सदुपदेशक~~ ही नहीं थे प्रत्युत उन्होंने ज्ञान एवं योग की सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुंचकर सगुणोपासना के दोषों का पूर्णरूपेण अध्ययन कर लिया था, इसीलिए उनकी साधना पद्धतियों में इन व्यर्थ के ढोंगों ... एवं बाह्याडम्बर पूर्ण पाषण्डों की लेशमात्र बू भी नहीं आने पाई। दरिया साहब ने जिस सत्पुरुष की उपासना के लिए समर्थन किया है उसे सनातन, अमलानन्द आदि नामों से विभूषित किया है, जो सर्वथा (सगुण से) परे है। साथ ही वह मात्र जीवों में ही नहीं वरन अणु-अणु एवं कण-कण अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म एवं वृहद् से वृहद् वस्तुओं में समाहित होने के साथ साथ सबका कर्ता, संहर्ता, एवं ~~एवं~~ सर्वज्ञ है। और ऐसे परमाधिदेव की सच्ची भक्ति से ही जीव को अविचल शांति एवं निर्भय पद की उपलब्धि सम्भव है। निर्गुण ब्रह्म को दरिया साहब ने अविनाशी सिद्ध करते हुए उसकी भक्ति से अमर अमर पद की प्राप्ति संभव बताई है। सगुण की चर्चा करते समय बताया गया है कि सगुण ब्रह्म स्वयं बंधन में बंधा हुआ है अत: उसकी भक्ति से जीवों का उद्धार किस प्रकार सम्भव है? यही धारणा ~~कबीर पंथ~~ में भी जैसा कि पहले ही विवेचन किया जा चुका है, देखने को मिलता है। इसी प्रसंग में दरिया साहब ने सविस्तार राम, कृष्ण, शिव, पार्वती एवं अनेक देवी ~~और~~ देवताओं के पौराणिक आख्यानों की चर्चा करते हुए उपास्य एवं उपासकों दोनों की अच्छी कलई खोली है।[२] सगुण एवं निर्गुण में विभेद बताते हुए दरिया साहब ने कहा है कि उनमें तात्विक दृष्टि से यह अन्तर है कि निर्गुण ब्रह्म अमर एवं सत्पुरुष है और सगुण समस्त जीव है जो कि क्रमश: जन्म मरण के चक्कर में चाक की तरह घूमते रहते हैं।[३] निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का चित्रण 'ज्ञान रतन' में दरिया साहब ने शिव एवं उमा सम्वाद के माध्यम से बड़े ही अच्छे ढंग से निरूपित किया है, जिसमें उमा ने शिव को बताया है कि एक ऐसा भी पुरुष है जो ~~कि~~ यावत् जड़-चेतन समस्त

सृष्टि का नियामक है और जिस राम की कथा सर्वत्र व्याप्त है वे त्रिगुण मय हैं।[१] इस प्रकार दोनों पंथों में निर्गुण उपासना का मंडन एवं सगुणोपासना का खंडन किया गया है।

भक्तिगत विशेषताएं —

भक्त जब सच्चे ज्ञान की प्रतीति कर लेता है तब उसको अंधविश्वास एवं अन्ध प्रेम पूर्ण रूपेण समाप्त हो जाता है, और उसका अस्थिर मन स्थिर हो जाता है, उसे ऐसी दिव्य ज्योति प्राप्त होती है कि वह अर्जुन के सदृश अपने सीधे लक्ष्य पर एकमात्र ईश्वर का ही दर्शन करना चाहता है और उन्हें त्याग कर अन्यत्र कहीं जाने की कामना भी नहीं करता। ईश्वर को ही सर्वस्व स्वीकार कर उन्हीं में तन्मय हो जाता है, उसका अस्थिर मन ईश्वर में केन्द्रित होकर निरतिशय आनन्द की अनुभूति करता है। जब भक्त को इस प्रकार की उच्चावस्था प्राप्त हो जाती है तो वह अपने को ईश्वर के निमित्त समझता हुआ उनके शरण में अपने को समर्पित करना चाहता है, भक्ति मार्ग में भक्ति की यही प्रपत्ति परता की स्थिति सर्वोत्कृष्ट है। इसी का नाम आत्म निवेदन है। ऐसी स्थिति में भक्त अपने से बढ़ कर न तो जगत् में किसी को तुच्छ समझता है और न अपने आराध्यदेव से बढ़ कर महान्। ईश्वर को अलौकिक गुणों से पूर्ण महान् गुणदाता स्वीकार कर उनकी शरण में अपने को समर्पित कर देने में ही अविचल शांति एवं परमानंद का अनुभव करना चाहता है। वह निष्ठापूर्वक ईश्वर में अगाध विश्वास रखता हुआ अपनी साधना भूमि में अहर्निश अग्रसर होता है। कबीर की यही उत्कृष्ट एवं शुद्ध प्रपत्ति भावना ही उनकी भक्ति साधना का मूलाधार है, इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर उन्होंने ईश्वर के प्रति निवेदन किया कि हे मुरारी! मेरी रक्षा करो! मैं नाना यत्न करने पर भी मन की कुप्रवृत्ति दूर नहीं होती। मैं थक कर पुनः

१, ज्ञान स्वरूप, पृ० [illegible]

उलझ जाता हूँ। यौवन ऐसे ही व्यतीत हो गया। हे केशव! तुम तो सर्वव्यापी हो मुझे तुम्हारे सदृश और कोई दानी नहीं है, न तो मेरे समान कोई दीन ही[१]। कबीर के सदृश कबीर-पंथी साहित्य में प्रपत्ति परता अथवा आत्म निवेदन के विपुल उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

साहब मेटो चूक हमारी ।।टेक ।।
बार बार मोहि छंद भयो है, चूक भई अतिभारी ।
अब हम आये निकट तुम्हारे अब मो तनहिं निहारी ।।१।।
करुनामय तुम नाम धरायो, तुम समरथ अब मेरो ।
ऐसी विपत्ति भई मोहिं ऊपर कोई न हितू हमारो ।। २।।
तरसत जीव रहे निसि बासर, जानि जानहि तुम्हारो
अब की चूक छिमाकर साहेब, अब सनमुख हूँ हेरो ।।३।।
तुम सतगुरु सकल सुखदाता, शब्द पान दे तारो ।
धरम दास विनती कर जोरी, करो बन्दी छोरो ।।४।।

—धरमदास जी की शब्दावली—पृ० १९

सतनाम सतगुरु ध्यान सतपद, परख हंस निवारिहो ।
सतलोक सो निजलोक पहुँचै, अखयवट दरसन लहो ।।
जिन लहे सुमरण सार हीरा, हंस अविचल सो भये ।
सत नाम सुमरत काल डरपै, दुरत है न्यारा रहै ।।

— धर्मदास बोध, पृ० ३

को प्रतिकूल । `वायु पुराण` में आत्म निवेदन के जिन छः अंगों का वर्णन किया गया है लगभग उनका इन पंथों पर काफी प्रभाव रहा है । इतना तो अवश्य है कि जो ईश्वर को प्रिय है, वही भक्त के लिए भी ग्राह्य है । साधना क्षेत्र में, जिन वस्तुओं के त्याग के लिए उपदेश दिया गया है, उसे समष्टि गत रूप से माया कहते हैं । माया का त्याग ही साधक के लिए सर्वोत्कृष्ट एवं परमक्लिष्ट कार्य है, जब तक मायाजन्य प्रवंचना साधक का साथ नहीं छोड़ती तब तक वह इस अन्धकूप भवसागर में गुमराह बना चक्कर लगाता रहता है । यही कारण रहा है कि कबीर-पंथ में पग पग पर इन शत्रुओं की ओर सावधान बने रहने के लिए चेतावनी दी गई है, जिससे कि भक्त को अपनी साधना में कुपरिणामों का पात्र न बनना पड़े । इन्हीं तत्त्वों का निरूपण कबीर-पंथी-साहित्य में निम्नरूप से हुआ है :—

साखी

जो भव पार उतारिहै, केवट से कर प्रीति ।
जब सतगुरु केवट मिलै, पै है भव जल जीति ।

सोरठा

ज्ञानबोध धर साथ, सतनाम जाने बिना ।
नाहि है इक उपाय, कहै कबीर कह भव तरै ।।

— ज्ञानबोध, पृ० ३१

परधन पाहन सम जेहि भाई । झूठ वचन कबहूँ न सिखाई ।।
पर तिरिया माता सम जानै । झूठ छोड़ सत्यहि को जानै ।।
जीव पै दया करै रे भाई । दूरि करो सब देह बिहाई ।।
कुमति क्या प्रीति ना होई । सतगुरु सपने मिले न सोई ।।
नाम भेद गुरु सों जाने । आदि नाम को पल पल ध्यावै ।।
ऐसे भाव सुमिरन सतवानी । ताहि काल न रोकै प्रानी ।

इसी प्रकार की परिकल्पना 'आत्मबोध' में भी द्रष्टव्य है —

> आपने आपने साँच सों खेलना, कपट का खेल नहीं काम आवै ।
> कपट के खेल से काम कोई ना सरै, अंत की बेर दु:ख प्राण पावै ।
> बाहिरा भीतरा साफ दिल को करो, मैल को धोय रस राम पीजै ।
> दास कबीर यों कहत पुकारि के, कपट की कोथली दूरि कीजै ।।
> साँच करणी करें साँच मुख उच्चरे, दैभ अरू कपट को दूरि डारै ।
> शील अरू साँच संतोष हृदय धरे, काम अरू क्रोध मदलोभ मारै ।।
> कनक अरू कामिनी त्यागि साईं भजै, राम तैजेनाराम गावै ।।
> कहै कबीर जन पार तैसी लहै काल की चोट फिरि नाहिं खावै ।।
>
> — आत्मबोध, पृ० ३१

वैसे सम्पूर्ण `आत्मबोध` इसी प्रकार के वर्णनों से ओतप्रोत है ।

आत्म निवेदन वाली परिस्थिति को लक्ष्य करके हम जब दरिया पंथी-साहित्य का अध्ययन करते हैं,तो निश्चित रूप से पता चलता है कि दरिया साहब ने बहुत कुछ कबीर पंथ के अनुरूप ही भक्ति मार्ग का अनुसरण किया है । उनकी भक्ति दास्यभाव की कही जा सकती है, जिसमें आत्मसमर्पण की सर्वोत्कृष्ट भावना कार्य करती हुई देखी जाती है । दरिया साहब अनन्य भाव से अपने को सत्पुरुष की शरण में समर्पित कर ब्रह्मानन्द की आशा करते हैं । उन्होंने अपने को सत्पुरुष का `गुलाम` और अपने उपास्यदेव को `गरीबनेवाज ` और `बन्दी-छोड़` घोषित किया है । भक्त की यही उत्कृष्टता है कि वह अपने आराध्यदेव में किसी प्रकार का दोषारोपण न करे, वह एक मात्र पवित्र भावना के साथ अभयशरण की कामना करता है, यदि शरण न मिली तो उसका क्या अपराध ? स्वयं उस आराध्य देव के नाम बट्टा लगेगा ।[१] दरिया साहब के साहित्य में एक शब्द बाहुल्य के साथ मिलता है वह है ` बेबहा ` । इस शब्द का अर्थ है अनमोल -

जिसके प्रति दरिया साहब ने अगाध विश्वास प्रदर्शित किया है।[१] जिस प्रकार पिता अपनी संतति को प्यार करता है उसी भांति `गुलाम गुनहगार बहुतेरा रहने पर भी परमपिता` बेबश` से अभयशरण की कामना करता है।[२] • उन्होंने अनेक भक्तों का नाम गिनाते हुए अपने आराध्यदेव पर अमित श्रद्धा प्रकट की है।

हरिनाकुस हरि भगत तें प्रह्लाद संकट तीर ।
खंभ से फारि ओदारि डारेवो नख से घाले वो चीर ।।
जन के निकट दूरि नहीं हरत है भय भीर ।
द्रौ पति के नैन नवारत सभ्य बढ़ेवो चीर ।
पंडवान्हि जो जग्य कीन्हों सेख भेष कबीर ।
सुपच के प्रसाद पाये जय जय मंगल धीर ।।
नामदेव हरि दास पायेवो फकरि कीन्ह अमीर ।
उलटि के हरिदासु ऊपर सुल्तान नायेवो सीर ।।
सुनि पंडित जोग बानहि चरनामृत में धीर ।
कुष्ठजल में राखि लीन्हों प्रगट कीन्ह कबीर ।।
जहां देखो तहां तुम्हीं गगन मंडल समीर ।
कहैं दरिया दरस दीन्हों कपट कागज चीर ।।

— ग्रन्थ अमर सीढ़ी, पृ० २ (पाण्डुलिपि)

साहब मैं गुलाम हौं तेरो ।
लिखि दीजे यह कागज मोरे जन्म जन्म का चेरो ।
रघुनन्दन की कच्ची काया तुम हो धनी निबेरो ।
बहु साधुन्ह के कपट बैठा है सन्निकटा बल हेरो ।।
सेंदी और है नाम तुम्हारा जानि पखारे फेरो ।
जीवन निरमल प्रेम मैं सूर्य साखि तुम्ह बिन हेरो` ।।

तुम के जांचो हृदय नाचो कबहु ना रहो अंधेरो ।
यह सब कुदरति अहै तुम्हारी अन्न कपरा का ढेरो ।।
जो निज होवे दास तुम्हारा जम जालिम नहिं घेरो ।
नस्ट कस्ट कबहिं न लोखे भवजल साधु सबेरो ।।
गुन औ गुन का खोज ना कीजे गुनहगार बहुतेरो ।
कहै दरिया जब सिंधु सरन में बूंद जल भाखु घनेरो ।।

— शब्द अर्जी, पृ० ६ (पाण्डुलिपि)

कबीर-पंथ की ही भांति दरियापंथ में आत्म निवेदन के साथ भक्ति क्षेत्र में सफलता के लिए अनेक विधियों का चित्रण किया गया है जो कि उपासक को अपने मार्ग में पूर्णरूपेण सहयोगी सिद्ध होता है:-

निर्मल ग्यान बिचारहु, भक्ति करहु लव लाए ।
सन्त सरन सतगुरु सेवा, आवागमन मेटाए ।।३।।
—भक्तिहेतु, पृ० २०१

प्रीतिकरो सतनाम से तेजि सकल भर्म भाव ।
मिथ्या जन्म जग जातु है, फिरि धिग ऐसो दाव ।।
—भक्ति हेतु, पृ० २८०

दरिया साहब ने एक भक्त के लिए सुख-दुख , संयोग-वियोग एवं विराट राज्यादि वैभव एवं ऐश्वर्य शाली वस्तुओं को व्यर्थ एवं नि:सार घोषित किया है, क्योंकि ये सब तरुवर की छाया की भांति अस्थिर हैं इस लिए इन सब की महिमा छोड़कर भक्ति मार्ग में सन्नद्ध होना ही वांछनीय है ।[१]

सब सिकार संतोष साहब तुम मालिक सच्चिदान मरदान यारा ।
ज्ञान बूथ है हाथ तुम काटु जम्माल तुम्फहु समसेर सनमुख्यारा ।।

---

१. शब्द सार, पृ० ८ (पाण्डुलिपि)

ज्ञान का घोड़ला तेज ताजन किया चढ़ि मैदान नहिं टरत टारा ।।
तहाँ काम औ क्रोध के फौज सम सोधि के पाँच वहि चौर पछारमारा ।
भया निर्संक रह चढ़ा गढ़ बंक तहाँ रुंध और धुंध भौ भर्म जारा ।
ताहां गर्जि निशान अविगति अमान अडोल पर धरनि धारा ।।
ताहां चौक है चान्दना मूल के साधना गगन में मगन है सब्द सारा ।।
कहैं दरिया कोइ संत जन जौहरी ब्रह्म विचारि के तार पारा ।।

—शब्द परिशिष्ट , पृ ०८१ (संतकवि दरिया एक अनु०)

संयोग में प्रसंगवत् भक्ति के लिए वैध एवं निषिद्ध उपादानों का संकेत किया गया है, इसका सविस्तार वर्णन हम स्वतंत्र शीर्षक में करेंगे ।

आत्म निवेदन की स्थिति तभी सम्भव है, जब कि उपासक को अपने आराध्य देव के प्रति अटूट विश्वास हो, क्योंकि बिना इस प्रकार की निष्ठा उत्पन्न हुए वह अपने को समर्पित नहीं कर सकता, कबीर ने स्वत: अपने साहित्य में अनन्य भाव से अपने आराध्य देव के प्रति अगाध विश्वास प्रदर्शित किया है, साथही कबीर पंथी संत तो इस प्रकार की भावना से प्रेरित होते देखे ही जाते हैं —

बिन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा ।।

—ज्ञान बोध, पृ० ३०

बिन परतीति भक्ति नहिं होई । बिनु भक्ती जिव तरै न कोई ।।

—अनुराग सागर, पृ० १४३

धर्मदास ने भी अपने ईश्वर के प्रति निष्ठा पूर्वक अटूट विश्वास प्रकट किया है ।[१]

इसी प्रकार दरिया साहब ने अपने अविचल सुखराशि परब्रह्म के प्रति ऐक्य भाव से अटूट श्रद्धा एवं अमित विश्वास प्रदर्शित किया है :—

दुखा की विधा डारि, एक नाम संसार में ।
भव जल पारि न डारि, जिन्ने नाम बिचारिए ।।६०।।

—दरियासागर, पृ० ५६

निस्वै ब्रह्म सत है सारा । निस्वै उतरिहि भव जल पारा ।।५६०

—ज्ञान दरिया सागर, पृ०५५

एक नाम आसा चित धरहु । दूजा दो बिधा सब परिहरहु ।।३१६।।

— ज्ञान सरोदै, पृ० २७१

कबीर-पंथ में एकांत साधना पर भी विश्वास प्रकट किया गया है।

सुमिरन भजन एकांत में मन चंचल गहि लीन ।।

—धर्मबोध, पृ० १७८

साधक जब भक्ति की पवित्र भूमि पर अग्रसर होता है, तब उसके लिए ईश्वर प्रेम से बढ़ कर और अमर निधि हो ही क्या सकती है ? इसलिए वह लौकिक जीवन में भौतिक आह्लादकारी सुखद विलास एवं विषय वासना - त्मक आदि मादक उपादानों का भरपूर त्याग कर साधना क्षेत्र में आरूढ़ होता है, तब वह माया, मोह, लोभ एवं मदादिक विकारों से मुक्त होकर अन्त: शुचिता एवं अमर सत्यता की उच्च भूमि पर पग बढ़ाता हुआ उस दिव्य ज्योति की उपलब्धि कर लेता है, जिससे कि वह अरूप एवं अरेख ब्रह्म की प्रतीति करने में सक्षम हो जाता है। यही कारण है कि कबीर-पंथ में भक्ति भावना से उत्प्रेरित हो संत साधकों ने अनन्यत्व की समाप्ति का उपदेश दिया है :-

शीश काटि निछावर में दीजे । ब्रह्म के सुख में तब चित भीजे ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० २६

तन मन धन सब अर्पण कीजे । प्रेम सहित ऐसो सुख लीजे ।।
पांच तत्व का भोजन कीजै । ब्रह्म आत्महि तृप्त करीजै ।।

—भवतारण बोध, पृ० ८८

तन मन धन सब अर्पन कीजै । शिर उतारि तेहि चरण धरीजै ।।
जो ऐसा हो सो अधिकारा । भक्ति भोग तब सो पैठारा ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० ४१

इसी प्रकार दरिया साहब ने भी भक्ति के क्षेत्र में तन, मन, धन आदि सब को त्याग कर भक्ति करने के लिए उपदेश दिया है :-

तन मन वारि प्रेम पगु दीन्हा । पद पंकज निजु हिरदै लीन्हा ।।५६६

—दरिया सागर, पृ० ५६

पाँच पचीस तीनु कर रीती । मन कंह अंउटि सभन्हि कहँ जीती ।।१०

—ग्यान सरोदै, पृ० २५६

तन मन धन साहब का अहई । जीवन थीर गुन सब्दहिं गहई ।।१७२

सो हंसा अमलोक ही जावै । बहुरि न भव जल धाका पावै ।।१७३

— ग्यान मूल, पृ० ३८८

प्रेम पंथ मंह पैठे सोई । तामें संसे जात बिलाई ।।६३१ ।।

सीस उतारि दछिना जो देवै । को हमको तुम्ह काकहि लेवै ।।६३२

—दरिया सागर, पृ० ६३'

साधना क्षेत्र में ईश्वर के सम्मुख व्यक्त की गई दैन्य भावना ही भक्ति का सर्वस्व है क्योंकि कोई व्यक्ति अपने को तुच्छ समझ कर ही तो सर्व-शक्तिमान ईश्वर के अभयशरण की लालसा करता है, तो निश्चित है कि उसमें योग्य पात्रता विद्यमान होगी । दैन्य भावना ही भक्ति की सर्वोत्कृष्ट पात्रता है, जिससे कि अपने स्वामी को रिझाने में सफल सिद्ध होगा । इस लिए हम देखते हैं कि दोनों पंथों में दैन्य भावना का अति सुन्दर एवं श्लाघ्य निरूपण हुआ है । संत कबीर स्वयं इस भावना से प्रेरित होकर अपने अभीष्ट देव के सम्मुख कातर पुकार लगाते थे कि 'माधौ ! मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं लाग्यौ ।'[1] इसी आर्त भावना का पूर्णाकर्षण प्रभाव पंथ पर भी परिलक्षित होता है :—

करै जो ऐसा संत की सेवै आरत भक्त महाफल होई

धन्य संत जो आरति साधा । काल कंगाल देखि पर है भागा ।।

---

१. कबीर ग्रन्थावली ([illegible]), पृ० १४३

आरति समान भक्ति नहीं दूजा । सब ते भली संत की पूजा ।।
—ज्ञान सागर, पृ० ६०

दरिया साहब की भक्ति भावना तो सर्वथा आर्त भावनाओं से ओत-प्रोत हो उठी है । जब भी निवेदन किया जाता है तो उसमें दैन्य भावना तो पूर्ण रूपेण वांछनीय होगी, क्योंकि निवेदन वही व्यक्ति करता है जो कि अपने को अशक्त दीन हीन एवं क्षीण समझता है , नहीं तो ऐसी परिस्थिति ही क्यों उत्पन्न हो ? पर जहाँ ईश्वर परक भावना का प्रश्न है वहाँ पूछना ही क्या ऐसी स्थिति में दैन्य भावना की सर्वोत्कृष्ट पात्रता दरिया साहब में परिलक्षित होती है । वे अति दैन्य भाव से प्रेरित होकर निष्ठा पूर्वक अपने आराध्यदेव से निवेदन करते हैं :—

हौं गाफिल बंदा जन तेरा ।
साहब सही सदा सिरताजै बकसु गुनाह सबेरा ।।१।।
करै कुफर को करके पर मैं निपट खिलाफति घेरा ।।
पांच जहूं संग पियादा [illegible] पर फेरा ।।२।।
[illegible] हरौं करीबर [illegible] एक को बहुत बसेरा ।
दीजै महाफज कोट बरष का तब भोगा है मेरा ।।३।।
चाकर नफर हरौं हाकिम से कूबना कीजै डेरा ।
हौं गरीब तुम गरीब नेवाजा करौ जबर मैं मेरा ।।४।।
अपने सरन सदा ले राखौ मयस्सर करहु निमेरा ।।
कहै दरिया कर कागज सिखिर जन्म जन्म का पैरा ।।५।।

—[illegible], पृ० ७ (पाण्डुलिपि)

नवधा भक्ति —

दोनों संतों के साहित्य में नवधाभक्ति के भी कुछ प्रमाण उपलब्ध होते हैं । कबीर की मानसिक भक्ति का तादात्म्य किसी न किसी रूप में नवधा भक्ति से हो जाता है । कबीर पंथ में " श्री मद्भागवत" द्वारा वर्णित इस भक्ति

पद्धति का स्वरूप परिवर्तित किया गया प्रतीत होता है :-

लभेतत्त्वधर्मं यस्तु गुरु भक्ति बलेन च ।।
तस्य कर्माणि नश्यन्ति पूर्वाण्यथ पराणि च ।। ३ ।।

—ब्रह्म निरूपणम् , पृ० २६

दरिया-पंथ में भी सद्गुरु द्वारा ही मुक्ति फल का समर्थन किया गया है :-

सर्वलोकस्य पूरनं यद्यपि सान गुनं भाषितम् ।
तथापितद्गुरु चरण प्राप्य सत्यलोक मुक्तिः फलम् ।।

—ब्रह्म चैतन्य, पृ० १० (पाण्डुलिपि)

"श्रीमद्भागवत" की नवधा भक्ति का स्वरूप कुछ भिन्न सा है, 'ब्रह्म निरूपण' में कहा गया है कि :-

गुरोराचर्चनम् मुख्यं द्वितीयं साधुसेवनम् ।
सन्नामरटनं स्नेहात्तृतीयमेवेदेव हि ।।१९६।।
श्रवणं ज्ञानं वाक्यस्य चतुर्थकम् ।
ततो भवेत्संस्थितिर्मायाऽभावस्य पंचमम् ।।१९७।।
सारासार विवेकस्तु षष्ठं च कथ्यते बुधैः ।।
सत्यवाक्य समुच्चारः सप्तमं परिचक्ष्यते ।। १९८।।
अष्टमं सम दृष्टित्वं नवमं शीलता गुणः
एते नवगुणा भक्तेर्भावाख्या वरणीयमाः ।।१९९।।

इसका अभिप्राय यह है कि सद्गुरु की प्रतिपूजा, संत-सेवा, सत्यनाम का जप, ज्ञान-श्रवण, मायातीत होना, सत्यलोक की सुख में निष्ठा , लौकिक सुखों को निःसार समझने के लिए विवेक उत्पन्न करना तथा सत्यवादिता का अनुसरण करते हुए सब में एक ही आत्मा स्वीकार करना और शील विचार धारा प्रकार नवधा भक्ति है। दरिया-पंथ में इस प्रकार की नवधा भक्ति का विशद विवरण तो नहीं उपलब्ध होता किन्तु इतना तो अवश्य कहा गया है

कि सब तीर्थों से श्रेयस्कर संत-दर्शन है एवं समस्त दान से बढ़ कर सत्यनाम का ज्ञान है, इस प्रकार संत-दर्शन से बढ़कर और कुछ नहीं है :—

सर्वं तीर्थं जग भर्मंत्यं संत दरस सर्वं मूल कम ।
सर्वं जग्य दान पुन्य च सत्यनाम न तुलितम् ।।

—ब्रह्म चैतन्य, पृ० ११ (पाण्डुलिपि)

इस प्रकार दोनों पंथों में दास्यभाव की भक्ति हीकी प्रधानता परिलक्षित होती है, जिसमें कि आत्म निवेदन की स्थिति ही विशेष रूप से दृष्टिगत होती है । दोनों पंथों के साहित्य में समस्त संत अपने उपास्यदेव के प्रति अनन्य भाव प्रदर्शित करते हुए उनके महात्म्य से अति प्रभावित होने के कारण अपने को उस अनन्त महिमा शील स्वामी का दास या गुलाम घोषित करते हुए देखे जाते हैं ।[1] धरमदास जी अपने अवगुणों को भी आत्म-विभोर हो कर ईश्वर के समक्ष रखते हैं :

गुन तो मोरे है नहीं, औगुन बहु तेरे ।
ओटलई तुम नाम की, राखो पत सोई ।। शब्द १२ ।।

—धरमदास की शब्दावली, पृ० २२

इसी प्रकार दरिया साहब भी अपने को ईश्वर का गुनहगार स्वीकार करते हुए आत्मनिवेदन की स्थिति में देखे जाते हैं ।[2]

बन्दा तो गुनहगार तेरा किया सब बार ।
कहै दरिया गुन बैगी बख्शीश होय पार ।।

—शब्द सर्वी, पृ० ४ (पाण्डुलिपि)

इस प्रकार दोनों पंथों में दास्य एवं दैन्य अथवा आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति ही मुखरित हुई है । कबीर-पंथ में नवधा भक्ति का स्वरूप मानसिक रहा है,

और उसमें 'श्रीमद्भागवत' की नवधा भक्ति का व्यवहृत रूप भी संचालित है।

नारदी भक्ति –

नारदी भक्ति के भी प्रमाण इन दोनों पंथों के साहित्य में अति सुलभ हैं। इस भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है कि अपने उपास्यदेव की गुण माहात्म्य शक्ति का विवेचन बड़े ही ओजस्वी ढंग से विशद् रूप में किया जाय। इसीलिए ईश्वर के विषय में जितने अलौकिक एवं उत्कृष्ट गुणों की परिकल्पना अति प्राचीन काल से की जाती रही है उसका गुणगान करने में शेष एवं सारद तक अशक्त घोषित किये जाते रहे हैं, ठीक उसी प्रकार से इस भक्ति तत्व का भर पूर विवेचन इनके साहित्य में हो सका है।

कबीर-पंथी संत धरमदास ने अपने आराध्यदेव के विषय में – "को कहि सकै तुम्हारी महिमा"[1] कह कर उस परमाधिदेव के अनन्तगुण राशि के स्वरूप में गुणगान किया है। कबीर भी इसी प्रकार गुणगान किया करते थे, उन्होंने ईश्वर के प्रति आत्मविभोर होकर ईश्वर की सुन्दरता का निरूपण अति उत्कृष्ट ढंग से किया है। कबीर-पंथी संत साधना में उस अभीष्ट देव के गुणों का वर्णन सर्वथा असम्भव ही सिद्ध किया जाता रहा है। कबीर-पंथी साहित्य में इस प्रकार की उत्कृष्ट महिमा एवं गुणगान की पद्धति [illegible] को प्राप्त हो गई कि प्रभु के एक एक रोम के सौन्दर्य पर करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा एवं तारागण न्योछावर किये जा सकते हैं।[2] संत कबीर ने पूजा अर्चना विधान को मानसिक स्थिति तक ही सीमित किया था, किन्तु कबीर-पंथ में इन सब का प्रत्यक्ष विधान भी प्रचलित हो गया, यही कारण रहा होगा कि कबीर मन्दिर में संध्या एवं प्रातः आरती एवं पूजा भी अर्पित की जाने लगी। ईश्वर के नाम की महिमा भी सर्वाधिक रूप से महत्वपूर्ण स्वीकार की गई, इसी नाम धारण को ही भव-सागर पार करने का सर्वोत्कृष्ट साधन उपाय घोषित किया गया।[3]

इन भक्ति पद्धतियों के साथ साथ कबीर-पंथ में कुछ और भी रूप उपलब्ध होते हैं, वह है कान्तासक्ति । जिस प्रकार कबीर आत्मविभोर होकर अपने को प्रियतमा तथा ईश्वर को प्रियतम स्वीकार कर आत्म विह्वल हो जाते हैं, वैसे उनके अनेक रूप देखने को मिलते हैं, जो भी विशेष सम्बन्ध मानव जीवन में बन सकते हैं, कबीर ने ईश्वर से जोड़ा है । यह भी उनकी उत्कृष्ट भावना ही है, क्योंकि जगत् सम्बन्धी समस्त रिश्तों के ~~समस्त~~-केन्द्र एक मात्र ईश्वर में ही समाहित हो गये हैं, जो कि एक उत्कृष्टातिउत्कृष्ट भक्त की सबसे बड़ी परख है कि भक्त को ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता । ऐसे उदाहरण हमें कबीर पंथी-साहित्य में भी सुलभ हैं । कान्तासक्ति वाली भावना के उदाहरण संयोग एवं वियोग दोनों रूपों में मिलते हैं । जिस प्रकार `हरिजननी मैं बालक तेरा` कह कर कबीर ने वात्सल्यासक्ति भावना ईश्वर के सम्मुख प्रस्तुत की है, उसी प्रकार धर्मदास जी कहते हैं,` परजा पुत्र वहाँ मैं साहब बहुत बात में टारों ।" इसी प्रकार तन्मयासक्ति के उदाहरण का जहाँ तक प्रश्न है तो इन भक्त कवियों ने पग पग पर जीव को बुन्दवत् स्वीकार कर परमात्मतत्त्व रूपी सिन्धु में मिल कर तद्रूप हो जाने का विश्वास प्रकट किया है ।

इस पंथ से जब हम दरियापंथ की ओर ध्यानाकर्षित करते हैं तो पता चलता है कि नारदी भक्ति के उदाहरण दरिया पंथ में भी सुलभ हैं । दरिया साहब ने भी कबीर पंथ के अनुरूप ही उस ईश्वर को अविगत स्वीकार किया है और उसके गुणगान के लिए जितने भी अति प्राचीन अवतारशक्तियों का दृष्टांत दिया जाता है उनका नाम गिनाया है :-

साहब तेरी गति अविगति लखि न परै ।
निगम है चारि पुकारि कहत भये विमल जो कीरति करै ।।१।।
शिव विरंचि सनकादि नारद सुर सब ध्यान धरै ।
शेष सहस फनि थकित भए हैं जो अति कहि के थरै ।।२।।

गोरख दत्त वशिष्ट व्यास मुनि नारद नाद भरै ।
सौलिता सर्व मिलै सागर मैं सौ गमि आमि भरै ।।३।।
संत मत ग्यान गमि जेहि प्रेम प्रीति तरै
कहै दरिया दयासतगुर कौ सकल भरम जरै ।।४।।

—शब्द अर्जी, पृ० ६ (पाण्डुलिपि)

कान्तासक्ति के उदाहरण भी दरियापंथ में सुलभ हैं :—

हंसा चलहु अमरपुर नीका ।
जरा मरन ते रहित होउगे सतगुर के घर बीका ।।१।।

....

मानहु सत्य धोखजनि जानहु तेजहु जानि मनीका ।
दरियादास पुरुष पवि जाके पर दुख दूरि अनीका ।।६।।

—शब्द अर्जी, पृ० १६ (पाण्डुलिपि)

तुहु पिया, तुहु पिया तुहु पिया मेरो ।
मैं मतनी पवि नैनानि हेरौ ।।

—शब्द परिशिष्ट, पृ० २७२
(संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

(ग) भक्ति के अन्य उपादान —

१. गुरु —

भारतीय अध्यात्म साधना के क्षेत्र में साधक को अपने मार्ग में सतत आरूढ़ रखने के लिए एक पथ प्रदर्शक की आवश्यकता स्वीकार की गई है । ऐसे पथ-प्रदर्शक को ही गुरु के नाम से अभिहित किया जाता है । साधना के बीहड़ पथ में सद्गुरु एक कुशल प्रहरी के सदृश भक्त को पथ से विचलित होने से सर्वथा रक्षा कर उसे कर्तव्य परायणता की ओर अग्रसर करता है । गुरु का माहात्म्य-गान अतीत काल से ही चला आ रहा है । संत कबीर ने गुरु की महत्ता पर इतना अधिक बल दिया है कि गुरु एवं गोविन्द में तात्विक दृष्टि से कुछ पार्थक्य ही न समझा ।

गुरु की महत्ता एवं आवश्यकता —

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों में ब्रह्म एवं जीव में तादात्म्य स्थापित करने के लिए गुरु को माध्यम स्वीकार किया गया है इनकी योग साधना के लिए तो गुरु अनिवार्य है, साथ ही साधना के पग पग पर इन संतों ने गुरु माहात्म्य बड़े ही सहज एवं व्यापक ढंग से स्वीकार किया है । `ज्ञान सागर` में सर्वप्रथम ही गुरु की वन्दना करते हुए गुरु की महत्ता स्वीकार की गई है :—

सत्यनाम है सार, बूझो संत विवेक करि ।
उतरो भवजल पार, सतगुरु को उपदेश यह ।।
सतगुरु दीन दयाल, सुमिरो मन चित एक करि ।
छेड़ि सकै नहिं काल, अगम शब्द प्रमाण इमि ।।

बंदी गुरु पद कंज, बंदी और दयालु प्रभु ।
तुम चरणा न मन रंज, देत दान जो मुक्ति फल ।।

—ज्ञान सागर, पृ० १

गुरु का माहात्म्य स्वीकार करते हुए 'अनुराग सागर' में इस प्रकार का वर्णन आया है कि इस जगत् में ऐसा कोई नहीं दिखाई पड़ता जो कि अंतसमय जब जीव को यमराज के दूत अपने बाहुपाश में कस कर चलने को उद्यत होते हैं तब मुक्ति प्रदान कर सके, ऐसी अवस्था में इस आपत्ति से छुटकारा प्रदान करने वाला सद्गुरु ही है, जो कि अपार दुख से मुक्त कर सकेगा । वह काल को जीत कर ऐसे अमरलोक निवासी सत्पुरुष के सन्निकट ले जाता है जो अचलानन्द है, वहाँ पहुँच कर जीव निरतिशय आनन्द एवं अविचल शांति की सुखोपलब्धि करता है । इतना ही नहीं अपितु जीव सांसारिक आवागमन के भयावह आवर्तन एवं प्रत्यावर्तन से मुक्त हो जाता है ।[१]

दीपक ज्ञान प्रकाश, भवन उजेरा करि रहो ।
सतगुरु शब्द विलास भाग चोर अंधेर जब ।।७।।

—अनुराग सागर, पृ० ६

गुरु की महिमा को कहै, ईश विरंचि नहि वाम ।
गुरु सतगुरु को चीन्हिया, ते पहुँचे निज धाम ।।

—भवतारण बोध, पृ० ५८

गुरु सिकलीगर करिलेहु, मनहिं मसकला देइ ।
शब्द छोलना छोलिके, चित दर्पण करि लेइ ।।१५४ ।।

—बीजक, पृ० १३४

गुरु बिना नहिं होय उबारा । गुरु बिना नहिं होय भव पारा ।

— अनुरागसागर, पृ० १६८

---

१. अनुराग सागर, पृ० ६

गुरु की शिक्षा यदि कोई भक्त अपने अन्तरंग में स्थिर कर ले, तो वह सर्वथा सत्यनाम, सुखधाम, अमलानन्द परमधाम निवासी सत्यपुरुष का कृपा-पात्र बन जाता है, जिस प्रकार से पत्नी अपने पति के चरणों में अपने को समर्पण करती है ठीक उसी प्रकार से भक्त को अपने आराध्यदेव की शरण में समर्पित कर देना आवश्यक है। इस संसार में गुरु से बढ़ कर और कोई नहीं है, जगत् के समस्त भ्रम जंजालों को त्याग कर निष्ठापूर्वक सद्गुरु की सेवा करना अभीष्ट है।[1]

छन्द

गुरु भक्ति अटल अमान धर्मनि, यह सरस दूजा नहीं ।
जप जोग तप व्रत दान पूजा, तृण सदृश यह जग कहीं ।।
सतगुरु दया जिहि संत परिहै, कृष्ण यहिविधि आवई ।
ममगिरा परवै शशि के किम, तिमिर मोहनशावई ।।४३।।

सोरठा

दीपक सतगुरु ज्ञान, निरखेहु संत अँधोरतोहि ।
पावै मुक्ति अमान सतगुरु, जेहि दाया करै ।।४४।।

—अनुराग सागर, पृ० ५६

शुकदेव , विष्णु, जनक, महादेव, ब्रह्मा, आदि जितने सुरनर मुनि हुए हैं, वे बिना गुरु के ज्ञान न प्राप्त कर सके। जो गुरु के शब्दों में विश्वास करता है, वह त्रिगुणों के परे जा पहुँचता है, फलतः, सर्व त्रिगुणों के जंजाल से मुक्त होकर सत्पुरुष के लोक के आनन्द का पात्र बनता है और वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है।[2]

इसी प्रकार दरिया पंथ में भी गुरु की महत्ता स्वीकार की गई है :-

---

1. अनुराग सागर, पृ० [illegible]
2. वही, पृ० ६०

जौ लगि सतगुरु न मिले, कतनौ कथै विराग ।
हंस बंस नहिं मीलिया, रहा काग कौ काग ।।

—गणेश गोष्ठी, पृ० ६ (पाण्डुलिपि)

ग्यान कुंजी निश्चय गहै, काटि करम कलि पाप ।
सत सरन सतगुरु सेवा, मेटै कलिमल ताप ।।

—सद्वानी, पृ० ५ (पाण्डुलिपि)

कोठा महल अटारिया सुनै स्रवन बहुराग ।
सतगुर सब्द चिन्है बिना, ज्यों पंछिन्ह मंह काग ।।२१।।

—दरिया सागर, पृ० ३०

सतगुर चरन सनेह, करौ भग्ति दया धरौ ।
प्रेम प्रीति नित नेह, भव सागर तरि जाइ हौ ।।

—अमर सार, पृ० ३१ (पाण्डुलिपि)

सतगुर सब्द प्रतीति करि, गहौ संत चित लाय ।
अमर लोक के जाइहौ बहुरि न भौजल आय ।।

—निर्भयग्यान, पृ० १२ (पाण्डुलिपि)

सद्गुरु के बिना साधक का जीवन व्यर्थ एवं नि:सार है, इसलिए सद्गुरु अत्यावश्यक है, जिसकी महिमा अगम एवं अपार है ।[१] जब सत्पुरुष तक जीव की पहुँच हो जाती है, तब पुन: उसे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं रह जाती । सद्गुरु की शरण में ही अपार आनन्द है जो कि सत्पद प्रदान करने वाला है ।[२]

भेटि लेहि सब सब्द से, जो गुरु मिलै करार ।
सतगुर बिना पार नहिं, भरम रहा संसार ।।१५ ।।

—दरियासागर, पृ० २२

---

१. दरिया सागर, पृ० ३३
२. वही, पृ० ३१

सतगुर बिना होहिं ना पारा । और गुर पाखंड पसारा ।।६५६
—दरिया सागर, पृ० ६५

गुर बिनु जप तप ध्यान न करई । भव भंजन सतगुर पद गहई । १७६३
भव तरनी गुर ग्यान समीपा । दया दीपक मन तेज अनीपा ।।१७६४
—ग्यान रतन, २३८

इस प्रकार दोनों पंथों में सद्गुरु की महिमा समान रूप से गाई गई है और साधना के क्षेत्र में एक गुरु की अनिवार्यता स्वीकृत है।

गुरु का स्वरूप—

दोनों पंथों में सर्वप्रथम ('सत्पुरुष') को ही सच्चा गुरु स्वीकार किया गया है। पुन: कबीर पंथ में कबीर को सुकृत मान कर सबसे महान गुरु स्वीकार किया गया और दरिया पंथ दरिया साहब को। अंत में जो गुरु का स्वरूप निरूपित किया गया है वह दीक्षा मंत्र प्रदान करने वाला है। कबीर पंथ में दरिया पंथ के अतिरिक्त गुरुओं के विषय में सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। कबीर पंथी साहित्य में आठ प्रकार के गुरुओं की चर्चा की गई है प्रथम गुरु माता पिता हैं, जिनसे उत्पत्ति होती है, दूसरे जो यत्नपूर्वक पालन करने वाली दायी है, तीसरा जो नामकरण संस्कार करता है, चौथा जो विद्या प्रदान करता है, पांचवां गुरु वैष्णव, जो कि दीक्षा देकर राम कृष्णादि के विषय में मंत्र देता है, जो भ्रम का निवारण करता है, वह छठां गुरु है। सातवां वह है जो सत्य का प्रत्यक्षीकरण करके परमतत्व की परख करता है और आठवां गुरु वह है जो पारख पद प्रदान कराता है।[१] किन्तु दोनों पंथों में ऐसे गुरु के प्रति विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की गई है जो मंत्र अथवा दीक्षा विधि द्वारा शिष्य को सत्य का स्पष्टीकरण करने में पथ प्रदर्शन करता है। ऐसे गुरु की चर्चा इस प्रसंग में की जा रही है।

---

१. बीजक कबीर... [illegible]

गुरु के गुण—

कबीर-पंथी संतों की धारणा है कि गुरु में निम्नप्रकार के गुण होने चाहिए :—

१. वह शास्त्र का ज्ञाता हो ।

२. वह मन कर्म एवं वचन से हरिभक्त हो

३. वह सम्यक द्रष्टा हो

४. वह वेदानुसार कार्य सम्पन्न करता हो ।

गुरु के लक्षन चार बखाना । प्रथम हि वेद शास्त्र को ज्ञाना ।।
पुनि हरि भक्त मनोकर्म बानी । तृतीये सम दृष्टी कहि मानी ।।
चौथे वेदविधि सब कर्मा । यह चो गुरु गुन जानो मर्मा ।।
गु को अर्थ अज्ञतिमिराना । रु जावे प्रकटे हिय ज्ञाना ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० ५२

अंतिम पंक्तियों का अर्थ करने पर हम कह सकते हैं कि गुरु वह है जो कि अज्ञानांधकार को विदीर्ण करे और हृदय में विवेक की उत्पत्ति करे ।

दरिया साहब ने भी सद्गुरु का सर्वोत्कृष्ट स्थान स्वीकार किया है, उनकी धारणा के अनुसार जो एक आदर्श संत में गुण होने चाहिए वेद गुरु के लिए अनिवार्य हैं । उनकी धारणा है कि गुरु होने के लिए पूर्ण ब्रह्म ज्ञान अपेक्षित है ।[१] उसमें ज्ञान एवं भक्ति की भी प्रचुरता होनी चाहिए ।[२] गुरु को अपना सम्पूर्णजीवन परोपकार के लिए उत्सर्ग कर देना चाहिए ।[३] कबीर-पंथ के अनुरूप ही दरिया साहब ने सद्गुरु के लिए निम्न गुणों की अनिवार्यता स्वीकार की है, जो निम्नपदों से स्पष्ट हो जायगा :—

---

१. ज्ञान रत्न, पृ० १३१

गुरु सोई जो सबसे न्यारा । सो सब मैं भाखों उपकारा ।।
जल तें पुरइन का है मूला । पानी पत्र न लागै फूला ।।
—ज्ञान सागर, पृ० ६६

सतगुर मिले तो ब्रह्म पुनीता । सास्तर ग्यान पढ़ा निगुनीता । ६७४
भवसंसे मैं कबहिं न भटकै । ज्यों जल कंवल कबहि ना अटकै ।।६७५
—दरियासागर, पृ० ६८

गुरु भक्ति—

दोनों पंथों में गुरु भक्ति को ही ईश्वर प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन स्वीकार किया गया है। सद्गुरु द्वारा ही ब्रह्मानुभूति संभव है क्योंकि गुरु ने ही ऐसा बाण मारा कि शिष्य ईश्वरानुभूति से वाणी विहीन हो गया, और कोई स्मृति रह ही न गई। इन्द्रियां जो प्रकृति के विभिन्न उपादानों में रत थीं वे सब विमुख हो कर ईश्वरानन्द में लिप्त हो गईं, चंचल मन पंगु बन गया।

राम नाम के पटंतरै, देबे कौं कुछ नांहि ।
क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन मांहि ।।४।।
—क०ग्रं० गुरुदेव कौ अंग साखी-४ (सभी)

इसी प्रकार की भावना मुक्तिबोध में द्रष्टव्य है :—

सतगुरु मारे बान भर, छौदु गहीं सरीर ।
का बापुरा बह कर सके, छूक लागे वह तीर ।।
गांसी लागै छूक भी मरे न जीवे कोय ।
कहे कबीर कहर को प्राणी, जो नहिं मूतक होय ।।
—मुक्तिबोध, पृ० ६६

इसी का अभिप्राय यह कि गुरु में इस प्रकार की अलौकिक शक्ति विद्यमान रहती है, जिससे गुरु के व्यक्ति को अविचल शांति और ब्रह्मानन्द की

सुखोपलब्धि हो सकती है, यदि ऐसी भक्ति से मनुष्य विमुख हो गया तो बहुत बड़ी भूल है। यही कारण है कि कबीर पंथ में सद्गुरु के प्रति आस्था प्रकट करने वाले उदाहरण पग पग पर उपलब्ध होते हैं। इसीलिए इसमें इस प्रकार की भावना व्यक्त की गई कि ईश्वर के सदृश ही व्यक्ति को अपने गुरु की शरण में आत्मोत्सर्ग कर देना चाहिए।

शिष्य होय जो तन मन वारै। गुरु आज्ञा कबहुं नहिं टारै।
गुरु दै शब्द मुक्ति जेहि होई। तेहि समान दूसर नहिं कोई।।

साखी

तन मन गुरु को दीजिए, मुक्ति पदारथ जान।
गुरु की सेवा मुक्ति फल, यह गैही सहिदान।।
—ज्ञान सागर, पृ० ६६

तनमन धन मैं उनको देऊं। नित उठि गुरु चरणामृत लेऊं।।
तन मन धन निछावर देऊं। सतगुरु का चरणामृत लेऊं।।
—जग जीवन बोध, पृ० २४

कबीर पंथ में निर्दिष्ट किया गया है कि शिष्य को आत्म समर्पण द्वारा गुरु को प्रसन्न रखना चाहिए, जिस प्रकार नट खेल द्वारा सबको मुग्ध कर लेता है, ठीक उसी प्रकार से शिष्य को गुरु के प्रति मुग्ध भाव से भाव भक्ति में संलग्न होना वांछनीय है। अपने तन मन एवं ऐन्द्रिय जगत् के समस्त सुखों का परित्याग कर मनसा वाचा एवं कर्मणा द्वारा सच्ची भक्ति में संलग्न होना अनिवार्य है। जो शिष्य अभिमान को त्याग गुरु की करुणा में अपने को समर्पित करता है, वह गुरु का प्रिय पात्र बन जाता है।[१] 'भवतारण बोध' में भक्ति की ओर संकेत किया गया है कि व्यक्ति जाति पांति एवं कुलादिक मर्यादा को त्याग कर इस संसार से विरक्ति भाव उत्पन्न कर भक्ति के क्षेत्र में पदार्पण

करे । सद्गुरु से किसी भी प्रकार की गुप्त भावना नहीं रखनी चाहिए, उसकी सेवा सत्य, मन से करनी चाहिए । निष्कपट भाव से सद्गुरु की शरण में अपने को को अर्पित करो क्योंकि कपटपूर्ण आचरण करने वाला शिष्य इस भवसागर में अपने को डुबोता है ।[१] गुरु ही माता पिता है, और इससे उत्कृष्ट और कोई देव नहीं है, गुरुपति के समान है, अर्थात् गुरु ही सब कुछ है, इसलिए समग्र जीवन को उसके चरणों में उत्सर्ग कर देना वांछनीय है ।[२] 'कबीर बानी' में गुरु भक्ति के विषय में उपदेश दिया गया है कि जिस प्रकार कमल जल में निर्लेप भाव से तैरता रहता है ठीक उसी प्रकार से इस संसार में भक्त शिष्य अपने समस्त ऐन्द्रिय सुखों से विमुख बना भक्ति में लीन रहने का सफल प्रयास करता है, वह गुरु की शरण में अपने को इस प्रकार समर्पित करता है कि उसे जन्म-मरण एवं सुख-दु:ख की कुछ भी चेतना रह ही नहीं जाती । अन्तत: यहाँ तक कि इनमें किसी प्रकार का अन्तर ही नहीं रह जाता, प्राण एक हो जाता है और काया दो । वह ज्ञान ध्यान एवं मन सद्गुरु के लिए त्याग देता है और उसकी शरण से पलभर भी विमुख नहीं होना चाहता । ~~इस प्रकार शिष्य गुरु की शरण से पलभर भी विमुख नहीं होना चाहता~~ । इस प्रकार शिष्य गुरु की शरण में सेव्यभाव से लिपटा हुआ, साधना द्वारा अपने मन के समस्त संशय एवं भ्रम का निवारण कर परमात्म तत्व की परख का आनन्दानुभूति करता है ।[१]

इसी प्रकार दरिया पंथ में भी गुरु के प्रति अभिन्न भक्ति स्वीकार की गई है । भक्ति क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट परिस्थिति आत्म निवेदन अथवा आत्मोत्सर्ग की है, जिसमें भक्त अपना सर्वस्व आराध्यदेव की शरण में अर्पित करना चाहता है । यही कारण है कि दरिया साहब कबीर पंथी विचारधारा के अनुरूप ही गुरु की शरण में अपना सब कुछ निछावर कर देने में परम हित समझते हैं, यही

---

१. भवतारण बोध, पृ० ५७

२. वही, पृ० ५८

३. ज्ञानबोध, पृ० ७०, ३१, ज्ञान प्रकाश ३२-३३

गुरुभक्ति की सर्वोत्कृष्ट स्थिति समझी जा सकती है :—

> गुर कहं सर्वस दीजिए, तन मन अर्पवो सीस ।
> गुर बखियां गुरदेव है, गुर साहब जगदीस ।।
>
> —सत्ग्यानी, पृ० १(पाण्डुलिपि)
> —ग्यानमूल, पृ० ३८७
>
> सतगुर आगे तनमन दीजे । प्रेम प्रीति रस कबहिं न छीजे ।।
>
> —द०सा० ६६
>
> जाति बरन कुल सबै भुलाई । सतगुर पारस देखहु दिखलाई ।।
>
> —निर्भय ग्यान, पृ० ४ (पाण्डुलिपि)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों पंथों में सद्गुरु की भक्ति अनिवार्य रूप से ग्राह्य समझी गई ।

सद्गुरु की विशेषताएं एवं स्थान—

गुरु के विषय में सुदूर काल से ही एक सुविशाल रूढ़िवादी विचार-धारा प्रतिष्ठित है कि अध्यात्म साधना के पक्ष में एक गुरु के रूप में पथप्रदर्शक नितान्त आवश्यक है इसीलिए यह कोई मौलिक बात नहीं जो कि इन पंथों ने गुरु के विषय में इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्रदान की । इतना अवश्य है कि अपने साहित्य में गुरु की विशेषताएं एवं स्थान के विषय में इन संतों ने एक नये ढंग से विचार प्रस्तुत किया है, इस दिशा में अवश्य ही इनका योगदान साहित्यजगत् में श्लाघ्य रहेगा । इस संसार रूपी महासागर के मध्य समस्त जगत् ही डूब रहा है , परन्तु जो सद्गुरु रूपी मांझी की शरण ग्रहण करेगा उसकी निश्चय ही रक्षा होगी, और सद्गुरु के भक्त को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं । 'भीषाव बोध' में गुरु महिमा एवं उसके प्रति अगाध विश्वास का एक अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया गया है :—

छन्द

> गुरु गुण इम प्रकार अवसर पुंज तमहिं विदारनं ।
> [illegible] [illegible] [illegible] माया कोटि रवि छबि धारणं ।।

सोई रूप धरि जगत प्रकट होय जिन दीनपति तनदुख हरै ।
भवसिन्धु ताप बुझाय शीतल जीवगहि आपन करै ।।

—भोपाल बोध, पृ० ८

गुरु के बिना इस जगत् में और कोई दूसरा ऐसा साधन नहीं है कि जिससे मोक्षानन्द की उपलब्धि हो सके । त्रिलोकी नाथ श्री रामचन्द्र जी ने गुरु की सेवा द्वारा ज्ञान प्राप्त किया, देव, ऋषि एवं मुनिवरादिक सबने गुरु के चरणों की सेवा की । इस प्रकार गुरु के बिना ज्ञान सम्भव नहीं, और बिना आत्मप्रतीति के इन सांसारिक भ्रमों से और निवारण का कोई चारा ही नहीं है । इस लिए जीवन को सत्य की ओर उन्मुख कर अचलानन्द की प्राप्ति के निमित्त गुरु जैसे अमोघ साधन की नितांत आवश्यकता है ।[1] गुरु से किसी प्रकार का दुराव छिपाव नहीं करना चाहिए एवं प्रेम प्रीति से सेवा में लग कर ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । बिना गुरु के ईश्वर की प्राप्ति असम्भव है, गुरु की शरण ही उस स्वाती बूंद के सदृश है जिससे कितनी अनुपम वस्तुएं निर्मित होती हैं । क्योंकि जिस प्रकार स्वाती बूंद जब कदली वृक्ष में पड़ती है, तो कपूर, सीप में पड़ती है, तो मोती एवं हाथी में गजमुक्ता उसी प्रकार गुरुशब्द भी भक्त को सीधे ईश्वर के सदृप बना देने में सक्षम है । गुरु एक ऐसे भृङ्ग के सदृश है जो कि जीव रूपी निम्नकीड़े-मकोड़े को अपने रूप में परिवर्तित कर उसे अव्यक्त स्वरूप की प्रतीति कराता है ।[2] सद्गुरु द्वारा ही जीवन मूल की प्राप्ति सम्भव है, नहीं तो इसके बदले भ्रम एवं निराशा ही प्राप्त हो सकेगी । वह स्वर्णकार के समकक्ष है, जो कि अस्तित्व की परख कर सुरति निरति के माध्यम से आत्मतत्व एवं परमात्मतत्व का तादात्म्य स्थापित करता है ।

सद्गुरु सांचे शब्द को प्रदान करता है जिससे जीवन मुक्ति की

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ३१, ३२
२. कबीर बानी, पृ० १०७-१०८

उपलब्धि सम्भव है ।[१] गुरु विना इस अगम अथाह भवसागर से कोई पार नहीं हो सकता । जिसने गुरु में विश्वास कर नाम धारण कर लिया वह इस मायावी संसार में विजय प्राप्त कर ली । गुरु की सद्कृपा ही जीव को परमहंस बना सकती है, नहीं तो वह काग के सदृश जगत् में निन्दा का पात्र सिद्ध होगा । गुरु ही महान् और शीला धरणी के सदृश है, वही पवन है, वही आकाश है और गुरु ही जल-थल यत्र-तत्र-सर्वत्र व्याप्त है । चन्द्र,सूर्य, गंधर्व, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भगवान, कूर्म, शेषादिक, जो चराचर पदार्थ हैं सब गुरु ही है । अखिल सृष्टि को ही गुरु में प्रतिबिम्बित कर उसके प्रति सच्चा प्रेम एवं सेव्य भावना जागृत करो, जिससे कि अमरलोक का निरतिशय सुख एवं आनन्द सुलभ हो सके जिस प्रकार दीपक के बिना चाहे जितना भी भव्य भवन क्यों न हो, परन्तु अंधेरा छाया रहता है, ठीक उसी प्रकार से मनुष्य चाहे कितना ही सौम्य क्यों न हो, किन्तु भक्ति के बिना वह नकहीन के सदृश है ।[२] 'मुक्तिबोध' में बताया गया है कि गुप्त नाम अथवा अनुपम नाम या सत्पुरुष की प्राप्ति गुरु के सदुपदेश द्वारा ही सम्भव है ।[३] जीवधर्म बोध' में वर्णन आता है कि 'गु' का अर्थ है अंधकार एवं 'रु' का अर्थ है प्रकाश अर्थात् जो अंधकार का नाश करके प्रकाश उत्पन्न करे वह गुरु है । इसकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं जो मंत्र प्रदान करता है वही सर्वोपरि है एवं उसका सीधा सम्बन्ध ईश्वर तक से जोड़ा जा सकता है क्योंकि गुरु एवं ईश्वर एक स्वरूप हैं, बिना गुरु के जीवन इस संशय सागर रूपी जगत् में उलझा हुआ है बिना गुरु के न तो किसी प्रकार की विद्या ही प्राप्त हो सकती है, न रहस्य का ज्ञान ही । बिना गुरु के व्यक्ति वैसे ही है जैसे कोई निरुद्देश्य होकर सरसंधान करे, वैसे ही वह व्यक्ति इतस्ततः भटकने वाला है । गुरु से विमुख व्यक्ति पशुपक्षी के सदृश है । सद्गुरु के उपदेशानुसार कर्म करो जिससे अविनाशी ज्ञान की प्राप्ति हो :-

---

१. ज्ञान स्थिति बोध, पृ० १०७

२. वही, पृ० १०२

३. मुक्तिबोध, पृ० ६२

गुरु बानी रविकर निकर, कर उर शिष्य प्रकाश ।
ज्ञानदीप के जगमगे, भयौ भर्म कौ नाश ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० ५३

इस जगत् में गुरु से और कोई भी श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से आत्म प्रतीति सम्भव है । रामकृष्ण स्वयं गुरु के गुणों का गान करते हुए उनके चरणों में लीन रहे । यहां तक कि संत कबीर स्वयं रामानन्द के अभय शरण की सुखद छांह ग्रहण कर ईश्वरानुभूति प्राप्त की और आजीवन गुरु के यश का गान करते रहे ।[१]

गुरु कह बड़ा गोविन्द ते कीन्हा । जाकी कृपा गोविन्दहिं चीन्हा
गुरु सम और नदूजा दाता । सब कौ मन वेदन विख्याता ।।
रिद्धि सिद्धि गति मुक्ति अमाया । बिनु गुरु दया न कहु कछु पाया ।।
गुरु बिन कहो गांठि को खोले । गुरु बिन अंध टटोलत डोले ।।
बार बार कर गुर गुण गाना । कहा कौन गुरुदेव समाना ।।
धन्य धन्य गुरु देव गोसाईं । तार्यो भव गोखुर की नाईं ।।
गुरु गुरु जपि के जागे जोगी । विरति विचार प्रपंच वियोगी ।।

....

गुरु समान तीरथ नहिं औरा । गुरु महात्म्य विदित सब ठौरा ।।
कोटिन तीर्थ गुरु जी के चरणा । संत कबीर जो निजमुख बर्ना ।।
गुरु सम दाता कोई न भाई । मुक्ति को मारग दियो बताई ।।

— जीव धर्म बोध, पृ० ५४-५५

गुरु से बढ़ कर और कोई दानी नहीं है, जो कि मुक्ति मार्ग का प्रदर्शन करा सके । जिस प्रकार मृग अपने नाभि में अवस्थित कस्तूरी की सुगंध प्राप्त कर उसकी परख के लिए वहिर्गत प्रदेश में दौड़ता है उसी प्रकार जीव अपने हृदय में ईश्वर की परख न कर के नाना बाह्याचारों एवं पाखंडों में रत होते हैं । ऐसा व्यक्ति अभिशप्तावस्था स्थिति में पकड़ा हुआ केहरि के सदृश अंध कूप में

---

१. जीव धर्म बोध, पृ० [illegible]

गिरता है। गुरु की अनुपस्थिति ५ में व्यक्ति गज एवं श्वान जो कि अपने प्रतिबिम्ब से ही लड़कर नाश को प्राप्त होते हैं, के समान विनाश को प्राप्त होता है। गुरु से विमुख व्यक्ति नलिनी के तोते एवं जंजीर से जकड़े हुए कपि के सदृश कर्तव्य भ्रष्ट होता है, परिणामस्वरूप उसे अपार पीड़ा एवं घोर निराशा का पात्र बनना पड़ता है। इसी प्रकार इस भ्रम सागर में बिना सद्गुरु के संतरण असम्भ है।[1]

दरिया-पंथी साहित्य में भी गुरु के विषय में चर्चा की गई है, कि उसका स्थान सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ है। कबीर पंथ के अनुरूप ही इस भवसागर को त्रिविध ताप रूपी जल से ओतप्रोत स्वीकार किया गया है जहां पर दुख ही दुख है, ऐसी अवस्था में समस्त जगत् निश्चय ही निमग्न हो जायगा, किन्तु सद्गुरु सतसुकृत ही माझी है जो कि जीवों को इस संशय सागर में डूब मरने से रक्षा कर सकता है।[2] ज्ञानी गुरु की शरण से जिस सत्यनाम की प्रतीति होती है, उससे अमर लोक का सुख प्राप्य है, और रौरवादिक यातनाओं के समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं।[3]

इस महोदधि में डूबते हुए जीवों को सद्गुरु ए ज्यों ही सत् शब्द की दीक्षा देता है त्यों ही उसके हृदय में प्रकाश प्रस्फुटित हो जाता है और वह अजर अमर अविनाशी सत्पुरुष के तादात्म्य का आनन्द प्राप्त करता है।[4] इतना ही नहीं जो व्यक्ति सद्गुरु के उपदेश में विश्वास कर आचरण करता हुआ, साधना पथ पर आरूढ़ होता है, वह अनन्त जन्मों के अघों को नाश करने में सक्षम हो जाता है।[5] इस संसार में कितने बड़े बड़े योगी हो चुके हैं, जिन्होंने

---

१. जीवधर्म बोध, पृ० ५४-५६

२. दरियासागर, पृ० ६८, एवं ज्ञान रतन, पृ० २३१

३. वही, पृ० ३६

४. वही, पृ० ४१

५. वही, पृ० ४३

नाना प्रकार की योग साधना किया किन्तु अंत समय में सुरक्षित न रह सके, यदि कोई अपनी रक्षा में सक्षम है तो योग्य गुरु का शिष्य ही । सद्गुरु की भक्ति के कारण ही समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति विमल बन जाता है—

तथपि सतगुर पदं प्राप्तं सर्वं पाप विनश्यति ।
कल्प कोटि भव भरमत्य जन्म जन्मान्ति पातकम् ।।

—ब्रह्म चैतन्य , पृ० १४ (पाण्डुलिपि)

जब सतगुर पद पाइयां, मेटि भव भरम उदास ।
मोह सागर सब सूखिया, मेटि तम तेज प्रकास ।। ८८ ।।

—दरिया सागर, पृ० १०६

गुर परमेश्वर गुर गुन ग्याता । मम तुम्ह दास चरन चित राता ।।१७६२
गुर बिन जप तप ध्यान न करई । भए अंजन सतगुर पद गरई ।।१७६३ ।।

—ग्यान रतन, पृ० २३७-२३८

गुरु पारस पत्थर के सदृश है जो जीव रूपी लोहे को अपने पवित्र स्पर्श से स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है ।[1] जिस परम सुख का शारदा एवं नारद सर्वथा गान किया करते हैं,उसे वह गुरु प्रदान करता है । सहस्र मुख शेष भी गुरु की महिमा का गान करने में पूर्ण अशक्त हैं ।[2] इन्हीं सब विशेषताओं के कारण स्वयं त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा,विष्णु एवं महेश तथा श्रीरामचन्द्र जी आदि सभी ने अपने गुरु के प्रति सेवा अर्पित की ।

`गुर बिन तरहिं न तीनों देवा । राम करहिं फिर मुनि की सेवा ।

—गणेश गोष्ठी, पृ० २ (पाण्डुलिपि)

दरिया साहब ने साधु एवं तीर्थ-स्थान से भी श्रेष्ठ सद्गुरु का स्थान घोषित किया है :-

---

१. ज्ञान रतन, पृ० २३२
२. दरिया सागर, पृ० १०१

तीर्थ गये फल एक है साधु मिले फल दोय ।
सतगुर मिले मुक्ति फल आवागमन न होय ।।
— सद्ज्ञानी, पृ० १८३ परिशिष्ट (संतकविदरिया एक अनुशीलन)

दरिया साहब ने गुरु महात्म्य स्वीकार करते हुए स्पष्टत: सिद्ध करना चाहा है कि गुरु विहीन व्यक्ति चक्षुहीन के सदृश है तथा उसके जीवन में सब दुख ही दुख है।[1] गुरु के बिना जीवन वैसे ही व्यर्थ एवं नि:सार है जैसे दीपक विहीन मन्दिर ।

गुर बिनु ज्ञान दीप बिनु मन्दिल दाथा दरस बिनु मिलहिंना संजन ।
भाव बिनु भक्ति प्रेम बिनु ज्ञानी जलबिनु त्रिखा भूख बिन भोजन ।
जलबिनु पदुम ध्रानि बिनु चम्पा विद्याचतुर घोड़ बिनु तंजन ।
हंस बिनु सरवर सभा पंडित बिनु बिना तंग दुरजन दल मंजन ।
गुन बिनु धनुख प्रात बिनु दान, पिया बिनु सेज लोचन बिनु अंजन ।
दरिया दरस जोग बिनु जागे भोग मान नहिं प्रीति पंथ नाम बिनु भंजन
—शब्द , पृ० ६०परिशिष्ट(संतद०एक अनु०)

दरिया साहब ने गुरु के बिना व्यक्ति की उपमा कुत्ता , कौए, सूकरादिक निकृष्ट जीवों से दी है, किन्तु सद्गुरु की कृपा से कौआ भी हंस बन जाता है। इसीलिए उन्होंने 'गुरु' को साक्षात् परमेश्वर स्वीकार कर लिया गया ।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों पंथों में गुरु का सर्वोत्कृष्ट स्थान स्वीकार किया गया है ।

सद्गुरु के प्रति प्रेम —

प्रेम ही एक ऐसा सूत्र है जो कि सम्पूर्ण जगत् में सब को एक दूसरे से अति दूर रहने पर भी सन्निकट लाने का प्रयास करता है, चाहे प्रकृति के जो भी जैव हों यदि प्रेमोत्पन्न हो गया तो अवश्य ही एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करने के लिए व्याकुल हो उठते हैं। इसी लिए साधना क्षेत्र में प्रेम का

श्रेष्ठ स्थान स्वीकार किया गया है। प्रेम ही जीवन-सार है। यह चाहे वासनात्मक हो या विरागात्मक अध्यात्म क्षेत्र का बिना प्रेम के कहीं और कदापि सफलता नहीं उपलब्ध हो सकती है प्रेम ही व्यक्ति को कर्मक्षेत्र में अवतरित होने के लिए विवश करता है, जैसा कि प्रेम की अनिवार्यता के लिए भक्ति के प्रसंग में ईश्वरोन्मुखी प्रेम की चर्चा की गई है, किन्तु वही प्रेम सर्वप्रथम सद्गुरु के प्रति श्रद्धाभाव जागृत हो ने से ईश्वरनिष्ठ रूप में परिवर्तित हो जाता है। सद्-गुरु प्रेम ही एक ऐसा सबल आधार है जिसके माध्यम से भक्त उस परमाधिदेव के प्रेम साधना में भी सफल होंगे। पहले ही मैंने इस बात की चर्चा की है कि गुरु के बिना सम्पूर्णजीवन व्यर्थ है। ईश्वरोन्मुखी विशुद्ध प्रेम के लिए भक्ति के प्रसंग में इन पंथों ने अतीत काल से ही आती हुई प्रीतिजगत् की कल्पना का प्रश्रय लेकर मानव जगत् के लिए प्रेम का पाठ तैयार किया है, जिसके माध्यम से उनमें अपने ईश्वर एवं सद्गुरु दोनों के प्रति विशुद्ध प्रेम उत्पन्न हो सके। दोनों के प्रति प्रेम की अनिवार्यता का सबसे बड़ा कारण यह है कि इन पंथों में ही नहीं अपितु अध्यात्म साधना के पक्ष में गुरु एवं ब्रह्म को लगभग समान रूप से प्रतिष्ठित किया गया है।

कबीर पंथ में सद्गुरु के प्रति निष्ठा एवं प्रेम के लिए संकेत किया गया है कि जिस प्रकार चकोर चन्द्र से प्रेम करता है उसी भाँति शिष्य को गुरु के प्रति अविचल एवं विशुद्ध प्रेम अनिवार्य है।[1] जिस प्रकार भ्रमर कमल पुष्प के प्रति प्रेम करता है ठीक उसी प्रकार से शिष्य को गुरुचरणों में लिप्त रहना चाहिए। 'ज्ञान स्थितिबोध' में लौकिक जीवन के अनेकानेक दृष्टान्तों के द्वारा प्रेम की अनिवार्यता सिद्ध की गई है कि जिस प्रकार बच्चे को अपने माता-पिता प्रिय होते हैं, भुजंग को मलयागिरि चंदन प्रिय होता है, पतंग को दीपक एवं चन्द्र को चकोर, उसी प्रकार से शिष्य को गुरु से प्रेम करना चाहिए।[2] इसी प्रसंग में गुरु एवं शिष्य का अभिन्न सम्बन्ध भी बताया गया है कि जिस प्रकार स्वाती-बूंद एवं सीप सिंधु एवं तरंग तथा रवि एवं कमल का अटूट सम्बन्ध है ठीक उसी प्रकार गुरु

---

१. संजीवन बोध, पृ० ३५
२. ज्ञान स्थितिबोध, पृ० १०२

एवं शिष्य का अति पवित्र सम्बन्ध है। इसलिए विशुद्ध अन्त:करण से निष्ठापूर्वक शिष्य को गुरु से प्रेम भाव रखना अनिवार्य है।[१]

दरिया-पंथ में भी गुरु के प्रति शिष्य के पुनीत प्रेम भाव की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। जिस प्रकार चकोर पावक से प्रेम करता है,उसी प्रकार से शिष्य को गुरु से प्रेम करना चाहिए।[२] पतंग दीपक के प्रेम में प्राणोत्सर्ग कर देता है, ठीक ऐसे ही गुरु के प्रति शिष्य को आत्म-समर्पण करना वांछनीय है।[३] दरियासाहब ने प्रेम को खड्ग की धार पर चलने के सदृश कठिन बताया है।[४] शिष्य को भ्रमर एवं कमल के सदृश गुरु से प्रेम करना चाहिए।[५]

ढोंगी गुरु एवं शिष्य—

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है पर यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है कि अध्यात्म साधना के क्षेत्र में एक सद्गुरु का होना नितान्त आवश्यक है। एक बात के लिए और भी सावधान रहना वांछनीय है कि हम गुरु के चुनाव में पूर्ण सतर्क एवं सचेत रहें अन्यथा खाली हाथ ही लौटना पड़ेगा। इसलिए ऐसे गुरु का अन्वेषण करना चाहिए जो उत्तमोत्तम एवं उत्कृष्ट गुणों से युक्त हो ऐसी स्थिति में यदि साधक उत्तम गुरु की परख न कर सका तो उसकी क्या दुर्दशा होगी, इसका चित्रण संत कबीर ने अति अनुपम ढंग से किया है :—

जाका गुरु भी अन्धला, चेला खरा निरंध।
अन्धे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत ।।
— के०ग्र०गुरुदेव कौ अंग साखी, १५ (सभा)

---

१. ज्ञान स्थिति बोध, पृ० १३५
२. सहजानी, पृ० ४ (पाण्डुलिपि), दरियासागर, पृ०४४
३. वही, पृ० ७ ,,
४. वही, पृ० ८
५. दरियासागर, पृ०४४

कबीर पंथी संतों का भी यही विचार है कि यदि गुरु का अन्वेषण किया जाय तो सत्यस्वरूपी गुरु का क्योंकि असत्य एवं मिथ्याचारी गुरु से कुछ भी काम नहीं सिद्ध होगा और ऐसे ढोंगी गुरु की शरण में रक्षित शिष्य यम-यातना द्वारा अति आपत्ति का भागी बनता है।[1]

> कायर क्रूर की शरण में लागे। अंत में छाड़ि ताको भागे।।
> श्वान पूछि गहि जाय न पारा। बूड़ि मरे भवसागर धारा।।
> अंध को राह दे स्वाब कि अंधा, बंधे को खोले कहे बंधा।।
>
> — जीवधर्म बोध, पृ० ५७

इसी प्रकार शिष्य में भी उत्तमोत्तम गुणों का होना वांछनीय है क्योंकि यदि सदुपदेश के लिए उचित पात्रता उपलब्ध न होगी तो सारा परिश्रम ही व्यर्थ ही सिद्ध होगा। जो शिष्य गुरु में दोषारोपण करना चाहता है उसे श्वान एवं शूकर की योनि में भटकना पड़ता है। नारद ने स्वयं इस प्रकार अनीति पूर्ण कार्य किया था जिसके कारण चौरासी योनियों के चक्कर में नाचते फिरे। काग भुसुंडी की भी इसी कारणवश दुर्दशा हुई। जो शिष्य गुरु की न तो सेवा ही करता है, न भक्ति ही और इसके अतिरिक्त अपशब्द कहता है उसे कुष्ठ रोग का शिकार बनना पड़ता है। गुरु की निन्दा एवं ईर्ष्या का परिणाम यम-दंड एवं घोर रौरव नरक यातना के अतिरिक्त कुछ नहीं।[2] जो शिष्य गुरु से चोरी करता है, वह सर्प योनि में जन्म लेता है और जो गुरु से अन्तर रखता है वह बार बार जन्म धारण करता है एवं चौरासी लक्ष योनियों के चक्कर में भटकता रहता है। इस लिए गुरु निन्दा सुनते ही वह स्थान छोड़ देना चाहिए क्योंकि जिन श्रवणेन्द्रियों से हरि सुमिरन के प्रेम रस का सुमधुर पान किया गया, उन्हीं से निन्दित वचनों का सुनना अनिष्टकारक है।

---

1. जीवधर्म बोध, पृ० ५६
2. वही, पृ० ५८

गुरु निन्दा श्रवणानसुनें, तत्छाण छोड़े ठांव ।
जेहि कान गुरु स्तुति सुनै , निन्दा निकट न त्याव ।।
गुरु से द्रोही शिष्य जो, संतन कीन्ह विरोध ।
सो चौरासी भर्मही, मारे काल करि क्रोध ।।

— गुरु महात्म्य , पृ० ७

जो शिष्य गुरु आदेश का पालन नहीं करता, वह स्वयं कालस्वरूप है, जो गुरु को तुच्छ समझता है वह जन्म-जन्मान्तर भ्रम में पड़ा हुआ भटकता रहेगा ।[१]

दरिया पंथ में गुरु को अलौकिक गुणों से युक्त होने की आवश्यकता बरती गई है और निकृष्ट गुणों वाले गुरु से (जो ढोंगा चारी, पाषंडी एवं मात्र द्रव्योपार्जन करना ही अपना धर्मोद्देश्य स्वीकार करता है) सावधान रहने के लिए संकेत किया गया है । ऐसे गुरु की शरण से ~~मात्र~~ यम-यातना एवं नरक यातना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं उपलब्ध होता ।[२] मिथ्याचारी पाषंड पूर्ण कर्मकाण्ड-विश्वासियों के गुरु से दरिया साहब ने सर्वथा सावधान बने रहने का उपदेश दिया है, जो कि पशु बलि अथवा अन्य अनीतिपूर्ण एवं अमानुषिक कार्यों को सम्पन्न करके अपने देव देवियों को प्रसन्न कर लौकिक सुखोपलब्धि का भ्रम करते हैं, उनका लौकिक सुख तो क्षीण ही होगा , साथ ही पारलौकिक दृष्टि से भी वे दंड के पात्र बनेंगे । दरिया साहब ने पशु बलि उपदेशी गुरु को व्याघ्रादि जंगली-हिंसक एवं मांसाहारी पशुओं की श्रेणी में

---

१. ज्ञान दीपक, पृ० ७ (गुरु माहात्म्य, पृ० ७
परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

२. ज्ञान दीपक , पृ० ७ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

रखा है, जिनके उपदेशों एवं धर्म विधियों में विश्वास करने पर पथ-भ्रष्ट होने के अतिरिक्त और कुछ भी सुलभ नहीं है।[१] इसलिए मानव को उत्तमोत्तम गुरु का अन्वेषण करना अपेक्षित है।[२]

---

१. ब्रह्मवाणी पृ० १८२ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

२. दरिया सागर, पृ० २१

२. सार-शब्द—

सार-शब्द सद्गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र है जो शिष्य के अन्तरंग में प्राण संचार कर साधना-पथ की ओर अग्रसर करता है। शब्द ही दीक्षा मंत्र है। दोनों पंथों में सार-शब्द का अर्थ गुरु वचन अर्थात् गुरु-मंत्र से ही लिया गया है। कबीर-पंथ में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गई है कि सद्गुरु के शब्द द्वारा ही मानव जगत् में आवृत्त अन्धकार विदीर्ण किया जा सकता है।[1] सार-शब्द विदेह-स्वरूप है, जो निःसार ब्रह्म की परख कराने के लिए सक्षम है। सार-शब्द द्वारा ही जीवों का उद्धार सम्भव है। `शब्द` पुरुष के नाम स्वरूप दिया गया वह गुरु-मंत्र है, जिससे उस सत्य-स्वरूप की प्रतीति सम्भव है, उसके द्वारा ही निर्वाण-पद के लिए मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।[2] शब्द द्वारा ही १६ पुत्रों की सृष्टि हुई।[3]

सत्य शब्द परताप, काल कला, व्यापै नहीं।
निकट न आवै पाप, मन बच कर्म जो पद गहे ।।२८।।

— अनुराग सागर, पृ० ३६

शब्द गहै परतीत पुरुष नाम अहिनिशि जपै।
चले सो भव जल जीति, कै नाम जिन पाइया ।।१०२

— अनुराग सागर, पृ० १५८

सतगुरु जीवप्रबोध कै, नाम लखावै सार।
सार-शब्द जो कोई गहै, सोई उतरिहैं पार —

— ज्ञानबोध, पृ० १४

---

१. अनुराग सागर, पृ० ६
२. वही, पृ० ११

दरिया-पंथी-साहित्य में भी सारशब्द के प्रति विशेष आस्था प्रकट की गई है और इसी ज्ञान के माध्यम से ही भक्तअसत्य का निराकरण करने में सक्षम हो सकता है। करोड़ों ज्ञानियों का यह अमर विश्वास है कि शब्द बिना सब अरक्षित हैं, यह जीवन का मूल-मंत्र है जो कि मानव को सत्यस्वरूपी अचलानन्द परमाधिदेव का साक्षात्कार कराने के लिए मार्ग सुदृढ़ कर सकता है। ऐसे सद्गुरु द्वारा प्राप्त किए गए सद्शब्द के कारण इस भवसागर में डूबने से संरक्षण सम्भव है। शब्द एक संजीवनी शक्ति है जो कि मरणशील व्यक्तियों में अमृत शक्ति उत्पन्न करके, सदा के लिए अजर अमर बना देती है।[1] शब्द द्वारा ही समस्त मानवीय दोषों का परिहार सम्भव है, इसके माध्यम से शरीर में अचल शुचिता प्रवेश करती है कि पुन: कदापि दोष प्रवेश होने की स्थिति रह ही नहीं जाती।[2] इतना ही नहीं प्रस्तुत अनेक जन्मों की कुप्रवृत्तियां भी तिरोभूत हो जाती हैं।[3]

शब्द की प्राप्ति कैसे सम्भव है?

पहले ही हम कह आये हैं कि यह गुरु का दीक्षा शब्द है, परन्तु विडम्बना इस बात की है कि भक्त को इसकी प्राप्ति के लिए बड़ी ही कठोर साधना करनी पड़ती है। 'मुक्तिबोध' में यह धारणा व्यक्त की गई है कि गुप्त-जाप अथवा अजपा-जाप के कटु साधना के अनन्तर ही शब्द रूपी जीवन मूल की प्राप्ति सम्भव है। गुरु-दीक्षा में विश्वास करते रहने पर अपनी साधना-भूमि में अहर्निश अग्रसर होते हुए इस गुप्त मत अथवा अव्यक्त-स्वरूप की सुगमता सम्भव है।[4]

---

१. दरियासागर, पृ० ६
२. वही, पृ० ४२
३. वही, पृ० ४३
४. वही, पृ० ५,६

अजपा जाप हो सहज धुन, परखि गुरगम डारिये ।
मन पवन थिर कर शब्द निरखै, कर्म मनपथ मारिये ।।
होत धुनि रसना विना करमाल विननिरवारिये ।
शब्द सार विदेह निरखत, अमर लोक सिधारिये ।।६।।

— अनुराग सागर, पृ० ११

इसी प्रकार दरियापंथ में भी इस संसार को यम-यातना का प्रदेश स्वीकार कर चौदह भयानक यम की चौकियों का निर्देश किया गया है , जहां पर जीवों को नाना भांति दुख सहने पड़ते हैं । ऐसी अवस्था में विना सद्गुरु के रक्षा सम्भव नहीं है । वही व्यक्ति इन क्लेशों से मुक्त हो सकता है जिसने सार-शब्द की परख कर ली हो । इसी गुरुमंत्र को गुरु-शब्द या अनाहद-नाद भी कहा जाता है, जो कि कठिन योग-साधना के अनन्तर ही सुलभ है । योग विषयक प्रसंग में जिस शब्द का प्रयोग किया गया है, उसका अर्थ विराट अनहद-नाद से भी है ।[१]

गुरु-शब्द के लिए विभिन्न उपमाएं—

दोनों पंथों में गुरु-शब्द के प्रति बहुत बड़ी महत्ता प्रदर्शित की गई है । कबीर-पंथ में इसे स्वाती बूंद के सदृश स्वीकार किया गया है जो शिष्य के अन्तरतम में प्रवेश करते ही निरतिशय आनन्द का अधिकारी बना देता है ।[२]

इसी प्रकार दरिया-पंथ में गुरु-शब्द के लिए अति उत्कृष्ट प्रतीक विधान प्रस्तुत किये गये हैं । दरियासागर में गुरु-शब्द को पारस बताया गया है ।[३] इसी प्रकार 'शब्द' में गुरु-शब्द को एक ऐसा चुम्बक बताया गया है जो कि

---

१. दरिया सागर, पृ० ५,६
२. कबीर बानी, पृ० १०८
३. दरिया सागर, पृ० ८, प्रेम मूला, पृ० १३-१६ (पाण्डुलिपि)

मानवीय दोषों को अपनी ओर खींच कर समाप्त कर देता है।[१]

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ की धारणा के अनुसार सत्पुरुष के नाम को ही सतनाम कहा गया है। इसी को धारण करने के लिए ही सद्गुरु शिष्य को 'शब्द' रूपी मंत्र प्रदान करता है। इसी सतनाम के मंत्र को शिष्य अपने गुरु द्वारा प्राप्त करता है।

माहात्म्य—

सतनाम एवं सत्पुरुष की महिमा में कुछ भी पार्थक्य नहीं। इसीलिए इसके माहात्म्य के विषय में इन पंथों के साहित्य में सविस्तार वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सतनाम को ही सार नाम भी कहा गया है। जब तक इसका धारण नहीं किया जाता तब तक सांसारिक क्लेशों से मुक्ति कदापि सम्भव नहीं। इसकी प्रतीति होते ही जगत् के समस्त संसय समाप्त हो जाते हैं। चाहे काशी जैसे बड़े बड़े तीर्थों का भ्रमण क्यों न किया जाय ? परन्तु इसके बिना यमपुर में निवास प्राप्त होगा। नैमषार, बद्री, गया, द्वारिका एवं प्रयागादि के तीर्थों के पर्यटन के अनन्तर भी भवसागर के संसय समाप्त नहीं होते। नाम-सुमिरन का प्रभाव ही ऐसा है जिससे यमपाश समाप्त हो सकता है। इस नाम की प्राप्ति भी सद्गुरु द्वारा ही सम्भव है।[२]

जनम जनम को मैल छूटे, पुरुष शब्द जो पावई ।।
नाम भा सुमिरण गहे सो, जीव लोक सिधावई ।
गुरु शब्द निश्चय दृढ़ गहे सो जीव अमिय अमोल हो ।।
सतनाम बल निज घर चले, करे हंस कलोल हो ।। ३८ ।।
सत्यनाम परताप , काल न रोकै जीव कहं ।
देखि वंश की छाप, काल रहै सिरनाय कै ।।४०।।

—अनुराग सागर, पृ० ५३

काल कराल प्रचण्ड, जीव परे वश ताहि कै ।
जनम जनम दै दण्ड, सत्यनाम चीन्हें बिना ।। ४४ ।।

सत्य नाम के प्रताप से संसार के संसय का सागर शुष्क पड़ जाता है, और जीव को निज-स्वरूप की परख होती है जिस प्रकार से सिंह का भय देख कर गज भागने का प्रयास करता है ठीक उसी प्रकार से सत्तनाम के प्रताप से ज्ञानी भक्त के समक्ष काल स्वतः भयभीत हो जाता है। नाम धारण करने से मोक्षा-नन्द की उपलब्धि होती है और समस्त कर्म एवं भ्रम विलीन हो जाते हैं।[1]

सो सतगुरु का विश्वास, जन्म मरण भय नाशइ
धर्मनि सो निज दास, सत्यनाम जो दृढ़ गहै ।।१०।।
—अनुराग सागर, पृ० १५४

सत्तनाम ही जगत् की अमूल्य निधि है, जो इसे अच्छी तरह से परख लेता है उनकी मुक्ति सम्भव है, अन्यथा अखिल जगत् ही इस महोदधि में निमग्न हो जायगा।[2] 'ज्ञानबोध' में भी इस बात का समर्थन किया गया है कि यह संसार सागर सर्वथा अगम एवं अपार है, जिसमें सभी डूब मरेंगे। इसे पार करने के लिए एक मात्र नाम की ही शरण श्रेष्ठ है। जो सत्तनाम धारण करेंगे उनका संतरण पूर्ण-रूपेण निश्चित है। यह नाम ब्रह्म का है, जिसका कि निराधार अर्थात् शून्य में प्रसार है, उसी पुरुष के नाम धारण करने से ही अमर लोक सुलभ हो सकेगा। कबीर दास जी का कथन है कि ऐसे नाम को गहने से ही भ्रम का विनाश एवं व्यक्ति का उद्धार दोनों सम्भव है।[3]

भवसागर को पार, बिना नाम उतरै नहीं।
गहि लेव नाम अपार, कहैं कबीर सब जीव से ।।
—ज्ञानबोध, पृ० १५

नाम बिना सबही बिधि हीना। नाम बिना है ज्ञान विहीना ।।
नामहि गहे तेइ निस्संसा ।। नाम बिना बूड़े सब हंसा ।।

---

१. अनुराग सागर, पृ० ७२
२. मुक्ति बोध, पृ० ६६
३. ज्ञानबोध, पृ० १५

नाम निरदार सुधि जब पावा । काल अपर्बल निकट न आवा ।।
माया त्याग भजो निज नामा । तब जिव जाय पुरुष के धामा ।।

— ज्ञानबोध, पृ० २६

कबीर दास ने स्पष्टत: इस बात की ओर संकेत किया है कि आदि नाम ही सत्य है और जो इसको ग्रहण करता है वह भव बाधाओं से उन्मुक्त हो कर अपने निज घर की प्राप्ति कर लेता है, किन्तु ऐसा उत्कृष्ट शिष्य ही कर सकता है।[1] सत्पुरुष का ही नाम धारण करने योग्य है जिससे इस संसार जलधि का अवगाहन किया जा सकता है।[2]

काल जीव धर खाय, सत नाम जाने विना ।
बचि है एक उपाय, सच कबीर कह भव तरे ।।
— ज्ञान बोध, पृ० ३१

इसी प्रकार दरिया-पंथ में भी सतनाम की महिमा बड़े ही जोरदार शब्दों में गाई गई है। दरिया साहब ने सतनाम को अमृत नाम घोषितकिया है, जिसका प्रसार अमरलोक पर है। इसके द्वारा ही अमरलोक की प्राप्ति सम्भव है। यह निर्गुन भक्ति का आधार है, जिसे कि काल निगल नहीं सकता।[3] दरिया साहब ने जाति पाँति आदि गर्वीली भावनाओं को त्याग कर सतनाम धारण के लिए उपदेश दिया है। सुख, सम्पत्ति, राजकाज, आन-बान आदि वैभव एवं विलासपूर्ण यावत मादक वस्तुएं सतनाम के सम्मुख फीकी एवं सार हीन ज्ञात होती हैं। इसलिए सतनाम जो कि सर्वथा सुरक्षित है, धारण कर इस संसार सागर में डूब मरने से अपनी रक्षा करना ही अभीष्ट है।[4] इस संसार में कितने योगी हुए हैं, परन्तु सतनाम की परख न होने के कारण, वे बार बार योनि संकट में विलीन होते रहे हैं, जो व्यक्ति सतनाम के प्रेम से नाच नहीं उठता उसका

१: ज्ञानबोध, पृ० ३६
२: वही, पृ० ३०
३: दरियासागर, पृ० २१

जीवन पूर्णतया असत्य एवं नि:सार है ।[1] संसार के समस्त संशय एवं भ्रम को त्याग नाम धारण करना चाहिए, उसकी भक्ति के लिए समस्त मायावी प्रसाधन त्याग देने योग्य हैं । ऐसी भाव भक्ति में दृढ़ता लाने पर हीरा रूपी दिव्य स्वरूप नाम की प्रतीति सम्भव है । भक्तवत्सल भगवान जो कि संतजनों को परमानन्द प्रदान करने वाले हैं, उनकी भक्ति के लिए जगजाल की माया त्याग कर सतनाम में दृढ़ विश्वास करना ही अपेक्षित है ।[2]

जो व्यक्ति नाम की परख न कर सका, वह उस मरकट की भाँति है जो कि नग्न हुआ तन, वन की दौड़ लगा रहा है, ऐसे लोगों की माँ यदि बंध्या होती तो विशेष सुन्दर था ।[3] दरिया सागर ने 'ज्ञान सरोदै' में इसी सतनाम को ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट अमोघ साधन स्वीकार किया है ।[4] सतनाम ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश से भी अग्रिम है, जो आवागमन से सर्वथा मुक्त है, वह सर्वथा अजर-अमर एवं सत्यस्वरूप है, वही सबका कर्ता एवं संहर्ता है ।[5]

सतनाम निजु प्रेम रस, सतगुर प्रेम परतीति ।
कहै दरिया जन निजपुर जाय वो भवजलजीति ।।

—अमर सार, पृ० २१ (पाण्डुलिपि)

सर्व तीर्थ जप धर्मन्त्यं सेव दरस सर्व सुलकम ।
सर्वजग्य दान पुन्य च सत्यनाम न तुलितम् ।।

—ब्रह्मचैतन्य, पृ० ११ (पाण्डुलिपि)

---

१. दरिया सागर, पृ० ३४
२. वही, पृ० ३८-४०
३. ज्ञानसरोदै, [illegible]
४. [illegible]

३. प्रेम—

ज्ञान एवं भक्ति के प्रसंग में इस बात की भली-भाँति चर्चा की जा चुकी है कि ये दोनों तत्व साधना क्षेत्र में अति आवश्यक है, जिसमें कि इस बात का समर्थन प्रकट किया गया है कि ब्रह्मानुभूति के लिए सर्वभूतात्मैक्य रूपी निष्काम-बुद्धि पूर्ण-रूपेण अपेक्षित, क्यों कि इसी के माध्यम से जीव शुद्ध बुद्ध एवं मुक्त रूप से आजीवन स्वधर्मानुसार कर्तव्यपरायणता की ओर उन्मुख हो सकता है। साथ ही इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान ही केवल सत्य एवं अंतिम साध्य है, न तो इससे बढ़ कर और कोई वस्तु ही पवित्र है। प्रश्न उठता है कि व्यक्ति इस प्रकार के उच्च एवं पवित्र धरातल पर किन आधारों से पहुंच सकता है ? इसके लिए आवश्यकता है, साम्य एवं पवित्र बुद्धि की। और यदि इस प्रकार का विशिष्ट गुण व्यक्ति में नहीं है तो वह कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि अतीत काल से ही जब ब्रह्म के विषय में `नेति नेति` के अतिरिक्त और कुछ भी स्वरूप निरूपित नहीं किया जा सका। तो सामान्यजनों की पहुंच कैसे सम्भव है ? `गीता` एवं `कठोपनिषद्` (गीता २।२६, कठ २।७) में यह बताया गया है कि ब्रह्म की चर्चा अति विस्मय से कान फाड़ फाड़ कर सुनने से भी ज्ञान नहीं होता। इसी प्रसंग में जब बाष्कलि ने बाध्व से कहा ब्रह्म किसे कहते हैं ? पर वे मौन रहे, यही प्रश्न कई बार दुहराया गया, परन्तु प्रत्युत्तर में मौनावस्था के और कुछ नहीं। अंत में उन्होंने कहा कि मेरे उत्तर देने पर भी ब्रह्म स्वरूप की प्रतीति तुम्हारे मन में नहीं हो रही है क्योंकि वह तो वर्णनातीत है, इसीलिए उसके विषय में मौन रहना ही अपेक्षित है, अर्थात् शान्त रहना ही सच्चा ब्रह्म लक्षण है, क्योंकि उसका विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है कि आंखों से प्रत्यक्ष न दिखाई देने पर उसे देखा जा सकता है, समझ में न आने पर वह मालूम होने लगता है, (केन० २।११)। अर्थात् इसकी प्रतीति कब एवं कैसे सम्भव है ? जब ईश्वराराधना इस प्रकार पूर्ण हो सके कि समस्त चेतन जगत् में एक ही आत्मा

परिलक्षित होने लगे तभी मनुष्य की बुद्धि का पूर्ण विकास सम्भव है।

यदि तीव्र बुद्धि इस सद्कार्य के लिए सक्षम हो तो कितनों को इस क्षेत्र में पीछे रहना होगा, क्योंकि बुद्धजन इस विषय में कितने मतान्तरों के अनुयायी हैं जिनके बीच एक निश्चित निर्णय असम्भव है, इसीलिए किसी वस्तु की उपलब्धि के लिए उसके प्रति विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अति वांछनीय है क्योंकि इन दोनों से विमुख साधना-क्षेत्र में सच्ची लगन जग ही नहीं सकती। बुद्धि की असमर्थता के हमारे पास अल्प प्रमाण नहीं क्योंकि बुद्धिमान जगत् की एक सुविशाल परम्परा हमारे इतिहास में चिर काल से चली आ रही है, जिनके मिथ्या एवं वृथाभिमान एवं तर्क प्रधान शास्त्रीय चमत्कारों के परिणामस्वरूप साधना - क्षेत्र एक कंटकाकीर्ण जंगल मात्र बन सका। प्रकृति के क्रमों को हम नित्यशः देखते हैं, पर उनका ज्यामिति की भाँति कोई निश्चित सिद्धान्त तो नहीं है कि ऐसे ही वे प्रतिदिन क्रम से चलते रहेंगे, परन्तु श्रद्धा एवं विश्वास ही एक ऐसा आधार है, जिसके परिणामस्वरूप निश्चित रूप से धारणा बना लेते हैं कि यह क्रम बराबर चलता रहेगा। ज्ञान एवं भक्ति के प्रसंग में भी हम बता आये हैं कि श्रद्धा या प्रेम के बिना भक्ति क्षेत्र में हम अग्रसर नहीं हो सकते । इसलिए ज्ञान को आचरण की शुद्धता, श्रद्धा एवं कर्तव्यप्रेम से बराबर प्रखर करते रहना चाहिए और उसकी विमुख अवस्था में ज्ञान कच्चा एवं अधूरा ही रहेगा . जिस प्रकार धनुष एवं बाण दोनों ही शर संधान के लिए परमावश्यक हैं ठीक उसी प्रकार से ज्ञान एवं भक्ति को अग्रसर करने के लिए प्रेम अथवा श्रद्धा की मनोवृत्ति जागृत करना नितांत आवश्यक है।

जिस प्रकार प्रकृति के नित्यप्रति के क्रमों में विश्वास करने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है, उसी प्रकार सृष्टि के मूल तत्व में निहित तत्व जो कि अनादि , अनन्त सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, स्वतंत्र और चैतन्य स्वरूप सिद्ध किया गया है, उसकी प्रतीति के लिए प्रेम पथ अनिवार्य है। साथ ही जिस ईश्वर को रूप रेख विहीन अर्थात् निर्गुणातीत होने की कल्पना की गई उसकी प्रतीति के लिए श्रद्धा एवं विश्वास को छोड़ कर और पथ क्या हो सकता है ? एक और बात है कि हमारे आर्ष-वाङ्मय में विख्यात है जिस निर्गुण परब्रह्म की चर्चा यत्र-तत्र

बात का समर्थन क्यों करते हैं कि ईश्वर त्रिगुणातीत अर्थात् निर्गुण है ? इसमें भी वही प्रेम या श्रद्धा की भावना निहित है जो कि ईश्वर के कल्पित अर्थ में विश्वास उत्पन्न करती है, या उसकी विवेच्य सामग्रियों के प्रति , परन्तु वह प्रेम ही तो कहा जायगा । साथ ही यह बात और भी पते की है कि यदि कोई साधक जब भक्ति-भूमि पर पदार्पण करता है तो क्या पूर्व ही प्रथम चरण में : निर्गुण ब्रह्म की प्रतीति कर लेता है, परन्तु ऐसा कहाँ ? सर्व प्रथम तो ईश्वर के स्वरूप के प्रति प्रेम एवं विश्वास उत्पन्न होना वांछनीय है, जिसके माध्यम से भक्त साधना क्षेत्र में एक एक चरण आगे बढ़ता रहता है और यही प्रेम एवं विश्वास ही उसका अपने पथ से विचलित होने से एक सच्चे प्रहरी के सदृश रक्षा करते हैं । क्योंकि अव्यक्त स्वरूप में मन केन्द्रित करने के लिए प्रेम की अपेक्षा और कोई दूसरा चारा नहीं । `गीता` में इसके विषय में कहा गया है :—

> श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः, संयतेन्द्रियः ।
> ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।३६।।

इसका अभिप्राय यह है कि "जब श्रद्धावान व्यक्ति इन्द्रिय निग्रह के माध्यम से ज्ञानोपलब्धि का प्रयत्न करने लगता है, तब उसे ब्रह्मात्मैक्य रूप-ज्ञान का अनुभव होता है और पुनः उस ज्ञान द्वारा उसे शीघ्र ही पूर्ण शान्ति सुलभ हो जाती है (गीता ४।३६) । इस प्रकार प्रेममूलक उत्कृष्ट मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप व्यक्ति में दया, करुणा एवं कर्तव्य प्रतीति इत्यादि उत्कृष्ट गुणों का सर्वथा विकास होता रहता है । इस भक्ति के लिए प्रेममूलक भावना भक्त के हृदय में प्राण स्फूर्ति करने वाली शक्ति है, जिससे वह अपनी साधनावस्था में निष्ठापूर्वक सर्वथा जागृतावस्था को प्राप्त करता है ।

प्रेम की महत्ता —

कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों में इस बात का समर्थन किया गया है कि भक्ति पंथ में प्रेमानुभूति नितांत आवश्यक है, क्योंकि बिना प्रेम के भक्ति सुलभ नहीं :-

लग्न प्रेम बिन भक्ति न होई । संगति को पावै नहिं कोई ।।
परम पुरुष की भक्ति दृढावै । सुतैन्हत कर तहं पहुंचावै ।।
तासों प्रीति करो चित लाई । छांडो दुर्मति औ चतुराई ।।
तब ही परम पुरुष को पावै । भव तर कै जग बहुरन आवै ।।

— भवतारण बोध, पृ० ४५-४६

सर्वप्रथम साधना-क्षेत्र में दृढ़ विश्वास जागृत होना आवश्यक है तदनन्तर भक्तिकाअंकुर निकलता है और जब भाव एवं प्रेम से सेवा अर्पित की जाती है तब पूर्ण ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न होता है।[1] 'मुक्ति बोध' में भी अनुराग या प्रेम की महत्ता का समर्थन किया गया है :—

जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
बिन अनुराग न पावई, कोट करै, जो कोय ।।

—मुक्तिबोध, पृ० ६४

इसीप्रकार दरिया पंथ की रचनाओं के वर्णनानुसार साधना-क्षेत्र में प्रेम का अद्वितीय स्थान है। सर्वप्रथम दूध में कोई सुगंध नहीं, पर अग्नि पर भली-भांति औंटा लेने पर जब दही जमा दिया जाता है, तब मंथने पर उसमें से घी जैसे सुगंधित पदार्थ की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार शरीर रूपी हांडी, क्षमा का दूध, दया का दही, प्रेम का जल, मन की मंथन रज्जु, चरित्र और सन्तोष के दो खम्भे, इस प्रकार इन उपादानों द्वारा जिस प्रकार विशुद्ध घी की उत्पत्ति होती है ठीक उसी प्रकार आत्मा को इस प्रकार तप संयम से विशुद्ध कर लेने पर परात्माकी प्रतीति सम्भव हो जाती है।[2]

प्रेम कमल जल भीतरै, प्रेम भंवर ले वास ।
होत प्रात संपुट खुलै, भान तेज, परकास ।।

—प्रेममूला, पृ० १ (पाण्डुलिपि)

---

१. भवतारण बोध, पृ० ४६
२. प्रेम मूला, पृ० २३ (पाण्डुलिपि)

प्रेम प्रीति कह नाम है, भौजल जाहि न हारि ।
बिना प्रेम नहिं भक्ति है, कमल सुखा बिनु बारि ।।

—प्रेम मूला, पृ० २ (पाण्डुलिपि)

कहँ दरिया साँची दिल, दुर्मति सकल बोहाय ।
प्रेम सुरति बासा करे, आवा गमन मेटाय ।।

—प्रेम मूला , पृ० ४ (पाण्डुलिपि)

जब तक हृदय में प्रेम का आलोक नहीं उत्पन्न होता,तब तक हृदय तमाच्छन्न बना रहता है और प्रेमोदय होते ही हृदय का समस्त अंधकार विलीन हो जाता है ।[1] प्रेम मानव हृदय में वह अमृत तत्व है जो कि अमर लोक के सुख का दाता बन जाता है, अन्यथा बिना प्रेम भाव के मनुष्य को यम-यातना भुगतनी पड़ती है ।[2]

प्रेम का स्वरूप —

प्रेम मानव-हृदय की एक रागात्मक अनुभूति है, यहअनुभूति ~~ईश्वर के प्रति~~ एवं सामान्य जीवों के प्रति भी उत्पन्न हो सकती है । इसी प्रकार का संबन्ध जीवन-क्षेत्र में विविध रूपों में व्यक्त किया गया है । पिता-पुत्र , सखा-सखी, स्वामी-दास आदि के रूप में रागात्मक अनुभूति उत्पन्न हो सकती है । वैसे इन सबका सम्बन्ध अपने अपने क्षेत्र में पृथक् पृथक् महत्ता रखता है । किन्तु प्रेम की सर्वाधिक मादक परिणति पति एवं पत्नी में प्राप्त होती है और इसी प्रेम में अत्यधिक निखार भी सम्भव है । पति-पत्नी का सम्बन्ध अन्य सम्बन्धों की तुलना में अत्यधिक सन्निकट एवं हृदय ग्राही स्वीकार किया गया है ।

यही कारण रहा है कि भारतीय संतसाधना के क्षेत्र में भक्त अपने को प्रियतमा स्वीकार कर और अपने परमाधिदेव को प्रियतम समझते हुए साक्षात्कार

---

१. प्रेममूला, परिशिष्ट, पृ० ४३ (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. वही

के लिए आत्म विह्वल हो उठता है। साथ ही यह सम्बन्ध मानव-जीवन में अति पवित्र प्रीति सूत्र स्वीकार किया गया है, यही कारण है कि पति-पत्नी का सम्बन्ध प्रीति, त्याग सेवा एवं निष्ठा के लिए अति पुरातन काल से ही दृष्टांत के रूप में साहित्य में भी विवेचित होता रहा है। दाम्पत्य प्रेम जीवन के वीहड़पथ में जहां पर पल पल परीक्षा एवं संघर्ष की उथल-पुथल वाली परिस्थिति उत्पन्न होती है, उसमें मर्यादित ढंग से अग्रसर होते हुए धैर्य की उपेक्षा नहीं करता और महान् से महान् दुख के सम्वेगों को सहन करने की अमित क्षमता रखता है। भारतीय साधना में दाम्पत्य प्रेम का जो प्रतीक विधान निरूपित किया गया है, उस पर कुछ प्रभाव सूफी साधना का अवश्य ही स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु दोनों चित्रणों में अन्तर यह है कि सूफी साधक भारतीय साधक की तुलना में स्वयं को स्त्री न समझकर स्वत: प्रेमी बन कर ईश्वर को प्रियतमा स्वीकार करता है, परंतु लगभग प्रेम सम्बन्धी विधाओं एवं प्रतीक विधानों में पर्याप्त एक रूपता देखने को प्राप्त होती है। कहीं-कहीं सूफी विचारधारा एवं भारतीय विचारधारा में साम्यबिन्दु देख पड़ते हैं, किन्तु ऐसे प्रमाण अति अल्प हैं। इसी-लिए भारतीय क्षेत्र में स्वकीया भावना अत्यधिक काम करती हुई परिलक्षित होती है और सूफी साधनाओं में परकीयानुभूति ही विपुल मात्रा में उपलब्ध होती है।

कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में दाम्पत्य रति का जो प्रेम माधुर्य निरूपित हुआ वह अति भारतीय ही है। यही कारण है कि इन संत कवियों ने अपने को आराध्यदेव की नारी स्वीकार कर उनकी शरण में समर्पित कर दिया। इस पंथ में जिस दाम्पत्य रति का वर्णन किया गया है वह कबीर से कुछ भिन्न है क्योंकि उन्होंने अपने प्रेम वर्णनों में विभत्स चित्रणों का भरपूर समावेश किया है, इसका कारण सूफी-साहित्य का प्रभाव ही कहा जा सकता है। परन्तु इन पंथों के वर्णनों का रूप उत्कृष्ट एवं सुरुचि ढंग का ही बन पड़ा है। इन संतों ने दाम्पत्य प्रेम के अत्यल्प चित्रणों के साथ आत्म निवेदन परक या दास्यासक्ति भक्ति मूलक चेतना का ही विशेष रूप से आधार ग्रहण किया है।

प्रेम की स्थिति -

प्रेम की दो स्थितियाँ चिरकाल से ही स्वीकार की गई हैं, जिसे संयोग एवं वियोग कहा गया । वियोग की स्थिति विशेष कुतूहल-जनक एवं अपने प्रियतम से मिलनाकांक्षा की तीव्रता के कारण अधिक दारुण एवं कष्ट-प्रद बन जाती है, इसीलिए प्रेम भावना की तत्परता एवं विकास जितना इसस्थिति में होता है उतना अधिक संयोग पक्ष में नहीं, क्योंकि संयोग पक्ष में समस्त मनोवेग एवं आशाएं समाप्त हो जाती हैं और समस्त कुतूहल भी । यही कारण है कि वियोगावस्था ही साधकों के लिए विशेष प्रेय की वस्तु बन सकी है ।

वियोग -

पहले ही इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि वियोग ही संयोग से विशेष प्रिय है । क्योंकि एक का फल है विरह एवं दूसरे का मिलन, इसीलिए विरहजन्य परिस्थिति ही मिलन की स्थिति से प्रेमोन्माद के लिए विशेष रुचिकर होती है, क्योंकि बिना विरह के मिलन का क्या मूल्य ? इसी विरहाग्नि में तप्त मिलनाकांक्षा से उत्प्रेरित शरीरात्मा स्वर्ण की भाँति दिव्य बन जाती है । इस प्रकार संयोग की परिपुष्टि एवं आत्मा की तुष्टि के लिए वियोगानुभूति अत्यावश्यक है । वियोग से तप्त भक्त का हृदय ईश्वर के साक्षात्कार के लिए सर्वदा छटपटाता रहता है, कबीर पंथ में यद्यपि विरहजन्य स्थिति की यह उत्कृष्ट भूमि प्रस्तुत की है, वह अध्यात्मिक न होकर भौतिक ही अधिक बन पड़ा है । धनी धरमदास अपने बालम के परदेश चले जाने पर शोक विरहावस्था में कहती हैं कि "मेरा पति परदेश चला गया, , परन्तु हमें कुछ नहीं दिया ।[१] लगता है कि प्रेमानुभूति का उत्कृष्ट विकास उनके हृदय में अभी तक नहीं हुआ था, क्योंकि विरहजन्य अनुभूतियों से बढ़ कर और वस्तु क्या हो सकती है ? वे पुनः आगे कहते हुए देखे जाते हैं कि" मेरी और सखियाँ तो पार उतर गईं पर मैं अकेले रह गई " स्थिति की यह विषमता इन्हें और भी कातर एवं आतुर बना देती है । कबीर की भक्ति भावना से इतने ओत-प्रोत लगते हैं कि नेत्रों में बहे धारा प्रवाह की

मूर्ति को अकेले ही देखना चाहते हैं :—

> नैना अन्तरि आव तूं ज्यूं हौं नैन झपेउं
>
> नाहौं देखौं और कूंनां तुझ देखन देउं ।।
>
> —क०ग्र०, (सभा) पृ० १६ साखी २

कबीर-पंथ में इस प्रकार की उत्कृष्ट एकाधिकार की भावना जो कि भक्त हृदय का सर्वस्व है, नहीं देखी जाती । कबीर-पंथी संतों का विरह निवेदन संत कबीर की तुलना में अधिक मांसल प्रतीत होता है। कबीर के अनुसार ही उनमें प्रेम भावना और पकड़ती हुई ज्ञात होती है क्योंकि वे अपने मार्गीय अनन्त असुविधाओं का अतिक्रमण कर प्रियतम के साक्षात्कार के लिए उत्प्रेरित से लगते हैं। चलते चलते थक जाते हैं। नेत्र में धूल पड़ने से अन्धकार छा जाता है और मार्ग ही नहीं दिखाई पड़ता ।[१] कबीर-पंथी-साहित्य में इस प्रकार का वर्णन आया है कि प्रियतम की अनुपस्थिति में प्रेयसी की हार्दिक वेदना और भी मुखरित हो उठी है और तड़पती हुई कहती है कि —" अरे ओ प्रियतम, विरहाग्नि में संतप्त हो रही हूं, शरीर दग्ध हो रहा है, मन में उन्माद छाया हुआ है.........।[२]

इसी प्रकार दरिया साहब ने भी अपनी रचनाओं में विरह जन्य भावनाओं का विवेचन किया है कि एक स्त्री अपने प्रियतम से मिलने की अदम्य लालसा में अपने ससुराल जाना चाहती है :—

> मोहि ना भावे नैहरा ससुरवा जैबों हो ।
>
> नैहर के लोगवा बड़ अरियार । पिया के बचन सुनि लागे ला विकार ।।
>
> पिय एक डोलिया दिहल भेजार । पांच पचीस लागेला कंहार ।।
>
> नैहरा में दुख सुख सह लौं बहुत । सासुर में सुनलौं सवन मजबूत ।।
>
> नैहरा में बाबी भौजी ससुरा दुलार । सत के सेनुरा अमर भतार ।।
>
> कहै दरिया धन्य भाग सोहाग । पिया केरि सेजिया मिलल बड़ि भाग ।।
>
> —ग्रन्थ परिशिष्ट पृ० १४६ [illegible]

संयोग-पक्ष —

कबीर पंथ में प्रिय एवं प्रेयसी में आत्मसात हो जाने के भाव अधिक नहीं प्रदर्शित किये गये हैं। इस प्रकार का संयोग-पक्ष भौतिक न होकर आध्यात्मिक ही बन सका है, जहाँ पर कि जीवात्मा का सीधा तादात्म्य ईश्वर से हो सका है उसमें लौकिक प्रेम मिलन की बू भी नहीं आ पाई है।[१]

दरिया पंथ में इस प्रकार के उदाहरण अत्यल्प ही उपलब्ध होंगे, परमात्म मिलन की अवस्था में प्रेयसी के मुख से गद्गद वचन सहसा निकल पड़ते हैं।

तुहु पिया तुहु पिया तुहु पिया मेरो।
हौं पतनी पति नैननि हेरो।
—शब्द परिशिष्ट पृ०१७२(संतकवि द०एक अ०)

अन्य रूपों में प्रेम भावना का चित्रण —

कबीर पंथ में आध्यात्मिक प्रेम का निर्वाह दाम्पत्य सूत्रों के माध्यम से ही नहीं प्रत्युत पिता-पुत्र[२] तथा-सेवक-सेव्य[३] वाले सम्बन्ध में भी मुखरित हो उठा है। दरिया पंथ में भी दरिया साहब ने अपने को अनेक स्थानों पर सत्पुरुष का गुलाम सिद्ध किया है।[४]

प्रेम भाव व्यक्त करने वाले विविध दृष्टांत —

भारतीय-साहित्य में अतीव काल से ही प्रेम के चित्रण के लिए अनेकानेक दृष्टान्तों का आश्रय लिया जाता रहा है, प्रकृति में मानव के अतिरिक्त कुछ

---

१. धरमदास की शब्दावली, पृ० ५१
२. धनी धरमदास की शब्दावली, पृ० २०
३. वही, पृ० २६
४. शब्द वाणी, पृ० ८-६ (पाण्डुलिपि)

और भी विशिष्ट उपादान हैं जो कि प्रेम जगत् को विशेष साकार करते हुए देखे जाते हैं, साथ ही उनका प्रेम अत्यधिक उत्कृष्ट एवं अनूठा समझा जा सकता है, यही कारण रहा है कि जब कभी लौकिक प्रेम या आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी भक्त एवं भगवान के प्रति पवित्र-प्रेम का रूपक दिया जाता है, तभी इन दृष्टांतों की आवश्यकता पड़ती है, इस प्रकार जिन प्रतीक विधानों का प्रयोग इन पंथों में किया गया—जैसा कि बाद में इनका वर्णन करेंगे, उनकी हमारे साहित्य में एक सुविशाल परम्परा सुदूर काल से ही चली आती हुई देखी जा सकती है।

'जगजीवन बोध' में भक्ति क्षेत्र में कबीर-पंथी संतों ने इस प्रकार के पवित्र-प्रेम की अनिवार्यता समझी है जोकि मानवेतर गुणों से भी उत्कृष्ट समझे गये हैं। यथा :-

जैसे लगन चकोर की होई। चन्द्र सनेह अंगार चुगोई ।।

—जगजीवन बोध, पृ० ३५

जैसे मृगा नाद सुनि धावै। मगन होय व्याधा ढिग आवै ।।
चित कछु संक न आवै ताही। देत सीस सो नाहिं डराही ।।
सुनि सुनि नाद सीस तिन दीन्हा। ऐसे अनुरागी कंह चीन्हा ।।
औ पतंग को जैसो भाऊ। ऐसे अनुरागी उर आऊ ।।

—अनुराग सागर, , पृ० ४

चातक एवं स्वाती बूंद की परिकल्पना अतीत काल से लेकर आज तक पवित्र-प्रेम-सूत्र का द्योतक स्वीकार किया जाता है कि वह स्वाती बूंद के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार के जल को ग्रहण नहीं कर सकता और उसमें इस प्रकार की दृढ़ निष्ठा है कि उसकी प्राप्ति के लिए वह अपना प्राण तक त्याग सकता है परन्तु दूसरे जल का ग्रहण करना असम्भव है, यह प्रेम की पराकाष्ठा है, उसी प्रकार से भक्त के लिए भी ईश्वर प्रेम में निष्ठा पूर्वक आरूढ़ रहना आवश्यक है।[१] इसी प्रकार 'कबीर-बानी' में प्रेम व्यक्त करने वाले अनेक दृष्टान्तों का वर्णन एक साथ किया

गया है, जिनके माध्यम से ये संत भक्तों के हृदय में ईश्वर के प्रति इसी प्रकार की सच्ची लगन एवं भक्ति उत्पन्न करना चाहते हैं :--

जैसे स्नेह कमल और भौंरा । जैसे स्नेह चन्द अरु कोरा ।।
जैसे स्नेह मीन जल अंगा । जैसेहि स्नेह है दीप पतंगा ।।
जैसे स्नेह मृगा अरु जंत्री । जैसे स्नेह चकमक और पथरी ।।
जैसे स्नेह स्वाति औरपपीहा । जैसे स्नेह चुम्बक अरु लोहा ।।
जैसे स्नेह मीन अरु नीरा । जलबिछुरे बहु तजे शरीरा ।।
ऐसे गुरु शिष्य को सन्देशा । मुक्ति होय गुरु मिट्यो अंदेशा ।।

—कबीर बानी, पृ० १०६

इसी प्रकार के दृष्टान्त दरिया पंथ में भी विपुल मात्रा में प्राप्त होते हैं, प्रेम द्योतक प्रतीक विधानों की एक सुविशाल परम्परा दरिया पंथी-साहित्य में हमें देखने को मिलती है, उत्कृष्ट प्रेम काउदाहरण दरिया साहब ने 'भक्ति हेतु' में प्रस्तुत किया है, सर्प बड़ी ही तपश्चर्या के अनन्तर मणि रूपी अमरनिधि की उपलब्धि करता है, क्योंकि उसको अपने जीवन के असंख्य वर्ष तक विष की रक्षा करनी पड़ती है, और तब सीप के संयोग से जीवन-मूल मणि को प्राप्त करता है, परन्तु उस मणि को जब घास-फूस चरने के लिए जंगल की ओर जाता है, उतार कर किसी जगह सुरक्षित रख देने पर भी उसे बराबर देखता रहता है कि कोई आकर उसे चुरा न ले, ठीक उसी प्रकार साधक साधना भूमि में न मालूम कितने वर्षों बाद सफल हो पाता है ?

फनि मनि मनि जिमि धरत उतारी । चरत बरा दिठि द्रिस्टिनवारी।।
फिरि नाहि एक पलक बिसवासा । लीन्हउठाय अरध मुख ग्रासा ।।७।।

साहित्य में शलभ और पतिंगे का प्रतीक विधान कितना उत्कृष्ट एवं सुन्दर है कि दीपक के पवित्र बन्धन में पड़कर पतंग आत्म समर्पण कर देता है :-

ज्यों पतंग मुख मोरत ना टारी । सन्मुख द्रिस्टि दीपक मंझारी ।। ८।।

पति के विरह में आतुर पत्नी अपने शरीर को अग्नि में भस्मीभूत कर देती है, यही साहस तो प्रेम-जगत् का सार है, ऐसे ही साहस की ईश्वर-प्रेम के लिए आवश्यकता है :-

साहस नारि करै पिय पासा । अगिनि जरै नहिं तन के आसा ।।६
सन्मुख छोड़ि पिया संग जाई । नाम निरखि ऐसे चितलाई ।।१०

इसी प्रकार दरिया साहब की प्रेम-जगत् के लिए चातक एवं चकोर की प्रेम कल्पना अतिश्लाघ्य है :-

चन्द चकोर देहिनहिं पीठी । ग्यान सुरति राखहिंदिबि दीठी ।।११
—भक्ति हेतु, पृ० २७८

हारिल-लकड़ी , चुम्बक-लोह एवं पारस पत्थर-लोह का प्रतीक विधान भी द्रष्टव्य है :-

हारिल टेक लकरि पर राखै । ऐसी प्रीति अम्रित रस चाखै ।।३०।।
ज्यों चुंबक पारस गांसी पावै । छोड़ि कठिन निकट चलि आवै ।।३१।।
—भक्ति हेतु, पृ० २८०

४. साधु —

भक्ति-क्षेत्र में साधु का स्थान अति ही महत्वपूर्ण एवं अनुपम है, साधु-जीवन मानव-जीवन का सार है, यह स्थिति समग्र जीवन के तिल-तिल एवं पल-पल की अनन्त एवं अमर साधना के अनन्तर जीवन-फल के रूप में उपलब्ध होती है। साधु ही उस अव्यक्त जगत्के सत्य स्वरूप की परख भली-भांति कर पाता है, और जो व्यक्ति इस प्रकार के उत्तुंग-शृंग पर जा पहुंचता है, पुन: उसके लिए कुछ अभीष्ट रह ही नहीं जाता। साधु-जीवन अत्युत्कृष्टता, पूर्णावस्था, परम ज्ञान, समदृष्टा, पुण्य धर्मा, कर्तव्यपरायणता, को प्राप्त हुआ एक उत्तुंग-शृंग है जहां पर व्यक्ति पहुंच कर स्थित प्रज्ञ, त्रिगुणातीत, ब्रह्मभूत बन जाता है परिणामस्वरूप जो न किसी को उद्विग्न करता है और न उसे कोई उद्विग्न करता है, जो हर्ष-विषाद सुख-दुख, राग द्वेष, जय-विजय एवं भयादिक मानवीय दुर्बलताओं से परे होकर शोक विरहितावस्था को प्राप्त हुआ सम्पूर्ण प्राणिमात्र में एक ही आत्मा का दर्शन करता है।

साधु महिमा —

कबीर पंथी साहित्य में साधु महिमा का गायन बड़े ही अनुपम एवं सुन्दर ढंग से किया गया है :—

छन्द

गुरु साधु महिमा अमित अगम अपार पार नहिं कोऊ लहै।
शीश बल ओंकार हरि गुरु साधु पद रज लेऊ चहै।।
सनकादिक सुरनर मुनि सिद्ध ज्ञानी साधुगुरु आश्रित रहैं।
हरि साधु गुरु महिमा प्रकाशै निगम अस्तुनिनित कहैं।।

— ज्ञान प्रकाश, पृ० ९१

ऐसे महत्वपूर्ण संतजनों की अमित अगम एवं अपार लीला को जानते हुए भी जो मूढ़जन चक्षुहीन बने हृदय में विचार न कर विषय बेलियों में लिपटे रहते हैं, पर साधु भक्ति से विमुख होकर उनसे छल-छद्म एवं चतुरता का व्यव-हार करते हैं, उन्हें अंत में यमराज कस कर यमलोक में बांध कर ले जाता है, ऐसी अवस्था में पश्चाताप के अतिरिक्त और दूसरा कोई चारा नहीं रह जाता है।[1]

कोटि तीर्थ सन्तन्ह पद वासा । अंधा जीवहि नहिं विश्वासा ।।
सन्त जाहि घर चरण पखारा । भूत पिशाच होये सबन्यारा ।।
नौग्रह करवसि नहिं चलई । सब विघ्न सदा सो दलई ।।
जेहि घर संत चरण पर छाले । संत उच्छिष्ट जाहि घर डाले ॥
ता कर फल कछु वरणि न जाई । जाहि गहि विश्वास करे सेवकाई॥

—ज्ञान प्रकाश, पृ० २२

सन्तजन का सम्मान मोक्षप्रद है। जपयोग, दान एवं अनेक कर्मों का विधान करने पर, करोड़ों तीर्थों की परिक्रमा आदि करने से परम पद की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं। जब तक हृदय में दया उत्पन्न नहीं होती, तब तक समस्त कर्म निःसार एवं निष्फल ही रहेंगे। वही व्यक्ति पार पा सकता है, जो शब्द का सुदृढ़ आधार ग्रहण करे :-

<u>सोरठा</u>

जीवदया चित माँ धरै, तबैं अगम अहार।
संत दया धरि नाम गहिं, उतरै भव जल पार ।।

—ज्ञान प्रकाश, पृ० २३

ईश्वर एवं संत में तात्विक दृष्टि से कुछ भी अन्तर नहीं है, संत-समाज में ही ईश्वर छिपा हुआ है, ईश्वर एवं संत में जल एवं तरंग का सम्बन्ध है। जिस प्रकार जल में तरंगे हैं, उसी प्रकार संतों में ईश्वर निवास करता है।

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० २१

जिस प्रकार वृक्ष एवं उसकी छाया अभिन्न है, उसी तरह भगवान संत जनों से अभिन्न हैं।[1] 'ज्ञान प्रकाश' में वर्णन आया है :-

> हमरे अस मति जानिय भाई। साधु माहिं प्रभु प्रगट रहाई।।
> जहां हरी तहां पितर अरु देवा। सब होंहिं तृप्त साधु की सेवा।।
> कहां अन्ते प्रभु खोजे जाई। हम देखें प्रभु सन्तन माहिं पिछानो आई।
> हरि औ सन्त दोय जनि जानों। प्रभु कहैं सन्तन्ह माहिं पिछानो।
> अस परतीति आनहु उर माहीं। सन्तन्ह तजि अन्ते प्रभु नाहीं।।
> जल तरंग जल आहे भाई। हरि हरिजन अस माहि रहाई।।
> जैसे वृक्ष वृक्ष की छाया। अस हरि हरिजन माहिं रहाया।।
>
> —ज्ञान प्रकाश, पृ० ४१

जो लोग साधुजनों को प्रेमपूर्वक भोजन देते हैं उन्हें करोड़ों तीर्थों का फल घर पर ही प्राप्त होता है, सत्य गुरु साधु द्वारा प्रदत्त सत्यनाम ग्रहण कर लेने से समस्त आधिव्याधियाँ स्वत: विलीन हो जाती हैं।[2]

> साधु के संग ते परम सुख उपजै, जगत् के संग ते जन्म खोवै।
> साधु के संगते परम पद पाइए, जगत् के संग दुख होय भारी।।
>
> —आत्मबोध, पृ० ६८

इसी प्रकार दरियापंथ में भी साधु की महत्ता स्वीकार की गई है कि साधुजनों को यम का शिकार नहीं होना पड़ता।[3] निम्नपदों में कबीरपंथ जैसा ही वर्णन द्रष्टव्य है :—

> संत दरस गुन सुखद अति, हृदय कंवल परकास।
> जो पसु पड़े प्रनाम सम, सुरसरि जल पद पास।। [illegible]

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ४१
२. वही, पृ० [illegible]
३. दरिया सागर, पृ० [illegible]

संत सर सगुन ध्यान की गति यह मंजन मैलि छोड़ावहीं ।
दरस परस भव भरम भाजे वह जब हरिकथा परकासहीं ।।३३।।
आनन्द मंगल रंग रहित सभ सुघर संत गुन गावहीं ।
सुनत स्रवन हिय लोचन बिकसै भंवर भाव रस पावहीं ।।३४।।

— ज्ञान रतन, पृ० २१४

विना संत के सुख एवं सत्य की उपलब्धि कदापि सम्भव नहीं । इस लिए साधु की सेवा को अनिवार्य कहा गया है :—

सदा प्रसन्न मन संत विरागा । पद पंकज मन जानु प्रयागा ।१६७६
नित मल मंजन दरस मंह काहू । तेजि बारुन अम्रित रस भरहू ।।१६७७

—ध्यान रतन, पृ० २२६

दरिया साहब ने संत दरस की महिमा का गुणगान करते हुए बताया है कि संत दर्शन का गुण सर्वोपरि है, जिस प्रकार मस्तक के मध्य मुकुट की मणि, वहां दीपक की कोई अनिवार्यता नहीं, न तो अनन्त तीर्थों में भटकने की ही कोई आवश्यकता है ।[1] संत दर्शन से विष भी अमृत हो जाता है, वे लोग बुद्धि विहीन हैं, जो कि संत जनों से बैर भाव रखते हैं, ऐसे लोग अपने पग में कुल्हाड़ी मार कर अंतत: पश्चाताप करते हैं, उनकी कुमति तभी समाप्त हो सकती है जबकि उनके अन्तरंग में सुमति के बीज अंकुरित हो जांय । वह गांव धन्य है जहां पर संत जनों का निवास है । दरिया साहब ने कबीर पंथ की भांति ऐसी कल्पना की है कि संतजनों में ही ईश्वर-का- नित्यशः निवास करते हैं ।[2] संत जन पारस के सदृश हैं, और उनका सीधा तादात्म्य ईश्वर से है, इसलिए उन्हें ईश्वर स्वीकार करना अनुचित नहीं है ।[3] साधु की महिमा शेष, महेश, नारद एवं मुनिगण आदि भी गाते हैं, इनकी महिमा सिंधु जल के सदृश अगम एवं अपार है :—

साधु महिमा यह सेस बखाना । गौर महेस नारद मुनि जाना ।।[illegible]।
साधु के महिमा बेद जो कहई । कहा ब्यास सुकदेव सुखलहई ।।[illegible] ।।

— ध्यान मूल, पृ० [illegible]

साधु कै महिमा कहि नहिं जाई । जैसे सिंधु जल थाह ना पाई ।।२५२
जैसे रवि ससि सब ते ऊंचा । अवरि जीव जगत सब नीचा ।।२५३
थाके निगम साधु गुन गाई । सेस सहस्र फनि चरित सुनाई ।।२५४।।
आदि अंत थाके मुनि केता । साधु महिमा है सिंधु समेता ।।२५५।।

— ज्ञान मूल, पृ० ३६४

इस प्रकार संत महिमा का वर्णन असम्भव है, जिसने इनका भजन प्रेम एवं निष्ठा के साथ किया उसे सत्यनाम की परख असंभव नहीं है ।[१] साधु दर्शन से समस्त कार्य सिद्ध हो जाता है, वह स्वत: आनन्द एवं मंगल का परम धाम है । वह ग्राम धन्य है जहां पर ज्ञानी एवं योगी साधु का पुनीत समागम बना रहता है । वहीं पर करोड़ों तीर्थ स्थान हैं, जहां पर ईश्वर के प्रेम का पवित्र प्रवाह आन्दोलित होता रहता है, उनका दर्शन करते ही समस्त मन की कुप्रवृत्तियां तिरोहित हो जाती हैं और मन शीतल हो जाता है, जिस प्रकार मणि एवं भानु के समक्ष अंधकार लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार संत दर्शन के प्रकाश से मोह तिमिर समाप्त हो जाता है । साधु महिमा इतनी अत्यधिक है कि वह सिन्धु में भी नहीं समा सकती, इसीलिए आगम निगम भी साधु महिमा गायन में अशक्त हैं ।[२] साधु के निकट ही समस्त तीर्थस्थान हैं :—

कोटि तीरथ साधुन्हि के आना । भगति भाव किल विष सब हरना ।।
साधु निकट सब तिरथ कहावै । भूला भरमि के जग भरमावै ।।४५६।।

—दरिया सागर, पृ० ४५

साधु आचार —

'अनुराग सागर' में इस प्रकार का उल्लेख आया है कि जो व्यक्ति भृंग की भांति आचार करता है अर्थात् जिसकी समस्त वासनाएं समाप्त हो जाती हैं

---

१. वही, पृ० ३६३
२. द्रष्टव्य पृ० ३७५ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

वह पूर्णरूपेण शुद्ध बुद्धि बन जाता है, उसकी समस्त आधि व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं। साधु आचार नितांत कठिन है, साधु वह है जो अपनी इन्द्रियों को समत्व भूमि पर पहुँचा कर पूर्णरूपेण विरागी बन जाता है। इसमें इन्द्रिय निग्रह के विषय में संकेत किया गया है कि सर्व प्रथम नेत्रेन्द्रिय का नियमन आवश्यक है, जिससे किसी वस्तु के प्रति सुन्दर एवं असुन्दर का भाव रह ही न जाय। दूसरे श्रवणेन्द्रिय- जिससे हर्ष विषाद वाले प्रसंग को सुनकर सुख दुख का अनुभव न हो, तीसरे नासिका - जिससे घ्राण करने में सुगन्ध या दुर्गन्ध का भाव समाप्त हो जाय, चौथे जिह्वा- जिससे भोजन करने में खट्टा, मीठा एवं तिक्त पदार्थों के प्रति किसी प्रकार का लगाव न उत्पन्न हो और अंतिम पाँचवीं अति प्रबल कामेन्द्रिय है, इस पर विशेष रूप से अधिकार प्राप्त कर इसका दमन करना नितान्त उपयोगी है, इन सबका परमोपाय एक मात्र गुरु शब्द ही है।[१] कामेन्द्रिय के निग्रह का सर्वोत्तम उपाय कबीर-पंथी-साहित्य में बताया गया है :-

> सूखा फीका करै अहारा। निशिदिन सुमरै नाम हमारा ।।
>
> —ज्ञान बोध, पृ० २८
>
> दीपक ज्ञान प्रकाश, भवन उजेरो करि रहौ।
>
> सतगुरु शब्द विलास, भाज चोर अँधेरा सब ।।७।।

साधु बनने के लिए गुरु की कृपा अति अपेक्षित है।[२]

— अनुराग सागर, पृ० ६

> निरालम्ब अलम्ब सतगुरु, एक आसा नामकी।
>
> गुरु चरण लीन अधीन, निशिदिन चाहहिं धन धामकी।।
>
> जुगनारि सकल बिसारि विषया, चरण गुरु दृढ़ के गहे।
>
> सतगुरु कृपा दुख झकझोरि, धाम अविचल सो लहे।।८।।
>
> —अनुराग सागर, पृ० १०

---

१. अनुराग सागर, पृ० ७-६

२. वही.

साधु को सर्वप्रथम अखाद्य वस्तुओं का त्याग अनिवार्य है। हृदय में प्रेम एवं भक्ति धारण कर पर द्रोह एवं घात की ओर दृष्टि न फेरे। जीवों पर दया भाव अर्पित करना आवश्यक है और मनसा,वाचा एवं कर्मणा किसी प्रकार हिंसा करने का प्रयास न करें। जिस पर मोह,मद आदि का कुछ भी प्रभाव नहीं है, वही साधु है, राग-द्वेष, सुख-दुख, इन्द्रिय सुख, मन, तत्त्व, प्रकृति, काम, क्रोध, मद-लोभ, अभिमान, जय-विजय, मान-अपमान आदि की सीमाओं से जो व्यक्ति अपने को विमुख कर ले वही साधु है, इसके अनन्तर जिसमें शील, संतोष, दया, क्षमा, दैन्य, प्रेम, प्रीति, धैर्य आदि गुणों का समावेश हो जाय वही शुद्ध बुद्धि वाला परम ज्ञानी साधु है। इस प्रकार साधु की महिमा अनादि और अनन्त है, जिसके प्रभाव से यम से भी संरक्षण सम्भव है। साधु ही सत्य एवं निर्मल ज्ञानवाला है। साधु को सम्मान एवं गौरवादि की कोई भी कामना नहीं रखनी चाहिए, और उसे तन,मन,धन से साधना पथ पर आरूढ़ होकर शुद्धाचरण करना आवश्यक है।[1] साधु आचार अतिकठिन है, जीते जी मरणशील की तरह व्यवहार करे अर्थात् प्रत्येक दृष्टि से विकारहीन होकर पृथ्वी की तरह गुणशील बने। अथवा जो शान्ति, संतोष, दया, क्षमा आदि गुणों से युक्त एवं मेरु पर्वत की तरह धैर्यवान हो वही साधु है।[2]

'उद्धवगीता' में श्री कृष्ण ने अर्जुन से साधु का लक्षण बताया है कि साधु पंच-तत्व एवं पच्चीस प्रकृतियों की माया से परे होकर और इन्द्रियों के विकार से दूर रहे, गृहस्थ आश्रम में भी निवास करता हुआ कुटी में निवास करे। गुप्त स्थान पर समाधि लगाये। धरा पर अचल समाधि में मग्न होकर सुरति एवं निरति के माध्यम से योग की साधना करे। इस प्रकार आचरण करता हुआ व्यक्ति जो ईश्वर प्रेम में ध्यान मग्न रहता है, उसे जन्म एवं मरण की कोई भी

---

१. हनुमान बोध, पृ० १२६, ज्ञान प्रकाश, पृ० १७,१८

२. ज्ञान प्रकाश, पृ० ७

विधा बाधा नहीं उत्पन्न कर सकती । निद्रा एवं आहार-व्यवहार की साधना करता हुआ व्यर्थ के ढोंगों से दूर रहकर संयम द्वारा मन को केन्द्रित करते हुए जो ज्ञानोपलब्धि स्वरूपी अमृत की प्राप्ति ही चरमोद्देश्य समझता है, वही साधु है।[१] जो मित्र, शत्रु, पुत्र-शत्रु, पाप-पुण्य आदि विरोधी गुणों में किसी भी प्रकार की आस्था न रख, जग से पूर्ण उदासीन, शीतोष्ण से अज्ञान, स्त्री-पुत्र, कलत्र आदि की माया से वंचित होकर ईश्वरानन्द के लिए आजीवन अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दे वही सच्चा साधु कहलाने योग्य है।[२]

ग्रन्थ 'ज्ञान बोध' में साधुओं के लिए काम, क्रोध, लोभ, अहंकारादि कुप्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ मार्ग निर्दिष्ट किए गए हैं। सूखा फीका भोजन करते हुए सर्वथा नाम का जाप करें।[३] 'धर्म बोध' (पृ०१४-२०) में भी साधु के विषय में ऐसे ही चित्र प्राप्त होते हैं।

कबीर पंथ के वर्ण्य विषय के बहुत कुछ अनुरूप ही दरिया पंथ में साधु के लिए अनेक आचारों का वर्णन किया गया है। दरिया साहब ने संत के लिए सर्वप्रथम संतोष धारण करना अनिवार्य बताया है, जो व्यर्थ के ढोंगों का बाना पहन कर अपने निन्दनीय आचारों से जगत् में रुझान पैदा करने वाले साधु हैं, वे ईश्वर को प्रिय नहीं। जो शब्द धारण कर चिरंतन सत्य का अन्वेषण करता हुआ जगत् के अपवाद से दूर रहे वही संत है।[४] कबीर पंथी रचना 'अनुराग सागर' में साधु के लिए जिस मुक्त भाव की कल्पना की गई है, उसी के अनुरूप ही दरिया साहब ने साधु को समस्त विकारों से वंचित होने की कल्पना की है, जिस प्रकार कमल-पत्र एवं जल कुक्कुट पक्षी दोनों जल में रहने पर भी उसके प्रभाव से दूर रहते हैं, अर्थात् कभी भींगते नहीं ठीक उसी प्रकार से साधु को इस जगत् में विचरण करते हुए भी इसके मायावी आकर्षण से सदा अप्रभावित रहना ही अनिवार्य है, ऐसी अवस्था को उन्होंने निर्लेप भाव की

---

१. उग्रगीता, पृ० २३
२. वही, पृ० २६

संज्ञा से अभिहित किया है। जिस प्रकार दधि मंथन से घृत निकल आता है, किन्तु वह पुन: दधि में प्रवेश कर तद्वत नहीं हो सकता और तिल से तैल निकल कर उसके लिए पुन: तिल में परिवर्तित होना पूर्ण असम्भव है, उसी प्रकार संत मायातीत हो कर पुन: माया के प्रपंच में नष्ट भ्रष्ट नहीं होना चाहता। वह चिरंतन सत्य एवं अचलानन्द स्वरूपी परमाधि देव के अन्वेषण में लीन रहना चाहेगा, जिसके लिए अजपाजाप करता हुआ जगत् के भ्रम एवं अपवाद से निगम होकर साधना पथ पर निष्ठापूर्वक अग्रसर होता रहेगा। साधु अपने मन को शांत कर उन्मुनि प्रकाश द्वारा काया को आलोकित करना चाहेगा।[१]

मन मानिक दीपक बरै, उन मुनि गगन प्रकास।
मन मोदिक मद तेजिकै, जरा मरन जम त्रास।। ८७

—दरिया सागर, पृ० १०५

जो त्रिगुणों की परख भली भाँति करके ज्ञान एवं भक्ति की साधना करता है वही सच्चा साधु कहलाने योग्य है।[२] जिसमें संतोष शील एवं प्रेम रस भरा हो और जो दूसरे की दुष्प्रवृत्तियों का नाश कर सत्य का प्रकाश करते हुए समस्त अन्ध एवं पातक का सर्वनाश करता है, ऐसा गुणशील व्यक्ति साधु कहा जा सकता है।

संत सोई संतोष में आवै। सील संतोख प्रेम रस पावै।।३४६।।

—ब्रह्म बिबेक, पृ० ३६०

साधु सोइ जो दुरमति खोवै। सांच रहै अघ पातक धोवै।।१७६।।

—ग्यानमूल, पृ० ३८८

संत ही ब्रह्मात्मैक्य की भावना से प्रेरित हुआ इस जगत् में आचरण करता है, इसीलिए वह समस्त जीवों को अपने सदृश समझ सबसे प्रेमभाव रखता है। जो व्यक्ति आत्मवत् सम बुद्धि से इस संसार में व्यवहार करता है वह सर्वोच्च नियमों का प्रतिपालक है।[३]

---

१. दरिया सागर, पृ० १४०-१५०
२. वही, पृ० १०५
३. ग्यान सरोै, पृ० [illegible]

जस पियार जिव आपनै तस जिव सभै पियार ।
जानहि संत सुबुद्धि जन, जाकै विमल बिचार ।।४।।

—ग्यादसरोदै, पृ० २५०

इसी प्रकार की भावना चिरकाल से ही संत साधकों में चली आ रही है, यही कारण है कि बौद्ध भिक्षुओं ने भी इसी उत्कृष्ट धरातल पर पहुँच कर उपदेश दिया था :-

यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहम् ।
अत्तानं (आत्मानं) उपमं कत्वा (कृत्वा) न हनेय्यं न घातये ।।

इसका अभिप्राय यह है कि "जैसा मैं वैसे ये, जैसा ये वैसा मैं, इस प्रकार अपने तुल्य समझकर न तो (किसी को भी) मारे और न मरवावे" (सुत निपात् नालकसुत २७) । 'धम्मपद' नामक पाली बौद्ध ग्रन्थ (धम्मपद १२९-१३०) में भी इसी श्लोक का दूसरा चरण ज्यों का त्यों आया है । और त्यों ही 'मनु स्मृति' (५।४५) एवं 'महाभारत' (अनु० ११३।५) इन उभय ग्रन्थों में प्राप्य श्लोकों का पाली में इस प्रकार का अनुवाद किया गया :-

सुख कामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो (इच्छुक) पेच्च सो नलभते सुखम् ।।

अर्थात् "अपने समान सुख का इच्छुक दूसरे प्राणियों को जो (आत्मा) सुख के लिए मारता है, उसके मरने पर सुखोपलब्धि नहीं" (धम्मपद १३१) । इस मत पर वैदिक प्रभाव परिलक्षित होता है । इसलिए स्पष्टत: उपर्युक्त संत साधना पर वैदिकी प्रभाव ही दृष्टिगत होता है ।

अपनी आत्मा के स्वरूप ही समस्त आत्मा को स्वीकार कर समस्त जगत् में दया भाव प्रदर्शित करता हुआ साधु अहिंसा का आचरण करता है । वह गर्व मोहादि शारीरिक विकारों को त्याग कर सत-भक्ति रूपी पावन मन्दाकिनी की लहरों में अपने को स्नान करा के सदा के लिए पवित्र करना चाहता है ।[१] विदित सत्य की गवेषणात्मक बुद्धि रखने वाला एक मात्र साधु पुरुष ही

होता है जो मदमस्त हुआ गगन में डेरा डालता है,जहां पर पहुंच कर वह मधुर अमी रस का पान करता है और गर्व दूर कर अपने अन्ततम की समस्त कुमतियों को धो डालता है। उस प्रकार जिसकी समस्त दुष्प्रवृत्तियां नष्ट भ्रष्ट हो गई हैं वह निस्पृह एवं शांत बन जाता है, उसका चंचल मन स्थिर हो जाता है और जीविता-वस्था में ही मृतवत् जगज्जंजालों से मुक्त होकर सदा के लिए विमल बन जाता है।[१] साधु मन पर भली भांति अधिकार कर लेता है।[२] कबीर पंथ के सदृश दरिया पंथ में भी साधु के लिए यह बताया गया है कि वह दैन्य एवं अनाहार का सेवन करते हुए सदाचरण का पालन करे[३] और दूसरे के सुख में सुखी एवं दुख में दुखी हो।[४] जिस प्रकार नदी एवं वृक्ष एक मात्र परोपकार के लिए ही जल एवं छाया प्रदान करते हैं ठीक उसी प्रकार साधु का समग्र जीवन परोपकार में ही समाप्त होता है।

संतो साधु लछन निजु बरना।
बिगसित नैन बोलु सत बानी देखु कमल दल चरना।।
ऊंचे नीचे चलब संभारे समुझि समुझि पगु धरना।
परमारथ पर पीर जो जाने पर आतम के मरना।।
सिंह ठवनि धरि जुथ जेहि नाहीं जियतहिं भोजन करना।
प्रीतक मंद दुरि परित्यागहु ऐसो पेट ना भरना।।
दया दीनता लीन बरन में एक दसा निजु धरना।
कहैं दरिया सुकृत दिल सांचो भवसागर में तरना।।

—शब्द पृ० ११५-११६ परिशिष्ट(संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

सुखद संतगुन पर दुख हीता, ज्यों द्रुम सरिता जल फल हीता।
परमारथ करि स्वारथ नाहीं, ज्यों जल बुड़ा उबारेउ बांही।।

—ज्ञानदीपक, पृ० १६ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

---

१. ध्यान बारौदै, पृ० २५१
२. वही, पृ० २५६
३. वही, पृ० २६१

पर दुख देखि कबै नहिं हरखै । दया समेत अभी घन बरखै ।।१७८८।।
अति प्रसन्न सोजन जुगुता । पाप पुन्य कबहूं नहिं भुगता ।।१७८६।।
—ग्यान रतन, पृ० २३७

संत सुधारस करै बिनाई । ज्यों मराल नीर छीर बिलगाई ।।२५ ।
छांड़ि छीर नीर जो पिवई । नाम निरख ऐसे चित धरई ।।२६।।
—भक्ति हेतु, पृ० २७६

दरिया साहब ने साधुओं के लिए उपदेश दिया है कि उन्हें सत्य की माला संतोष की भोली, ज्ञान की छड़ी और मधुर वचनों का कमण्डल धारण कर सदाचरण करना चाहिए ।[1] यह कल्पना कितनी उत्कृष्ट एवं हृदयग्राही बन सकी है ।

गृही-साधु —

कबीर पंथ में दरिया पंथ के अतिरिक्त गृही साधु का वर्णन सविस्तार ढंग से किया गया है । गृही साधु गार्हस्थ जीवन में रहते हुए संतजनों की सेवा करता है, उसके लिए सद्गुरु ही सर्वस्व है, जिसकी भक्ति को ही वह अपना चरम लक्ष्य स्वीकार कर उसकी शरण में अपने को उत्सर्ग कर देता है । वह एकान्त में सुमिरन भजन करते हुए साधु सेवा एवं उनकी आरती में अपना कल्याण समझता है ।[2]

साधु-सेवा —

कबीर पंथ में इस बात की अनिवार्यता व्यक्त की गई है कि साधुसेवा के लिए एक भक्त को अपना तन मन-धन आदि सब का दान कर देना चाहिए।[3] गुरु के चरणोदक को प्रेम भाव से ग्रहण करने पर निश्चय ही अमरलोक की प्राप्ति

---

१. शब्द पृ० १०८ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. धर्मबोध, पृ० ६, ज्ञानसागर, पृ० ६०
३. मुक्तिबोध, पृ० ७२, अमर मूल, पृ० २०७

होगी ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों पंथों में इस बात की ओर बल दिया गया है कि व्यर्थ के वाह्यचारों को त्याग कर मात्र साधु सेवा रूपी कवच - धारण करने से साधना पथ पर सफलता पूर्वक एक भक्त आगे की ओर सतत बढ़ता रहेगा, अन्यथा निराशा ही हाथ लगेगी, जिसके लिए दया , हिंसा आदि उत्कृष्ट गुणों की अनिवार्यता है :-

जप योग दान विधान बहु बिधि करै कर्म अनेक हो ।
सत कोटि तीरथ भू परिकरमा करिन पावै थेक हो ।।
जौलों दया नहिं जीव को, तौ सबहि कर्म असार हो ।
कोई लखै सज्जन जौहरि मैं कह्यौ शब्द सेवा करै पुकारि हो ।।
सत्यनाम गुण गाय, गृही साधु सेवा करै ।
सहज परम पद पाय, सौ सतगुरुपदविश्वासधरि ।।
—ज्ञान प्रकाश, पृ० २३

दया धरै दिल करै बिबेखा । गुर गमि ग्यान रहै चित पैखा ।।१६।।
बिनु दिल दया धरम नहिं लोका । बिनु सत संग मेटै नहिं सोका ।१७।।
—भक्ति हेतु , पृ० २७८

---

1. ज्ञान प्रकाश, पृ० २२

अध्याय - ६

विधि एवं निषेध

अध्याय ६

विधि एवं निषेध

विधि एवं निषेध साधना मार्ग में पहला सहायक है एवं दूसरा बाधक। विधि का अभिप्राय उन साधनों से है जो कि ईश्वर प्राप्ति में सहयोगी सिद्ध होते हैं इनमें उन्हीं आचरणों की गणना होती है जो कि ईश्वर को भी भले लगें साथ ही मनुष्यों को भी। अन्यथा हम लक्ष्य भ्रष्ट सिद्ध होंगे। ये मार्ग निम्न हैं :—

सत्य भाषण—

सत्य ही सदाचरण की रीढ़ है, जिसे कि चिरकाल से ही धर्म साधना में प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। यह एक देशी ही नहीं प्रत्युत सर्व - देशी धर्मों में भलीभांति स्वीकृत एवं सुरक्षित समझा गया है। सत्य का वर्णन करना पूर्ण असम्भव है। वेद में सत्य महिमा का गायन इस प्रकार किया गया है कि समस्त सृष्टि के पूर्व ' ऋतं ', एवं 'सत्यं ' उत्पन्न हुए, और सत्य ही से आकाश, पृथ्वी, वायु आदि पंच महाभूत स्थिर हैं ' ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसो-ऽध्यजायत ' (ऋ० १०, १९०, १), सत्येनोत्तभिता भूमिः ' (ऋ० १०।८५।१) 'सत्य' शब्द का धात्वर्थ भी यही है कि —'सदास्थिर' अर्थात् इसका अर्थ है ' जिसका कभी अभाव न हो, अथवा त्रिकाल अबाधित, इसीलिए यह उक्ति प्रसिद्ध है कि ' सत्य के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है, सत्य ही परब्रह्म है।' महाभारत में यह कई बार दुहराया गया है ' नास्ति सत्यात्परो धर्मः ' (शां० १६२।२४) और यह भी उल्लिखित है कि —

> अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलयाधृतम्
> अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

'हजार अश्वमेध और सत्य की तुलना की जाय तो सत्य ही अधिक होगा (आ०७४।१।२) ।' सत्य के विषय में मनु ने इससे भी उत्कृष्ट कल्पना की है :—

वाच्यर्था नियता: सर्वे वाङ्०मूला वाग्विनि:सृता :
तां तुय: स्तेनो द्वाचं सर्वस्तेय कृन्नर: ।।

मनुष्यों के सब व्यवहार वाणी द्वारा होते हैं । एक दूसरे से विचार विमर्श करने के लिए शब्द को छोड़कर और साधन नहीं है । वही सब व्यवहारों का आश्रय स्थान और वाणी का मूल होता है । जो उसको मलीन कर डालता है अर्थात् जो वाणी की प्रतारणाकरता है, वह सब पूंजी की ही चोरी करता है ।' इसीलिए मनु का कथन है 'सत्यपूतां वदेद्वाचं, (मनु० ६।४६) जो सत्य द्वारा पवित्र किया गया हो, वही बोला जाय । धर्मों में सत्य का ही प्रथम स्थान घोषित करने के लिए उपनिषद में कहा गया है, सत्यंवद । धर्म चर' (तै० १।११।१) । कहने का अभिप्राय यह है कि सर्व प्रथम सत्य धारण ही अनिवार्य है तभी धर्म-निर्वाह सम्भव है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सत्य की प्रतिष्ठा अनादि काल से ही की गई है और कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में अनिवार्य रूप से सत्य ग्राह्य समझा गया है । संत कबीर स्वत: सत्य के सबसे बड़े अन्वेषक थे, इसीलिए सत्य कोप्रत्यक्षीकरण करने में ही इस महासंत ने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया और उन्होंने अपने जिस भर पूर परिश्रम से साधनापथ का रूप दिया वह सत्य पर ही आधारित है :—

सबहीं ते सांचा भला, जो दिल सांचा होय ।
सांच बिना सुख नाहिं है कोटि करे जो कोय ।।६७।।
सांचा सौदा कीजिए, अपने दिल में जानि ।
सांचे हीरा पाइए , झूठे मूलो हानि ।।६८।।

— बीजक, पृ० १३६

सत्य के प्रति जो कबीर की मान्यता है उसकी पुष्टि कबीर ने भी बड़े ही अनुपम ढंग से किया है :—

साँचहि शाप न लागयै, साँचहिं काल न खाय ।
साँचहिं साँचे जो रहै, ताको काह न शाप ।। ३४३।।

—बीजक, पृ० १५५

कबीर द्वारा सत्य का जो रूप निरूपित किया गया है, वह भी ध्रुव सत्य की तरह त्रिकाल अबाधित है । इतना ही नहीं कबीर ने अति पुनीत ढंग से सत्य की प्रशंसा में कहा है कि साँच की तुलना में न तो कोई तप है न तो झूठ की तुलना में पाप । जिसके हृदय में सत्य का प्रवेश हो जाता है उसके ~~हृदय में~~ ईश्वर का वास सम्भव है ।[1]

सत्य के सदृश और कोई व्रत नहीं है और न तो ज्ञान के समान गुरु ही ।

सत्य व्रत सम व्रत न कोई । ज्ञान समान गुरु नहिं होई ।।

— विवेक सागर, पृ० ६८

सत्य का एक अच्छा रूपक ' विवेक सागर ' में प्राप्त होता है, जिससे स्पष्टत: सिद्ध होता है कि मनुष्य के लिए सत्य ही धारणीय है :—

सत्य नारि निज साधुता सुत निष्कपट उदार ।
जिज्ञासा ताकी वधु प्यारी सब परिवार ।।

—विवेकसागर, पृ० ६६

'आत्म बोध' में सत्य को ग्राह्य एवं असत्य को त्याज्य बताते हुए सत्य को निर्दोष सिद्ध किया गया, साथ ही सत्य से ही उद्धार सम्भव है और झूठ से इस संसार सागर के मध्य डूब मरने के लिए जगत् के समस्त मायावी प्रपंच पर्याप्त हैं ।[2]

साँच का भेष यह देख सतगुरु कहा संत अनेक यों पार हुआ ।
कहैं कबीर सुख धाम माँही मिला, बहुरि विषधार में नाहिं मुआ

– आत्मबोध, पृ० २३

---

१. बीजक, पृ० १५६
२. आत्मबोध, पृ० २२

सत्य एवं असत्य का निर्वाह कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि क्या पृथ्वी एवं आकाश कभी एक हो सकते हैं ? मायावी प्रपंच वश जीव को इस भव सागर में निमग्न करने वाले प्रसाधन हैं, इससे सुरक्षा के लिए सत्य ही अमोघ अस्त्र है।[१] इसीलिए कबीर पंथी संत साधकों ने उपदेश दिया है :—

शील अरु सांच संतोष की सेह जले, क्षमा अरु दया दिल मांहिंधारे
नारि अरु पुरुष का काम कैसा रहा, कहैं कबीर सो आप तारे ।।
— आत्मबोध, पृ० ३४

कबीर पंथ के अनुरूप ही दरियापंथ में सत्य की अनिवार्यता स्वीकार की गई है क्योंकि जहां पर सत्य है वहीं पर ईश्वर का निवास है।

जहां सांच तहं आपु हैं, निसि दिन होहिं सहाए ।
पल पल मनहिं विलोइए, मीठा मोल बिकाए ।।२५।।
—दरिया सागर, पृ० ३३

असत्य ही समस्त पापों एवं दुर्मतियों का घर है और सत्य अमृत फल प्रदान करने वाला है।[२]

सांचो पंडित मानवो , सच सील या सील ।
सच नहीं स्वारथ लगै, सोई बड़ा वकील ।।७०।।
—दरिया सागर, पृ० ८४

जहां सांच तहां साहब बासा । सांच सुरति निजु होहि नेवासा ।।३०१
—भक्तिहेतु, पृ० ३०८

पहिले सांच तब होए उजिआरा । सांच सब्द बरै जग सारा ।।४६७
सांचा सुमति कुमति के मारे । रहे सांच दुर्मति दुरि डारे ।।४७२।।
—भक्तिहेतु, पृ० ३२४

जो व्यक्ति सत्य का आचरण करता है,वह चिरंतन सत्य के निकट तक पहुंच सकता है, अंत में उसके समस्त क्लेश समाप्त हो जाते हैं।[३] सत्य धारण

---

१. आत्मबोध, पृ० ३२
२. दरिया सागर, पृ० ४२
३. भक्ति हेतु, पृ० ३३२

करने से ही इस तिमिराच्छन्न काया में प्रकाश का प्रवेश होता है, साथ ही सत्य एक ऐसा दिव्य ज्योति पुंज है, जिससे सम्पूर्ण अन्धजगत् आलोकित हो उठता है। सत्य की निर्मलता एवं पवित्रता सर्वदा अजर एवं अमर है, इसीलिए इसके द्वारा ही मानवीय दोषों का परिहार सम्भव है, जिससे हम अमरत्व की ओर अग्रसर हो सकते हैं। दरिया साहब ने सत्य के विषय में बताया है :-

सांच सुमति मति ग्यान बिरागा। मति मराल फिरि होय न कागा।

—ज्ञानमूल, पृ० ३६०

अहिंसा—

सत्य के साथ ही और भी आचरण निरूपित किए गए हैं, जिनका पालन करना मानव धर्म है। इनमें अहिंसा का स्थान सर्वोपरि स्वीकार किया जा सकता है। अहिंसा के लिए महाभारत में कई स्थानों पर संकेत किया गया है। मनु ने समस्त मानव प्राणियों के लिए नीति-धर्मयुक्त नियमों की चर्चा प्रस्तुत की है — "अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः" (मनु १०।६३), अहिंसा, सत्य, अस्तेय, काया, वाचा और मन की शुद्धता एवं इन्द्रिय निग्रह। अहिंसा के लिए (महाभारत अ० ११।१३) आया है कि "अहिंसा परमोधर्मः" इस प्रकार देखा जाता है कि अहिंसा का स्थान अतीव काल से ही बड़ा ही उत्कृष्ट है, इसीलिए यह वैदिक धर्मों में ही नहीं वरन् बौद्ध एवं ईसाई आदि धर्मों में भी समादरणीय समझा गया।

कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ में अहिंसावादी विचारधारा तो और भी उग्र रूप धारण किये हुए दृष्टिगत होती है। कबीर-पंथ में उन व्यक्तियों की भरपूर भर्त्सना की गई है जो मांसादि अभक्ष्य वस्तुओं का आहार करते हैं, जो जीवों के रक्षक न होकर भक्षक हैं, उन्हें स्पष्टतः पशु घोषित किया गया है, जिनमें जीव के प्रति दया भाव नहीं है, उन्हें कबीर-पंथी संतमतावलम्बियों द्वारा अधोगति गति का पात्र समझा गया है, इसीलिए उनका अचल एवं अटूट विश्वास है कि जो व्यक्ति दूसरों को कष्ट प्रदान करता है, वह स्वतः प्रतिक्रिया स्वरूप कष्ट का भागी बनता है।[१] कबीर की धारणानुसार मांस भक्षी

---

१ बीजक की टीका, पृ० ६८

को नरक गामी बनना पड़ता है :—

कहता हूं कहि जात हो, कहा जो मान हमार ।
जिसका गला तुकाटि सो, फिर गलाकाट तुमार ।।

धर्म अहिंसा सम नहिं आना । वेद विदित सब संतन जाना ।।
—जीव धर्म बोध, पृ० ६८-६६

'धर्मदास-बोध' में हिंसकों की दुर्दशा का बड़ा ही अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि जो व्यक्ति निष्ठुर एवं निर्दयी बन कर जीवों की हत्या कर मांसाहार करते हैं, उन्हें काग, शूकर एवं श्वान योनियों में जन्म लेकर नितान्त घृणित आचरण करने पड़ेंगे और उन्हें अनन्त प्रकार की यमयातनाओं का निर्मम शिकार बनना पड़ेगा ।[१]

'ज्ञान प्रकाश' में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गई है कि जप, योग एवं दानादिक अन्य धार्मिक आचार विना दया के सब व्यर्थ एवं नि:सार हैं ।

जप योग दान विधान बहु विधि करैं कर्म अनेकहो ।।
संत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि न पावै येक हो ।।
जो लों दया नहिं जीव को तो सुबहि कर्म असार हो ।।
कोई लखे सज्जन नोहरि मैं कह्या शब्द पुकारि हो ।।
जीवदया चित्त मों धरै, तजै अभक्ष्य अहार ।
हंस दया धरि नाम गहि, उतरे भवजल पार ।।
—ज्ञान प्रकाश, पृ० २३

कबीर पंथ के अनुरूप ही दरियापंथ में अहिंसावादी विचारधारा को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है । इस्लामी विचारधारा का दरिया साहब पर यद्यपि कुछ प्रभाव अवश्य है, इस्लाम के लिए लोगों की धारणा है कि यह हिंसा

---

१. धर्मदास बोध, पृ० ३६

धर्म का पोषक, किन्तु दरिया साहब के मतानुसार अल्लाह ने मुहम्मद आदि पैगम्बरों को जीव हत्या के लिए वर्जित किया है। हिंसा का सूत्रपात सर्व प्रथम इब्राहीम द्वारा हुआ।[१] दरिया साहब ने बताया है कि जीव हत्या एवं रक्त-पात तो काफिरों का लक्षण है और इसमें महान् पाप है।[२] इसीलिए उन्होंने विचार व्यक्त किया है कि यश एवं कल्याण की कामना रखने वालों के लिए हिंसात्मक वृत्तियों से दूर रहना चाहिए। 'गीता' में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से 'अहिंसापरमोधर्म:' का घोर समर्थन किया है, जो हिन्दू धर्म की नहीं अपितु समस्त संसार के धर्मों की रीढ़ है, जिसमें जीव दया ही मूल चेतना काम करती हुई परिलक्षित होती है। किन्तु समझ में नहीं आता कि किस प्रकार से सम्पूर्ण जगत् इस भयावह प्रकोप का शिकार हो कर कुप्रवृत्तियों एवं दुर्मतियों का लक्ष्य बना पथ-भ्रष्ट हो रहा है। धार्मिक स्थानों पर देव देवियों को प्रसन्न कर लौकिक एवं दैहिक सुखों की पूर्ति के लिए, जीवों की बलि दी जाती है।[३]

दरिया साहब की धारणा है कि हिंसात्मक भावनाओं से हिन्दू एवं मुसलमान दोनों प्रेरित हैं, क्योंकि एक हिरणी एवं दूसरा गाय का मांस-भक्षण करता है, जब कि तात्विक दृष्टि से सबमें एक ही मांस, रक्त एवं आत्मा का वास है, किन्तु किसी को विवेक नहीं और सब पथभ्रष्ट हो रहे हैं। ऐसे मांसाहारी व्यक्तियों के लिए उनका विचार है कि ये स्वत: नरक के पात्र समझे ही जायेंगे, साथ ही इन्हीं के अपुण्यवश इनके पूर्वजों को भी अधोगति का पात्र बनना पड़ेगा।[४] ऐसे व्यक्तियों को दरिया साहब ने घोर पाखंडी एवं निपट अंधा घोषित किया है जो चक्षु रहते हुए भी विवेक शून्य होकर अंध विश्वास, भ्रष्टाचार एवं पाखण्ड में लिप्त हैं, उनका कल्याण कदापि संभव नहीं।[५] जो

---

१. ज्ञान सागर, पृ० २५१
२. वही, पृ० २५२
३. वही, पृ० २५२,२५३
४. दरियासागर, पृ० ८१
५. शब्द, पृ० ८० (परिशिष्ट) संत कवि दरिया एक अनुशीलन

व्यक्ति जीव-हत्या द्वारा अपने सुख वर्द्धन के निमित्त देव देवियों को प्रसन्न करने का भ्रम करते हैं, इनके प्रति दरिया साहब ने बहुत बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है।[१] उन्होंने मिथ्याचारी वेदविज्ञों की तुलना बिल्ली, गिद्ध, कसाई एवं राक्षस आदि से की है।[२] ऐसे लोग भ्रम से ग्रस्त इस महोदधि रूपी संसार को लौह नौका द्वारा पार करना चाहते हैं, परिणाम स्वरूप उनका डूबना निश्चित है।[३] इस प्रकार दरिया साहब ने जीव हिंसकों को बड़ी ही भर्त्सना की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है, दूसरी ओर उन्होंने हिंसा के लिए भी बड़े ही अनुपम ढंग से संकेत किया है कि ~~यदि तुम हिंसा के लिए बहुत भी बड़े ही अनुपम ढंग से संकेत किया है कि~~ यदि तुम हिंसा के लिए बहुत इच्छुक ही हो, और बिना हिंसा के नहीं रह सकते तो बड़ा ही अच्छा है कि अपने अनिष्ट कारक मनोवृत्तियों की हिंसा कर आत्मशांति का अनुभव करो।[४]

> जौं तोहि खून साँच मन भावा। करहु खून हम तुमहिं बतावा।।५६।।
> ग्यान खरग दिढ़ कर गहो, कामादिक भटमारि।
> पाँच पचीसहिं जीति कै, करम भरम सभ झारि।।८।।
>
> — ग्यान सरोदै २५३

अर्थात् यदि रक्त पात किये बिना तुमसे नहीं रहा जाता तो ठीक है, ज्ञान रूपी तलवार लेकर कामना के सैनिकों की हत्या कर, पंचतत्व एवं पचीस प्रकृतियों पर विजय प्राप्त कर इस संसार सागर की दारुण विपत्तियों से अपने को मुक्त कर लो।

निष्कपटता—

अध्यात्म साधना के पक्ष में निष्कपटता का आचरण कम महत्व-पूर्ण नहीं। जब तक कपटमय परिस्थिति बनी रहती है, तब तक भाव भक्ति

---

१. शब्द पृ० ८६ परिशिष्ट (संतकवि दरिया एक अनुशीलन)
२. वही, पृ० ६७ ,,
३. वही, पृ० ६२ ,,
४. वही, पृ० ७२ ,,

सम्भव नहीं है, कपट पूर्ण आचरण ही भक्ति क्षेत्र में सबसे बड़ी खाई है, जो जीवों में सदा भ्रम उत्पन्न कर सत्य से विमुख करता है। कबीर पंथ में इस प्रकार का उदाहरण प्राप्त होता है कि अखिल जगत ही माया के चरित्र रूपी विष-धार में निमग्न हो रहा है, एक मात्र संत जन ही अपनी रक्षा कर सकते हैं। जो असत्य, कपट, एवं पाखंड आदि दुष्प्रवृत्तियों से अछूता है,वह जन्म मरण के भयावह चक्कर से सदा अप्रभावित सिद्ध होगा।[1] कपटपूर्ण आचरण से ईश्वर प्रसन्न नहीं हो सकता।[2] जैसा कि संकेत भी किया गया है :-

कपट के भेष सो काज सूझै नहीं, कपट को भेष नहीं राम राजी।
कहैं कबीर नरसांच करनी विना, काल की चोट पो खायताजी ।।
शील अरु सांच संतोष का भेषकरि, क्षमा अरु दया दिल माहि धारो
झूठ अरु कपट दिल ते दूरि करि, सत्य का शब्द मुखते उचारो ।।

— आत्मबोध, पृ० २३

दरिया साहब ने भी कपटाचारियों की निन्दा बड़े जोरदार शब्दों में की है जो व्यक्ति सदाचरण न करके मात्र कपट एवं मिथ्या भाषण में रत रहते हैं, जिनकी जिह्वा झूठ बोलने में अति पटु है, उनको दरियासाहब ने पूर्ण उपेक्षा की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है।[3] जो व्यक्ति कपटाचरण करते हैं उन्हें निश्चय ही काल पकड़ कर घसीटता है :-

बाधहिं भेख कपट नहिं छूटा। कठिन काल तन भीतर लूटा ।।१०५।

—भक्तिहेतु, पृ० २८७

कपट काटि कंठा कहो, काढु कुबुद्धि बन ठाट।
सतगुर दोस न दीजिए, जम रोकैगा बाट ।।२१।।

---

१. आत्मबोध, पृ० १८

२. वही, पृ० २२

३. शब्द पृ० १००,१०४ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

खोटा मोटा बाट न सूझेऊ । कपट काट भव ऐसउ रहेउ ।। २०४

—ज्ञानमूल, पृ० ३६०

इस प्रकार कपटाचरण के दुष्परिणामों का उन्हें अच्छा ज्ञान था । इसीलिए भक्त के लिए निष्कपटता का व्यवहार दरिया साहब ने अनिवार्य समझा है ।

सत्संग—

चिरकाल से ही साधु या अच्छी प्रकृति वाले व्यक्तियों का सहवास एवं कुसंग का त्याग आवश्यक समझा जाता रहा है । इसी बात के समर्थन में कबीर ने कहा है :—

संगति करिये साधु की, हरै और की व्याधि ।
ओछी संगति क्रूरकी, आठो पहर उपाधि ।।२१५।।
संगति से सुख ऊपजे, कुसंगति ते दुख होय ।
कहहिं कबीर तहँ जाइए, अपनी संगति होय ।।२१६।।

—बीजक साखी, पृ० १४१

सत्संग से ही अच्छे गुण एवं अच्छे विचार उद्भूत होते हैं,जिनसे सुख एवं निरतिशय आनन्द की प्राप्ति सम्भव है, और कुसंग में पड़ा हुआ व्यक्ति आपत्ति का पात्र बनता है ।[1] बिना सत्संग के विवेक की उत्पत्ति पूर्ण असम्भव है और बिना विवेक के सदाचरण सम्भव नहीं । जब तक सदाचरण नहीं तब तक इन घोर जगजंजालों से मुक्ति कहां ? सत्संग की महिमा गायन में शेष एवं शारदा अशक्त सिद्ध हुए ।[2] हजारों वर्ष की घोर तपश्चर्या के बावजूद भी जिस परब्रह्म की परख नहीं होती वह सत्संग के प्रभाव से सहज सम्भाव्य है । सत्संग सब भांति सुखप्रद है, जो कि साधु सेवा द्वारा प्राप्त होता है,सत्संग के दो प्रकार हैं :—एक तो हरिभक्तजनों का साथ दूसरा वेदविज्ञों का । लेकिन हरिभक्त जनों

---

१. आत्मबोध, पृ० १८

२. भीवबर्म बोध, पृ० ५६

की सत्संगति ही सर्वोपरि है, जिससे सद्गुरु की प्राप्ति होती है। जब तक भक्ति मन में भलीभांति स्थिर न हो जाय तब तक सत्संग की शरण नहीं छोड़ना चाहिए। मनसा एवं कर्मणा दोनों से साधु सेवा को ग्राह्य समझता हुआ परमानन्द की उपलब्धि करे। संतजनों के समागम से ही स्वर्गानन्द एवं मोक्षानन्द दोनों की प्राप्ति सम्भव है।[1] साधु सेवा में जिनका अटूट विश्वास रहता है, उन्हें निश्चय ही ईश्वरानुभूति का परम सुख उपलब्ध होता है :-

> जोई साधु प्रेम गति जाने। ता साधु की सेवा ठाने।
> परम पुरुष की भक्ति दृढ़ावे। सबै नृत कर तहं पहुंचावे।।
>
> -भवतारण बोध, पृ० ४६

दरिया-पंथ में भी सत्संग की महिमा वर्णन बड़े ही अनुपम ढंग से किया गया है। दरिया साहब का विश्वास है कि संत दर्शन अपार सुख देने वाला है, जिससे कि माया एवं मोह के समस्त पाश विच्छिन्न हो जाते हैं, और विमल ज्ञान की उत्पत्ति होती है। संत समाज सर्वथा सुखप्रद एवं सच्ची भक्ति की ओर उन्मुख करने के लिए अमोघ साधन है। संतजन कमल-पत्र के सदृश इस जगत् में निर्लेप भाव से रहते हुए हंस की भांति नीर-क्षीर विवेकी होते हैं, जो कि अवगुणों को त्याग कर गुणों का संचय करते हैं।[2] 'भक्तिहेतु' में दरिया साहब ने बताया है कि बिना सत्संग के शोक का निवारण असम्भव है, साधु के निकट ही शीतल, परिमल वास सुवास की सुखद गन्ध रहती है, जिस प्रकार शीतल छाया के निमित्त सब पेड़ के समीप निवास चुनते हैं, उसी प्रकार संतजनों की शरण में ही इस जलते हुए मायावी जगत् से परम शांति की प्राप्ति सम्भव है। संतों के समीप मधुर-वाणी में ईश्वर महिमा का गायन होता रहता है, जिसे श्रवणेन्द्रियां पान कर परम सुख का अनुभव करती हैं, इस प्रकार सत्संगति ही मोक्षानन्द की उपलब्धि का परमोपाय है।[3]

---

१. जीवन बोध, पृ० ६०

२. ज्ञान रत्न, पृ० २३३

३. भक्तिहेतु, पृ० २०१

निर्मल ग्यान बिचारहु भक्ति करहु लव लाए ।
सत सरन सतगुर सेवा, आवागवन मेटाए ।।३।।

—भक्तिहेतु, पृ० २७६

करु सेवा सत संघति सरना । मेटै जग में जरा मरना ।। ४७५ ।।
जो मीले सतसंग सुभागा । होए बिबेक भक्ति करु रागा ।। ४७६ ।।

—भक्ति हेतु, पृ० ३२४

दरिया साहब का विश्वास है कि जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलते ही तद्रूप हो जाती है, उसी प्रकार दुराग्रही एवं दुष्टप्रवृत्ति का व्यक्ति सत्संग के प्रभाव से सज्जन हो जाता है ।[1]

संत जनों के निवास-स्थान पर भक्ति रूपी मलयागिरि की सुगन्धि प्रस्फुटित होती रहतीहै, जो कि भक्त जनों के लिए अति सुखप्रद है । सतसंगति पारस के सदृश , है,जो समस्त कुमतियों को विनष्ट करने के लिए सफल साधन है, ईश्वर एवं संत में कुछ अन्तर नहीं ।[2] साधु जन ही सच्ची भक्ति का अनुसरण करते हैं,इसलिए उन्हीं की शरण में परमलक्ष्य की प्राप्ति संभव है ।[3] संत दर्शन में ही इतना गुण है कि समस्त दोषों का परिहार तत्काण हो जाता है ।[4] जिस प्रकार भृंग कीट को, समुद्र नदियों को तद्रूप कर लेता है एवं पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है, ठीक उसी प्रकार से संतदर्शन से दुष्ट शिष्ठ बन जाता है । जिस प्रकार तिल सुगंधित पुष्पों की सुवास को अपनी ओर खींच लेता है,ठीक उसी तरह एक उत्कृष्ट व्यक्ति साधुओं से सद्गुणों को प्राप्त करता है ।[5]

---

१. भक्ति हेतु, पृ० २७६ -३२५
२. वही, पृ० २८६
३. ग्यानसरोदै, पृ० २५६
४. ग्रन्थ, पृ० ६२ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
५. वही, पृ० १२६ ,,

सम्यक् दृष्टि--

सम्यक् दृष्टि का अभिप्राय है सम दृष्टि अर्थात् समत्व का भाव। जब इस स्थिति को प्राप्त हुआ व्यक्ति सम्पूर्ण जगत् में प्रसरित द्वैत एवं द्विधा की परिस्थिति से पूर्ण पृथक् हो जाता है। यह अहिंसा की पूर्णावस्था स्वीकार की जा सकती है, जिसके उत्पन्न होने से व्यक्ति समस्त चेतन जगत् को आत्मवत् स्वीकार करते हुए सब पर दया प्रेम सहानुभूति एवं अपनत्व का श्रेष्ठ व्यवहार करना चाहेगा। इस महद्कार्य के लिए साम्यबुद्धि की आवश्यकता है, जिसके माध्यम से अपने समान ही तुच्छ एवं सर्व साधारण जीवों के लिए भी साम्य बर्तने का प्रयास करेगा। ऐसे कार्य के लिए शुद्धबुद्धि की आवश्यकता है, जिसके कारण वह हिंसा ही नहीं वरन् किसी के प्रति अनिष्टपूर्ण कार्य भी नहीं कर सकता। साम्यबुद्धि को प्राप्त हुआ व्यक्ति किसी प्रकार के सदुपदेश की अपेक्षा नहीं रखता। इसीलिए 'उपनिषद्', 'मनुस्मृति', 'गीता', महाभारतादिक धार्मिक ग्रन्थों में ही नहीं वरन् आधुनिक बाह्य देशों एवं धर्मों में भी आत्मौपम्य के इस उत्कृष्ट कल्पना के बीज बिखरे पड़े हैं। यहूदी एवं क्रिश्चियन धार्मिक पुस्तकों में इसी प्रकार का आदेश दिया गया है, "तू अपने पड़ोसियों पर अपने ही समान प्रीति कर" (लेवि० १९।१५, मेथ्यू० २२।२६) वह इसी नियम का प्रतिरूप है। यूनानी तत्त्ववेत्ता अरस्तू के ग्रन्थों में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार के लिए यह नीति स्वीकार की गई है, इससे भी पूर्व लगभग २०० वर्ष चीनी तत्त्ववेत्ता खुं-फु-त्से (अंग्रेजी अपभ्रंश कानफ्यूसियस) उत्पन्न हुआ इसने भी आत्मौपम्य का उल्लेख किया है। इन सब के पूर्व उपनिषदों (ईश० ६, केन० १३) में और फिर 'महाभारत' एवं 'दासबोध' (१२।१०।२२) में "पराये को भी आत्मवत् स्वीकार करना चाहिए" की उत्कृष्ट भावना के बीज परिलक्षित होते हैं, इसी पवित्र भावना से समूचा संत-साहित्य भी ओत-प्रोत है।

यदि किसी व्यक्ति में आत्मौपम्य बुद्धि का इतना व्यापक, सुलभ एवं सुबोध विकास हो गया, तब उसमें स्वतः उत्कृष्ट गुणों का समावेश हो जाता है। यही कारण है कि इस प्रकार की उत्कृष्ट धारणा को कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों में विशेष रूप से प्रतिष्ठा दी गई है। कबीर-पंथ में इस

प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है कि जिस व्यक्ति में साम्य बुद्धि का प्रवेश हो गया, वह किसी को किसी प्रकार का कष्ट देना न चाहेगा, और समस्त चेतन जगत् को आत्मवत् स्वीकार करते हुए सद्व्यवहार करने का प्रयास करेगा। सम्यक् द्रष्टा अखिल जगत को अपने ही समान समझता हुआ परोपकार एवं कल्याण की भावना से प्रेरित होकर सर्वांगीण सुख की कामना करता है।[1] इसीलिए उपदेश भी दिया गया है :—

> दिल दुखवा मति काहू केरो। सब तन अपने तन सम हेरो।
> सब को दुख सुख एक समाना। एकै रूप सब जाना।।
> एकै रूप अनेक बरन हैं। एकै इन्द्री एकै तन है।।
>
> —जीवधर्म बोध, पृ० २४

इसी प्रकार दरिया पंथ में भी सम्यक् धारणा का दृढ़ संकल्प ही भक्ति साधना के पक्ष में सर्वस्व स्वीकार किया।

> किया जन्तु एक जिव जाना। एकै ब्रह्म सभन्हि पहचाना।।२१४।।
> आतम घात कबहि नहिं कीन्हा। आतम पूजि रहे लौ लीन्हा।२१५
>
> —दरिया सागर, पृ० २१

जाति-पाँति का पृथक् स्वरूप भी किसी रूप में दरिया साहब के लिए ग्राह्य न था।[2] उन्होंने इस बात का स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया है कि जिस प्रकार अपना जीव सब को प्रिय है, उसी तरह सब को।[3] इसीलिए उपदेश किया :—

> निज जिव सम सभ जग माहीं। जानहिं साधु ग्यान जेहि पाहीं।२५

इस प्रकार हम देखते हैं कि धार्मिक ग्रन्थों की मान्यता के अनुरूप ही दोनों पंथों में सम्यक् दृष्टि के लिए संकल्प लिया गया है और इसी पवित्र कल्पना के साकार होने में ही समस्त चेतन जगत् का कल्याण निहित है।

---

१. जीव धर्म बोध, पृ० २१
२. दरिया सागर, पृ० २५
३. ग्यान सरोदै, पृ० २५०

इन्द्रिय निग्रह —

भौतिक अथवा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के सुखों की दृष्टि से इंद्रियों का दमन पूर्ण अनिवार्य है। सर्वप्रथम भौतिक सुख की दृष्टि से जितनी ही इन्द्रियाँ उन्मुक्त अर्थात् स्वतंन्त्र होंगी उतनी ही घोर निराशा, पीड़ा एवं वेदना की तीव्र अनुभूति होगी, क्योंकि निश्चय ही इच्छानुसार सब की तुष्टि सम्भव नहीं। जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ सम एवं शान्त हैं वह शुद्ध बुद्ध बना जगज्जंजालों से विमुख होकर जीवन के सत्य एवं वास्तविक सुख का पात्र बन जाता है। आध्यात्म क्षेत्र में इन्द्रिय सुखों का लोलुप व्यक्ति एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। इन्द्रियां ही तो इस पवित्र भूमि पर पदार्पण करने से मनुष्य को विचलित करती हैं। इसलिए इनका दमन अति आवश्यक है। काम, क्रोध, मद एवं लोभ आदि ही मनुष्य के सर्वशक्तिमान एवं प्रबलशत्रु हैं, अतः जब तक इन पर विजय नहीं तब तक कल्याण कहाँ? भगवद्गीता में वर्णन आया है :-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत् ॥

"काम-क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के द्वार हैं, इनसे हमारा नाश होता है, अस्तु इनका त्याग करना ही वांछनीय हैं" (गीता १६।२१, म०भा०३२।७०)। इनका त्याग समस्त भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में अनिवार्य बताया गया है। इसी-प्रकार कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में तो इनका सविस्तार में खण्डन मिलता है और काम, क्रोध, मद, लोभादिको प्रत्यक्ष ही माया का अस्त्र स्वीकार कर इन्हें मानव का प्रबल शत्रु सिद्ध किया गया है, जो कि इन्हें सन्मार्ग से विचलित करते हैं। इनका विशेष वर्णन माया के प्रसंग में किया जा चुका है।

दैन्य —

भक्ति क्षेत्र में यह परिस्थिति सर्वोत्तम स्वीकार की जाती है। भक्त के लिए ईश्वर से श्रेष्ठ एवं सम्पन्न कौन हो सकता है? वही भक्त के लिए अभय -

---

१. बौद्ध धर्म कोष, पृ० १२६

शरण देता है, जिससे कि वह भलीभाँति रक्षित होने की शुभकामना एवं तीव्र लालसा रखता है। आराध्यदेव की तुलना में भक्त अपने को तुच्छातितुच्छ समझ उसके चरणों में लिप्त होना चाहता है, इस विषय की भक्ति वाले शीर्षक में विशेष रूप से चर्चा की जा चुकी है। कबीर-पंथी रचना 'जीवधर्म बोध' में श्री-रामचन्द्र जी ने स्वयं इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि जिस दिन भक्त में दैन्य भावना का प्रवेश हो जाता है, उसी के दिन उसमें समस्त सब गुणों का समावेश हो जाता है। इसी कारण स्वयं भगवान ने सेवरी के हाथों जूठी बेर भी उपहार स्वरूप ग्रहण किया।[१] इसी ग्रन्थ में इस बात की ओर भी संकेत किया गया है :—

दास को दीनता जब आवै।
सो पद देवदास अपने को शिव ब्रह्मा नहिं पावै।।
औरन को पूरा करि जाने आपको ओछ कहावै।
अबकुलनदै सत कहत हो सो मेरे मन भावै।।
एकै ब्रह्म सकल घट देखै दुविधा दूर बहावै।
इन पाँचों से तोरि सनेहा जब गोविंद गुण गावै।।
होय अधीन प्रेम लौ लावै कुल अभिमान मिटावै।
सहज ग्रन्थ में रहै समाई पढ़ि गुण सब बिसरावै।
गुरु की दया साधु की संगती भाव भक्ति चित लावै।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो कौन परमपद पावै।।
कौन हमारे आये केशव क्यों न हमारे आये।
षट रस व्यंजन छोटि रसोई साग विदुर घर खाये।।
जहं अभिमान तहां हम नाहीं वह व्यंजन विष लागै।
सोई मुनिजन पूरा कहिये अभिमानी को त्यागै।।
जाति हीन जाके कुल नाहीं है दासी को जायो।
ताकीट परिच्या तुम जाय के बैठे कहा बड़ापन पायो।।
सत्यासत्य बचन कहो दुरयोधन सुनि लै बात हमारी।-
विदुर हमारे प्रान सो प्यारे तुम विषि या बैकारी।।

पुरातन कथा तुम्हारी हरि जी वन में छाक मंगाई ।
ग्वालन के संग भोजन करते सो मति तुम में आई ।।
प्रेम प्रीति के हम हैं भूखे अभिमानी नहिं भावे ।
कहै कबीर साधु की महिमा हरि अपने मुख गावै ।।

—जीव धर्म बोध, पृ० १२५, १२६

इसी प्रकार दरिया साहब को भी दैन्य वाली परिस्थिति विशेषरूप से प्रिय है। सचमुच उन्होंने जिस दैन्य पूर्ण परिस्थिति को भक्त का सर्वस्व स्वीकार किया, वह समस्त संतों से मेल खाती है, बात भी सत्य प्रतीत होती है कि भक्त अपने को सर्व साधारण स्वीकार कर ईश्वर की तुलना में नगण्य समझता हुआ वह उसके अनन्य शरण की कामना करता है। दरिया साहब ने ऐसे व्यक्ति को धन्य समझा है जो अपना समग्र जीवन गरीबी में सूखा, फीका एवं सर्वसाधारण आहार द्वारा यापित करता है।[1] ऐसा व्यक्ति जो कि भलीभांति आहार व्यवहार करता हुआ स्वार्थ में चूर हो, भक्ति करने का दम्भ करता है उसे उन्होंने पाखण्डी बताया है, और उसकी उपमा पानी के मच्छ एवं दाने के बोरे से दी है।[2] दैन्य परिस्थिति की पराकाष्ठा वहां दिखाई पड़ती है, जब उनकी कल्पना आदर्श संत के रूप में मुखरित हो उठी है।

दुखे सुखे दिन काटिए, चुप रहो सहि सोए ।
ता तर आसन कीजिए, (जो) पेड़ पातरो होये ।।१०।।

—ग्यानसरोदे, पृ० २५४

दरिया साहब ने ईश्वर प्रेम में इस तरह चूर हो जाने की सलाह दी है कि जगत् एवं कुटुम्ब के सम्बन्ध का भान न रह जाय, तब मायातीत होकर व्यक्ति शोक विरहितावस्था को स्वत: प्राप्त हो जायगा।[3]

---

१. ग्यान सारोदै, पृ० २५१
२. शब्द, पृ० १०५ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
३. ग्यान सरोदै, पृ० २५४

उन्होंने इससे भी बढ़कर एक और भी कल्पना की है कि भक्त में सच्ची लगन आवश्यक है और आकाश के तले उसका आसन होना चाहिए, अर्थात् एक भक्त के लिए सर्वसाधारण व्यवहार की कल्पना की है, जिससे कि वह सर्वथा माया के अंकुश से अछूता रहे ।[१]

---

१. ज्ञानेश्वरी, पृ० २५४

निषेध—

इस के अन्तर्गत साधना पक्ष में बाधक तत्त्वों की गणाना की जाती है, जिन्हें पाखण्ड अथवा बाह्याचार भी कहा जा सकता है। यही कारण है कि इन्हें आध्यात्म क्षेत्र में पूर्णरूपेण वहिष्कृत समझा गया है। जब तक इन पाखण्डों की तिलांजलि इस प्रकार तन मन धन से नहीं कर दी जाती कि अग्नि में तपाये गये स्वर्ण के सदृश हम तप एवं संयमाग्नि में अपने दुर्मति एवं कुप्रवृत्ति को नष्ट भ्रष्ट कर अपने अन्तरात्मा को शुद्ध बुद्ध न बना लें तब तक चिरंतन शांति एवं परमानन्द की सत्यानुभूति दुष्कर है।

इन बाह्याचारों के खंडन की परम्परा अति प्राचीन है, जब वेदों का निर्माण हो रहा था, उस समय भी व्रात्य लोग थे, जो वेद तथा उनके द्वारा प्रतिपादित यज्ञों की महत्ता स्वीकार नहीं करते थे। आगे चल कर इसी वेद विरोधी धारा में महात्मा गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी का आविर्भाव हुआ जिन्होंने खुल कर ब्राह्मणों के शास्त्र ज्ञान तथा बाह्याचार का खंडन किया। बौद्ध धर्म की महायान शाखा में ७ वीं श० के पश्चात् सरहपा, कृष्णपा आदि सहजयानी सिद्ध हुए। जिन्होंने बाह्याचार का खंडन तीक्ष्ण व्यंग्योक्तियों द्वारा किया। उदाहरणतया : सरहपा कहते हैं :—

(१) ब्रम्हणोंहि म जानन्तहि भेउ। एवइ पढिअउ एच्चउवेउ।।
मट्टि(पाणि कुस लई पढन्त। घरहिं वइसी अग्गि हुणान्तं।।

(२) कज्जे विरहिअ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुऍं धूमें।।
एक दण्डि त्रिदण्डी भअवं (T) वेसें विणुआ होइअइ हंस उएसें

(३) मिच्छेहिं जग वाहिअ भुल्लें। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले।।

आगे चल कर साधना क्षेत्र में गोरखनाथ का प्रभुत्व हुआ जिनके माध्यम से वेद विरोधी भावनाओं में शैव परम्परा और योग दर्शन का समन्वय हुआ। किन्तु उनका भी बाह्याचार विरोधी शब्द ज्यों का त्यों बना रहा। कबीर को यह परम्परा विरासत के रूप में मिली। संध्या मूर्ति पूजा तीर्थाटन आदि के सम्बन्ध में उनकी व्यंग्योक्तियाँ बौद्ध सिद्धों से काफी मिलती जुलती है, जिससे ज्ञात पड़ता है या तो सीधे अथवा नाथ सम्प्रदाय के माध्यम से उनको बौद्ध सिद्धों की विचारधारा का पर्याप्त ज्ञान था। कबीर के पश्चात् समस्त-संत साहित्य में बाह्याचार विरोधी भावना किसी न किसी रूप में मिलती है,यद्यपि उनका स्वर उतना उग्र दिखाई नहीं पड़ता। कबीर से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण दरिया साहब भी बाह्याचार अथवा पाखण्डपूर्ण कर्मकाण्डों के प्रति पूर्ण उदासीन थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति के क्षेत्र में मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा वर्णाश्रम धर्म, वेद कुरानादि धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन एवं अन्य विविध पाखण्ड पूर्ण कर्मकाण्डों के खण्डन की सुविशाल परम्परा इन सन्तों के पूर्व से ही चली आ रही थी, जिसका इन पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।

कबीर का समग्र जीवन मात्र सत्य के अन्वेषण में ही बीता, इसीलिए वे असत्य एवं अवास्तविक विचार धाराओं से पूर्ण अछूते सिद्ध हुए, संसार की नि:सारता का जितना अत्यधिक बोध उन्हें था, शायद ही किसी को रहा हो। वे स्वतंत्र मस्तिष्क एवं अनुभूति परक प्रकृति के व्यक्ति थे और सत्य ही उनकी साधना थी। यही कारण है कि कबीर ने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों में एक-एक पग का सूक्ष्म अध्ययन करके अपने स्वतंत्र मस्तिष्क एवं अनुभूति द्वारा असत्य का भलीभाँति निराकरण करते हुए जीवन में नि:सार एवं अनुपयोगी सिद्ध होने वाले वस्तुओं का सफल विरोध किया है। उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व ने अध्यात्म साधना पक्ष में शारीरिक स्वातंत्र्य के पूर्व विचार स्वातंत्र्य की अधिक अनिवार्यता स्वीकार किया है, क्योंकि जिसका मन परतंत्रता के शिकंजों में आबद्ध है वह अपने हाथों एवं पावों की बेड़ियों को विच्छिन्न करने में किस प्रकार सफल होगा? अंधविश्वासों की दृढ़ जंजीरों से सम्पूर्ण मानव समाज इस प्रकार जकड़ उठा था कि जिससे मुक्त होना दुष्कर था, इसीलिए हिन्दू एवं मुसलमान में प्रचलित पाखण्डपूर्ण

लौकिक आचारों की भरपूर निन्दा करते हुए उन्होंने दोनों को कस कर डांट बताई है। अब हम इनका पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे।

मूर्तिपूजा —

चिर काल से ही भारतीय साधना में मूर्ति कल्पना का विधान अबाध गति से चला आ रहा है, जिसके समर्थक पुराणादिक ग्रन्थ रहे हैं, साथ ही इनका असाधारण योगदान देश के सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य में स्तुत्य है। कालान्तर में इसी मूर्तिपूजा विधान का आधार ग्रहण कर हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सगुणोपासकों की एक सुविशाल एवं सुदृढ़ शृंखला देखने को उपलब्ध होती है। इसी युग में तुलसी का आविर्भाव हुआ जो कि इस प्रकार की भक्ति पद्धति के विशेष रूप से प्रणेता बने। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण देश भारतीय एवं अभारतीय विभिन्न धार्मिक धाराओं से प्लावित था, परिणामस्वरूप असंख्य मंदिर, मठ एवं, असंख्य धार्मिक सम्प्रदाय प्रतिष्ठित किये गये। समस्त उपासकों में तुलसी एवं सूर का स्थान अग्रिम है जिनमें से एक राम उपासक एवं दूसरे कृष्ण उपासक थे।

मूर्ति कल्पना के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में एक और विशेष शृंखला दृष्टिगत होती है जो कि अमूर्त उपासकों की थी। इस उपासना पद्धति के प्रणेता कबीर एवं नानक हुए, इसमें सूफी उपासकों की एक कड़ी विशेष उल्लेखनीय है, जिसके प्रमुख कवि जायसी हुए। इन सबकी भक्ति पद्धति दो श्रेणियों में विभाजित की गई:—निर्गुण एवं सगुण। एक ज्ञानाश्रित थी और दूसरी प्रेमाश्रित थी, एक में साधना का प्राचुर्य था और दूसरी में भावना का। अपने क्षेत्र एवं साधना के अनुसार निर्गुण एवं सगुण, ब्रह्म को जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान आदि गुणों से विभूषित सिद्ध किया गया है, सभी ने उसकी रसानुभूति के लिए, प्रेम, भक्तिज्ञान, आदि की अनिवार्यता स्वीकार कर भक्त, एवं भगवान का अटूट सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है। भक्ति के क्षेत्र में अन्तः शुचिता लाने के लिए सत्य, निष्कपटता, अहिंसा, परोपकार, निरभिमानता एवं दीनता आदि का पालन अनिवार्य एवं श्रेयष्कर सिद्ध करते हुए काम

क्रोध, मद, लोभ, निंदा, हिंसा एवं बाह्याचार आदि को तिरस्कृत समझा गया है। निर्गुण कवियों की विचारपद्धति स्वानुभूति एवं अन्तरानुभूति के सबल आधार पर केन्द्रित थी, जिस पर स्पष्टत: प्रभाव केवलाद्वैतवाद का देखा जाता है। संत कवियों का तत्त्व ज्ञान के प्रति पूर्ण विश्वास है, और उनकी धारणानुसार ग्रन्थ-ज्ञान नि:सार है।

मूर्तविधान में भक्त अपने ईश्वर को मूर्तिमानकर सुख-दुख, राग-द्वेष आदि की परिस्थिति में अपने सन्निकट देखना चाहता है। यही कारण है कि मूर्त उपासकों ने अपने आराध्य देव को अवतारी पुरुष सिद्ध कर आततायियों के विनाश करने तक की कल्पना कर उस रूप रेख विहीन निर्गुण ईश्वर को मूर्तिमान करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप इस उपासना पद्धति की एक सुदृढ़ परम्परा चल पड़ी और देश में बहुदेव-देवियों एवं नानाशक्तिमान मूर्तियों की उपासना पद्धति ने स्थान ग्रहण किया। समय की प्रगति के साथ-साथ इसका विकास भी अति तीव्र गति से होता रहा। विडम्बना की बात है, जिस सगुणोपासना का प्रचार इतनी तीव्रगति से हो रहा था, उसमें जड़ता लाने के लिए कीटाणु भी जन्म लेने लगे क्योंकि उत्थान एवं पतन तो प्रकृति का शाश्वत नियम ही है। इसीलिए कोई भी वस्तु जब अपने विकास के उत्तुंग शृंग को प्राप्त हो जाती है तो उसका अध:पतन भी समीप ही होता है।

मूर्तिपूजा का विधान जो कि चिरकाल से अबाधगति से चला आ रहा था उसमें पाखण्ड पूर्ण कुप्रवृत्तियां प्रवेश पाते ही उसकी सुदृढ़ आधार शिला को हिला देने के लिए विशेष सहायक सिद्ध हुई। देव एवं देवियों को प्रसन्न कर अपने लौकिक सुख एवं ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए उनके समक्ष ही बलि प्रथा की जिस निरंकुशता एवं निष्ठुरता का प्रमाण इन सगुणोपासकों ने इतिहास में योग दिया वह सर्वथा रोमांचकारी ही सिद्ध होगा। पशुबलि एवं नर-बलि इन भक्तों के लिए बहुत ही सीधी एवं सरल बात बन गई। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बाह्याडम्बर एवं पाखण्ड का जो तांडव नृत्य सगुणोपासकों द्वारा प्रारम्भ किया गया वह सदा हेय दृष्टि से देखा जायगा। इसीलिए इन संत-साधकों ने अवतार विरोध के लिए तन, मन, धन से जागरूक होकर निर्गुणी विचारधारा रूपी शुभ्र मन्दाकिनी को तरंगायित करने का अपूर्व एवं अविस्मरणीय

प्रयास किया । कबीर पंथी एवं दरिया पंथी संतों के लिए अवतार तथा मूर्तिपूजा पद्धति के लिए उनकी दृष्टि में कोई उचित कारण नहीं है । उनकी धारणा के अनुसार जन्म एवं मरण की सीमा से परे ईश्वर के देव एवं देवियों के रूप में नर-योनि में अवतरित होने की कल्पना , जिसमें नाना बाह्याडम्बर एवं पाखण्ड का प्रवेश हो जाता है, उनके पवित्र आत्मज्ञान एवं आत्मदर्शन को भ्रष्ट करना नहीं तो और क्या है ? उनके इस प्रकार की प्रतिक्रिया का मूलकारण अवतारवादी विचारधारा में प्रवृष्ट दुराचार, पाखण्ड एवं कुप्रवृत्तियां ही स्वीकार की जा सकती हैं । यद्यपि निर्गुण एवं सगुण भक्ति भावना एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो मार्ग हैं और तात्त्विक दृष्टि से इनमें कुछ पार्थक्य भी नहीं, किन्तु सगणोपासना पद्धति में प्रविष्ट ढोंग, पाखण्ड, एवं अंधविश्वास ने इसकी समस्त शुचिता एवं सार्थकता को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । यही कारण है कि मूर्ति-पूजा आदि का खण्डन संत कवियों द्वारा तन-मन-धन से किया गया ।

सगुणोपासकों द्वारा जिस कर्मकाण्ड की जटिलता पर विशेष बल दिया गया, उन्हें इन संतों द्वारा सर्वथा अमान्य ठहराया गया । उन्होंने ज्ञान पर बल दिया है, इस प्रकार धर्मक्षेत्र में कर्मकाण्ड एवं ज्ञान काण्ड दो मार्ग प्रशस्त हुए । कर्मकाण्डों के प्रति अतीत काल से ही मान्यता चली आ रही थी, परन्तु विडम्बना केवल इस बात की थी कि इसे दुराग्रह एवं दुराचार द्वारा अपवित्र कर दिया गया। साथ ही इनकी महत्ता ज्ञान काण्ड की तुलना में सर्वथा कम ही रही है, क्योंकि कर्मकाण्ड द्वारा किये गये यज्ञ याग परिणामस्वरूप फल तो प्राप्त हो, किन्तु यह फल अनित्य है, इसीलिए कहा गया है (बृह० ४।४।६, वे सू० ३।१।८, म०भा० वन० २६०।३६) :—

प्राप्यान्तं कर्मणास्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् ।
तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे ।।

अर्थात् इस लोक में जो यज्ञ याग आदि पुण्य कर्म सम्पन्न किये जाते हैं उनका फल स्वर्गीय उपभोग से समाप्त हो जाता है, तब यज्ञ करने वाले व्यक्ति

को स्वर्ग से पुन: मर्त्यलोक में आना पड़ता है।

'गीता' (६।२१) में इस प्रकार का वर्णन आया है कि "गतागतं काम कामा लभन्ते" उन्हें स्वर्गलोक एवं इस लोक में बार-बार आना पड़ता है। यह आवागमन बिना ज्ञान के समाप्त नहीं हो सकता, और जब तक आवागमन की समाप्ति नहीं तब तक मोक्ष कहां ? इसलिए संक्षेप में कहा जा सकता है कि चातुर्वर्ण्य समस्त कर्मों को भी यदि ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान एवं साम्यबुद्धि से आसक्ति त्याग कर सम्पन्न करते रहो तब भी मोक्ष के अधिकारी समझे जाओगे (गी० १८।५।६)। किसी देवता के नाम तिल-चावल आदि का "इदं अमुक -देवतायैन मम" कह कर अग्नि में हवन कर देने से यज्ञ नहीं हो सकता। पशुबलि या हत्या के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के शरीर में जो काम, क्रोधादिक दुष्प्रवृत्तियां हैं, उनका संयमाग्नि में होम करना ही अधिक श्रेष्ठ है (गी० ४।३३)। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधना-क्षेत्र में ज्ञान को ही विशेष स्थान प्रदान किया गया है।

कबीर पंथी एवं दरिया पंथी संत साधकों का तो प्रयास मात्र इन्हीं कर्मकाण्डों एवं मूर्तिपूजा के व्यर्थ विधानों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही, विशेष स्तुत्य है। कबीर ने मूर्तिपूजारियों की बड़े ही जोरदार शब्दों में निन्दा की है। 'ज्ञानप्रकाश' में आये हुए धर्मदास एवं कबीर के वाद-विवाद प्रसंग का प्रारम्भ मूर्ति-पूजा खण्डन से ही होता है। कबीर ने धर्मदास को मूर्तियां बड़े ही पुनीत आस्था से निकालते हुए तथा उन पर पूजा एवं श्रद्धा करते देख बड़े ही विस्मय में पड़ कर उन मूर्तियों को पौवा-सेर-छटंकी कह कर सम्बोधित किया और उनसे पूछा कि आप क्या कर रहे है ? धर्मदास ने उत्तर दिया कि मैं गुरु दीक्षानुसार 'ठाकुर जी' की उपासना कर रहा हूं, किन्तु आप अज्ञानवश इन्हें पौवा, सेर और छटंकी कह रहे हैं।

कबीर दास ने यह सुन कर विचार व्यक्त किया कि मुझे सन्देह हो रहा है, कि जिस ईश्वर के विषय में वेद, पुराण में यह वर्णन आता है कि वह नाम, आकार एवं रूप-रेख विहीन है, यदि उसके विषय में ज्ञान न प्राप्त कर सके तो इस पत्थर पूजने से किस प्रकार मुक्ति सम्भव है ? कबीर के इस ब्रह्मज्ञान

की बात सुन कर धर्मदास विस्मय में पड़ कर उनके इस ब्रह्म चर्चा से आकर्षित हुए, और उनके प्रति विश्वास भी होने लगा।[१] अन्त में कबीर ने उन्हें साधु सेवा एवं गुरुभक्ति का उपदेश दिया और उन्हें विश्वास दिलाया कि मूर्तिपूजा से कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक हृदय में छाया हुआ अज्ञानान्धकार विलीन नहीं होता, तब तक सत्य का अन्वेषण नहीं हो सकता और इस प्रकार ज्ञान गुरु द्वारा ही सम्भव है, राम-कृष्ण आदि देव ने भी गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त किये -

> गुरु बिनु सार ज्ञान नहिं पाई। ज्ञान बिना नहिं आपु चिन्हाई।
> धर्मनि तुम्ह मम शब्द विचारो। सब महं यक ब्रह्म निहारो ।।
>
> -ज्ञान प्रकाश, पृ० ३१

> महिमा अमित साधु गुरु समुझहु सन्त सुजान।
> पाहन सेवत भरम वश, बूड़े सकल जहान ।।
>
> -ज्ञान प्रकाश, पृ० ३२

'ज्ञानबोध' में इस प्रकार की चर्चा आई है कि अज्ञानी लोग बहु कर्मों में लिप्त हो कर पथभ्रष्ट हो रहे हैं, विविध मूर्तियों एवं देव देवियों की उपासना के माध्यम से ईश्वरानुभूति का भ्रम करते हैं, किंतु स्वयं ईश्वर के विषय में अज्ञान रहे हैं और दूसरों को ब्रह्म की प्रतीति के लिए उपदेश देते हैं, ऐसी अवस्था में स्वयं तो इस महोदधि में निमग्न ही होंगे, साथ ही वे औरों को भी डुबोने में सहायक सिद्ध होंगे।[२]

'बीरसिंह बोध' में ऐसे व्यक्तियों को भर्त्सना का पात्र समझा गया है जो कांसे, तांबे एवं पत्थरादि की मूर्ति द्वारा ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण करते हैं, ऐसा ब्रह्म जिसे कि आगम, निगम, वेद पुराण, शिव, ब्रह्मा शारद, शेष, नारद एवं समस्त सुर नर-मुनि आदि गुण गान करते हुए थक गये किन्तु किसी को ज्ञान प्राप्त न हो सका, उसे जड़मूर्ति द्वारा प्राप्त करने का भ्रम करते हैं, ऐसे लोग रक्षक न होकर भक्षक हैं।[३]

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० १०,११
२. ज्ञान बोध, पृ० २१

जो मूर्ति उपासना में लीन हैं, उनका जीवन निःसार है और उनकी मुक्ति कदापि सम्भव नहीं, वे एक मात्र गर्व एवं दम्भ के शिकार बन रहे हैं।[१] पत्थर-मूर्ति की पूजा में हिन्दू एवं मुर्दों की पूजा में मुसलमान पथभ्रष्ट हो रहे हैं, किन्तु सत्य का ज्ञान किसी को नहीं। इस संसार सागर में दोनों की मुक्ति सम्भव नहीं।[२] 'अनुराग सागर' में निरंजन ने स्वयं इस बात का समर्थन किया है कि बहु बहु देव देवियों की पूजा के अनेक बंध-फांस जीवों के लिए निर्मित किये गये हैं, जिनमें संसारी जन बंधे हुए है। यज्ञ, होम, जप, तप आदि कितने ढोंग पूर्ण आचरण हैं जिनसे उनमें ज्ञान का प्रवेश नहीं हो पाता।[३]

कबीर ने ऐसे व्यक्ति की निन्दा की है जो अवधूत बनने का दम्भी है जो भूतों में विश्वास कर लोगों को पागल बना देता है, वह गुण हीन, इन्द्रियों का दास एवं पाखण्ड पूर्ण आचरण वाला है, जो नाना वेश एवं स्वांग रच कर शील, सत्य, न्याय एवं संतोष से दूर रहता हुआ कामिनी के विषय में लिप्त है, मुण्डी लिये हुए बगासन धारण कर मांस भक्षण करता है, हाथ माले पर दिखावे के लिए दौड़ रहे हैं जिह्वा लोभ में पड़ कर मद्यमांसादि आदि अभक्ष्य वस्तुओं के उपभोग के लिए छटपटा रही है किन्तु अंत समय में जब प्रबल काल का आक्रमण होगा तो ऐसे पापाचारियों की कौन रक्षा कर सकता है? इस प्रकार का दुराग्रही व्यक्ति जो कि विषय वासना एवं ऐन्द्रिय सुखों की पूर्ति के लिए दशो दिशाओं की दौड़ लगा रहा है वो किस प्रकार मन एवं पवन की गति को स्थिर कर सकेगा।[४] 'आत्मबोध' में भी मूर्तिपूजा की निन्दा की गई है :—

> एक पूजिके मूर्तीगिमभारिधरी, एक शंख धुनिआरतीजोति बारी।
> सेवकीन्हीं सहीदेव चीन्हा नहीं, आत्मा, छोड़ि भये जड़ के पुजारी।
> पूजि पाषान अभिमान अंधा फिरे, सत चेतन सूं बीच यारी।
> योगी पण्डित बड़े सर्वगीता पढ़े भर्म की भीति नहिं टरत टारी।।
>
> —आत्मबोध, पृ० ३७

---

१. ज्ञानबोध, पृ० १७-१८
२. वही, पृ० २२
३. अनुरागसागर, पृ० ४१

दया को कहैं अरु सदा निर्दई रहैं, तौहि सजीव नरजीव पूजे ।
कहैं कबीर यौं जन्म का आंधला, सांच अरु झूठ नाहिं सूझै ।।
—आत्मबोध, पृ० ३०

कबीर दास जी ने मूर्ति उपासकों एवं देव देवियों को बलि द्वारा प्रसन्न करने वाले हिंसकों की बड़े जोरदार शब्दों में निन्दा की है :—

सन्तो देखत जग बौराना ।
सांच कहों तो मारन धावै, झूठहिं जग पतियाना ।।
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करहिं असनाना ।।
आतम मारि पषाणहिं पूजै, इन मुंह कछु न ज्ञाना ।।
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़हिं किताब कुराना ।
कै मुरीद तदबीर बतावै, इन महं कछु है ज्ञाना ।।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे , मन महं बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्व भुलाना ।।
—बीजक शब्द, पृ० ४८

दिन को रोजा रहत हौ, राति हुनत हो गाय ।
यह तो खून वह बन्दगी, क्यों कर खुशी खुदाय ।।४६ ।।
—बीजक, पृ० २२

सन्तों पांडे निपुण कसाई ।
बकरा मारि भैंसा पर धावैं, दिल महं दर्द न आई ।।
करि सनान तिलक देइ बैठे, विधि से देवि पुजाई ।
आतम राम पलक महं बिनशै, रुधिर की नदी बहाई ।।
अति पुनीत ऊंचे कुल कहिये, सभा मांह अधिकाई ।
इनते दीक्षा सब कोई मांगे, हंसि आवे मोंहि भाई ।।
पाप कटन कहं कथा सुनावहिं, कर्म करावहिं नीचे ।
हम तो दोउ परस्पर देखा, यम लाये हैं खींचे ।।
गाय बधै तेहि तुरुक कहिये इनते क्या वे छोटे ।

कबीर की धारणानुसार जीव बलि देने वालों की, चाहे वे कितना भी दान, पुण्य क्यों न करें, किन्तु उनकी मुक्ति सम्भव नहीं :—

> जिव जानि मारहु बापुरा, सब का एकै प्राण ।
> तीरथ गये न बांचिहो, कोटिहिरा दै दान ।।२१६।।
>
> —बीजक साखी, पृ० १४१

ऐसे व्यक्ति जो निर्जीव देव देवियों की आराधना में बकरी , मुरगी आदि की हत्या करते हैं, ऐसे भूत सेवकों को कबीर के अनुसार भूत योनि में ही अवतरित होना पड़ेगा :-

> यह भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा तिन जहड़ाया ।
> अण्ड न पिण्ड प्राण नहिं देहा, काटि काटि जिव कौतुक ये हा।।
> बकरी मुरगी दीन्हों छेवा, आगिल जन्म उन अवसरलेवा ।
> कहहिं कबीर सुनहु नर लोई, भुतवक पुजले भुतवै होई ।। ४७।।
>
> — बीजक शब्द, पृ० ६७

सवनिन्द गोष्ठी में कबीर ने सवानिन्द से कहा है कि तुम्हारे द्वारा, की-गई देव प्रार्थनाओं के प्रति एक शब्द भी नहीं बोल सकते, और न तो तुम्हारे द्वारा समर्पित उपहारों को ग्रहण करते हैं, न तो उनके आंख, कान, मुख, एवं प्राण ही हैं तो ऐसी उपासना से लाभ ही क्या है ? इन सबसे श्रेष्ठ परमार्थ रूपी शब्द है जो कि संतजनों द्वारा ग्राह्य समझा गया । इन निर्जीव मूर्तियों से श्रेष्ठ सजीव की सेवा है । इस कल्पना में भी उनकी मानवता वादी भावना ही प्रखर हो उठी है । उनका विश्वास है कि इस अजर, अमर आत्मा में परमात्मा अवस्थित हैं तो निर्जीव मूर्तियों की उपासना किस काम की ?[१] इसीलिए उन्होंने कहा है :—

> तुम सजीव घट ब्रह्म समायी । क्स निर्जीव अशोलमन लायी ।
> सरजीव होय सरजीव कहं सेवे । ज्ञानी शब्द परखि थ्यि लेवै ।।
>
> —ज्ञानप्रकाश, पृ० ४२

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ४१,४२

इन्हीं सब दोषों के कारण कबीर पंथ में मूर्तिपूजा का विरोध कर आत्मदर्शन को श्रेष्ठ समझा गया है। सद्गुरु द्वारा प्रदत्त सत्यनाम के पवित्र मंत्र का जाप करते हुए आत्मा की उपासना एवं जीवों पर दया भाव का कवच धारण करने से मुक्ति स्वरूपी जीवन मूल की उपलब्धि सम्भव है।

सत्यनाम सुमिरण करें, सद्गुरु पद निज ध्यान।
आतम पूजा जीवदया, लहैं सो मुक्ति अमान।।

—ज्ञान प्रकाश, पृ० ५६

कबीर पंथ के सदृश दरिया पंथ में भी मूर्ति पूजा के प्रति पूर्ण उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया गया है। इसका कारण यही है कि इन संतों ने अपने साधना पक्ष का सीधे तादात्म्य ज्ञान एवं भक्ति से जोड़ना चाहा है, जिसमें व्यर्थ के ढोंग, पाषण्ड, छल-छद्म आदि दुराग्रह पूर्ण आचरण की अपेक्षा नहीं रहती, यह ज्ञान कष्टकाया क्लेश द्वारा प्राप्त आत्मानुभूति से सम्भव है, जिसके लिए प्रकृति के किसी भी बहिरंग प्रदेश में भटकने की आवश्यकता नहीं। भक्ति के प्रसंग में इस बात का स्पष्टीकरण किया जा चुका है कि इस शरीर में ही सब तीर्थ एवं देव अवस्थित हैं, बस मात्र विलम्ब है अन्त: शुचिता की, जिसके द्वारा इन गुप्त रहस्यों का प्रत्यक्षीकरण हो सकता है, इनके लिए निर्जीव उपासना का कोई सबल आधार नहीं प्रतीत होता। दरिया साहब, कबीर के सदृश अपने युग के वातावरण से संक्षुब्ध हो उठे थे, साथ ही उन्होंने भक्ति क्षेत्र में सगुणोपासकों द्वारा प्रविष्ट किये गये, दुराग्रह पूर्ण आचरणों की आपत्ति पूर्ण कहानी का अस्तित्व भलीभांति समझ लिया था, इसीलिए अतीत से से चली आती हुई उस धारा को उल्टी बहाकर उस मटमैले एवं अपवित्र जल को अपने साधना पथ द्वारा पवित्र करने का अतिस्तुत्य प्रयास किया। कबीर के सदृश ही दरिया साहब ने भी पाषाण मूर्ति पूजा का सफल विरोध किया है, और इस घट के पर्दे के अभ्यंतर ही हृदय में अवस्थित 'आतम देव' की परख के लिए मार्ग सुझाया है।[१]

---

१. दरियासागर, पृ० ५५.

पढ़ि पाखण्ड पथल की पूजा । आतम देव अउरिना दूजा ।।७६६।।

— दरियासागर, पृ० ७७

दरिया साहब का कथन है कि जो पत्थर की मूर्ति न कुछ बोलती है और न तो अपने उपासकों द्वारा समर्पित किए गए उपहारों को ग्रहण करती है, तो ऐसे देव एवं देवियों की उपासना की क्या सार्थकता है ? इसी लिए उनके समक्ष ऐसी उपासना पद्धति के लिए कोई पुष्ट एवं सबल आधार नहीं दृष्टिगत होते, यही कारण है कि उन्होंने पत्थर की मूर्ति के पुजारियों की खुलेआम चुटकी लेते हुए उन्हें भर्त्सना का पात्र समझा है ।

न कछु बोले ना कछु खाई । ताके पुजे मिले का भाई ।। ८३४ ।।

—दरियासागर, पृ० ८४

ये पंक्तियां कबीर पंथी साहित्य के निम्नलिखित पद्यांशों से तुलनीय हैं :—

मेवा मिठाई राखि धरु आगे । खाँहि न मूरति परम अभागे ।।
आँख कान मुख नाहीं स्वासा । केहि विधि मूरति करहिं गरासा ।।

— ज्ञान प्रकाश, पृ० ४१-४२

कबीर के अनुरूप दरिया साहब ने भी भूत-प्रेतादिक के उपासकों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है, उनकी दृष्टि से इनकी मुक्ति कदापि सम्भव नहीं, बल्कि उन्हें यम यातना का निर्मम शिकार बनना पड़ेगा :—

जादो भैरो भूत यह, इष्ट पीर की साधि ।
ताकी मुकुति कबहिं नहिं, जम जिव करी उपाधि ।।१।।

—ब्रह्म विवेक , पृ० ३३७

ऐसे व्यक्ति जो पाषाण प्रतिमा की उपासना में अहर्निश रत होकर विविध प्रकार से चन्दन पुष्प एवं अक्षत आदि समर्पित करते हैं उन्हें सत्पुरुष की कृपा नहीं प्राप्त हो सकती :—

करि करि चौक कष्ट तनु आवै । पुर्ष दरस कबहीं नहिं पावै ।।१३६ ।।

तुरतहिं पाखंड करम जो कीन्हा । ताते मुखै दरस नहिं दीन्हा ।।१३५

—ब्रह्म विवेक, पृ० ३४०

दरिया साहब ने बताया है कि सालिक राम एवं नाना प्रकार के देव एवं देवियों की पूजा से ज्ञानोपलब्धि सम्भव नहीं है ।[१] जो भाव भक्ति को त्याग कर मूर्तिपासना में रत हैं, वे बाजीगर के सदृश आँख मूंद कर घंटा बजाते हैं, ऐसे लोगों की निरे पगले लोग ही प्रशंसा करते हैं ।[२] ऐसे व्यक्तियों को उन्होंने निपट अंधा घोषित किया है जो कि सत्य एवं ज्ञान से शून्य नमक एवं खांड, कंचन एवं कांच की परख नहीं कर पाते क्योंकि इन विरोधी गुणों वाले पदार्थों में किसी प्रकार की समरसता नहीं । ठीक उसी प्रकार से ईश्वर एवं पत्थर की मूर्तियों में किसी प्रकार के समता की कल्पना खाली मस्तिष्क की बात नहीं तो और क्या है ?[३] वैदिक धर्म एवं अन्य प्रकार के कर्मकाण्ड के विश्वासियों का इनके प्रति सम्भवत: इस प्रकार का उत्तर हो सकता है कि जब किसी भी पाषाण प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा पूत मंत्रों द्वारा ही की जाती है, तो उसमें सजीव देव के समस्त गुण समाविष्ट हो जाते हैं और उसमें ईश्वर से किसी प्रकार का विभेद नहीं रह जाता । किन्तु इस प्रकार के कई प्रमाण हमारे धार्मिक-साहित्य तथा इतिहास आदि में सत्य ही विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जिनसे इस प्रकार की कल्पना नि:सार एवं निराधार ही ठहरती है । क्योंकि जब मुहम्मद गज़नी का सोमनाथ पर आक्रमण हुआ, तो उसकी सेना के विध्वंसात्मक कार्यों की सफलता पुजारियों के विस्फारित नेत्रों की मात्र प्रदर्शिनी ही बन सकी । और उसकी विजयनेसम्पूर्ण उपासकों की आशा पर पानी सा फेर दिया । अभिप्राय यह कि जब ऐसी मूर्तियाँ स्वयं अपनी रक्षा न कर सकीं तो पुजारियों एवं उपासकों की क्या बात चलाई जाय ? अब उनकी शक्तिमता के भण्डाफोड़ का और कौन सा प्रमाण चुना जाय ? इतना होते हुए भी यदि पुन: ऐसे देव देवियों में विश्वास के

---

१. गणेश गोष्ठी, पृ० ३

२. ब्रह्म विवेक, पृ० ३८

३. ग्रंथ , पृ० ६१-६२, परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

दीप जलाये जांय तो मात्र पत्थर पर तीर चलाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। स्पष्टत: इसी प्रकार का प्रमाण दरियापंथी साहित्य में भी उपलब्ध होता है। `मूर्ति उखाड़` नामक रचना मात्र मूर्ति पूजा के प्रति क्रियास्वरूप ही सम्भव हो सकी है। क्योंकि दरिया साहब ने मूर्तिपूजा की नि:सारता का ज्वलंत प्रमाण धरकंधा में स्थापित दुर्गा मूर्ति को उखड़वा कर प्रस्तुत किया। यद्यपि सामाजिक गतिविधियाँ दरिया साहब का यथेष्ट सहयोग न कर सकीं तथापि उन्हें यत्किंचित भी भय न हुआ और साहस के साथ सामाजिक अवस्था का उन्होंने सामना किया। इतना ही नहीं अपितु उन्होंने तीन मास तक उस मूर्ति को गुप्त रूप से छिपा कर कहीं गड़वा दिया। परन्तु उनके ऊपर किसी भी प्रकार की आपत्ति न आ सकी, इस बात से भी स्पष्टत: सिद्ध हो जाता है कि मूर्तिपूजा पूर्णतया व्यर्थ एवं नि:सार है, जिसका अभिशाप स्वरूप मात्र निराशा एवं वेदना ही है। इसीलिए उन्होंने कहा है :—

पत्थल पानी मूरति की पूजा
इसमें भर्म करि जानहुरे जी।
देवल देवी बांधि करि पुजावे
नाना पूजा लोभ न अब आयेउ रे जी ॥

—मूर्ति उखाड़, पृ० १४ (पाण्डुलिपि)

पत्थल गढ़ि गढ़ि मुरति बनाया, आदि केहु नाहिंपायउरे जी।
तब हम कहा मुरति है पत्थल, चाहो तो फोरि डारेउ रे जी।
हाथ पांव मुख सभे बनाया, बोलना बिना न कारेउ रे जी।

—मूर्ति उखाड़, पृ० ५६ परिशिष्ट
(संतकवि दरिया एक अनुशीलन)

दरिया साहब ने `शब्द` नामक रचना में भी मूर्ति पूजा एवं बलि प्रथा का सफल विरोध किया है :—

का ऊपर तन धोवै पानी, भीतर भरि भिमारी है ॥
पाहन पूजि हुआ जड़ अंधा, येहु अहै भारी है ॥
जिव में दया दरद नहिं आवै, जीव पकरि के मारी है ॥

कहे दरिया कुल बेगिदी, जमने फंद पसारी है ।। ६८ ।।

— शब्द , पृ० २५ (पाण्डुलिपि)

कबीर पंथ के सदृश ही दरिया साहब ने भी ढोंगियों एवं जीव बलि देने वालों की निन्दा की है :—

धुंध धोखा धरे अंध पूजा करे घंट बजाए सिर चौर ढारे ।
तोरि सजीव निरजीव पूजा करे, देव दूजा कीन्हो कपट कारे ।
जीव औ सीव सभ आतमा राम है पकरि के तेग धरि ताहि मारे ।
बूझ कीन्हें नहिं भर्म भटका फिरे गया जमदार सो नरक नारे ।।
सुकृत रेखा नहिं भक्ति देखा नहिं धरम दाया नहिं जनम हारे ।
छोड़ि बैकुंठ एह मूढ़ माता फिरे नस्ट जिव जाए धरि तप्त जारे ।।
छोड़ि दे टेक अलेख साहब मिले जीव का मूल गहु सब्द सारे ।
कहे दरिया चढ़ दाया के महल पर गहो परवारि काटि त्रिगुनधारे ।।

—शब्द, पृ० ८६ परिशिष्ट (संतकवि दरिया एक अनुशीलन)

दरिया साहब को मूर्तिपासना की निःसारता का भलीभांति ज्ञान हो गया था, इसीलिए मूर्तिपूजा का अच्छीतरह खण्डन किया है और निर्जीव पूजा से सजीव पूजा को ही उन्होंने अधिक श्रेयस्कर सिद्ध किया है :—

बोलता पूजै सभ संसे मेटाई । तब हंसा छपलोक समाई ।।५६४।।

—दरिया सागर, पृ० ५६

इस प्रकार हम देखते हैं कि उभय पंथों में निर्जीव पूजा को पूर्णतया वहिष्कृत समझते हुए सजीव पूजा एवं सब पर दया भाव प्रदर्शित करना ही अनिवार्य समझा गया है ।

तीर्थ —

अनादि काल से ही समस्त भारतीय-धार्मिक-साहित्य में तीर्थों का स्थान अतिश्लाघ्य रहा है । तीर्थों के विषय में यदि ध्यान पूर्वक सोचा जाय तो कहा जा सकता है कि इनकी महत्ता किसी प्रदेश, नदी, पर्वत अथवा देव-

एवं देवियों के कारण नहीं प्रत्युत महापुरुषों एवं महात्माओं के पावन चरित्र के कारण ही रहा है। यह सिद्धान्त प्राय: सभी तीर्थों के लिए चरितार्थ है। इसका परीक्षण अति सरल एवं स्वाभाविक ढंग से भी किया जा सकता है कि कोई भी देश अथवा स्थान सदाचरण वाले संत अथवा महात्मा के कारण ही प्रख्यात है। इसकी तुलना में कितने असंख्य स्थान हैं जिनका कोई इतिहास नहीं। इसका प्रमाण हमें धर्म-ग्रन्थों में पग-पग पर मिल जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तीर्थ स्थानों की महत्ता नहीं प्रत्युत संत एवं महात्माओं की महत्ता है जिनसे तीर्थ स्थान भी पुनीत एवं प्रतिष्ठित बन जाते हैं। इसी बात का समर्थन हमें कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों में दृष्टिगत होता है। यद्यपि यही वस्तुस्थिति सत्य है किन्तु मात्र पाखण्ड एवं अज्ञान के प्रवेश से जनमानस में एक प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो गया, जिससे संत एवं सद्गुणों का माहात्म्य गौण हो गया और किसी विशिष्ट तीर्थस्थान की महत्ता, उसके स्थान के कारण प्रधान रूप धारण किया। ज्ञान की शून्यावस्था में इन्हें इस विषय का भान रह ही नहीं गया कि भक्ति के क्षेत्र में सदाचरण एवं अन्त:शुचिता ही सर्वस्व है और इन्हीं के माध्यम से उस चिरंतन सत्य का निराकरण सम्भाव्य है, दूसरी ओर तीर्थों आदि का पर्यटन यदि हम में छल छद्म आदि विनाश मूलक एवं दुराग्रही प्रवृत्तियां घर किये हुए हैं, पूर्ण व्यर्थ है। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया लोग मूल वस्तु एवं सत्य से विचलित होते गये और अविवेक एवं अज्ञान के दास बन बैठे। यही कारण है कि देश में ढोंग, आडम्बर, पाखण्ड, छल-छद्म एवं दुराग्रह पूर्ण दुष्प्रवृत्तियां विस्तार पाने लगीं और ऐसे युग में सत्यशील एवं न्याय की महत्ता गौण सी हो चली। यही कारण है कि कालान्तर में समस्त तीर्थ स्थान मात्र भ्रष्टाचार के केन्द्र ही रह गये।

इन्हीं सब कारणों से देश तथा काल के प्रति इन संत साधकों एवं चिन्तकों का इस संक्षुब्ध वातावरण के प्रति जागृति उत्पन्न करने का अपूर्व सहयोग अति श्लाघ्य है। कबीर-पंथी एवं दरिया-पंथी साधकों ने उन्मुक्त रूप से ऐसे तीर्थ स्थानों एवं तीर्थ सेवियों दोनों को अनादर की दृष्टि से

देखते हुए समाज में इनका स्थान लुप्त करना चाहा, और अपनी वाक्वाहिनी रूपी निर्मल सरिता को प्लावित कर जनमानस के अन्त:करण को विशुद्ध बनाने का अथक प्रयास किया है।

उपर्युक्त बातों का स्पष्टीकरण कबीर पंथ एवं दरिया पंथ के विवेचन से भली-भांति हो जायगा। कबीर पंथ के अनुसार सत्यस्वरूपी ईश्वर की भक्ति से विमुख लोग कृत्रिम देव देवियों की उपासना में उलझे हुए हैं, परिणामस्वरूप जन्म एवं मरण के कष्ट से मुक्त नहीं हो सकते।

जो रक्षक तेहि गहे न कोई। जो भक्षक तेहिं धावहिं लोई।।
कर्म भर्म बसि तीर्थ नहाहीं। पुण्य पाप बसि आवहिं जाहीं।।
—ज्ञानप्रकाश, पृ० ६

तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई। यह जम जाल तहां ठहराई।।
यहि जगत ऐसे अरुझाई। नाम बिना बूड़ी दुनियाई।।
—ज्ञान बोध, पृ० २१

चाहे करोड़ों तीर्थों का सेवन क्यों न किया जाय किन्तु सत्यनाम के बिना मुक्ति सम्भव नहीं।[१] कबीर दास ने धर्मदास के बहुदेव देवियों एवं तीर्थस्थानों के प्रति अटूट विश्वास एवं प्रगाढ़ श्रद्धा को देखकर कहा कि ये सब मोक्ष के बाधक तत्वों में आते हैं, केवल निराकार, निर्गुण एवं अविनाशी पुरुष की भक्ति के माध्यम से ही अचलानन्द की उपलब्धि सम्भव है।[२] कबीर पंथी-साहित्य में चार-अवस्थाएं स्वीकार की गई हैं जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीया। विदेही पुरुष के ज्ञान को तुरीया अथवा सर्वोच्च स्वीकार किया गया है और उससे कुछ कम श्रेयस्कर अवस्था का नाम जागृत है जिसमें जीव आत्मा को ही परमात्मा स्वीकार करता है। सुषुप्ति में धार्मिक प्रपंच एवं विविध जप तप पूजा पाठ आदि आते हैं, जो

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ११
२. वही, पृ० १६

भ्रष्ट होने के लिए सहायक सिद्ध होंगे । अर्थात् इस दृष्टि से भी तीर्थाटिक धर्माचारों को हेय दृष्टि से देखे जाने का प्रयास किया गया ।[१] जो व्यक्ति जीवों की हत्या करता है, चाहे, कितना ही शिर मुड़ा ले तीर्थस्थानों में स्नान करे, दान दे , रोजा-नमाज एवं उजू गजारे, मस्जिद में अजान की आवाज लगाये किन्तु यदि हृदय का अंध कपाट, ज्ञान दीप से भली-भांति प्रकाशित नहीं हो जाता , हृदय में पवित्रता नहीं आ जाती तो लाख हज एवं मक्का गुजारने से क्या ? जब ईश्वर का वास तुम्हारे शरीर में ही है तो इतस्ततः की भूपरिक्रमा करने से कुछ सिद्ध नहीं होगा ।[२]

> तीर्थ गये ते बहि मुये, जूड़े पानि नहाय ।
> कहहिं कबीर पुकारि के राक्षस ह्वै पछताय ।।२२१ ।।
> तीर्थ भई विष बेलरी, रही युगई युग छाय ।
> कबिरन मूल निकन्दिया, क्यों न हलाहल खाय ।। २२२।।
> तीर्थ गये तेहूँ जना , चित खोंटा मन चोर ।
> एकौ पाप न काटिया, लादिन मन दश और ।।२२३ ।।
>
> —बीजक,पृ० १४२

कबीर पंथी रचना " अनुराग सागर " के अनुसार ब्रह्मा द्वारा ६८ तीर्थ स्थानों की स्थापना की गई, जिनके द्वाराजीवों के लिए कर्म एवं अकर्म के विधान सुनिश्चित किये गये । बारह राशियाँ एवं सत्ताइस नक्षत्र , सात वार एवं पन्द्रह तिथि, चारों युग, घड़ी दंड आदि जीवों के लिए अनन्त बन्धन नियमित किए गये, जिनसे सुरक्षा पूर्ण असम्भव है, इन्हीं द्वारा यम ने जीवों से दाँव खेलना प्रारम्भ किया और वह तीर्थ धर्म आदि के अनेक पाश बनाकर पाप एवं पुण्य द्वारा अखिल जगत् को सत्य से विचलित कर यमराज की कठोर यातना का शिकार बनने के लिए विवश करता है ।[३] तीर्थ, व्रत, नियम-आचार, दान-

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ४३
२. वही, पृ० ४४
३. अनुराग सागर, पृ० ५५.

पुण्य, जप, एवं मंत्रादि से जगज्जालों से मुक्ति नहीं।[1] अन्तत: साधु सेवा ही अध्यात्म पक्ष में एक पवित्र साधना पद्धति है जिससे कि मुक्ति सम्भव है :—

कोटि तीर्थ संतन्ह पद वासा । अंधा जीवहिं नहिं विस्वासा ।।

—ज्ञान प्रकाश, पृ० २२

इसी प्रकार दरियापंथी-साहित्य में भी तीर्थ सेवन के प्रति विरोधी भावनाएं ही प्रबल रूप धारण किए हुए देखी जाती हैं। दरिया साहब की धारणा है कि तीर्थव्रत बिना सद्भक्ति के पूर्ण व्यर्थ हैं।[2] और जो व्यक्ति व्यर्थ के पाखण्डों एवं कर्मकाण्डों में विश्वास करते हैं निश्चय ही उन्हें काल के हिंडोले पर झूलना पड़ेगा। ऐसे अंधविश्वासियों को उन्होंने भी कबीर के सदृश ही अंधा घोषित कर कह कर उन्हें फटकारने का प्रयास किया है :—

पाहन महा कि तुम गहि राखा इमि छट कर्म बंधा ।
तीरथ तीर में नीर बखानत आपने दवरत अंधा ।।
झूठा तीरथ बरत हैं झूठा झूठा सो जो धावै ।
जाहां जाए ताहां बोलै ना बानी रोवत घर के आवै ।।
है यह आश्रित विधि जनि जानेहु विमल ज्ञान निजु सोई ।।
कहैं दरिया पद पंकज गहिये आनंद मंगल होई ।।

—शब्द, पृ० १६१ परिशिष्ट
(संतकवि दरिया एक अनुशीलन)

दरिया साहब अपने समय के तीर्थ स्थानों के भ्रष्टाचार से अनभिज्ञ न रह सके। उनकी दिव्य दृष्टि पग-पग पर दौड़ गई, यही कारण है कि उन्होंने इन स्थानों में होने वाले भ्रष्टाचारों का इतना चीखा-चाखा चित्रण प्रस्तुत किया है कि सहसा विस्मय में पड़ जाना पड़ता है। ये ही तीर्थ स्थान अब काम केलि क्रीड़ा के स्थल बन चुके हैं, इसीलिए काशी जैसे तीर्थस्थानों को बड़ी ही निन्दा की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। ऐसे तीर्थ स्थानों में स्वार्थी रमणियाँ निवास करती हैं, जिनके आचार व्यवहार से बड़े बड़े तपस्वियों की

---

१. दरिया सागर, पृ० ५५

समाधि टूट जाती है, काम के वशवर्ती होकर सन्मार्ग एवं अभीष्ट से वंचित रह जाते हैं। जटा जूट एवं विविध वेश-भूषा अपना कर परमात्मतत्व से अनभिज्ञ एवं विषय वासनाओं का रस छक छक पीते हैं, ऐसे अज्ञानी पुरुष आजीवन सत्य से विमुख रहे।[१] इसी लिये दरिया साहब ने कहा है :—

> तीर्थवर्त कर्म रचि राखा। करि षट कर्म ग्यान नहिं भाखा ।।१३७
> जोगी जती भूले सुध भाई। षट दर्सन मिलि पंथ चलाई ।। १३१८
> काल हिंडोला सम मिलि भूला। भेख धरी पढि पंडित फूला। १६
> सतगुरु बिना कर्म नहिं छूटे। धरि धरि काल भवन में लूटे ।। २०

भक्ति के प्रसंग में यह स्पष्टतः सिद्ध किया जा चुका है कि भक्ति के लिए प्रायः प्रेम एवं ज्ञान तथा साधु सेवा जैसे पवित्र आचरणों की आवश्यकता है, जिसके लिए काया क्लेश का सबल आधार ग्रहण करना होगा। क्योंकि इस काया में ही समस्त तीर्थ एवं देवस्थान है, इसलिए कहीं बहिरंग प्रदेश में भ्रम से पर्यटन की आवश्यकता नहीं। दरिया साहब ने भी कबीर के सदृश ही संतजनों के समागम को ही तीर्थ स्वीकार किया है और इन्हीं से मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है :—

> साधुशरण पद पंकज गहई। महापाप दुख दारुन दहई ।।१८२।।
> कोटि तीर्थ साधु के पासा। भजन करै जाए जम त्रासा ।।१८३
> —ग्यान मूल ३८६

> पद प्रयाग सो हरि पद नीका। तीर्थ बर्त भक्ती बिनु फीका ।।१४७८
> जो पशु संत दरस कह परई। कोटि पुन्य अघ पातक हरई ।।१४७९
> जेहि मंदिल मनि संत बिराजे। कोटि तीर्थ पद पंकज छाजे ।।१४८०
> संत दरस गुन सुखद अति, हृदय कंवल परकास।
> जो पशु पढ़े प्रयाग सम, सुरसरि जल पद पास ।।६७।।
> —ग्यान रतन, पृ० २१६

---

१. ग्रन्थ, पृ० ११६ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

वर्णाश्रम धर्म -

भारत सर्वथा विविध धर्मों एवं नाना जातियों का केन्द्र रहा है, इसीलिए यहाँ भारतीय एवं अभारतीय दोनों प्रकार के धर्मों एवं जातियों का समागम होता रहा है, परिणामस्वरूप धर्म एवं जाति के विषय में यदि पर्याप्त वैषम्य हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अभारतीय प्रश्न तो बहुत दूर है, किन्तु इस दृष्टि से भारतीय इतिहास का ही अध्ययन किया जाय तो निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत स्वत: अनन्त धर्मों एवं जातियों से सम्बद्ध रहा है। प्रारम्भ में जहाँ तक सम्भावना है, ऐसी जटिलता न रही होगी, जैसी कि सम्प्रति अथवा संत-साहित्य के पूर्व कालीन वातावरण में उपस्थित हुई। कालान्तर में वर्णाश्रम धर्म एवं विभिन्न सम्प्रदाय इतने तीव्रगति से विस्तार पाने लगे कि मानवीय दृष्टिकोण अछूता सिद्ध होने लगा। और जाति एवं धर्म के नाम पर खून की होली खेली जाने लगी। परिणामस्वरूप जनसामान्य का जीवन शंका-ग्रस्त हो चला और मानवता कराह उठी। उसी समय संत मतावलम्बियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें देश के इस प्रकार की छीछालेदर का भलीभाँति बोध हो गया, इसीलिए ऐसी स्थिति के सुधार निमित्त इन संतों ने अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया।

समस्त अध्यात्म-साहित्य में इस तथ्य के प्रति सम्मान प्रदान किया गया है कि एक ही आत्मा सब में विद्यमान है, और सबका कर्ता भर्ता एवं संहर्ता एक ही है। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म की जटिलता किस प्रकार उद्भूत हुई। मानवतावादी दृष्टि से जाति एवं धर्मगत वैभिन्य, विकास के लिए एक बहुत बड़ा बाधक तत्व है, इसलिए समष्टि एवं व्यष्टि दोनों प्रकार के कल्याण के लिए इनका समूल विनाश पूर्ण रूपेण अनिवार्य है। आवश्यकता भी है तो मानवधर्म की जिससे देश का छोटा से छोटा बच्चा भी "वसुधैव कुटुम्बकम्" की पूत भावना से प्लावित हो। इसी उत्कृष्ट भूमि तक की पहुँच ही इन संतों का चरमोद्देश्य रहा है, जिसकी सफलता के लिए इन्होंने कुछ बाकी न लगा रखा। इन्होंने दया एवं परोपकार के ऐसे उत्कृष्ट धरातल पर पदार्पण किया, जिससे मानव ही नहीं प्रत्युत चेतन जगत् के छोटे छोटे से छोटे कीट पतिंगों तक में आत्मा

की तिलांजलि देकर प्राप्त किया था ।

परमात्म तत्व के एकता की कल्पना कर लेने पर ईश्वर ही अखिल जगत् का कर्ता-संहर्ता सिद्ध हुआ और उसी ने चातुर्वर्ण्य की व्यवस्थायें निरूपित की हैं, तब भी पार्थक्य उत्पन्न करने का कुछ भी आधार नहीं दृष्टिगत होता । `गीता ` में भी श्रीकृष्ण ने बताया है " चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः (गीता ४।१३) । और अपने कर्मों में रत रहना ही परमेश्वर की भक्ति हो जाती है । मीमांसा, उपनिषद् एवं वेदांत सूत्रों को देखें तो ज्ञात होगा कि इनमें श्रौत यज्ञ यागादि कर्म कर मोक्ष प्राप्ति का अधिकार पहले ही तीन व्यक्तियों को है (वे सू० १।३।३४-३८) । इस प्रकार यह बात समझ में नहीं आती कि स्त्रियों तथा चौथे वर्ण वालों के लिए मुक्ति के निमित्त कौन सा मार्ग सुझाया गया है ? या उपनिषदों एवं वेदों के ये शत्रु हैं, जिससे कि इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। ~~किन्तु उपनिषदों एवं वेदों के ये शत्रु हैं, जिससे कि इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया ।~~ किन्तु उपनिषदों एवं पुराणों में ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि गार्गी प्रभृति स्त्रियों तथा विदुर प्रभृति शूद्रों को मोक्षानन्द प्राप्त हुआ (वे०सू० ३।४।३६-३९)

`गीता` में भी उल्लेख आया है :-

> मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
> स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।

हे पार्थ ! स्त्री, वैश्य, और शूद्र या अन्त्यज आदि जो नीच वंश में उत्पन्न हुए हैं, उन सबको उत्तम गति प्राप्त है (गीता ९।३२) । इन्हीं बातों का समर्थन (मभा०अश्व० १९-६१) महाभारत के 'अनुगीता' पर्व में भी प्राप्त होता है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो साम्य बुद्धि के उच्चावस्था की पवित्र भूमि पर पहुंच गया वह फिर चाहे किसी भी वर्ण का हो वह मुक्ति का अधिकारी समझा जायगा, और उसके कुलीन बनने का मापदंड मात्र गुण एवं कर्म ही है और कुछ नहीं । इस प्रकार चाहे कोई शूद्र वर्ग का ही क्यों न हो किन्तु उसका अन्तःकरण शुद्ध है तो वह भगवत्कृपा का पूर्ण अधिकारी समझा जायगा ।

परमेश्वर के लिए स्त्री चांडाल सब समान हैं और वह मात्र प्रेम एवं भक्ति का भूखा है। संत तुकाराम का यह अभिप्राय निम्न पद्य से स्पष्ट हो जायगा।

क्या द्विजाति क्या शूद्र ईश को वैश्या भी भज सकती है।
श्वपचों को भी भक्ति भाव में शुचिता कब तज सकती है?
अनुभव से कहता हूं, मैंने उसे कर लिया है बस में।
जो चाहो सो पियो प्रेम से अमृत भरा है इस रस में।।

—गीता रहस्य, पृ० ४३८

'गीता' में इस बात का स्पष्टीकरण किया गया है कि —"मनुष्य कैसा भी दुराग्रही क्यों न हो, किन्तु यदि अंतिम समय में भी वह अनन्य भाव से भगवान की शरण में जावे तो परमेश्वर उसे नहीं भूलता (गी० ९।३० और ८।५८)। केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं वरन बुद्ध धर्म में भी यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है (मिलिन्द प्रश्न।३।७।२)। इसाई धर्म ग्रन्थों में भी इस प्रकार के प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि ईसामसीह के साथ जो दो चोर सूली द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए, उनमें से एक ने अपने को उनकी शरण में समर्पित किया परिणाम स्वरूप उसे मुक्ति प्राप्त हुई (ल्यूक० २३।४२ और ४३)। इसामसीह ने स्पष्टत: स्वीकार किया है कि हमारे धर्म में विश्वास रखने वाली वेश्यायें भी मुक्ति की अधिकारी समझी जाती है (मेथ्यू०२१।३१, ल्यूक०७।५०)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुदूर काल से ही वर्णाश्रम धर्म विरोधी सुविशाल श्रृंखला अबाध गति से बल पकड़ रही थी जिसे कबीर पंथी एवं दरिया पंथी संतों ने आत्मसात किया। कबीर ने जातिगत जटिलताओं के विश्वासियों को कस कर फटकारा है और उनके प्रतिक्रिया में कुछ भी बाकी न लग रखा। वर्णाश्रम धर्म की जटिलताओं में सर्वाधिक हाथ ब्राह्मणों का रहा है जिन्हें अपने ग्रन्थ ज्ञान एवं कुलाभिमान का बहुत बड़ा गर्व था। ये मात्र अपने कोई समस्त धर्म-ग्रन्थ, तीर्थ, व्रत एवं उपासना के योग्य समझते थे और इनकी धारणानुसार शूद्रों के लिए यत्किंचित भी स्थान रिक्त न था, पता-नहीं इन लोगों ने इनका क्या बिगाड़ा था जो किये इस प्रकार ब्राह्मणों के दुश्मन सिद्ध हुए किन्तु सम्भवत: आज तक इस दुराग्रह कल्पना के लिए कोई उचित उत्तर [illegible]

अर्थात् वेदपाठी ब्राह्मण सुशिक्षित होने पर भी भ्रम में पड़ा हुआ है, पर उसे आत्मज्ञान नहीं, अपने गुणों पर दम्भ करता है किन्तु गर्व धारण करने वालों का कल्याण कहां ? क्योंकि ईश्वर अभिमानियों का सर्वनाश करने वाला है तब ईश्वर एवं अभिमानी का सामंजस्य किस प्रकार बैठ सकता है ? इसलिए कबीर कहते हैं कि ऐ पंडित ! कुल अभिमान त्याग कर मुक्ति मार्ग की खोज करो, क्योंकि निष्कामी व्यक्ति ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। जब बीज अंकुर सहित विनष्ट हो जाता है तभी विदेही मुक्ति प्राप्त होती है। (जिस प्रकार भूंना हुआ बीज व्यर्थ हो जाता है और उसमें अंकुर निकलने की सम्भावना नहीं रह जाती ठीक उसी प्रकार निष्काम कर्म करने से ही मुक्ति सम्भव है) ।

ब्राह्मण एवं मुसलमान दोनों अपने जाति अभिमान में चूर होकर अपने को कुलीन, बनने का भ्रम करते हैं, किन्तु कबीर की दृष्टि में इन सब के अभिमान का कोई सबल आधार नहीं है :—

जे तूं बाभन बभनी जाया । तौ आनं बाट होई काहे न आया ।।१
जे तूं तुरक तुरकिनीं जाया । तौ भीतरि खतानां क्यूं न कराया ।२।
—कबीर ग्रंथावली (परि०)पृ०१०६

ऐसो भरम बिगुरचन भारी ।
वेद किताब दीन और दोजख, को पुरुषा को नारी ।।
माटी को घट साज बनाया, नादे बिन्द समाना ।
घट बिनशे क्या नाम धरहौ, अहमक खोज भुलाना ।।
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा ।
एक बुन्द ते सृष्टि रच्यो है, को ब्राह्मण को शूद्रा ।।
रजगुण ब्रह्मा तमगुण शंकर, सत्वगुणी हरि सोई ।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरक न कोई ।।८२।।
—बीजक शब्द, पृ० ७५

कबीरपंथी रचना 'जीवधर्म बोध', में भी हिन्दू एवं मुसलमान में समन्वय स्थापित करने के लिए सबमें एकही ब्रह्म की कल्पना की गई है :—

को हिन्दू को मुसलमाना । को ब्राह्मण केहि शूद्र बखाना ।।
कौन यहूदी कौन नसारा । एकै ब्रह्म को सकल पसारा ।।

—जीवधर्मबोध, पृ० २२-२३

इसी ग्रन्थ में वर्ण वैभिन्य को नि:सार सिद्ध करते हुए इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि पूर्व कर्मानुसार कितने विप्र शूद्र हो जाते हैं और कितने शूद्र ब्राह्मण । ब्राह्मण बनने की कसौटी जन्म नहीं, वरन् जिसने तप, संयम् एवं आत्म-दर्शन द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लिया वही ब्राह्मण है । इतना ही नहीं बल्कि इस प्रकार के उत्कृष्ट गुणों का समावेश होते ही वह अपने जन्म को सफल बना लेता है, अन्यथा लोग भ्रष्ट ही होते हैं ।[१] जो ब्रह्म की परख कर दयाभाव का प्रति पालन करते हुए कुप्रवृत्तियों से दूर रहता है वही ब्राह्मण है । साधु के लिए जाति-पाँति जैसी कोई शृंखला नहीं वह तो एक मात्र कर्म एवं गुण द्वारा ऊँच-नीच का निर्धारण करना जानता है । इसी प्रसंग में अनेक नाम गिनाये गये हैं जिनकी माता ब्राह्मणि नहीं थीं किन्तु कालान्तर में ~~मात्र~~ कर्मों के कारण ही वे ब्राह्मण कहे गये, इसका भी यह अर्थ लिया जा सकता है कि जाति का आधार जन्म न होकर कर्म ही है । यथा: गज से अचल मुनि, उलूक से केशपिंगल मुनि, पुष्प अगस्त्य से अगस्त्य मुनि, कुश से कौशिक मुनि, कपि से कपिल मुनि, लता एवं शाखा से गौतम ऋषि, दोनों से द्रोणाचार्य, तीतर से तीतरी ऋषि, रज से परसराम, हरिणी से शृंगी ऋषि, केवर्तिन से व्यास, चंडालिनी से विश्वामित्र, कमल से ब्रह्मा एवं वेश्या से वशिष्ठ मुनि की उत्पत्ति हुई, पर उन सबकी माता ब्राह्मणि नहीं थीं । [illegible] भी पुष्ट एवं सबल प्रमाण और क्या हो सकते हैं कि जन्म कोई जातिगत आधार नहीं है ।[२] इसके साथ ही भक्ति के क्षेत्र में जातिपाँति का सम्बन्ध त्याग देने पर ही सफलता सम्भव है । और जिसे ईश्वर की परख नहीं है तो वही निम्न वर्ग का, अर्थात् चमार है :—

जब लगि नाता जाति को, तबलगि भक्ति न होय ।।
नाता तोरे हरि भजे, भक्त कहावे सोय ।।
बड़े गये बड़ आपने, रौं मरोम हंकार ।
सतगुरु की परखे बिना, चारों बरन चमार ।।

— जीव धर्म बोध, पृ० [illegible]

जब सबके शरीर की रचना एक सी है क्योंकि रज एवं वीर्य से ही सब की उत्पत्ति होती है तो यह बात समझ में नहीं आती कि इस प्रकार के वैभिन्य का क्या आधार है ?

एकै विधि बहुं बरन बनाया । रुधिर बिन्दुते सबकी काया ।
सत्संग में सब एकै जाती । लिखा भागवत में यहि भांती ।।
नृप शौनक बहुं बरन बनाये । गुण करि भिन्न भिन्न बिल गाये ।।
कैते शूद्र विप्र ह्वै जाही । कैते विप्र शूद्र गुन ग्राही ।।

—जीवधर्म बोध, पृ० ९७

'ज्ञान बोध' में भी वर्णनिर्धारण का आधार केवल कर्म एवं गुण को ही चुना गया है, और जन्मजात जातिगत जटिलताओं को व्यर्थ एवं अवास्तविक बताया गया । इसमें इस बात की पुष्टि की गई है कि जाति-पाँति सब व्यर्थ हैं, बस एक मात्र मानव जाति है, जब सब का जन्म एवं मरण एक सा है सब का घर एवं पिता तथा कर्ता-धर्ता एवं हर्ता सब कुछ एक ही है तब हम किस प्रकार अनेक हैं, हाँ यदि किसी प्रकार का जाति निर्धारण करना है तो उसका आधार कर्म ही है और कुछ नहीं । इस प्रसंग में भी जन्म गत उच्चवर्णी व्यवस्था के निर्धारण करने वालों की खब कर खबरी ली गई है कि यदि शरीर पर जनेऊ धारण कर लेने से ब्राह्मण बन सकते हो तो जिस माता से जन्म लिया है वह तो जनेऊ नहीं धारण करती, और यदि सुन्नत कर लेने से मुसलमान बनना उचित है तो तुर्कानियों का कहाँ सुन्नत हुआ है ? इस प्रकार न कोई हिन्दू है न तुर्क मात्र अज्ञान ही सब में भ्रम उत्पन्न कर रहा है :—

एकहि घर से सब जिव आये । एक बाप इक माता जाये ।।
ऊँच नीच सब समझ कर जाना । ऊँच नीच सब झूंठ बखाना ।।
डार जनेऊ ब्राह्मण कहलाये । ब्राह्मणि को कहो का पहिराये ।।
सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा । तुर्कानी को का कर दीन्हा ।।
ना हिन्दू ना तुर्क कहाये । ज्ञान हीन जीव धोखा खाये ।।
जाति बरन मिथ्या कर जानो । सत कहै निश्चय कर मानो ।।

— ज्ञान बोध, पृ० २४

कबीर-पंथ के सदृश ही दरिया-पंथ में भी वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण बहिष्कार किया गया है। दरिया साहब ने कुल अभिमानियों एवं जातिवाद का नारा लगाने वालों की भरपूर निन्दा करते हुए प्रश्न किया है कि जब सब में एक सी आत्मा, मुंह, जिह्वा, कान, हाथ, पांव एवं पेट है। सब का निर्माता एक परमपिता परमेश्वर है, और सब के जन्म एवं मरण की स्थिति समान है, तो इस प्रकार की द्वैत एवं विभेद मूलक परिस्थिति का क्या आधार है।[१]

> देह धरे सम जाति अजाती। बोलनिहार बोले बह भांती ।।१२८
> बोलनिहार सभे मंह बोले। एकै ब्रह्म सभे घट डोलें ।।१२६ ।।
> एकै दरस दिसे सभ माहीं। हिंदू तुर्क दोबिधा चित नाहीं ।।१३१।।
> एक ब्रह्म सभे घट, देखो शब्द विचारि।
> शब्द दुराएन ना करों, कहों सभे परचारि ।।१७।।
>
> —भक्ति हेतु, पृ० २६०

दरिया साहब ने ब्राह्मण, क्षत्रिय शूद्र एवं वैश्यादि की सीमाओं को सर्वथा अमान्य ठहराने का प्रयास किया है, उनकी धारणा से जिसने अविगत ब्रह्म का रहस्य समझ लिया वही सर्वश्रेष्ठ है।[२] उनके लिए प्रेम-पंथ का पथिक ही श्रेष्ठ है।[३] दरिया साहब ने ईश्वर के भक्त को ही श्रेष्ठ स्वीकार किया है :-

> उतिम मधिम का यही बिचारा। सिरे जमा का भक्ति पियारा ।।
>
> —ज्ञान मूल, पृ० ३६५
>
> जाति पांति कछुओ नहिं अर्थ। बड़ा सोइ साहब गुन गर्थ ।।१७६।।
>
> —ज्ञानमूल, पृ० ३८८

जो व्यक्ति जाति-पांति की मर्यादा से दूर है वही स्तुत्य है। यही कारण है कि संत जन सर्व प्रथम इनकी सीमाओं से अपने को विमुख करते हैं।

---

१. ब्रह्मज्ञानी, पृ० ८८४ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. भक्तिहेतु, पृ० २६६
३. वही, पृ० ८८३ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

जाति-पाँति नहिं पूँछिए, पूछहुं निर्मल ग्यान ।
संत के जाति अजाति है, जिन्हि पायौ पद निर्वानि ।।१६।।

—भक्तिहेतु, पृ० २८६

जाति-पाँति कुल सभ कोई फीका । रहा असाधु साधुभवौ नीका ।१६

—बिबेक सागर, पृ० ७, (पाद०)

दरिया साहब के लिए हिन्दू एवं मुस्लिम आदि के अनेकत्व की कल्पना किसी रूप में भी ग्राह्य नहीं थी :—

हिन्दू तुरुक हम एकै जाना । जो एइ मानै सब्द निसाना ।।६१०।।

— दरिया सागर, पृ० ६१

कबीर पंथ के सदृश दरियापंथ में भी वर्णाश्रम धर्म की जटिलता का पूरा दारोमदार ब्राह्मणों पर ही आरोपित किया गया है । इसीलिए इन कुलीन भक्त बनने का दम्भ भरने वालों को दरिया साहब ने पूर्ण भर्त्सना का पात्र सिद्ध किया है :—

पंडित बुझौ सब्द बिचारा ।
अपनहि पढ़ौ बुझा नहिं भोंदू करि षट कर्म अचारा ।
पांच तत्तु का कृति नाहि कहिए कहाँ देह तुम्हारा ।
एकै ब्रह्म नाना बिधि बानी कर्म कराही जारा ।
चारि बेद है तोहरे पाछे सवनि नयन सुधारा ।
कुकुम बेद मुख होत ना बानी किमि करि लिखौ पसारा ।
भगवत मथि के गीता कीन्हौ गीता मथि के सारा ।
दही मही के माखन जब लीन्हा बरा दीपक उजियारा ।
हमरे तन रुधिर जो कहिये तोहरे दूध के धारा ।
हाड़ चाम हमरे जो कहिये तोहरे कनक बोखारा ।
आपन बरन चिन्हैं नहिं मूरख कहै तीन बरन तै न्यारा ।
तीनि बरन कवने दै आया तुम कवने पगु द्वारा ।
पाखंड धर्म तैजहु बहुकरमा है सत कर्म करारा ।
कहैं दरिया सुनु पंडित ज्ञानी जाहि ते होइ उजियारा ।

कबीर के सदृश दरिया साहब ने भी वर्णाश्रम धर्म अंध विश्वासियों से प्रश्न किया है कि यदि यज्ञोपवीत धारण करने से ब्राह्मण बनना सरल है तो यदि गर्भ में ही यह संस्कार किया गया होता तो सम्भवत: यज्ञोपवीत को ही ब्राह्मण बनने का पुष्ट प्रमाण स्वीकार कर लिया जाता । इसलामी धर्मानुसार यदि गर्भ में सुन्नत आदि सम्पन्न कर दिये गये होते तो ठीक था ।[१] किन्तु इस प्रकार के संस्कार जन्म के पश्चात् किये गये और सारी विभेद मूलक परिस्थितियाँ स्वत: निरूपित की गईं तो इन सब का क्या आधार है ? किन्तु इन सब को समीचीन सिद्ध करने के लिए उन मिथ्याभिमानियों को गर्व के अतिरिक्त और आधार ही क्या है ?

दरिया साहब की सर्व समन्वय वादी विचारधारा ऐसे उत्कृष्ट धरातल पर और भी मुखरित हुई है, जबकि समाज में प्रविष्ट पृश्यापृश्य की भावना का समूल विनाश के लिए उन्होंने बड़े ही जोर दार शब्दों में उपदेश दिया है और ऐसे ढोंगों की नि:सारता का प्रदर्शन अति सुष्ठु ढंग से किया है :—

पंडित छूति से नरक न पाई ।
रज औ बिन्द सभनि की काया नवौनाटिका भराई ।
छुतिहा अन ना छुतिहा पानी छुतिहा करम बिकारा ।
मासु मछरि की हाड़ी छुतिहा एहि विधि ज्ञान बिचारा ।
मक्खी उड़ि बीगिन्हि पर बैठी सो थारी पर आई ।
हमके तुमके सबके हुई एक खटकर्म बनाई ।
दिल्ली एक सहर में पचठीसब के हाड़ी चाटी ।
अन्दर के कोइ मरम ना जाने नैम करत हम बाटी ।
एक अकूल सतनाम सही है भर्म भूत धरि खाई ।
कहैं दरिया जिन्हि तत्तु बिचारा दुरमति सभ दुरिआई ।।

—शब्द, पृ०६३-६४परिशिष्ट(संतकवि दरिया एक अनु

---

१. शब्द पृ० ६५, परिशिष्ट
(संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

दोनों पंथों में ब्राह्मण बनने के लिए कुछ आचरणों की ओर भी संकेत किया गया है। कबीर-पंथ में इस प्रकार का वर्ण आया है कि जो व्यक्ति सर्वथा सदाचरण करता हुआ, दया, शील, संतोष, क्षमा, परोपकार एवं निष्कपटता आदि उत्कृष्ट गुणों से युक्त है वही ब्राह्मण कहलाने योग्य है।[१] 'अमर मूल' में ब्रह्मवेत्ता को ब्राह्मण कहा है :-

ब्राह्मण धर्म ब्रह्म को जाना। तातें ब्राह्मण बेद बखाना ।।
— अमर मूल, पृ० २३६

दरिया साहब ने भी उसे ही ब्राह्मण सिद्ध किया है जिसकी कुप्रवृत्तियाँ समाप्त हो गईं, और चंचल मन सम एवं स्थिर हो गया है।[२] दरिया साहब कहते हैं :—

साँचो पंडित मानवो, सत्त सील या सील।
सत्त नहीं स्वारथ तजै, सोई बड़ा वकील ।।७०।।
— दरियासागर, पृ० ८४

दरिया साहब ने भी ब्रह्म पारखी को ही ब्राह्मण स्वीकार किया है:-

ब्रह्म सोइ जो ब्रह्म चीन्हा। ध्यान लगाए रहै लौ लीन्हा ।।८४५
—दरिया सागर, पृ० ८५

दरिया साहब की धारणा नुसार एक पंडित को वेद-ज्ञान के साथ-साथ दया, योग एवं सुरति आदि का पालन एवं सत्यनाम धारण भी अनिवार्य है।

इस प्रकार कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ में उच्च एवं कुलीन बनने के लिए कर्म एवं गुण की अनिवार्यता स्वीकार की गई है और जाति एवं जन्म के थोथे आधारों को सर्वथा अमान्य एवं नि:सार ठहराया गया।

वेद और पुराण :—

वेदों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है, प्राय: इन्हीं वेदों के आधार पर ब्राह्मण वर्ग अपने को समाज में सर्वोपरि एवं सर्वोत्कृष्ट बनने का अभिमान करता था, यही लिप्सा कालान्तर में इनका उग्ररूप धारण कर

लिया । सामाजिक स्तर-मात्र इन्हीं के परिणामस्वरूप अधोपतन की ओर उन्मुख होने लगा । वैदिक ज्ञान इतना पवित्र एवं अनिवार्य समझा गया कि समाज में इनके अतिरिक्त और कोई पवित्र मार्ग रह ही न गये । किन्तु इस प्रकार का ज्ञान प्राय: उच्च वर्गों के लिए ही सीमित रह सका और निम्नवर्गीय लोग इसके लिए अपवित्र सिद्ध हुए, दूसरी ओर पुस्तकी ज्ञान के लिए मुस्लिम वर्ग के धर्मग्रन्थों की प्रतिष्ठा किसी माने में कम न रही । 'ज्ञान' शीर्षक में इस बात का भलीभांति विवेचन किया जा चुका है कि इसके लिए धर्मग्रन्थों द्वारा प्राप्त वाक्य पटुता की कोई आवश्यकता नहीं, यह, साधना, तप, संयम की पराकाष्ठा पर पहुंचने के अनन्तर ही प्राप्य है, यही कारण है कि जो ग्रन्थ-ज्ञान का निर्बल आधार ग्रहण कर समाज में अपने को ज्ञानी बनने का दम्भ करते थे, उनका भन्डाफोड़ करने के लिए संत साधकों ने कुछ भी बाकी न लगा रखा ।

कबीर ने सर्वप्रथम वेद रचयिता ब्रह्मा की ही निन्दा की है :—

> चारि वेद ब्रह्मा निज ठाना । मुक्ति क मर्म उनहुं नहिं जाना ।।
> दान पुण्य उन बहुत बखाना । अपने मरण की खबर न जाना ।।
>
> —बीजक रमैनी ३३, पृ० १६

विडम्बना की बात है कि यदि वेद रचयिता ब्रह्मा स्वयं मुक्ति के रहस्य से अनभिज्ञ रहे, तो उन वेदों को, जिन्हें ब्राह्मण वर्ग अपने गले का हार समझता हुआ अपने ज्ञान के दम्भ में इठलाता है, उसकी क्या दुर्दशा होगी ? कबीर ने ऐसे वेद विश्वासी ब्राह्मणों के लिए भी कहा है :—

> पांडे कौन कुमति तोहि लागी,
> तूं रांम न जपहि अभागी ।।टेक।।
> वेद पुरान पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसें भारा ।
> रांम नांमं तत सम भत नांही, अंति पड़ मुखि छारा ।।
> वेद पढ़यां का यहु फल पांडे, सबघटि देखै, रांमां ।
> जन्म मरन थैं तौ तूं छूटै, सुफल हूंहि सब कांमां ।।
> जीव बधत अरु धरम कहत हौ, अधरम कहां है भाई ।
> आपन तौ मुनि जन ह्वै बैठे, का सनि कहौ कसाई ।।

नारद कहै ब्यास यों भाषैं, सुखदेव पूछो जाई ।
कहै कबीर कुमति तब छूटै, जे रहौ रांम ल्यौ लाई ।।३६।।

—कबीर ग्रन्थावली(सभा),पदावली, ३६, पृ१०१

कबीर ने ऐसे काजी मुल्लाओं को क्या कर फटकार बताई है, जिनमें दया का लेशमात्र भी प्रवेश नहीं किन्तु नमाज एवं बैता आदि गुजार रहे हैं :—

काजी काज करहु तुम कैसा । घर घर जबह करावहु भैंसा ।।
दर्द न जानै पीर कहावै । बैता पढ़ि पढ़ि जग समुझावै ।।
—बीजक रमैनी, पृ० २२

कबीर पंथी-साहित्य `ज्ञान प्रकाश` में इस प्रकार का वर्णन आया है कि यदि पढ़ लिख लेने के अनन्तर व्यक्ति को सार शब्द का ज्ञान नहीं है तो वह व्यक्ति नरक का पात्र बनता है । यदि मात्र ग्रन्थ-ज्ञान द्वारा ही इस भवसागर से संतरण सम्भव है तो अखिल जगत् ही तर सकता है । भवसागर का अवगाहन करने के लिए मात्र सत्य शब्द का सुदृढ़ आधार ही ग्राह्य है, अन्यथा किसी भी प्रकार से मुक्ति सम्भव नहीं ।[1] `निरंजन बोध` में स्वयं निरंजन ने वेद एवं पुस्तकों को भ्रमजाल बताया है, जिसमें लोग उलझे हुए हैं ।[2] `ज्ञानबोध` में बताया गया है कि वेदों में जिन राम कृष्णादि देवों की उपासना का उपदेश दिया गया है वे मात्र सत्पुरुष के द्वार-पाल के सदृश हैं, जिनसे ईश्वर का ज्ञान सम्भव नहीं, इसका अभिप्राय यह है कि वेद मात्र जीवों में अज्ञान के बीज अंकुरित करते हैं ।[3] इसीलिए जो वेदों एवं पुराणों के उपदेशानुसार भक्ति का अनुसरण करेंगे उन्हें यम-यातना का शिकार बनना पड़ेगा ।

---

१. ज्ञान प्रकाश, पृ० ५६
२. निरंजन बोध, पृ० ६
३. ज्ञानबोध, पृ० १७

ब्राह्मण भूले बावरे, सरगुण मत के जोर ।
लख चौरासी भोगिहैं, पारब्रह्म के चोर ।।

—ज्ञानबोध, पृ० १८

कबीर ने 'उग्रगीता' में बताया है कि " जगत् की यह उलटी रीति है, अंधे लोग पुराणादिक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर ईश्वर के रहस्य का ज्ञान न प्राप्त कर सके, ज्ञान के विषय में जो मैंने मार्ग सुझाया है, उससे सब असत्य समझ कर विमुख हो रहे हैं, ये सब ज्ञान एवं विवेक से शून्य है ।"[1] संत-साधना में जिस ध्यान धारणा की अनिवार्यता स्वीकार की गई है, वह वेदपुराण में सर्वथा अप्राप्य है, वेद एवं पुस्तक सब बन्धन स्वरूप हैं जिनसे अखिल सृष्टि बंधी हुई है ।[2]

इसी प्रकार दरिया-पंथ में ग्रन्थ-ज्ञान को पूर्ण उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है, जो आजीवन ग्रन्थ-ज्ञान के कारण अभिमान में चूर होकर अखिल जगत् को असत्य एवं व्यर्थ समझते हैं ।[3] वैदिक ज्ञान में समग्र जीवन उलझा हुआ है, परिणामस्वरूप अनन्त बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा।[4] दरिया साहब का पूर्ण विश्वास है, जो ज्ञान काया साधना अर्थात् योग द्वारा प्राप्य है, वह सर्वथा ग्रन्थों द्वारा असुलभ सिद्ध होगा ।[5] यदि सार शब्द का ज्ञान नहीं है तो उन्होंने पुस्तक, पत्रा, गीता एवं वेदादिक ज्ञान को भूल जाने का उपदेश दिया है :-

पोथी पत्रा गीता नावहु । भेद नाहिं तब वेद भुलावहु ।। ७६७।।

—दरिया सागर, पृ० ७७

उन्होंने वेद पाठी पंडितों की निन्दा की है कि वे स्वयं प्रपंच में रत हो कर असत्य को ही सत्य स्वीकार कर लेते हैं, बहुत बड़ा तत्व ज्ञानी होने

---

१. उग्रगीता, पृ० ३८
२. वही, पृ० ५६
३. दरियासागर, पृ० २६
४. वही, पृ० ३०
५. वही, पृ० ३२

कार्य करते हैं, स्वयं होम, यज्ञ-याग करा कर जीवों की हत्या का उपदेश देते हैं और स्वयं मांस भक्षण करते ही हैं, साथ ही साथ अपने शिष्यों को भी वश केवल मांस भक्षण का पाठ पढ़ाते हैं, इतना ही नहीं प्रत्युत अनेक पाखण्ड पूर्ण कर्मों में रत होकर विषय वासना के जंजाल को ही अपना सर्वस्व समझते हैं धन्य हैं वे और उनका ज्ञान :-

छव दर्सन छानबे पाखंडा । तामें जगत भुला नव खंडा ।।३८१
छव पुर छव घर घर छव उपदेसा । गुर घर एक भेद बिसवासा ।।३८२।
छव दर्सन जगत सभ लागे । पाखंड कर्म सभन्हि मिलि जागे ।।३८५
छव गुर छव दर्सन सभ गावै । अगम भेद बिरला कोइ पावै ।।३८६।।

—भक्ति हेतु, पृ० ३१५

बाम्हनवेद भने परपंची । झूठी बात कहे सभ कंची ।।२२३ ।।
होम जग्य सभ आहुति करावहिं । बकरा छगी जीव मरावहिं ।।२२४
अपने डाहि फेरि अवरि खिआवहिं । सासतर पोथी गीता सुनावहिं ।।
छंडी छाड़ छव करम अपारा । बिख्या से कबहीं नहिं न्यारा ।।२२६ ।
संध्या गायत्री ध्यान लगावहिं । सुरती ले त्रिगुना पर धावहिं ।।२२७
चंचल चोर चतुर पाखंडा । काल लिए सिर ऊपर डंडा ।।२२८
कहै दरिया सत शब्द न चीन्हें । काम क्रोध ममिता रस भीन्हें ।।२२९

—भक्ति हेतु, पृ० २६६

दरिया साहब ने हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के पाखंड पूर्ण धर्मों का अध्ययन भली-भाँति कर लिया था, इसीलिए उनके मिथ्या बाह्याचारों के प्रति उन्होंने बड़ा ही तीखा व्यंग्य किया है। वे कहते हैं कि दोनों ओर से बाजी लगाई गई है; एक ओर नमाज पूर्ण किया जा रहा है, तो दूसरी ओर तीर्थ एवं व्रत। कहीं पर आदम एवं काजी तथा कहीं ब्राह्मण एवं पंडित के प्रति श्रद्धा अर्पित की जा रही है। कहीं कोरान कहीं पुराण का पाठ प्रारम्भ है, तथा कहीं पीर कहीं कुल-ध्यान की चर्चा हो रही है। कहीं पर छुरी चल रहा है, तो कहीं पर धुआँ।

कहीं पर मौरीद एवं तदबीर की युक्ति की जा रही है,तो कहीं पर जंत्र और सिजरा का प्रबंध हो रहा है, और कहीं पर जादो भैरव की उपासना की जा रही है। कहीं पर मझार, कहीं वंग, कहीं आरती कहीं संख निनाद हो रहा है। कहीं तसबीह, कहीं माला, कहीं अलफी और कहीं दुसाला धारण किया गया है,पर यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो क्या इन सबकी गणना भक्ति के क्षेत्र में सापेक्ष्य सिद्ध होगी ? जहां पर मिथ्याचार एवं अहिंसा का विराट् राज्य छाया हुआ है, वहां भक्तवत्सल दया-सिन्धु की कृपा दृष्टि क्या पहुंच सकती है ? जो ईश्वर के विरुद्ध आचरण करता है, निष्ठुर होकर मांस भक्षण करता है,उसे सद्गति की प्राप्ति सर्वथा असम्भव है।[१] इसीलिए उन्होंने कहा है :—

> मंजिल आम मरम नहिं पावै। करै खून दोजक के जावै ।।४७४ ।।
> पढ़ै किताब करै सरुतानी। पिवै सराब खून खाय बखानी ।।४७५ ।।
> — ब्रह्मविवेक, पृ० ३६६

'वेश भूषा एवं कर्मकाण्ड'–

भक्ति क्षेत्र में भक्त के लिए जब प्रेम,भाव भक्ति , साधना एवं निष्काम कर्म आदि उत्कृष्ट गुणों की कल्पना की गई है, इसका अर्थ यह है कि भक्त को सर्व साधारण जीवन यापित करते हुए व्यर्थ के ढोंगों से सदा दूर रहना ही नितान्त आवश्यक है, वस्तुत: सिद्धान्त तो इन्हीं उत्कृष्ट गुणों के आधार पर निरूपित किया गया, किन्तु व्यवहार कुछ इसके विपरीत ही दृष्टिगत होता है। कबीर-पंथ एवं दरियापंथ में ही नहीं प्रत्युत् समस्त धर्मों में इन्हीं उत्कृष्ट सिद्धान्तों की कल्पना की गई, यह बात कुछ और है कि इन नियमों का नियमन न करके लोग पथ भ्रष्ट हो गये,यही बहुत कुछ परिस्थिति कबीर के युग आते-आते दृष्टिगत होती है कि लोग सत्य से विचलित हो कर असत्य एवं अवास्तविक मार्ग के अनुयायी बनें। वेशभूषा एवं कर्मकाण्डों की जटिलता ने अध्यात्म साधना की सुविधा

---

१. ब्रह्म विवेक, पृ० ३६७-३६६

को भ्रष्ट सा कर दिया । साधक,साधना एवं भक्ति से विचलित होकर वेशभूषा अर्थात् तिलक,जाप, माला एवं छाप लगाकर साधु कहलाने के ढोंग में लिप्त हो गये और कर्मकांडों की शृंखला ने तो उनके पंखें और भी तोड़ डालने में सफल सिद्ध हुए। ईश्वर प्राप्ति का रहस्य उनके लिए उदर-भरण का कौतुक मात्र तक ही सीमित रह सका । बाह्याडम्बर भक्त का था एवं कार्य मात्र एक प्रवंचक का ।

कबीर को समाज की इस दुर्गति पूर्ण परिस्थिति का अच्छा अनुभव था,इसीलिए उन्होंने इन कपटाचारियों की गणना समाज के प्रबल शत्रुओं के रूप में करते हुए उनके प्रति बहुत बड़ी अवहेलना प्रकट की है कि यदि ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति नहीं है,तो नंगे होकर इतस्ततः भटकने से क्या लाभ ? यदि साधु की सफलता नग्न होकर मुक्ति प्राप्त करने में है,तो वन में विचरण करने वाले समस्त पशु मुक्ति को प्राप्त हो जायेंगे । यदि मूंड़ मुड़ाए सिद्ध बनना सरल है,तो भेंड़ पूर्व ही स्वर्ग की अधिकारी है । किन्तु सत्य यह है कि बिना राम-नाम की परख के कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता : -

का नांगे का बांधे चांम ।
जौ नहिं चीन्हसि आतमरांम ।।टेक ।।
नांगे फिरें जोग जौ होई । बनका मिरग मुकुति गया कोई ।।१।।
मूंड़ मुड़ाए जौ सिधि होई। सरगहिं भेंड़ न पहुंची कोई ।।
बिंदु राखि जौ तरिऐ भाई। तौ खुसरैं क्यूं न परमगति पाई ।।३।।
कहै कबीर सुनौं रे भाई । रांम नांम बिन किन सिधि पाई ।।४।।

—कबीर ग्रन्थावली,(परिशिष्ट),पृ०१०१

का सींगी मुद्रा चमकाएं । का बिभूति सब अंग लगाएं ।।१।।

—कबीर ग्रन्थावली (परि०),पृ०१००

सन्तो देखत जग बौराना ।
सांच कहौं तो मारन धावै, झूठहिं जग पतियाना ।।
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करहिं असनाना ।।
आतम मारि पषाणहिं पूजै, इन महं कछु न ज्ञाना ।।

बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़हिं किताब कुराना ।
कै मुरीद तदबीर बतावै, इन मैं ह ऊहै ज्ञाना ।।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन महं बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्व भुलाना ।।
माला पैन्हैं टोपी पैन्हैं, छाप तिलक अनुमाना ।।
साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना ।।
हिन्दू कहै मोहिं राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना ।
आपुस मैं दो लरि लरि मूये, मर्म काहु नहिं जाना ।।
घर घर मंत्र जो देत फिरत है, महिमा के अभिमाना ।।
गुरु सहीत शिष्य सब बूड़े, अन्त काल पछताना ।।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, ई सब भरम भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं माने, सहजै सहज समाना ।।

—बीजक शब्द २२, पृ० ४८

कबीर ने बताया है कि हिन्दू एवं तुर्क दोनों अपने जिह्वा स्वाद के लिए ही समस्त प्रपंच करते हैं। एकादशी व्रत का पालन कर हिन्दू सिंघाड़ा आदि मधुर वस्तुओं का सेवन करते हैं, अन्न का तो त्याग कर दिया, किन्तु मन की कुप्रवृत्तियां ज्यों की त्यों बनी हुई हैं, क्योंकि चंचल मन स्थिर नहीं, सगौती का पारण अवश्य करेंगे, दूसरी और तुर्क नमाज एवं रोजा गुजारने में अपने को धन्य समझता है, किन्तु सांझ होते ही गाय एवं मुर्गों की हत्या करेगा। इस प्रकार दोनों दिशाओं में आग लगी है, इसका निवारण यही है कि सब अपने को अति दैन्य भाव से ईश्वर की शरण में समर्पित कर दें।[१] उन्होंने ब्राह्मणों के लिए ब्रह्म-ज्ञान आवश्यक बताया है, अन्यथा वे शूद्र हैं। गायत्री के जाप एवं षट्कर्मों में लिप्त होने से कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होगा, वह नाना प्रकार के आचारों को सम्पन्न करके स्वतः कुलीन सिद्ध करने का प्रयास करता है, किन्तु लज्जा त्याग कर उदर भरण के स्वार्थ में द्वार-द्वार पर घूमता रहता है, ईश्वर को अपने गर्व के कारण भूल गया है, अंततः उसे चौरासी लक्ष योनियों में भटकना पड़ेगा।[२]

१, वही, पृ० ४८,४९

ब्रह्मभेद जानैं नहीं, बहुत करै अभिमान ।
तातै ब्राह्मण बूड़हीं, कहैं कबीर बखान ।।

—अमर मूल, पृ० २३७

दरिया साहब ने भी समाज में प्रसरित दोषपूर्ण वेशभूषा एवं कर्मकाण्ड पद्धतियों का सफल विरोध किया है। उनका विश्वास है कि वेशभूषा एवं कर्मकाण्ड अध्यात्म साधना के पक्ष में अपना विशेष महत्व नहीं रखते। क्योंकि कितने लोग प्रत्यक्ष देखने में साक्षात ब्रह्मवेत्ता-महंथ की भांति वेश धारण कर तीर्थस्थानों पर पर्यटन करते रहते हैं, किन्तु उनका कार्य प्रवंचक का होता है। तिलक, माला, सींगी, सेली आदि धारण करते हुए भी व्याध के सदृश कुप्रवृत्तियों एवं प्रपंचों में लिप्त हैं, तो उनका क्या महत्व ? उनकी वेशभूषा समाज में मात्र एक प्रदर्शन के रूप में है, किन्तु वास्तविकता कुछ भी नहीं।

बांधहिं भेख कपट नहिं छूटा। कठिन काल तन भीतर लूटा ।।१०५
बांधहिं भेख तिलक अरु माला। सींगी सेली बहुत रिसाला ।।१०६
दाढ़ी भेख व्याधा ज्यों कीन्हा। बांधहिं भेख विरवे रस भीन्हा ।।१०७

—भक्ति हेतु, पृ० ८७

दरिया साहब ने ऐसे लोगों की बड़े मजे में चुटकी ली है, जो मात्र जटा जूट धारण कर धार्मिक बाह्याडम्बरों का प्रदर्शन करते हैं :-

कहिं बांध जटा सिर जूट रखे कहिं मोट मुदर को सीवती है।
कहिं खाकिया खाक बधंमरि है कहिं पांव उलटि के टीवता है।
कहिं मुदरा पेन्हि स्रवन सोभा कहिं साधि पवन के पीवता है।
एह भूलना दरिया साह कहा सत्गुर बीना भ्रिम बीवता है।।

—शब्द पृ० ६७ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

दरिया साहब ने ऐसे ब्राह्मणों की निन्दा की है जो मस्तक में तिलक एवं कंधे में यज्ञोपवीत धारण कर सम्पूर्ण समाज को ही भ्रष्टाचार की ओर अग्रसर कर रहे हैं, उनके लिए उन्होंने कहा है :-

नवगुन कांध तिलक अनुमाना । पढ़ि पोथी सभ करहिं गुमाना ।।२३६।।
एहि बिधि मलहिं बोलहिं बहु बानी । संत द्रोह निस दिन दिलआनी ।।२३७।
—भक्ति हेतु, पृ० ३००

मद्य मांसादि परिहार —

भक्ति के लिए सात्विक अथवा विशुद्ध आहार एवं व्यवहार अति आवश्यक है, इसलिए मादक एवं मांसल पदार्थों का उपभोग पूर्ण-रूपेण त्याग देना चाहिए, ऐसे व्यक्ति जो कि मद्य सेवी एवं मांस भक्षक हैं,वे साक्षात् नर-पशु एवं नर-राक्षस की श्रेणी में गिने जाते हैं । इतना ही नहीं, अपितु इस प्रकार का दु:संयमी व्यक्ति साधना क्षेत्र में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता । जो अखाद्य या अभक्ष्य सेवी हैं वे , सर्प, श्वान, काग एवं शूकरयोनि में अवतरित होंगे । वे मनुष्य होते हुए भी कौवे जैसा आचरण करते हैं, इसीलिए उन्हें अंतत: दुष्परिणामों का पात्र बनना पड़ेगा ।[1]सुरापान एवं मांस भक्षण करने वाले लोग निश्चय ही नरक में गिरेंगे :—

मासु अहारी मानुवा , परतख राक्षस जान ।
ताकी संगत मति करो, होय भक्ति में हान ।।
—जीवधर्म बोध, पृ० ६८ .

`धर्मदास बोध` में इस प्रकार का उल्लेख आया है कि विषय वासना में अनुरक्त जो व्यक्ति मद्य,मांस भक्षण करेगा उसे निश्चय ही कालजाल का शिकार बनना पड़ेगा ।

जीव मार तन करे अहारा । जीव दया नहिं कर गंवारा ।।
जीव घाति बहुते दुख पावै । जनम जनम तेहि काल सतावै ।।
काग देह धरि भिष्टा खाहीं । जन्म अनन्त तेहि भिष्टा माहीं ।।
शूकर स्वान जन्म सो पावै । मीन मास मद जाकहं भावै ।।

---

१. अमरजीवन बोध, पृ० २६, ज्ञानबोध, पृ० ३१

साधु देव भक्ष अंकूरी आही । मीन मास मद राक्षस खाहीं ।।
कौटिक जप तप पुन्य कमावै । जीव दया बिन मुक्ति न पावै ।।

—धर्मदास बोध, पृ० ३०
—ज्ञान प्रकाश, पृ० २३

इसी कबीर-पंथी संतों ने मद्य,मांस को त्याज्य बताते हुए जीवों पर दया भाव वर्तने का सदुपदेश दिया है :—

तजो अभक्ष अहार, जीव दया चित में धरो ।
उतरो भव जल पार, हंस दशा धर नाम गहु ।।
सत्यनाम गुण गाय, गहे साधु सेवा करे ।
सहज परम पद पाय, सत गुरु पद विश्वास दृढ़ ।।

—धर्मदास बोध, पृ० ४०

जो मद एवं माया में लिप्त हैं, उसका जीवन व्यर्थ है ।[१] 'अमर सिंह बोध' में जीव हिंसकों एवं मांस भक्षकों को सावधान किया गया है कि ऐसे व्यक्तियों को तप्त तेल में डुबाकर बड़े ही कठोर एवं भयावह ढंग से दंडित किया जायगा ।

जे नर नारी मदिरा पावैं । तप्त तेल पुनि ताहि पिलावैं ।।
जे नर मांस भखब है भाई । वाको लोहा ताहि खवाई ।।

— अमर सिंह बोध, पृ० १२

इसी कबीर-पंथी मान्यता के अनुसार मांसल एवं मादक वस्तुओं को सदा त्याज्य सिद्ध किया गया है :—

मीन मांस मद निकट न जाई । अंकुर भक्ष सो सदा कराई ।।

— ज्ञान बोध, पृ० ३०

कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ की ही कोई बात नहीं, परन्तु समस्त भक्ति-साधना पक्ष में इन अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन पूर्ण बहिष्कृत समझा गया है ।

फिर एक भक्त जो ईश्वर प्रेम-रस का सुमधुर पान करने वाला है जो कि अमर सुख एवं अमीरस के सदृश है, तो उसकी तुलना में समस्त लौकिक आनन्द प्रदान करने वाले षड्रस व्यर्थ सिद्ध होंगे । इसीलिए तो कबीर ने कहा है :—

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ।।१।।
राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।
कबीर पीवणा दुलभ है, मांगै सीस कलाल ।।२।।
हरिरस पीया जांणियै, जे कबहू न जाइ खुमार ।।
मैंमंता घूंमत रहै, नाहीं तन की सार ।।४।।

—कबीर ग्रन्थावली रस कौ अंग, ६,पृ०१६

दरियापंथ में भी मादक एवं मांसल वस्तुओं का त्याग वांछनीय समझा गया है । जो व्यक्ति संत होते हुए भी इन सब का सेवन करता है,वह पूर्ण पाखण्डी है,[1] उसे निश्चय ही यम-यातना का शिकार बनना पड़ेगा ।[2] दरिया साहब का यहां तक विश्वास है कि मांस भक्षक तो स्वयं नरक कुंड में गिरेंगे ही और उनके पूर्वज एवं पितर गण भी उनके अपुण्य वश नरक गामी होंगे[3]। जो ब्राह्मण मांस एवं मत्स्य आदि अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन करते हैं,वे अवश्य ही अध: पतन की ओर गिरेंगे ।[4] दरिया साहब ने और कहा है :—

पिवै सराब खून करि खाई । नालति नबी देहु तेहि जाई ।।५०।।

—ग्यान सरोदै, पृ० २५२

---

१. शब्द, पृ० ७२ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
२. वही, पृ० ८८ परिशिष्ट (संत कवि दरिया एक अनुशीलन)
३. दरिया सागर, पृ० ८०,८१
४. वही, पृ० ८१

निज जिव सम (सम) जिव जग माहीं । जानहिं साधु ग्यान जेहिं पाहीं ।।२५

मति करु खून पिवै जनि दारू । गर्व गरूर दूरि करि डारू ।।२६।।

—ग्यान सारोदै, पृ० २५१

कबीर के सदृश दरिया साहब भी भगवत्प्रेम के प्याले का पान मदमस्त होकर करना चाहते हैं इसीलिए उन्होंने कहा है :—

जो चाहसि मदपान, रहहु बेहोस भव सोग से ।

तेजि पाखंड अभिमान, नाम अमल मतवार रहो ।।२।।

वे ऐसे प्रेम के प्याले में विश्वास करते हैं,जो कि सद्गुरु द्वारा प्राप्य होता है,जिसको छककर पी लेने से खुमारी और मस्ती दिनों-दिन बढ़ती जाती है, और वहां किसी प्रकार की आपत्ति का भय नहीं रह जाता ।

साकी सतगुर प्रेम पियाला । जो तेहि लाइक तेहि तस ढाला ।।६५।।

प्रेम पियाला पाइ के, तन मन डारहु वारि ।

होहु बेहोस जग से रहो, ग्यान सरोद बिचारि ।।१२।।

—ग्यान सरोदै, पृ० २५३,२५४

दरिया साहब ने 'शब्द' में एक आध्यात्मिक भंग की तैयारी की विधियों का निर्देश किया है, जो प्रेम रूपी भंग को भली प्रकार घिस-घिस कर तैयार की जाती है, और उसका पवित्र हृदय से पान कर लेने से पुन: और किसी नशीली वस्तुओं के सेवन की आवश्यकता रह ही नहीं जाती ।[१]

---

१. शब्द पृ० ६६-७० परिशिष्ट(संत कवि दरिया एक अनुशीलन)

अध्याय—७

लौकाचार

अध्याय ७

लोकाचार

इस बात कापहले ही विवेचन किया जा चुका है कि कबीर पंथ एवं दरिया पंथ दोनों में पाखण्डपूर्ण आचारों के प्रति पूर्ण खण्डन मिलता है, जिन्हें इन संतों ने व्यर्थ का ढोंग समझकर तिरस्कृत कर दिया है। किन्तु दोनों पंथों में कुछ ऐसे आवश्यक आचार बताये गये हैं,जो उनकी साधना पद्धति में अनिवार्य समझे गये, इन्हें लोकाचार के नाम से अभिहित कर सकते हैं। अब इस प्रसंग में इन्हीं आचारों का तुलनात्मक विवेचन किया जायगा।

कबीर-साहित्य का अध्ययन करने से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनका जीवन इन लोकाचारों से सदा अछूता रहा है, यहां तक कि उन्होंने इन आचारों को व्यर्थ का पाखण्ड समझ कर तिरस्कृत कर दिया है। कबीर की साधना पद्धति पूर्णरूपेण मानसिक रही है,जिसमें हृदय एवं मस्तिष्क की संधि ही अनिवार्य है। उन्होंने अन्त:शुचिता एवं आत्मदर्शन पर विशेष बल दिया है, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें चिरंतन सत्य की परख भी सहज ढंग से हो गई। इस अमलानन्द की प्राप्ति के लिए साधक के जप,तप एवं कष्ट कायाक्लेशादि सब व्यर्थ हैं। यही कारण है कि कबीर की वाणियों में इनके प्रति पूर्ण उपेक्षा/भाव उपलब्ध होता है। कबीर की दृष्टि में सच्चे भक्त के लिए चौका आरती आदि सजाने की क्या आवश्यकता है? उनकी धारणा से तिनका आदि तोड़ने का अर्थ बड़ा ही विलक्षण प्रतीत होता है। कबीर के तिनका तोड़ने का अभिप्राय जगत् के मायावी रागात्मक सम्बन्धों से अपने को विमुख करने से है। इसीलिए वे कहते हैं:—

ऐसें जांनि जपौ जग-जीवन, जम सूं तिनका तोरौं रे । कबीरग्रं०(सभा०)पद ८५। ११५

कबीर तीर्थ-व्रत, पूजा एवं उपवासादि से विमुख रहे हैं, इसीलिए उन्होंने एकादशी, द्वादशी व्रतों के प्रति पूर्ण उदासीनता प्रकट करते हुए इन्हें भवबन्धन का मूल कारण स्वीकार किया है, साथ ही भक्ति एवं ज्ञान की प्राप्ति में इन्हें बाधक भी बताया है :—

> ज्यूं सुख त्यूं दुख द्रिढ़ मन राखै एकादशी इकतार करै ।
> द्वादशी भ्रमैं लष चौरासी, गर्भ बास आवै सदा मरै ।।

उन्होंने इसी पद में नीचे की पंक्तियों में इस भव सागर से संतरण का उपाय भी बताया है कि मैं एवं तू की कल्पना को त्याग कर निर्गुण ब्रह्म की परख करने से संतरण सम्भव है :—

> मैं तैं तजै तजै अपमारग, चारि बरन उपरांति चढ़ै
> ते नहिं डूबै पार तिरि लंघै, निरगुण सगुण संग करै ।।
>
> —कबीर ग्रन्थावली(सभा) पद १८३, पृ० १५०

कबीर ने सद्गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा प्रदर्शित की है और इसका स्थान उन्होंने सर्वाधिक महत्व का समझा है, यहां तक कि वे गुरु को गोविन्द से भी श्रेष्ठ बताते हैं, कबीर पंथ एवं दरिया पंथ में गुरु का महत्व कम न किया गया, साथ ही उनमें पान-परवाने, चौका-आरती, पूर्णिमा-व्रत एवं मंत्रादि के प्रति भी सम्मान प्रकट करने की प्रथा चल पड़ी, किन्तु कबीर की साधना में इस प्रकार के व्यर्थ के पिष्ठ पेषणा को यत्किंचित भी महत्व न दिया गया ।

सत्य की मूर्ति कबीर ने मूर्तिपासना का भर पूर खण्डन किया है । किन्तु कालान्तर में कबीर-पंथी संतों द्वारा उनकी मूर्ति मंदिरों में स्थापित करके मूर्ति एवं खड़ाऊं आदि के प्रति भी पूजा अर्पित की जाने लगी । कुछ दिनों के पश्चात् गुरु आरती की प्रथा का भी प्रचलन हुआ । यह प्रथा इतनी तीव्रगति से बढ़ी कि आरती का विधान संध्या एवं प्रात: अनिवार्य समझा जाने लगा ।

चूंकि दोनों पंथ लोक धर्म से अनुप्राणित थे, इसीलिए इनमें जाति-पांति की विभेद मूलक परिस्थिति को यत्किंचित भी महत्त्व न दिया गया ।

दोनों पंथों में हिन्दू एवं मुसलमान सब दीक्षित किये जाते थे, चूंकि इनकी साधना निवृत्तिमूलक न हो कर प्रवृत्तिमूलक थी, फलतः इनमें गृहस्थ एवं वैरागी दोनों प्रकार के साधु उपलब्ध होते हैं। चाहे किसी प्रकार का साधु हो उसमें माया-त्याग एवं शुद्धाचरण की योग्यता अनिवार्य समझी गई। इसीलिए दोनों पंथों के साहित्य में इस प्रकार का उल्लेख आया है :-

हिन्दू तुर्क दोई उपदेशा। नाम गहै मिटै काल कलेशा।।
जाति पांति नाहीं कोई न्यारी। एक जाति है सब संसारी।।
—ज्ञानबोध,(कबीर पंथ), पृ० २२,२३

अन पानी सब एकै होई। हिन्दू तुर्क दूजा नहिं कोई।।२६१।।
हिन्दू तुर्क सब जीव हमारा। समुझि सार भाखा टकसारा।।२६२
— ज्ञानमूल(दरियापंथ), पृ० ३६५

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन पंथों में हिन्दू एवं मुसलमान सब को दीक्षित किया जाता था।

दीक्षा विधि:-

दोनों पंथों में पान-परवाना देने की विधि को प्रतिष्ठा दी गई है, जिसके द्वारा साधु को टकसार शब्द, प्रदान किया जाता है। संतों का विश्वास है कि पान-परवाना द्वारा दीक्षा प्राप्त हुआ व्यक्ति, जो टकसार शब्द में शुद्धाचरण से ध्यान धारण करता है, वही सच्ची मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है। उनके वर्णनों से कबीर पंथी एवं दरिया पंथी-साहित्य ओत-प्रोत है।

कबीर पंथी महंतों के अनुसार पान-परवाना के विषय में इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया गया है कि जो पान-परवाना प्राप्त करता है, उसके लिए तप, व्रत, एवं योग के सब प्रपंच समाप्त हो जाते हैं। उसे ग्रन्थ-ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती और वह काल के भय से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। सार शब्द के प्रभाव से ईश्वर स्वतः उसकी रक्षा करता है :-

जब निज बीरा हंसा पावै। जोग व्रत तप सबै नसावै।।
वेद किताब की छोड़ै आसा। हंसा करै शब्द विश्वासा।।
ताके निकट काल नहिं आवै। निज बीरा जो मुखै लगावै।।

बीरा पाय भये बटपारा । शब्द सन्ध परखे टकसारा ।।
जोग बरत तपहूं है छारा । अद्भुत नाम सदा रखवारा ।।

—निरंजन बोध, पृ० ६

'निरंजन बोध' में कबीर से कहलाया गया है कि जो पान-परवाना प्राप्त करता है वह अमरलोक को प्राप्त हो जाता है और उसका काल कुछ भी नहीं कर सकता।[1] इसी प्रकार से पान-परवाना के विषय में 'ज्ञानबोध' (पृ० २५) 'मुक्ति बोध' (पृ० ६६) एवं अनुराग सागर (पृ० ७०) में वर्णन प्राप्त होता है, कहने का अभिप्राय यह है कि पान-परवाने की महत्ता से सम्पूर्ण कबीर पंथी-साहित्य ओत-प्रोत है।

कबीर पंथ के सदृश दरिया पंथ में भी पान-परवाना की महिमा का वर्णन किया गया है दरिया साहब भी कबीर पंथी संतों की धारणा के अनुरूप ही पान-परवाना को मुक्ति एवं इस अथाह भव सागर के अवगाहन का परमोपाय स्वीकार करते हैं :—

बीरा देई हंसा मुक्ताई । मूल सब्द बिरला कोइ पाई ।। ८८२ ।।
यह बीरा पाइ सत जो गहई । सो हंसा भवसागर तरई ।। ८८३ ।

—दरिया सागर, पृ० ८८

'ज्ञान दीपक' में भी पान-परवाना एवं टकसार की महत्ता के विषय में बताया गया है कि इसके द्वारा व्यक्ति मृत्यु के भय से दूर हो जाता है और वह स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है :—

लै परवाना भक्ति जब लावै । तन छूटे अम लोकहिं जावै ।।

—ज्ञान दीपक, पृ० १३०

साचा सब्द मोहर टकसारा । इमि करि उतरै भव जलपारा ।।

— ज्ञानदीपक, पृ० १३५

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों पंथों में पान-परवाना एवं टकसार शब्द के प्रति विशेष आस्था प्रकट की गई है।

कबीर पंथी शाखाओं में किसी व्यक्ति को दीक्षा प्रदान करने के पूर्व एक बहुत बड़ा धार्मिक सम्मेलन किया जाता है, जिसमें बहुत से लोग भजन

मान करते हैं। इसके अनन्तर गुरु शिष्य के कान में धीरे से मंत्र पढ़ता है और गुरु शिष्य के हाथ पर दूब तथा पान की पत्तियाँ रखता है और वह उसे निश्चित स्थान पर गिराने के लिए एक कबीर पंथी साधु के साथ जाता है और उक्त वस्तु को निश्चित स्थान पर गिरा देने के अनन्तर कबीर पंथी संत उसके हाथ पर दो बार जल रखता है, सर्वप्रथम वह उसे पी जाता है और दूसरी बार के जल से वह अपना मुह धोता है। उसके पश्चात् गुरु एक कण्ठी कबीर पंथी संतों से स्पर्श करा कर उसके गले में डाल देता है। पुन: उसके कान में गुरु मंत्र पढ़ता है और उसे यथावश्यक उपदेश भी प्रदान करता है। इसके पश्चात् गुरु द्वारा प्रदत्त नारियल को शिष्य अपने छाती एवं मस्तक से लगाकर कुछ दक्षिणा के साथ पुन: गुरु को प्रदान कर देता है। नारियल पान के साथ पानी में डाल दिया जाता है, कुछ समय के पश्चात् नारियल एवं पान सभी कबीर पंथी संतों में वितरित किया जाता है, और शिष्य को पान-परवाना एवं चरणामृत दिया जाता है। अन्त में सब भोजन करते हैं और इसके अनन्तर गृही साधु अपने घर एवं वैरागी अपने मठ चले जाते हैं।

व्रत एवं उत्सवादि —

कबीर-साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे व्रत एवं उत्सवादि के प्रति पूर्ण उदासीन रहे हैं। किन्तु कबीर पंथ में इनका प्रचलन बड़े ही उग्र रूप से हुआ। कबीर पंथी साधना में पूर्णिमा व्रत को सर्वाधिक महत्व दिया गया है, यहाँ तक कि संतों का विश्वास है कि इसके द्वारा ही मुक्ति सम्भव है। इस व्रत को सत्यव्रत भी कहा गया है। पूर्णिमा व्रत के प्रति बरती जाने वाली पवित्र भावना ने अपना इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि इस पर स्वतंत्र पोथियाँ भी तैयार की गई। यथा: 'पूर्णिमा व्रत कथा' एवं 'पूनो महात्म्य' आदि। वैदिक उपासना पद्धति के अनुसार इसमें भी आरती आदि का विधान प्रचलित हुआ। इस व्रत को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरिसिद्ध करते हुए, इसे समस्त दुष्कर्मों के परिहार का मूलाधार घोषित किया गया है।

'पूनो माहात्म्य' में यह बताया गया है कि पूर्णिमा व्रत से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं और जीव के आवागमन का भ्रम समाप्त हो जाता है। इससे काम, क्रोध, मद, लोभ, निंदा, ईर्ष्या, गर्व, भ्रम इत्यादि से छुटकारा

भक्त निर्मल हो जाता है, जिससे उसको इस मृत्यलोक में पुन: अवतरित नहीं होना पड़ता । इसके विषय में कहा गया है :-

ऐसो पूनों व्रत करु नि:शंका , सबही सुनो राव अरु रंका ।
पूनों कथा जो सुने सुनावे , आप तरे जिव और तरावे ।।
उच्छिष्ट भोजन करो न भाई, पर घर भोजन करन न जाई ।।
गुरु सेवा करे सांचही बोले, पूनों व्रत कबहूं नहिं डोले ।।
पूनों व्रत सदा ही कीजे, मास मास देही सुख लीजे ।।
आप करे औरन करवावे, पूनों व्रत का भेद बतावे ।।
पूनों छाड़ि अन्य व्रत करही, बिना भेद कैसे उद्धरहीं ।।
सत्यनाम सुमिरे एक धारा,. पूनों व्रत पुरुष को प्यारा ।।

—पूनो माहात्म्य, पृ० ३६

'पूनों माहात्म्य' में पूर्णिमा व्रत को ही मूल स्वीकार किया गया है और सब व्रत को शाखा । इसके द्वारा ही ईश्वर की कृपा संभव है :-

पूनों व्रत मूल है राखा , और व्रत सबही है साखा ।।
परमपुरुष मन कीन्ह बिचारा, पूनों व्रत मुक्ति विस्तारा ।।
पूनों व्रत करे लव लाई, पुरुष प्रताप परम सुखदाई ।।

— पूनो माहात्म्य , पृ० ४३

समस्त पृथ्वी का भ्रमण करने से जो फल नहीं प्राप्त होता है वह पूर्णिमा व्रत द्वारा उपलब्ध होजाता है । इसके द्वारा समस्त भवबन्धन समाप्त हो जाते हैं और भक्ति के लिए पथ प्रशस्त हो जाता है, जिससे सहज ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।[1] इसी प्रकार 'पूनों महात्म बड़ा' में उल्लेख किया गया है कि करोड़ों अश्वमेध यज्ञ एवं समस्त तीर्थों की पूजा सम्पन्न करने पर जो फल नहीं प्राप्त होता, वह पूर्णिमा व्रत से सम्भव है :-

कोट अश्वमेध यज्ञ कर कोई । कोट तीर्थ कर आवे सोई ।।
सकल तीर्थ फिर आवे सोई, सो एक पूनों व्रत फल होई ।।

—पूनो महात्म बड़ा, पृ० ६

---

1. पूनो महात्म्य, पृ० ४०

पूनों महात्म बड़ा[1] में पूर्णिमा व्रत के नियमों की ओर भी निर्देश किया गया है :—

> जौन मास में पूनों आई । रकम रकम के सुगंध मंगाई ।।
> सो सुगंध ले पास धराई । ले मृत्तिका पुन चौका दिवाई ।।
> तापर कनक को चौकपुराई । पालो सहित कलस धरवाई ।
> तापर दीपक बारे भाई । गौ का घृत भरे पुन आई ।।
> पान आम के झालर तानी । मेवा अष्ट केरा परवानी ।।
> सब संजोग पुनि करै बनाई । साधु संत को ले बैठाई ।।
> नरियल पांच सवा सो पाना । सवा सेर नैवेद्य धराना ।।
> सब विधि साज धरे पुन आई । संत साधु को आदर लाई ।।
>
> x x x
>
> पृष्ठ ६-१०

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पूर्णिमा व्रत के विषय में कबीर पंथी संतों ने विशेष आस्था प्रकट की है।

आरती —

कबीर आरती आदि के विषय में मौन रहे हैं, उनकी आरती विधि भी पूर्ण रूपेण मानसिक रही है। किन्तु कबीर पंथी-साधना पद्धति में आरती विधान को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। कबीर पंथी-साहित्य में आरती के विषय में निम्नलिखित संकेत उपलब्ध होते हैं :—

> प्रति सम्बत गुरु आरति चाही । आरति करै शक्ति होय जाही ।।
>
> —ज्ञान प्रकाश, पृ० ६८

'ज्ञानबोध' में इस प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है कि जिस घर में प्रति अमावस्या को आरती नहीं सम्पन्न होती, उसमें काल निवास करता है।[2] और जो प्रति पूर्णिमा को आरती सम्पन्न करता है, वह सहज ही इस भव सागर का अवगाहन कर सकता है।[3] कबीर पंथी आरती विधि पर विशेष रूप से वैष्णव

---

१. पूनों माहात्म्य, पृ० १०

धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है, इसमें मंत्रों का जाप भी प्रचलित हो गया। आरती का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :—

संझा आरती नाम तुम्हारी । अनहद धुनि गुरु ज्ञान विचारी ।।
तत्व कर तेल दया कर दीप । ब्रह्म अग्नि मन पवन समीप ।।
पांचों बाती निरमल वारी । सुरति चँवर लह सनमुख ढारी ।।
प्रेम के पुहुप धूप धर ध्याना । चित चन्दन घसि आगे आना ।।
अविगत रूप अधर प्रकाशा । आरती गावै कबीर धर्मदासा ।।१।।

कबीरपंथी पारायना पद्धति पृ०३९५

उपर्युक्त आरती की गणना मानसिक आरती के रूप में की जा सकती है, जिस पर आध्यात्मिकता का ही अधिक पुट है। 'ज्ञान प्रकाश' में योग परक आरती का भी वर्णन हुआ है :—

परचे मै मन बांधि, करे जोग मन बास।
संतन आरत जोग मन, दीपक करे प्रकाश
मन औ पवन आहिं दो धारा । तातें पवन अनिल घृत जारा ।।
जोग जुगत बिनसंग न होई । पाले पवन पाल्न है सोई ।।
गगन बाब गरजे जो बाई । दीप शिखर द्वारे ठहराई ।।
ज्यावे जोग अमी रस चाखा । तातें महाप्रसाद जो भाखा ।।
धन्य अंकुर बीच है सोई । परिचय जोग करे तन जोई ।।
जोग न होय आरती करई । सोई जीव भवसागर तरई ।।

—ज्ञानसागर, पृ० ६१

कबीरपंथी आरती विधि का एक उदाहरण और भी दिया जा रहा है, जिसमें भक्त का अपने ईश्वर के प्रति अर्पित दैन्य एवं भक्ति का अनन्य भाव परिलक्षित होता है :—

कैसे मैं आरति करौं तुम्हारी । महा मलिन मति देह हमारी ।।
मैल से उपज्यो संसारा । हौं कुतिया गुण गाउं तुम्हारा ।।
झरना झरे दशों दिशि द्वारो । कैसे मैं आवों निकट तुम्हारो ।।
जब तुम देहु मन्त्र की दीक्षा । तब हम होइहौं नाम सनेही ।।
मलया गिरि में बसे भुजंगा । विष अमृत गौ एक संगा ।।
विद्युत बँहरि देहु परवाना । तब हम पावब पद निरबाना ।।

धनी धर्मदास कबीर बलगावे । गुरु प्रताप आरती सावे ।।

—कबीरोपासनापद्धति, पृ० ३६६

इसी प्रकार से सम्पूर्ण 'कबीरोपासना पद्धति ' नामक कबीर पंथी-ग्रन्थ आरती विधियों से ओत-प्रोत है।

संध्या —

कबीर पंथी-साधना पद्धति में सन्ध्या आदि धार्मिक विधियों का भी प्रचलन हो गया, इसके लिए भी ' मूल सन्ध्या पाठ ' नामक पोथी तैयार की गई, जिसमें संध्या पूजा के लिए अनेक विधियों का निर्देश किया गया है। ' मूल संध्यापाठ ' में नाना प्रकार की प्रार्थनाओं के लिए अष्टक छंद रचे गये हैं। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

साहेब गुरु ज्ञानी समरथ ध्यानी अकल स्थानी अस्थीरं ।
अविगत बानी मुक्ति निशानी जग में आनी कब्बीरं ।।
शीश विराजित तिलक अखंडित मुख सत सुकृत गंभीरं ।
ज्ञान प्रचंडित पाखंड खंडित सुमता मंडित कबीरं ।।
वेष रिसाला सुमरणी माला प्रेम उजियाला कृपा गहीरं ।
दीन दयालं जन प्रति पालं सदा कृपालं कब्बीरं ।।
संकट टारन कष्ट निवारन शीश बिढारन यम धीरं ।
संत उबारन जीवनिस्तारं धर्म बिहारं कब्बीरं ।।

—मूल सन्ध्या पाठ, पृ० ४८-४६

जय जय सत्य कबीर ।
सत्य नाम सत सुकृत-सतरत हतकामी,
विगत क्लेश सत्धामी त्रिभुवनपति स्वामी । टेक ०
जयति जयति कब्बीरं, नाशक भवभीरं,
धार्यो मनुज शरीरं शिशुवर सर तीरं । जय०
कमल पत्र पर शोभित कैसे,
नीलाचल पर राजित मुक्तामणि जैसे । जय०
परम मनोहर रूपं, प्रमुदित सुख राशी,
अति अभिनव अविनाशी काशी पुरवासी । जय०

हंस उबारन कारण, प्रगटे तन धारी,
पारख रूप बिहारी अविचल अविकारी । जय०
साहेब कबीर की आरती, अगणित अघहारी,
धर्मदास बलिहारी, मुदमंगल कारी । जय०

—मूल संध्या पाठ, पृ० ५५-५६

जंत्र-मंत्र—

कबीर की प्रामाणिक वाणियों में इस प्रकार कोई एक भी उदाहरण ऐसा नहीं उपलब्ध होता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उन्होंने मंत्रों आदि के विषय में भी आस्था प्रकट की थी । कालान्तर में नाना प्रकार के जंत्र-मंत्र भी कबीर-पंथी आचार्यों के प्रमुख अंग बन गये, पर उन्हें कबीर ने पूर्ण भर्त्सना की दृष्टि से देखा है । कबीर-पंथ में जंत्र मंत्र के विकास ने अपना इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि इसमें मंत्रों का जाल सा बिछ गया ।

" तीसा जंत्र " नामक कबीर-पंथी-ग्रन्थ में धर्मदास जी से कहलवाया गया है कि इस संसार सागर में समस्त जीव सोये पड़े हैं, माया के वशीभूत हो कर इस मोह रूपी घोर निशा में वे अनेक स्वप्न देख रहे हैं, परिणामस्वरूप उन्हें घोर निराशा एवं वेदना प्राप्त हो रही है । इसलिए जीवों के उद्धार के लिए सद्गुरु की कृपा से "तीसा जंत्र" तैयार किया गया है ।" इसे कबीर-पंथी मान्यता के आधार पर चार वेदों एवं अठारह पुराणों का सार बताया गया है । "तीसा जंत्र" में इस प्रकार की उक्ति मिलती है :—

जीव कृतारथ कारने, भाषा कीन्ह विचार,
तीसा जंतर बूझि के, (नर) उतरो भवजल पार ।।१।।
कलि में जीवन अल्प है, करिये वेगि सम्हार ,
तप साधन नहि हो सके, केवल नाम अधार ।।२।।

—तीसा जंत्र, पृ० २

समस्त मनुष्यों के हित के लिए "तीसा जंत्र" की रचना साधारण भाषा में हुई है, इसको भली भाँति समझने से संसार को अवगाहन संभव है । कलियुग में

सबकी आयु अत्यल्प है, साधना सब के लिए सम्भव नहीं, इसलिए माया से मुक्ति के लिए केवल नाम का आधार ही ग्राह्य है। इस ग्रन्थमें मानव जीवन से सम्बद्ध तीस प्रसंगों पर प्रकाश डाला गया है,जो कि इस प्रकार हैं :—(१) जगाइए क्या ? प्रेम, (२) कीजिए क्या ? पूजा (३) परखिये क्या ? शब्द, (४) लीजिए क्या ? नाम, (५) करिये क्या ? सत्संग , (६) होइए क्या ? दास, (७) बोलिये क्या ? मीठा, (८) मानिये क्या ? धर्म , (९) बराइए क्या ? झगड़ा , (१०) खाइए क्या ? गम, (११) पीजिये क्या ? तामस (१२) रखिये क्या साँच, (१३) त्यागिये क्या ? सब कुछ , (१४) छोड़िये क्या ? अभिमान , (१५) पाइए क्या ? सुख , (१६) देखिये क्या ? आत्माराम , (१७) मिटाइए क्या ? भ्रम, (१८ लखिये क्या ? अपना रूप, (१९) सुनिये क्या ? गुन, (२०) साधिये क्या ? इन्द्रियां, (२१) मारिए क्या ? आशा, (२२) दीजिए क्या ? दान, (२३) बड़ा पुण्य क्या ? उपकार , (२४) बड़ा पाप क्या ? हिंसा, (२५) सुगन्धि क्या ? यश , (२६) दुर्गन्धि क्या ? अपयश , (२७) धरिये क्या ? धीरज, (२८) ठहराइए क्या ? मन, (२९) होनी क्या ? होनहार , (३० विचारिये क्या ? तत्व, ।[१] उपर्युक्त सिद्धान्त वस्तुतः ही बड़े अनुपम बन पड़े हैं और उन्हीं के आधार पर नैतिक उत्थान सम्भव है।

मंत्र—

कबीर पंथी रचनाओं का अध्ययन करने से निष्कर्ष निकाला सकता है कि इनकी साधना पद्धति में टकसार शब्द को विशेष सम्मान प्रदान किया गया है। सद्गुरु अपने दीक्षा मंत्र द्वारा भक्त के मोह एवं मदादि विकारों को दूर करता है। मन की कुप्रवृत्तियां एवं विकारों को नाश करने के लिए अन्त: शुचिता अपेक्षित है, जिसके लिए कबीर पंथी संतों ने अनेक नैमित्तिक कर्मों के प्रति अनिवार्यता प्रदर्शित की है, जो उनकी साधना पद्धति में प्रतिदिन आवश्यक रूप से ग्राह्य हैं, इन नित्य नैमित्तक कर्मों को इतनी अधिक मान्यता दी गई कि वे साधना के अभिन्न अंग बन गये, इसी लिए जो व्यक्ति अपनी साधना के बल पर

---

१. दीक्षा मंत्र, पृष्ठ ३-१५

इन्हें भली भाँति सम्पन्न करता रहता है, वही सफल हो सकता है। कबीर पंथी महात्माओं ने मानव-हित के लिए अनेक कर्म विधानों का प्रचलन किया है,जोकि उनके धार्मिक आचारों के प्रमुख अंग बन गये, इन्हें धर्म भी कहा जाता है। शास्त्र एवं लौकिक पहलुओं के आधार पर कर्मों की तीन श्रेणियां बताई गयी हैं, वे हैं, (१) अपनी ओर अपना कर्तव्य , (२) दूसरों के लिए अपना कर्तव्य, एवं (३) ईश्वर के लिए अपना कर्तव्य । ये ही धर्माचरण के आवश्यक अंग हैं। शारीरिक धर्म, आत्मिक धर्म, सामाजिक धर्म, गुरु धर्म, ग्राम धर्म, देश धर्म, राज धर्म आदि इन्हीं के रूपान्तर हैं। `कबीरोपासनापद्धति` नामक ग्रन्थ में सर्वसाधारण को लाभान्वित कराने के लिए अनेक आचारों का निर्देश किया गया है।

प्रात: कालिका कर्म –

कबीर पंथी महात्माओं की धारणाके अनुसार सब को अपने शरीर आयु, धर्म, अर्थात् लौकिक, पारलौकिक समस्त कर्तव्यों की पूर्णता एवं स्वधर्म की रक्षा के निमित्त ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर अपने ईष्ट देव का स्मरण करना चाहिए। रात्रि के पछिले याम, अर्थात् पहर के तीसरे मुहूर्त को ब्राह्म मुहूर्त कहा जाता है, अर्थात् साढ़े चार बजे यह शुभ मुहूर्त प्रारम्भ होता है, इसी समय सभी को नित्यश: उठना चाहिए। क्योंकि इसके विषय में बताया गया है कि `ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षय कारिणी।` रत्नाकरश्च। अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त की निद्रा पुण्य क्षय करने वाली है। `कबीरोपासना पद्धति` में इस प्रकार की उक्ति मिलती है :-

> पांच घड़ी बाकी रहै, पिछली (पहुरी) रात।
> भोर तहां तक कहत हैं, सूरज जब उगि जात ।।१।।
> भोरहि उठि हरनाम लै, कामकाज ले ठान ,
> ऐसे घर दारिद्र हो, झूठा वेद पुरान ।।२।।
>
> –कबीरोपासना पद्धति, पृ० १२,१३.

कबीरोपासना पद्धति` एक ऐसी कबीर पंथी रचना है जिसमें मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षण को विविध मंत्रों से सम्बद्ध कर दिया गया है। यथा: प्रात: जागरण विधि, मल-मूत्र त्यागने की विधि, उपवीत एवं दातौन विधि

निषिद्ध दातौन, तैल लगाने की विधि[1] वस्त्र धारण एवं तिलक लगाने की विधि, भोजन विधि,[2] आतिथ्य सत्कार विधि[3], साधु सेवा विधि[4] आदि के विषय में संकेत उपलब्ध होता है। इसी प्रकार प्रात: सोने, उठने दिशा॰ जाने, शौच करने, जल पात्र धोने, हाथ मटिआवने, दातौन तोरने, फारने, मुख धोने, जल पैठने, स्नान करने, कोपीन पहनने, बन्दगीकरने, जलभरने, जल छानने, तिलक करने, दर्पण देखने, चरणामृत महाप्रसाद प्राप्त करने, चरणामृत देने, आदि के विषय में मंत्रों के विधान भी उपलब्ध होते हैं।[5]

चौका-विधान -

कबीर पंथी-साधना पद्धति में चौका आरती के प्रति विशेष श्रद्धा अर्पित की गई है, साथ ही इसे मोक्ष का परमोपाय भी स्वीकार किया गया है। इसी को तात्त्विक यज्ञ भी कहा गया है। कबीर पंथ में चौका आरती विषय पर स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे गये, "चौका विधान" एवं "चौका चन्द्रिका" नामक ग्रन्थ इसी श्रेणी में आते हैं। चौका आरती केवल महंत की उपस्थिति में सम्पन्न की जाती है। इसका प्रयोग प्राय: नैमित्तिक एवं प्रायश्चित आदि सभी क्रियाओं के हेतु होता है, उसे कबीर पंथी साधना का अनिवार्य अंग स्वीकार किया गया है। फलत: गृहस्थियों से लेकर सभी इस विधि का अनुसरण करते हैं। यह कबीर पंथी-साधना पद्धति की सर्वमान्य विधि है। इसके चार प्रकार हैं :-(१) आनन्दी चौका, (२) जन्मौती या सोलह सुत का चौका, (३) चलावा चौका एवं (४) एकोत्तरी चौक इनमें से (पहला चौका) किसी आनन्दोत्सव के निमित्त या दीक्षा प्राप्ति के उपलक्ष्य में सम्पन्न किया जाता है, (दूसरा) चौका पुत्र जन्म के उपलक्ष में अथवा सन्तान प्राप्ति की कामना से किया जाता है, (तीसरा) चौका) किसी दिव्वंगत आत्मा की शांति के लिए ~~, यह विधि पूर्ण~~ किया जाता है एवं (चौथा) चौका एक सौ एक पूर्वजों के शान्ति लाभार्थ किया जाता है।

---

१. कबीरोपासना पद्धति, पृ० ११-४१
२. वही, पृ० ६२
३. वही, पृ० १००
४. वही, पृ० १३१

कबीर पंथी-साधना पद्धति में `आरती - चौका` से श्रेयस्कर अन्य कोई धार्मिक क्रिया नहीं समझी जाती ।

चौका आरती सम्पन्न करने के लिए आवश्यक साहित्य एवं उसके सम्पादन की विधि :—

	आनन्दी चौका[1]	जन्मौती या सोलह सुत का चौका[2]	चलावाचौका[3]	एकोत्तरीचौक[4]
नारियल	५ या ७	१६	८	१०१
खारीक	५	८०	८	१०१
सुपारी	१५	१०५	२५	५१५
केला	५	२१	८	१०५
पैसा	२१	१११	३२	५२०
बतासा	१–१।४ सेर	१६ सेर		१० सेर
धोती	१	१६		१०१
वस्त्र	७ हाथ स्वेत(नारियल तथा प्रसादके सुरक्षा के लिए		८ हाथलाल	
बदाम	५	८०	८	५०५
थाल		१६(आरतियोंकेलिए)		१०१
पान		२००० (नागवेल के)		५०८०
चंदोवा		१६ हाथ		१०१हाथ
लोटा				१०१
झारी		८		१०१
मिट्टी की चुकिया		८		
दीपक		८		१०१ सुवर्ण व चांदी
खिरक				
गाय				१०१ बछड़ा सहित

पक्ष एवं शुभ दिन —

शुक्ल पक्ष —	शुक्लपक्ष	मृत्यु के पश्चात	शुक्लपक्ष
सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्र ।	सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार	१०, ११, १२ या १३ वें दिन अथवा	सोमवार, [illegible]

चौका का साधारण साहित्य :-

श्वेत वस्त्र, चंदेवा (चांदनी) के लिए ।

बिस्तारी (सवा दो हाथ सम चौरस वस्त्र, चौक पूरने के लिए ।)

धोती, अंगौछा, नरियर प्रसाद झांकने के लिए ।

चावल का आटा, चौक पूरने के लिए ।

गेहूं का आटा , मानिक बनाने के लिए ।

लोटा कलश, के लिए ।

झारी, अमी दल के लिए ।

थाल, आरती तथा प्रसाद के लिए

दूध - अमी दल के लिए

घी - आरती के लिए

तैल - कलश के लिए

चावल - आरती और कलश के लिए ।

कटोरी - चंदन तथा इत्र के लिए

तांबे के पैसे

नारियल, सुपारी, खाटिक, बदाम केशर, लौंग, इलायची, गोल मिर्च, कपूर, इत्र, चंदन, अगरबत्ती, अबीर, गुलाल, मिश्री, बतासा, अष्टमेवा, (चिरौंजी, किशमिश, दाख, पिस्ता, आलू बुखारा, काजू अखरोट और अंजीर) केले, पान, फूल, माला तथा फूल, कपास/एवं कदली पत्र ।

आम के पत्ते - कलश एवं तोरण के लिये ।

कास या शीर नामक घास - खिरचा और तिनका के लिये ।

कपास या अरहर आदि की लकड़ी - ज्योतिस्तम्भ एवं बारतनी बनाने के लिए ।

शिला - (सम चौरस पत्थर) नरियर मोरने के लिए ।

चौका विधि:-

चौका का स्थान सर्वप्रथम पवित्र मिट्टी से पुतवा कर उस पर श्वेत वस्त्र बिछा दिया जाता है । बिछे हुए वस्त्र पर चावल के आटे से चौका बनाया जाता है । यह भी एक विशेष विधि से बनाया जाता है । चौके पर पूजा की समस्त सामग्री यथास्थान रख दी जाती है ।

उस स्थान पर महंथ का पदार्पण होता है, जो कि मंत्र पढ़ते हुए कलश के पाँचों बत्तियों को प्रकाशित करता है, इसके पश्चात् एकत्रित हुए समस्त व्यक्ति महंथ को पुष्प एवं माला अर्पित करते हैं और उनका चरणामृत पान करते हैं, इसके अनन्तर आरती जलाई जाती है। आरती के समय भजन एवं सुमिरन भी आवश्यक है, जिसके साथ वाद्य यंत्र का भी प्रयोग होता रहता है। आरती क्रिया के पश्चात् नारियल अर्पित किया जाता है। सभी साधु चौके के समीप रखे हुए नारियल में से एक एक नारियल लेते हैं, जिसे अपने छाती एवं मस्तक का स्पर्श कराकर पुन: महंथ को अर्पित करदेते हैं। इस समय भी गान होता है ।

नारियल अर्पण के अनन्तर महंथ फूल एवं अबीर उड़ाता है और सभी साधु को एक-एक माला दी जाती है। आरती के समय सब खड़े होकर यथा आस्था द्रव्य चढ़ाते हैं, इसके बाद नारियल मोड़ने की क्रिया की जाती है। नारियल मोड़ने के बाद तिनका तोड़ा जाता है। यह 'तिनका' 'कास' नामक घास का होता है। यह शिष्य के हाथ पर रखा जाता है, जो लगभग सात अंगुल लम्बा होता है। इसी समय शिष्य अपने गुरु अथवा महंथ को दक्षिणा देता है और सद्गुरु तिनका तोड़ते समय अपने शिष्य से सदाचारण की प्रतिज्ञा कराता है। अंत में व्यक्ति के गले में कंठी डाल कर पंथ में दीक्षित कर लिया जाता है। अन्य कबीर-पंथी-ग्रन्थों में भी चौका आरती के विधियों की ओर संकेत मिलता है। यथा :- 'ज्ञान प्रकाश' में कहा गया है :—

चौका संवारि चार रचि धरेऊ । सब बिधान आज्ञा सम करेऊ ।।
साहेब के पुनि चरण परवारा । चरण पखारि आसन बैठारा ।।
आसन बैठि के सुमिरन कीन्हा ।नारियर मोरि अंश गहि लीन्हा ।।
सत्य सुकृत कहँ मालुम कीन्हा । तब त्रिन तोरि परवाना दीन्हा ।।
लेनरियर प्रसाद सुख माना । धर्मदास चित हर्ष समाना ।।
प्रेम सहित चरणोदक लीन्हा । मुख मंछारि मिठाई दीन्हा ।।
सात दण्डवत तत्पराण कीन्हा । हृदय मांहि गुरु रूप गहि लीन्हा ।।
दण्डवत सात धनी कहँ कीन्हा । शब्द सुरति पुनिचित गहि लीन्हा ।।

—ज्ञानप्रकाश, पृ० ३०.

इसी प्रकार का वर्णन 'ज्ञान सागर' पृ० ८२ में भी उपलब्ध होता है। 'ज्ञान सागर' में चौका आरती के विषय में योग-परक अथवा अध्यात्म-परक रूपक भी दृष्टिगत होते हैं।[१]

अन्त्येष्टि क्रिया —

कबीर पंथ में प्राय: शव को जमीन में गाड़ने की पद्धति प्रचलित है। गृही साधुओं को या तो जला दिया जाता है, अथवा उनका अग्नि संस्कार किया जाता है, इनके लिए दोनों प्रथाएं प्रचलित हैं। कबीर पंथी शव को जमीन में गाड़ने के पूर्व जमीन खोदकर एक सफेद चादर बिछा दी जाती है तथा शव को भी एक चादर से ढक कर उसे चादर बिछी हुई जमीन पर लेटा कर मिट्टी से ढक दिया जाता है और उसके ऊपर एक चबूतरा बना दिया जाता है, शव के साथ एक नारियल भी गाड़ दिया जाता है और बाद में दिवंगत आत्मा की शांति के लिए चलावा चौका की विधि सम्पन्न की जाती है और बाद में दिवंगत आत्मा के लिए चौका चन्द्रिका में इस बात के लिए उल्लेख आया है कि किसी व्यक्ति का शरीर छूटने के बाद १०, ११, १२, या १३ वें दिन अशौच की निवृत्ति के लिए चलावा आरती विधि सम्पन्न की जाती है। यदि किसी कारण वश वश यह क्रिया तेरहवें दिन तक न की जाय तो किसी भी महीने के कृष्ण-पक्ष के रविवार, मंगलवार एवं शनिवार के दिन यह चौका हो सकता है। यह रात्रि के समय सम्पन्न किया जाता है।[२]

उपर्युक्त आचारों की दृष्टि से जब हम दरिया पंथ का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि कबीर पंथ के सदृश इसमें इतने अधिक मंत्र तंत्रादि का प्रचलन नहीं हुआ है, तब पर भी इतना अवश्य ही कहा जा सकता है कि दरिया पंथी लोकाचार कबीर पंथी-साधना के अति सन्निकट जान पड़ते हैं।

---

१. ज्ञान सागर, पृ० ८२

२. चौका, चन्द्रिका, पृ० ३३

दरिया पंथ में कबीर पंथ के सदृश ही पांच बार पूजा की प्रथा का प्रचलन है। पूजा अर्पित करने के लिए इन्हें भी किसी मंदिर अथवा मस्जिद में जाने की आवश्यकता नहीं। दरिया पंथी संत प्राय: इस प्रकार के क्रम से पूजा करते हैं ;—सूर्योदय के पहले, स्नान करने के पश्चात् लगभग आठ या नौ बजे, दोपहर को भोजन के पश्चात्, संध्या के समय एवं भोजन के पश्चात् तथा सोने के पहले। इनकी पूजा की विधि अति साधारण है, जिसमें ऊंच मंत्र एवं संध्या पूजा आदि का कोई महत्व नहीं है। पूजा ~~का महत्व स्थापित~~ करते समय इनके लिए दरिया साहब के पदों का गान अनिवार्य है। दरिया पंथी पूजा प्राय: दो आसनों में अर्पित की जाती है। प्रथम है कोर्निस—जिसमें व्यक्ति सर्व प्रथम झुक कर उत्तर की ओर मुंह करके पुन: खड़ा होता है। बाया हाथ वक्षस्थल पर रखते हुए एवं दाहिने हाथ से पृथ्वी, हृदय एवं शिर को क्रम से पांच बार छूता है। कोर्निस पूजा विधि के प्रति दरिया साहब ने अमित श्रद्धा प्रकट की है :—

कोर्निस करि के मंगल चारा। एहि विधि जीव के होए उबारा ।।

—ज्ञान मूल, पृ० ३८५

दूसरे आसन का नाम सिर्दा या शिज्दा है। इसमें व्यक्ति घुटने के बल बैठ कर मस्तक से पृथ्वी का स्पर्श करता है। इस पंथ में मूर्तिपूजा आदि की जटिलताओं को पूर्ण बहिष्कृत समझा गया है, किन्तु सत्पुरुष के नाम पर इस पंथ में भी फल, फूल, मिष्ठान्न एवं दूध आदि वस्तुएं बड़ी ही पुनीत भाव से अर्पित की जाती हैं। जिसके विषय में स्वयं दरिया साहब ने बताया है :—

सकरि सोहारी अरु दधि मेवा। भगति भाव से लावहिं सेवा ।।१६६
साहिबजादा के आगे धरई। बहुविधि आनन्द मंगल करई ।।१६८।

—ज्ञानमूल, पृ० ३८७-३८८

दरिया पंथ में भी कबीर पंथ के सदृश ही दैनिक पूजा के अतिरिक्त गृहस्थ साधुओं को वर्ष भर में अथवा छ: महीने पर अवश्य ही एक बार वृहद् आयोजन करना पड़ता है। इस पूजा में भक्त को प्रसाद का प्रबंध करना पड़ता है, जो विवाद में दरियापंथी साधुओं में वितरित कर दिया जाता है। पूजा अर्पित करने के पूर्व उपयुक्त स्थान को लीप-पोत कर पवित्र कर लिया जाता है, जिस पर आटे से चौक दिया जाता है।, यह विधि कबीर पंथ से कुछ अंतर रखती है। और

के चारों कोनों पर केले के खम्भे गाड़े जाते हैं और प्रसाद श्वेत[1] वस्त्र से ढंक कर रख दिया जाता है. प्रसाद के साथ एक लोटे में पवित्र जल भी चौके पर रखा जाता है। चौका के ऊपर सफेद एवं पवित्र नूतन वस्त्र की चांदनी टांग दी जाती है। चौका के समस्त समान एकत्रित हो जाने पर आगन्तुक महात्मा सबसे आगे एवं उनके पीछे एक पंक्ति में समस्त भक्त गण प्रेम पूर्वक सतनाम एवं सद्गुरु की आधलीला का गायन करते हैं। पूजा समाप्त हो जाने पर सब कोर्निस करते हैं। अन्तत: प्रसाद वितरित कर दिया जाता है। कबीर पंथ के सदृश दरिया-पंथ में भंडारे की प्रथा का प्रचलन है।' ज्ञान दीपक' में दरिया पंथी चौका विधि एवं उसके लिए आवश्यक सामग्रियों के विषय में संकेत किया गया है :—

प्रथमहिं खीर रसू तुम कीन्हा। लैके खीर तुमको दीन्हा ।।
भाव भक्ति मय बुझा बिचारी। हुकुम दीन्ह तुम सुखमेंहारी ।।
जो दाफा जन होय तुम्हारा। सो यह करिहै शब्द बिचारा ।।
छठो मास में यह सब करई। प्रसाद बनाय तत्व से धरई ।।
खीर सोहारी अरु दधि मेवा। भक्ति भाव करि लावहिं सेवा ।।
मिठा प्रसाद जो सकर मंगाई। यहि भांतिन्ह सो विहित बनाई ।।
सफेद कपड़ा ता पर डारी। सरपोस करि तब लेत सवारी ।।
सहिबादा के आगे धरई। दस्त जोरि के कोर्निस करई ।।
सो प्रानि हम लेवहिं आई। तेहि घर काल संधि नहिं पाई ।।
होय बरकत सब विधि नीका। दुर्वति वेचि [illegible] नाम गहि टीका ।।
दफा होय सफेद प्रसाद डमि डारी। यह कहूक डमि लेव बिचारी।।
दफा बना एहि भांति करि, आनन्द मंगल गाय ।।
हंसराज गुन गहि रहै। कहा वचन समुझाय ।।१६२
— ज्ञानदीपक, पृ० १४५

इसी प्रकार दरिया 'शब्द' में भी दरिया साहब ने ईश्वर को प्रसाद समर्पित करने के प्रति उनके अनन्य भाव को प्रदर्शित किया है :—

सतगुर एह परसाद तुम्हारा।
तन मन धन जिन्हि अरपन कीन्हों हंस उबारहु पारा।

---

१ [illegible], पृ० [illegible]

दधी सोहारी औ घ्रित मेवा खीर भरो है थार ।
अमर सैत तहां रह सोभै रही भक्ति ततुसार ।
कुछ चौकर मंदिल कुछ नर नारी सतगुर कुछ सो बार ।
सेवा मांह कसूर ना करिहैं छूटि जाय जम जारा ।
धन्य धन्य साहब धन्य भक्त है धन्य है दास तुम्हारा ।।

— शब्द (परिशिष्ट), पृ० १७७(संत कवि द० एक अनु०)

दरिया पंथी साधुओं का जीवन हिन्दू जीवन के अति सन्निकट है। सभी संत शिर घुटा कर माया से विमुख होकर शुद्धाचरण का जीवन व्यतीत करते हैं। वैरागियों को संसार के प्रपंचों से पूर्ण विलग रहना अपेक्षित है। वे प्राय: तम्बाकू पीते हैं और अपने साथ में रत्न ललित हुक्का एवं पानी पीने के लिए एक लोटा रखते हैं। ये साधु विवाह एवं अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में पूर्ण रूपेण स्वतंत्र हैं। जीवन के विभिन्न संस्कारों के समय पुरोहित को बुला कर उचित विधि सम्पन्न की जाती है। इनमें कबीर पंथ के सदृश मंत्रों की जटिलताएं नहीं दृष्टिगत होतीं। दरिया पंथी महंथ अपने शिष्य को बेवहा अथवा सत्यपुरुष की भक्ति का मंत्र देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दरिया पंथ में कबीर के सदृश यंत्र-मंत्र एवं संध्या आरती आदि की जटिलताओं का प्रचलन नहीं, किन्तु इतना अवश्य है कि दरिया पंथी पान-परवाना एवं चौका विधि कबीर पंथी आचार के विशेष सन्निकट है। दरियापंथ में प्रचलित पांच बार की पूजा विधि पर कबीर पंथ का प्रभाव परिलक्षित होता है, यह बात और है कि ये दोनों इस्लाम धर्म से प्रभावित लगते हैं, जिसमें पांच बार नमाज पढ़ने की प्रथा प्रचलित है। कबीर पंथी साधुओं के भन्डारे की तरह दरिया पंथ में भी भन्डारे का आयोजन किया जाता है। साथ ही दोनों पंथों में अन्त्येष्टि क्रिया भी लगभग समान रूप से सम्पन्न की जाती है, अत: हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आचारों की दृष्टि से भी इनमें पर्याप्त समानता है।

अध्याय—८

उपसंहार

उपसंहार

भारत अपनी अध्यात्म साधना के कारण अतीत से सुप्रसिद्ध रहा है, परिणाम स्वरूप आध्यात्मिक क्षेत्र में अनेक चिंता धारायें प्रवाहित हुईं और वे पर्याप्त दिनों तक अपने पावन एवं स्निग्ध प्रवाह से जनमानस में छाये हुए अज्ञान का प्रक्षालन करती रहीं। हिन्दी-साहित्य जगत् में संतमत विचारधारा की जो अमर एवं पुण्यतोयस्विनी तरंगायित हुई, वह आज भी मंदाकिनी की अजस्र धारा के रूप में जनमानस के बीच हिलोरें लेती हुई देखी जा सकती है, कहने का अभिप्राय यह है कि उसकी दिव्यछटा एवं अनुपम उद्देश्य तथा उत्कृष्टातिउत्कृष्ट सिद्धान्तों का अवसान कदापि सम्भव नहीं, इससे एक ऐसा दिव्यलोक प्रस्फुटित हुआ कि उसका प्रभाव सदा अक्षुण्ण रहेगा। इन सब का मूल कारण उन संतों का सदाचरण, सत्यान्वेषण, परोपकारिता, आत्मानुभूति एवं दूरदर्शिता है, जिनके द्वारा युग परिवर्तन का प्रयास किया गया, जो सचमुच इतिहास में एक युगान्तकारी घटना है। इस प्रकार के लोक-हित चिंतन में कबीर से लेकर अन्यान्य परवर्ती सन्तों का योगदान सर्वथा अनूठा एवं अविस्मरणीय सिद्ध हुआ है। संत भावना के क्षेत्र में अनेक दृष्टियों से कबीर पंथ एवं दरिया पंथ के सन्तों का योगदान सर्वथा स्तुत्य है, पिछले अध्यायों में उनके द्वारा स्वीकृत विभिन्न सिद्धान्तों का यथा साध्य चिंतन प्रस्तुत किया गया है, जिनका निष्कर्ष प्रस्तुत पृष्ठों में उपस्थित किया जा रहा है।

समानता-

अध्यात्म साधना के क्षेत्र में अतीत से ही बहुदेव वाद की विचार धारा पर्याप्त गति प्राप्त कर चुकी थी, परिणामस्वरूप मतविभिन्य उत्पन्न होने के कारण समाज में नैतिक स्तर गिर चुका था। मान्यता के इस अवसान काल में संतों का पदार्पण एक दिव्य झांकी लेकर हुआ, जिससे निराश जनता में एक नव आश एवं नूतनचेतना जागृत हुई। दोनों पंथों के महात्माओं ने देश में प्रचलित बहुदेव वाद का पर्यवसान अपनी निर्गुण विचारधारा में किया, निर्गुण साधना के अन्तर्गत निराकार ब्रह्म की जो मान्यता स्वीकार की गई वह भले ही साकारवाद से संशोधित होती रही है, तथापि उसकी विशेषताने किसीप्रकार का मतवापैम्य नहीं उपस्थित किया। दोनों पंथों की साधनायें सद्गुरु को समादरित किया गया, जिसमें हिन्दुओं का राम एवं

मुसलमानों का अल्लाह समाहित हो गया है। `सत्पुरुष` को दोनों पंथों ने अन-वतारी सिद्ध किया है, जिसका निवासस्थान सप्तलोक बताया गया है। उसके नाम गुण आदि की कल्पना में दोनों पंथों के साहित्य में समान विवरण प्रस्तुत किये गये हैं।[१] दोनों पंथों की रचनाओं में जिन सगुण अवतारों के विपुल उदाहरण उपलब्ध होते हैं,उन्हें संतों ने निरंजन का अवतार सिद्ध किया है। यहां इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि निरंजन के विषय में दोनों पंथ कबीर की विचार-धारा से पृथक् हैं, क्योंकि कबीर-साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे निरंजन को परब्रह्म के रूप में पुनीत आस्था प्रदर्शित करते थे,किन्तु परवर्ती काल में इन दोनों पंथों के अनुयायियों ने उसकी कल्पना एक शैतान के रूप में की और उसका पूर्व प्रचलित चरित्र अब छल प्रपंच कारी कुरीतियों से पूर्ण भ्रष्ट सिद्ध किया गया और त्रिदेवों तथा अन्य अवतारीदेवों को इसी निरंजन का अवतार बताया गया है। दोनों पंथों में निरंजन के स्वरूप एवं महिमा के विषय में समान रूप से धारणा व्यक्त की गई है।[२]

दोनों पंथों के साहित्य में कुछ ऐसे भी उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिनमें सत्पुरुष को निर्गुण एवं सगुण दोनों से परे सिद्ध किया गया है, यहां पर उनकी ब्रह्म विषयक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार धारा ही कार्य करती हुई देखी जा सकती है, जिसमें उन्होंने ब्रह्म को सूक्ष्म रूप प्रदान किया है।[३] इन संतों की विचारधारा को समाज में विशेष सम्मान न मिल सका, क्योंकि सगुण ईश्वर के मनमोहक रूप को लेकर जिस `सत्यं शिवं सुन्दरं` की सर्वोत्कृष्ट कल्पना की गई, उसके सम्मुख निर्गुण मताव-लम्बियों की मान्यता अपने पूर्व में स्थिर न रह सकी। यही कारण है कि उभयपंथों के संतों ने ईश्वर की सगुण उपासना की भावना से अभिभूत हो कर उसके रूपादि का वर्णन सगुणोपासकों के सदृश ही करना आरम्भ किया।[४] दोनों पंथों में सत्पुरुष को ही मूल स्वीकार किया गया है और त्रिदेवों को उसकी शाखा के रूप में।[५]

---

१. प्रस्तुत शोध प्रबंध, पृ० ९३-९४
२. वही, पृ० ११२-११५
३. वही, पृ० १०४-१०५
४. वही, पृ० १०९-११०
५. वही, पृ० १२१-१२२

जीव तत्व की कल्पना के विषय में भी इनमें पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है। दोनों पंथों के साहित्य में समस्त जीवों को एक ईश्वर के अंश के रूप में बताया गया है, साथ ही समान रूप से जीव तत्व एवं परमात्मतत्व को अभिन्न सिद्ध किया गया।[1] माया के आवरण से ही जीव को अपने निज स्वरूप की परख नहीं हो पाती, परिणाम स्वरूप वह अपने को सत्यस्वरूप से पृथक् समझता है। इस प्रकार माया से घिरे होने पर जीव एवं जब माया की मृग-मरीचिका आत्म-ज्ञान द्वारा समाप्त हो जाती है, तब वही ब्रह्म कहा जाता है, इसके विषय में दोनों पंथों में समान रूप से विचारधारा प्रस्तुत की गई है।[2] दोनों पंथों में जीव तत्व की एकता एवं स्वरूप के विषय में समान ढंग से धारणा व्यक्त की गई है।[3] निजस्वरूप की परख के लिए इन संतों ने आत्मदर्शन एवं अन्त:शुचिता पर अधिक निर्भर किया है। यही कारण है कि दोनों पंथों के साहित्य में जगत् में प्रचलित असंख्य देव देवियों की उपासना से 'आतम देव' की उपासना को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। दोनों पंथों के अनुसार जब व्यक्ति को अपने निजस्वरूप की परख अन्तरानुभूति से हो जाती है तो वह स्वत: ब्रह्ममय हो जाता है।

दोनों पंथों ने जीव तत्व को अमर एवं नित्य स्वीकार किया है, और इसके पृथक् हो जाने के पश्चात् जो अवयव अवशेष रह जाते हैं, उन्हें शरीर कहा जाता है। शरीर की रचना दोनों पंथों में समान ढंग से बताई गई है। जिसमें दस इन्द्रियाँ, पंच तत्वों एवं पच्चीस प्रकृतियों के माध्यम से शरीर की रचना मानी गई है।[4] इनमें रोग, यम-यातना, मृत्यु एवं भवसागर की असंख्य विपत्तियों के समस्त चित्रण लगभग समान ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं।

सृष्टि प्रक्रिया के प्रसंग में भी दोनों पंथों के साहित्य में पर्याप्त अनुरूपता ज्ञात होती है, जिसमें वे विशेष रूप से पौराणिक आख्यानों द्वारा प्रभावित हैं, इस विषय में दोनों का समानरूप से विश्वास है कि सृष्टि के विकास के पूर्व विश्व-शून्याकार था, 'सत्पुरुष' के द्वारा अनन्त सृष्टि का विकास हुआ। उसे जब ईच्छा हुई, तब उसने निरंजन नामक पुत्र को जन्म दिया और उसके साहचर्य के लिए आद्या नाम्नी

---

१. प्रस्तुत शोध प्रबंध, पृ० १२८-१२९
२. वही, पृ० १३१-१३२
३. वही, पृ० १३२-१३४
४. वही, पृ० १३४-१३८

स्त्री को भी उसने उत्पन्न किया । इनके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की उत्पत्ति हुई, इस प्रकार अंडज की माया ने, पिंडज की ब्रह्मा ने, उष्मज की विष्णु ने और उद्भिज की सृष्टि शिव ने की ।

जगत् में प्रसरित द्वैत भावना एवं अनन्त क्लेषों का मूल कारण दोनों पंथों के मतावलम्बियों ने माया को ही स्वीकार किया है । इन संतों की रचनाओं में जहां कहीं भी ईश्वर की विभूतियों का वर्णन किया गया है, वहां प्रसंगवश माया की शक्तिमत्ता का भी निरूपण हुआ है । सृष्टि का प्रसार माया द्वारा बताया गया है । मूल कारण तो पुरुष है एवं उपादान कारण माया । सम्पूर्ण जगत् पर माया का प्रपंच विस्तार प्राप्त कर चुका है । जीवन में समस्त सुख एवं विलास के प्रसाधन मायाच्छन्न हैं इसीलिए इनसे तुलनीय रूपक भी दोनों पंथों के संतों ने ढूंढ़ निकाला है । माया के असीम प्रभुत्व से जब सुर, नर, मुनि आदि संतप्त हैं, तो साधारण जीवों को क्या कहा जाय ?[१] यही कारण है कि इन संतों ने इस काया एवं माया तथा समस्त पार्थिव जगत् की प्रीति एवं ममता को असत्य एवं निस्सार बताया है और माया द्वारा अर्जित साम्राज्य की उपमा सेमर के फूल से देते हुए इससे प्राप्त होने वाली घोर वेदना एवं अपार निराशा का बड़ा ही ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है ।[२] माया को दोनों पंथों में विविध रूप को (यथा चूल्ही , कलवारिन, वैश्या एवं काली नागिन) के माध्यम से प्रपंच शालिनी सिद्ध किया गया है और साथ ही इससे सुरक्षा के लिए अनेक मार्ग भी बताये गये हैं । मायावी जगत् में अनुरक्त शील प्राणियों की उपमा दोनों पंथों में चिर प्रचलित अनेक दृष्टांतों (श्वान, केहरि, गज, कपि एवं नलिनी के तोते) से दी गई है ।[३] माया के काम, क्रोध, मद, लोभ एवं मोह आदि अस्त्र-शस्त्र हैं, जिनसे वह अखिल सृष्टि पर विजय प्राप्त करती है ।[४] इसीलिए दोनों पंथों में माया का त्याग ही साधक की सफलता का उत्तुंग-शृंग बताया गया है । माया की अपरम्पार महिमा का निराकरण तभी सम्भव है, जबकि साधक के अन्तरतम में विवेक एवं ज्ञान का उन्मेष हो, तभी उस मृग मरीचिका का अवसान भी हो सकता है।

---

१. प्रस्तुत शोध प्रबंध, पृ० ८८१-८८२

२. वही, पृ० ८८६

३. वही, पृ० ८८७-८९०

४. वही, पृ० ८९०.

दोनों पंथों के संतों ने एकेश्वर वाद की कल्पना का प्रश्रय लेकर समन्वय-वादी विचारधारा को फलीभूत किया है, उनका धर्म सहज है, जिसमें लोकहित चिन्तन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, इसीलिए उनकी समस्त क्रियाएं स्वानुभूति, सत्य की अभिव्यक्ति एवं कथनी तथा करनी की पूर्ण संगति बनाये रखती हैं, उनकी वैयक्तिक साधना में समष्टि का निखार अधिक हुआ है। उनके लिए सांसारिक प्रपंच स्वार्थलिप्सा एवं स्वर्ग की कल्पना आदि परमानन्द की अनुभूति के लिए बाधक है। वे इसके लिए मनुष्य में सदाचरण एवं नैतिकता, की कामना करते हैं, उनके लिए वैराग्य प्रिय नहीं, उन्हें माया का त्याग ही अनिवार्य है, जिससे वे अपने गार्हस्थ्य जीवन में भी निर्मल एवं निर्लेप बने रहने में विश्वास करते हैं। उनकी साधना स्वर्ग की अभिलाषा एवं पिपासा नहीं रखती, वह जागतिक द्वन्द्वों से मुक्ति की आशा रखती हैं उन्हें जीवन्मरण ही प्रिय है, इसीलिए वे जीवन के प्रसार, विस्तार एवं विकास में विश्वास करते हैं, जिससे अखिल भूमण्डल पर ही नैसर्गिक सुषमा उपस्थित हो सके[1]।

दोनों पंथों की साधना में योग के विषय में मौलिक उद्भावना के प्रमाण मिलते हैं, जिसमें संतों ने बड़े विवेक एवं मनोयोग से कार्य किया है, उनके योग पर भी भाव भक्ति का ही अधिक निखार हुआ है। वे योग के लिए व्यक्ति की समस्त बहिर्मुखी चित्तवृत्तियों को आत्मा में केन्द्रित करदेने में विश्वास करते हैं। उनकी यौगिक क्रियाओं का मूल मनोधारण एवं ध्यानधारण पर केन्द्रित हो गया है, वे एक-एक स्वांस अर्थात् जीवन के एक क्षण को ईश्वर प्रेम में अभिषुक्त कर देना चाहते हैं, जिसमें समस्त कार्य भगवदर्पण की भावना से अनुप्राणित लगते हैं, उन्होंने हठयोगियों का सम्बल अवश्य ग्रहण किया है, किन्तु उसका साधन रूप ही उत्कृष्ट समझते हुए उस योग का पर्यवसान उन्होंने अपनी भाव भक्ति में किया है, वे हठयोगियों कीसमस्तकृच्छ्रसाधनाओं एवं प्रपंचों को त्याग कर भक्ति की ओर अग्रसर होते रहे हैं, उनके योग एवं भक्ति दोनों का अभीष्ट राम से मिलन है, इसीलिए दोनों पंथों के संत ईश्वर में बड़ी ही तन्मयता से नाम धारण करते हुए देखे जा सकते हैं। यही कारण है कि वे 'राम हमारा जप करै, हम बैठे आराम' के विश्वासी बन जाते हैं। उनकी भक्ति में गम्भीरता एवं तन्मयता है, जिसमें मानसिक चेतना अत्यधिक है, वे बाह्य एवं अभ्यंतर के समस्त भावों के सामरस्य में विश्वास करते हैं। योग के साथ-साथ दोनों पंथों के स्वरोदय सम्बन्धी सिद्धान्तों में पर्याप्त एक रूपता है।

१, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृष्ठ २११-२१६

दोनों पंथों की साधना ने समान रूप से कथनी तथा करनी के सामंजस्य में विश्वास किया है। यही कारण है कि 'कागद की लेखी' को उन्होंने प्रयोगात्मक परिवेश में ढालने का प्रयास किया है, यही कारण है कि तत्वानुभूति के उच्चतम लक्ष को शास्त्रीय परिधि से बाहर निकाल कर आत्मानुभूति पर केन्द्रित किया है, जिसके लिए उन संतों ने समान रूप से अपनी साधना को अन्तर्मुखी करने की भावभूमि प्रस्तुत की। अल्प शिक्षित होते हुए भी इन संतों ने उपनिषदों एवं पुराणों की खबर ली है, इसीलिए 'पुस्तक देह बहाइ' तक की बात कही है।

भक्ति ही इन संतों की साधना की रीढ़ है, जो कि साधक के लिए अतिचेतक स्थिति मानी गई है, जिसके प्रति इन महात्माओं ने समान रूप से विश्वास किया है। इसके लिए साधक को ईश्वर के स्वरूप का चिंतन करते हुए मन को तदाकार करना ही एक सुलभ उपाय है। दोनों पंथों में राम-रसायन की चर्चा बड़े ही सुन्दर ढंग से की गई है, जिसका छककर पान कर लेने से भक्त जागतिक द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है।[१] भक्ति के लिए उन्होंने आत्मदेव की पूजा को सर्वाधिक महत्व दिया है, जिसके लिए निष्काम कर्म भी विशेष आवश्यक है।[२] भक्ति के प्रसंग में दोनों पंथों की साधना में वात्सल्य दास्य एवं दाम्पत्य भक्ति के उदाहरण भी समान ढंग से उपलब्ध होते हैं, इनमें नवधा भक्ति का भी स्वरूप मुखरित हुआ है। ये संत ईश्वर के प्रेम में आत्म समर्पण की भावना से ओत-प्रोत प्रतीत होते हैं। दोनों पंथों के साहित्य में नारदी भक्ति की रूपरेखा भी दृष्टिगत होती है, जिसमें भक्त को अपने आराध्य देव की महिमा एवं कौशल के समक्ष अखिल विश्व की अन्य शक्तियाँ नगण्य प्रतीत होती हैं।

दोनों पंथों की साधना में सद्गुरु के प्रति अधिक विश्वास किया है, क्योंकि वही भक्त के हृदय में आध्यात्मिक उत्तेजना जागृत करता है। किसी कार्य की सफलता के लिए एक उचित निर्देशक की आवश्यकता होती, इसी लिए उन्होंने सद्गुरु का अन्वेषण किया, जिसका स्थान गोविन्द से भी श्रेष्ठ सिद्ध किया है। [illegible] साधु सेवा में भी विशेष आस्थाशील ज्ञात होते हैं।

दोनों पंथों के संतों ने समान रूप से अन्तःशुचिता को ग्राह्य समझा है, जो साधना के जीवन की निधि एवं ईश्वरानन्द की दात्री बन जाती है, इसीलिए उन्होंने इसके लिये मानवीय आचरणों की ओर भी निर्देश किया है, जिन्हें विधि एवं

---

१. प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, पृ० ११३-११६

निषेध कहा जाता है। विधि में क्षमा, दया, धैर्य, संतोष, परोपकार, अहिंसा, विवेक आदि आते हैं और निषेध के अन्तर्गत काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, कपट, कनक, कामिनी, निन्दा, मद्य-मांस एवं मैथुन का सेवन, तीर्थ व्रत मूर्तिपूजा एवं वर्णाश्रम धर्म आदि आते हैं। उनकी आध्यात्मिक भावना समान रूप से सत्पुरुष के नाम स्मरण अनहद शब्द, भक्ति ज्ञान, सत्संग, सद्गुरु आदि के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत है। इन्होंने वर्णाश्रम धर्म की दूषित परम्पराओं को पूर्ण अवहेलना की दृष्टि से देखा है, यही कारण है कि जाति एवं जन्म पर आधारित उच्चता की कसौटी को अस्वीकृत कर उसे गुण एवं सदाचरण पर केन्द्रित किया। वे जगत् के अस्थायी उपलब्धियों से पूर्ण उदासीन प्रतीत होते हैं, उनकी दृष्टि चिरंतन सत्य एवं निरतिशय आनन्द की उपलब्धि में स्थिर हो गई है। वे रूढ़िवादी न होकर अपने स्वत्व पर अधिक विश्वास करते हैं, जिसमें स्पष्टत: सत्यता एवं मौलिकता की छाप दिखाई देती है, वे प्रसरण एवं सृजन में अधिक विश्वास करते हैं।

लोकाचारों की दृष्टि से भी दोनों पंथ लगभग समान हैं, इनमें पान-परवाने एवं चौका विधान तथा दीक्षा आदि में पर्याप्त अनुरूपता है। इनमें पूजा विधान भण्डारे की प्रथा तथा अन्तिम दाह संस्कार आदि लगभग समानरूप से सम्पन्न किये जाते हैं।

अन्तर—

ईश्वर के विभिन्न नामों में दोनों पंथों में जहां पर समानता है, वहीं पर एक बात विशेष ध्यान देने की है कि कबीर ने जहां पर राम के नाम के प्रति विशेष आग्रह के साथ स्मरण करने पर जोर दिया है, वहीं पर दरिया साहब को 'बेचून' नाम सर्वाधिक प्रिय है। 'बेचून' का अर्थ उन्होंने बे कीमत से लिया है, वैसे उन्होंने कबीर की भांति राम को भी अपने साहित्य में व्यापक अर्थ दिया है।

इसी प्रकार निरंजन को दरिया साहब ने अब्दुल्ला भी कहा है, इस नाम के विषय में कबीर-साहित्य एवं कबीर-पंथी रचनाओं में कोई उल्लेख नहीं उपलब्ध होता है।

कबीर के विभिन्न अवतारों के क्रम में दोनों पंथों के साहित्य में अन्तर देखा जा सकता है। कबीर-पंथी रचनाओं में सतयुग में कबीर सत् सुकृत, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुणामय एवं कलियुग में कबीर तथा दरियापंथी रचनाओं में सत्ययुग में सुकृत त्रेता में करुणामय, द्वापर में मुनीन्द्र एवं कलियुग में कबीर नाम से अवतरित बताये जाते हैं।[१]

---

१. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ० ६५

दरिया साहब ने धर्मदास एवं स्वयं अपने को कबीर का अवतार बताया है, जिसका कोई उल्लेख कबीर पंथ में नहीं है, कबीर पंथी रचनाओं के आधार पर कबीर एवं निरंजन से संघर्ष भी सिद्ध होता है, जबकि दरिया साहब के अनुसार कबीर और यमदूतों में संघर्ष हुआ। इन पंथों की रचनाओं में कबीर को तिन द्वीपों की यात्रा के पश्चात् अमरलोक से जम्बू द्वीप पर आना पड़ा उनकी कल्पना में भी अन्तर है।

इन्द्रियों की कल्पना में भी दोनों पंथों में इस बात का अन्तर देखा जा सकता है कि कबीर पंथ में मन की प्रबलता को देखकर उसे इन्द्रियों का भूत बताया गया है।[1] और दरियापंथ में मन को ग्यारहवीं इन्द्री स्वीकार करते हुए उसे समस्त इन्द्रियों का राजा स्वीकार किया गया।[2] पच्चीस प्रकृतियों की कल्पना भी दरियापंथी-साहित्य में मौलिक एवं विचित्र ढंग की बन पड़ी है जिसका की कबीर पंथी रचनाओं में सर्वथा अभाव है।[3]

योग के विषय में एक बात का अन्तर ज्ञात होता है कि कबीर पंथ में योग के प्रति विशेष आस्था नहीं प्रदर्शित की गई है, किन्तु दरिया साहब पिपीलक योग एवं विहंगम योग के सामरस्य में विश्वास करते हैं। जिसमें उन्होंने प्रथम में षट् चक्र का भेदन एवं दूसरे में अष्टदल का भेदन अनिवार्य बताया है।[4] इसी प्रकार स्वरोदय सिद्धान्तों के अन्तर्गत दोनों पंथों में पंचतत्वों के रंग एवं स्थानादि में भी छोटे मोटे अंतर मिलते हैं।

लोकाचारों की दृष्टि से भी इनमें अंतर आ गया है, जहाँ पर इस दृष्टि से कबीर की साधना पूर्णरूपेण मानसिक रही है, परिणामस्वरूप वे तीर्थ, व्रत, पूजा, संध्या-आरती, जंतमंत्रादि के प्रति पूर्ण उदासीन रहे हैं, कालान्तर में यह देखा जाता है कि कबीर-पंथी साधना पद्धति में, व्रत, पूजा, संध्या, आरती, जन्त्रमंत्र आदि के अनेक विधानों का अविच्छिन्न जाल सा बिछ गया। मंत्रों की प्रधानता की दृष्टि से इनके जीवन के प्रत्येक कार्य बोझिल हो गये। यही कारण है कि इनसे सम्बद्ध अनेक रचनाएं भी उपलब्ध होती हैं, किन्तु इस दृष्टि से जब हम दरिया पंथी साधना पर दृष्टिपात करते हैं, तो पता चलता है कि उसमें इन सब के व्यर्थ के ढोंगाचारों का सर्वथा अभाव सा है। कबीरपंथमें पूजा विधानों के साथ जहाँ पर मंत्र एवं संध्या आरती से सम्बद्ध अनेक भजनों के रूप में स्वतंत्र रचनाएं हुई, वहीं पर दरिया पंथ में दरिया साहब के पदों

---

1. आगम निगम बोध, पृ० ७५
2. ज्ञानस्वरोदय, पृ० २४१ (द०ग्र०)
3. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ० १४८
4. संत कवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० १०४

एवं ईश्वर के नाम से बढ़कर और कोई भजन तथा मंत्रादि की कल्पना न हो सकी। अस्तु उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर-पंथ से दरिया-पंथ अत्यधिक प्रभावित है। फिर भी सिद्धान्तों, योग तथा ज्ञान भक्ति का तथा आचार सम्बन्धी विधि-विधानों में कुछ अन्तर है, यही नहीं कुछ बातों में ये एकदम मौलिक विचार प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार भारतीय संतमतों की परम्परा में इन दोनों पंथों ने नि:संदिग्ध रूप से एक नई दृष्टि प्रदानकी है।

भक्ति-साहित्य के इतिहास में निर्गुण सम्प्रदाय ने जिस विचार धारा की व्याप्ति लोकमानस में की, उससे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म की निराकार उपासना भी भक्ति द्वारा सम्भव हो सकती है। आरम्भ में तो यह भक्ति मानसिक रूप से ही मान्य होती रही और जप, माला छाप,तिलक आदि से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था, किन्तु जब विविध पंथों में इस भक्ति का विकास हुआ, तो भक्ति ने मानसिक पक्ष के अतिरिक्त बाह्य पक्ष को भी महानता देनी प्रारम्भ कर दी, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो निर्गुण पंथों की विचारधारा प्राय: समान ही है, किन्तु भक्ति के बाह्य पक्ष की प्रधानता के कारण उनमें अन्तर दिखलाई पड़नेलगेहैं। साथ ही साथ जो विचार आरम्भ में गूढ़ एवं अव्यक्त थे, उनकी अभिव्यंजनाएं भिन्न प्रकार से की जाने लगीं। पंथों की स्थापना विविध भौगोलिक क्षेत्रों में होने के कारण जनमानस की विविध प्रक्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं भी यह अन्तर उपस्थित करने में सहायक बनीं, अत: यह देखा जा सकता है कि पंथों के अन्तर्गत विविधता लाने में निम्नलिखित कारण कार्य करते हुए दिखाई पड़ते हैं (१) मौलिक विचारधारा के विवेचन के अलग-अलग दृष्टिकोण (२) गूढ़ भावों एवं समस्याओं को समझने की असमर्थता [illegible] एवं व्यावहारिक दृष्टियाँ (३) देश काल की भिन्नता एवं पारस्परिक सम्बन्ध का अभाव (४) पंथ प्रवर्तक के प्रति विशिष्ट आस्था और उसके सिद्धान्तों की मौलिक रूपरेखा। (५) जीवन की साधना के विभिन्न पक्ष तथा कर्मकाण्डों के प्रति पृथक् मान्यता।इस भाँति कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ दोनों ही निर्गुण विचारधारा के प्रबल समर्थक होते हुए भी किन्हीं विशिष्ट आस्थाओं में अन्तर रखते हुए दृष्टिगत होते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि दोनों पंथों से जनमानस में आध्यात्मिक जागरण हुआ है और जो प्रचुर साहित्य इन दोनों पंथोंमें उपलब्ध होता है, उससे हिन्दी साहित्य-कोश समृद्ध हुआ है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

क — कबीरपंथ और दरियापंथ के समान पद —

'बीजक' एवं ब्रह्म विवेक की तुलना

फिर ब्रह्मा पूछल महतारी । को तोर पुरुष केकरि तुम नारी ।।
तुम हम हम तुम और न कोई । तुमहिं से पुरुष हमहिं तोरि जोई ।।

— दूसरी रमैनी, बीजक, पृ० ४

तुलना

को है पुर्ख का करि तुम नारी । कहु माता तै अरथ बिचारी ।।१२०।।
तब तो हम तुम अवरिन कोई । तुमहिं पुर्ख हमहिं हहिं जोई ।।१२१।।

— ब्रह्म विवेक, पृ० ३३६

दोनों पंथों के साहित्य में सृष्टि प्रक्रिया के प्रसंग में समान रूप से यह मान्यता ई जाती है कि विश्व शून्याकार था तब किसी प्रकार की रचना नहीं हुई थी । कबीर में इस प्रकार की कल्पना का आधार निर्विवाद रूप से कबीर साहित्य ही रहा होगा । ल कुछ सम्भव है दरियासाहब पर भी इस प्रकार की कल्पना की दृष्टि से कबीर साहित्य ही प्रभाव पड़ा हो ।

'बीजक' एवं 'ज्ञान रतन' की तुलना

तहिया होत पवन नहिं पानी । तहिया सिष्टि कवन उतपानी ।।
तहिया होत कली नहिं फूला । तहिया होत गरभ नहिं मूला ।।
तहिया होत न विद्या वेदा । तहिया होत सब्द नहिं स्वादा ।।
तहिया होते पिंडन बासू । ना धर धरनि न गगन अकासू ।।
तहिया होत गुरू नहिं चेला । गम्म अगम्म न पंथ दुहेला ।।

— ७ वीं रमैनी, बीजक पृ० ९-१०

तब नहिं होते फरह न फूला । तब नहिं होते गर्भ अनुकूला ।। ६६।।

तब नहिं बूझै वेद बिचारी । तब नहिं गंगा रहलि बेचारी ।।६७।।

तब नहिं कान्ह रहे कर जोरी । तब नहिं मुरली मुख महं मोरी ।।६८।।

तब नहिं चांद सूर्य बिसतारा । तब नहिं भइल दसौ अवतारा ।। ६६।।

—ज्ञान रतन, पृ० १२६

`बीजक` और `अमर सार` की तुलना

नहिं देवकी के गर्भहि आया । नहीं जसौदा गोद खेलाया ।।

प्रिथिमी रमन दम न नहिं करिया । पैठि पताल नहीं बलि छलिया ।

नहिं गोवरधन कर गहि धरिया । नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया ।।रमैनी७५

—बीजक, पृ० ८६

तुलना

बावन रूप नहिं बलि के जाचे वो । पैठि पताल नाग नहिं नाथेवो[1] ।।

नहिं देवकी के घर जनमें बारा । नहिं कंस हते वो परचारा ।।

नहिं गोवर्धन कर गहि लीन्हा । नहिं गोपिन्ह संग क्रीड़ा कीन्हा ।।

— अमर सार , पृ० ५०-५१(पाण्डु०)

`बीजक` की उपर्युक्त रमैनी की तुलना दरिया साहब के `शब्द` नामक रचना के निम्न पद से भी की जा सकती है :-

दशरथ कुल अवतरि नहिं आया । नहिं लंका के राव सताया ।

नहिं देवकी की के गर्भहिं आया । नहीं जसौदा गोद खेलाया ।।

प्रिथिमी रमन दमन नहिं करिया । पैठि पताल नहीं बलि छलिया ।।

नहिं बलिराव सौं मांडल रारी । नहिं हिरना कुस बधल पछारी ।।

बराह रूप धरनि नहिं धरिया । क्षत्री मारि निक्षत्रि न करिया ।।

नहिं गोवरधन कर गहि धरिया । नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया ।।रमैनी७५

—बीजक, पृ० ८५-८६

तुलना

नहिं दशरथ कुल नहिं अवतरिया नहिं सीता पति प्यारे ।

बावन रूप नहिं बलि के छारे नहिं हरिनाकुस फारे ।

नहिं गोपिन के नाच नचाये नहिं मुरली मुख धारे ।

नहिं गोवर्धन कर गहि लीन्हों नाहिं कंस पछारे ।

---

1. तुलना कबीर `मुक्तावली हरिचरन, रमैनी ३,पृ०१२८, किन्तु उपर्युक्त पंक्तियां विशेषरूप से `बीजक` से ही साम्य रखती हैं।

जल परवान कबहिं नहिं बँधिया नहिं लंका के जारं ।
कवन बूड़ा कहु करके तरिया कवन भया भव पारं ।।

—शब्द, पृ०६६(परिशिष्ट) संतकविदरियाएकअनु०

'बीजक' एवं 'दरिया सागर की तुलना

हिरना कुस रावन गौ कंसा । कृष्णा गये सुर नर मुनि बंसा ।
ब्रह्मा गये मर्म नहिं जाना । बड़ गये जे रहल सयाना ।। रमैनी ४५ ।।

—— बीजक, पृ० ६२

तुलना

केते ब्रह्माजाहिं नसाई । इंद्र केतेको विनसहिं आई[१] ।। ७८६।।
चलहिं सेस सहस्र मुख बचना । तीनि लोक की इहे रचना ।। ७८८ ।।
चलि हैं संकर जोग बिसारी । चलिहैं क्रिस्न बालमुरारी ।। ७८६ ।।

—दरिया सागर, पृ० ७६

दरिया साहब के कुछ ऐसे भी पद हैं जो 'कबीर साहब की शब्दावली से भी साम्य हैं, वे इस प्रकार हैं :-

'शब्दावली' और दरिया शब्द की तुलना

नाम सुमिर नर बावरे, तोरी सदा न देहिया रे ।। टेक।।
यह माया कहो कौन की, केरे संग लागी रे ।
गुदरी सी उड़ि जायगी, जितवेत अभागी रे ।।१।।
सोने की लंका बनी, भव पुर की धानी रे ।
सोइ रावन की साहिबी, छिन माहिं बिलानी रे ।।२।।
सोरह जोबन के मद में, चले छत्र की छांही रे
सोइ दुर्योधन मिलि गये, माटी के माहीं रे ।।३।।
भवसागर में आइ के, कछु कियो न नेका रे ।
यह जियरा अनमोल है, कौड़ी को फेका रे ।। ४।।
कहै कबीर पुकारि के, इहां कोइ न अपना रे ।
यह जियरा चलि जायगा, ज्यों रैन का सपना रे ।। ५।। शब्द २१ ।।

—शब्दावली भाग २, (वेलवेडियर प्रेस) उपदेश,पृ०१०

---

[१] तुलना कबीर ग्रन्थावली (परिशिष्ट) पद १०३, पृ० ६०

तुलना

सुमिरहु काहे ना नाम के सुख परम निधानी[1]।
आवत सभमिलि देखिया केहु जात ना जानी ।।
कंचन कोट लंका बनी रची पची बहुबानी ।
सोउ गरबी भौ गर्द मीले नाहीं रहा निसानी ।।
जर जराव हाथी घोड़ा बहुत रजधानी ।
संग सैना जुरजोधना पल मांह बिलानी ।।
बहुतो गर्बी गर्द मिले रह सभे अज्ञानी ।
कहै दरिया सोइ बांचिहै सत सब्द जोमानी ।।

—शब्द (परिशिष्ट), पृ० १७१, संतकवि दरिया एक अनु०

मानुष तन पायो बड़े भाग, अब बिचारि के खेलो फाग ।।टेक।।
बिन जिभ्या गावै गुन रसाल, बिन चरनन चालै अधर चाल ।।१।।
बिन कर बाजा बजै बैन, निरखि देखि जहं बिना नैन ।।२।।
बिन ही मारे मृतक होइ, बिन जारे हुवै खाक सोइ ।।३।।
बिन मांगे बिन जांचे देइ, सो सालिम बाजी जीति लेइ ।।४।।
बिन दीपक बरै अखंड जोति, पाप पुन्न नहिं लागै छोति ।।५।।
बन्ध छूर नहिं आदि अंत, तहं कबीर खेलै बसंत ।।६।।   शब्द १६।।

— शब्दावली भाग २ (बैलवेडियर प्रेस) होली, पृ०८६-९०

तुलना

खेलहिं बसंत सब संत समाज । बिनु कीनर धुनि बाजन बाज[2]।।
बिनु सूरै बाहां जोतिहि रंथ । बिनु पद चलहिं सो अगम पंथ ।।
बिनु दीपक बाहां बरही जोति । बिनु सीपन्हि के मोती होति ।।
बिनु फूलन्हि बाहां गुथे हार । बिनु मुख होहिं सो मंगल चार ।।
बिनु रवि शन्हि बाहां गावहिं गीति । निर्गुन नाम सो करहीं प्रीति ।।
बिनु बौ बाहां अमर बास । बिनु परिमल बाहां आवै सुबास ।।

---

[1] तुलना कबीर ग्रन्थावली (पारिषद) पद ६६, पृ० ५६
[2] तुलना कबीर ग्रन्थावली (पारिषद), पद १६८, पृ० ८७ । पाठभेद की दृष्टि से "पारिषद" शब्द" की पंक्तियों का मिलान केवल कबीर ग्रन्थावली "बिनु....." से प्रारम्भ वाली पंक्तियों से अपेक्षित होता है ।

बिनु झालरि जाहाँ सैल निसान । बिनु घटे जाहाँ झरै अमान
बिनु विद्या जाहाँ भनहीं बैद । है कोई पंडित करै निखेद ।
कहै दरिया एह अगम ज्ञान । बूझि विचार कोइ संत सुजान ।।

—शब्द (परिशिष्ट) पृ० १७२ संतकवि दरिया एक अनुशीलन

निरंजन धन तेरो परिवार ।। टेक।।
रंग महल में अंग खड़े हैं, ल्वलदार औ सूबेदार ।
धूर धूप में साध विराजे, काहे को करतार ।।१।।
बिस्वा ओढ़े खासा मलमल , मोती मूंगा के हार ।
पतिब्रता को गजी जुरै नहिं, रूखा सूख अहार ।।२।।
पाखंडी को आदर जग में, सांच न मानै लबार ।
साचा मानै साध विवेकी, झूठा मानै गंवार ।।३।।
कहै कबीर फकीर पुकारी, शब्द गहो टकसार ।
साचि कहाँ जग मारन धावे , झूठा है संसार ।।४।। शब्द ६ ।।

—शब्दावली भाग ३ (बेलवेडियर प्रेस) मिश्रित, पृ० ४६

तुलना

निरंजन धुंध तेरी दरबार ।
दुखिया सुख में दुखिया सुख में नाहिं विवेक विचार ।।
झूठ के कोठी में पाप भरायो नाम ना लेत तोहार ।
संत रहै निसु बासर ना है ताको एह बेवहार ।।
रंग महल में संग सहेली द्वार खड़े चोपदार ।
धूरि धूप में संत विराजहिं काहे के करतार ।।
बेस्वा पहिरे मलमल खासा मोती मनि गुंथ हार ।
पतिबरता के गजी देतु हौ सूखा रूखा आहार ।।
पाखंडी के आदर जग में सांच न मानु गंवार ।
सांच कहै एक संत सिपाही जा के जाना पार ।।
एता कष्ट सहै जग माही सो तौं भक्ति तोहार ।
कन चोर ताहि संत विराजहिं दरिया पिउ अनुसार

—शब्द (परिशिष्ट), पृ० १५० संत कवि दरिया एक अनुशीलन

दरिया साहब के कुछ ऐसे पद हैं जो विशेष रूप से कबीर ग्रन्थावली से साम्य रखते

है वे इस प्रकार हैं :—

कबीर ग्रंथावली एवं दरिया शब्द की तुलना

अल्लह रांम जिऊं तेरी नांई ।
बंदे ऊपरि मिहरि करौ मेरे सांई ।।टेक।।
क्या ले माटी (मुंडी?) भुंइ सौं मारें क्या जल देह न्हवाएं ।
खून करै मिसकीन कहावै गुनही रहै छिपाएं ।।१।।
क्या उजू जप मंजन कीएं क्या मसीति सिर नाएं ।
दिल मांहिं कपट निवाज गुजारै क्या हज काबै जाएं ।।२।।
बांम्हन ग्यारसि करै चौबीसौं काजी महं (माह ?) रमजांनां ।
ग्यारह मास कहौ क्यूं खाली एकहिं मांहिं नियानां ।।३।।
जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है और मुलुक किस केरा ।
तीरथ मूरति रांम निवासी दुहु मंहि किनहुं न हेरा ।।४।।
पूरब दिसा हरी का बासा पच्छिम अलह मुकांमां ।
दिल मंहि खोजि दिलै दिलि खोजहु इहैं रहीमां रांमां ।।५।। पद १७७।।

—कबीर ग्रन्थावली(परिषद), पृ० १०३

तथा

काजी तैं कवन कतेब बखांनीं ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते गति एकौ नहिं जांनीं ।।टेक ।।
सकति सनेह पकरि करि सुनति मैं न बदउंगा भाई ।
जौ रे खुदाइ तुरुक मोंहि करता तौ आपहिं कटि किन जाई ।।१।।
सुनति कराइ तुरुक जौ होनां तौ औरति कौं का कहिए ।
अरध सरीरी नारि न छूटै तातैं हिंदू रहिए ।।२।।
हिन्दू तुरुक कहां तैं आए किन एह राह चलाई ।
दिल मंहि खोजि देखि खोजादे भिस्त कहां तैं आई ।।३।।
छाड़ि कतेब रांम भजु बउरे जुलुम करत है भारी ।
कबीरै पकरी टेक रांम की तुरुक रहे पचिहारी ।।४।। पद १८८ ।।

—कबीर ग्रन्थावली (परिषद्), पृ० १०४

तुलना

पंडित तेवहु संसै सूला ।
एकै ब्रह्म सकल घट भीतर सब मुर्ख रहिं भूला ।

माता कै रुधिर पिता कै बीरा काया सिजि बनाई।
हिंदु तुर्क दुई कर्म लगाया एकरा रुदे आई।
जब तुम होते माता गर्भ में राम जनेऊ दीन्हा।
जो फुरमान खोदाई होते गर्भ सुंनती कीन्हा।
आखिरि एक अंत फिरि एकै बीचै गया सो फाटी।
इन्ह पकरि कै कान्ह छेदाया उन्हि छुरा सो काटी।
एक हिन्दु औरु तुरुक कहिये दूनों सगे भाई।
औ ए हिंदुवनि औ ए तुरुकिनि कैसे सो ना कहो समुझाई।
एक घाट पिवै सभ पानी सु घट भरि कै आना।
नदिया एक धार बहुतेरी जलहिं में जल समाना।
का तुम पन्डित बेद पढ़त हो तेजहु एह खट कर्मा।
हिन्दु तुरुक से औरु नहिं राखी एह पाखंड नहिं धर्मा।
पुर्ब आव तो हिन्दु बखानै पछिम तुर्क की पांती।
कहैं दरिया औ ए हिन्दु तुर्क नहिं साख्ब जाति अजाती।।

—शब्द(परिशिष्ट), पृ० ६५ संत कवि दरिया एक अनुशीलन

कबीर ग्रन्थावली' एवं 'दरिया सागर' की तुलना

चहुं दिसि जोति की बहै धार। बिरला जन कोइ उतरै पार।।२।।
कोटि क्रिस्न जहं जोरैं हाथ। कोटि बिस्नु जहां नावैं माथ।।३।।
कोटिक ब्रह्मा पढ़ैं पुरांन। कोटि महेस जहं धरैं ध्यांन।।४।। पद१४६'

—कबीर ग्रन्थावली(परि०), पृ० ८७

तुलना

कोटि कामिनि चौर ढारहिं, कोटि क्रिस्न ध्यारहीं।
कोटि ब्रह्मा बेद भनते, अनंत बाजा बाजहीं।।
जोति मंडल कोटि कलसा, हिरंन्न की परगासहीं।
झलक झालरि लागु चहुं ओर मोति मनि मधि छाजहीं।।१।।

—दरिया सागर, पृ० ४

मनके हारै हार है, मन कै जीते जीति।
कहै कबीर हरि पाइए, मनं ही की परतीति।।४।।

—कबीर ग्रन्थावली(परि०)साखी, पृ० २३६

तुलना

मन के जीते जीतिया, मन हारे माँ हानि ।

मनहिं बोलाए ग्यान करु, तब सुख उपजै जानि ।।४१।।

—दरियासागर, पृ० ५३

अँधियारे दीपक चहिऐ ।तब वस्तु अगोचर लहिऐ । पद ७२ ।।

—कबीरग्रंथावली(परि०), पृ० ४३

तुलना

अँधियारे दीपक दीजिए, तब होवै परकास ।

ग्यान समुझि कर लीजिए, उतरि जाए भवपार ।।११ ।।

—दरियासागर, पृ० ८२

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त इन सम्प्रदायों के साहित्य में कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिनमें आंशिक समानता दृष्टिगत होती है । इनमें यह बात अवश्य ही ध्यान देने योग्य है कि दरिया साहब ने अपनी रचनाओं में कबीर साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक कथाओं एवं नामों को यत्किंचित रूपान्तर के साथ रखने का प्रयास किया है । ऐसे स्थल इस प्रकार है :—

'बीजक' और दरिया शब्द की तुलना

संतो आवै जाय सो माया ।

है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहुं गया न आया ।

क्या मकसूद मच्छ कच्छ होना, शंखासुर न संहारा ।

है दयाल द्रोह नहिं वाके, कहहु कौन को मारा ।

वै कर्ता नहिं ब्राह कहाये, धरणि धरो नहिं भारा ।

ई सब काम साहेब के नाहीं, झूठ कहै संसारा ।

खंभ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतीजै सब कोई ।

हिरणाकुश नख वोद्रबिदारो, सो कर्ता नहिं होई ।

बावन रूप न बलि को जांचै , जो जांचै सो माया ।

बिना विवेक सकल जग भरमै, माया जग भरमाया ।

परशु राम क्षत्री नहि मारे, ई छल माया कीन्हा ।

सतगुरु भक्ति भेद नहिं जाने , जीवहि मिथ्या दीन्हा ।

सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषान नहिं बंधा ।

वै रघुनाथ एक कै सुमिरै, जो सुमिरै सो अंधा ।
गोपी ग्वाल न गोकुल आया, करतें कंस न मारा ।
है मेहरबान सबही को साहेब, ना जीता ना हारा ।
वै कर्ता नहिं बौद्ध कहायै, नहीं असुर संहारा ।
ज्ञान हीन कर्ता के भरमे, माया जग भमायिा ।
वै कर्ता नहिं भये कलंकी, नहिं कलिंगहि मारा ।
ई छल बल सब मायै कीन्हा, जत्त सत्त सब टारा ।
दस अवतार ईश्वरी माया, कर्ता कै जिन पूजा ।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो, उपजे खपै सो दूजा ।। शब्द ।। ८

बीजक, पृ० १०७-११०

तुलना

पंडित सत्त मुहुँ है भीना ।
जो बिनसै सो सत ना कहिए सो पद तुम लवलीना ।
नहिं वह आया गया नहिं कबहीं जोइनि संकटनहिं भरमा ।
कर गहि बान रावन नहिं मारेव एह माया को धरमा ।
नहिं मुरलीधर नंद को लाला नहिं गोपिन संग खेला ।
नहीं केस गहि कंस पछारेव एह तिर्गुन का मेला ।
निकलंकी काहु लखी मैं ऐउ उन्ह भी तेग उबाहा ।
मच्छ कच्छ बराह सरूपी उन्ह भी दंत समाहा ।
राम क्रिस्न हँहि मन से करता बावन होए बलि जाँचे वो ।
प्रबल माया को ब अन्त न पावै एहि विधि सब मिलि नाचैवो ।
क्रोध खेमा सो काम खेमा है अग्नि पिवे सो धीरा ।
कहैं दरिया एह उपजनि बिनसनि खपे जक्त बहुधीरा ।।

—शब्द(परिशिष्ट) पृ० ६४-६५, संत कवि दरिया एक अनु०

बुझ बुझ पंडित बिरवा न होय, आधे बसे पुरुष आधे बसे जोय ।।
बिरवा एक सकल संसारा , स्वर्ग सीस जर गई पतारा ।।
बारह पंखुरिया चौबिस पात , घने बरोह लागे चहुं पास ।।
फूले न फले वाकी है बानी, रैन दिवस बिकार चुवै पानी ।।
कहहिं कबीर कछु अछलो न तहिया , हरि बिरवा प्रतिपालिनि जहिया ।।शब्द५०।।

—बीजक, पृ० १५

तुलना

बुझु बुझु पंडित पद है उलटा । हार पताल सौर है सुलटा ।।
बिथ्या चारि हहि किलनारा । सुरनर मुनि महिं खोजत हारा ।।
उलटा बेद पंडित कहं खाई । ताके पाप परौसिया जाई ।।
बिनु दह कंवल फुले बहु भाँती । तामें भंवर बसे दिन राती ।
साहु के माल चोर धरि साधा । साहुनि कूदि साहु कहं बांधा ।।

—शब्द (परिशिष्ट) पृ० ६६, संतकवि दरिया एकअनु०

संतो राह दुनो हम दीठा ।
हिन्दू तुरक हटा नहिं मानैं, स्वाद सबन को मीठा ।।
हिन्दू व्रत एकादशी साधे, दूध सिंघारा सेती ।
अन्न को त्यागे मन को न हटके, पारन करे सगोती ।।
तुरक रोजा निमाज गुजारे, बिस्मिल बांग पुकारे ।
इनको भिस्त कहांते होवे, सांझे मुर्गी मारे ।।
हिन्दू की दया मेहर तुर्कन की, दोनों घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारें, आगि दुनों घर लागी ।
हिन्दू तुरक की एक राह है, सतगुरु सोई लखाई ।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो, राम न कहुं खुदाई ।। शब्द १०।।

—बीजक, पृ० १११-११२

तुलना

पंडित बेद किये बहिं देखो ।
आपुस में झगरा नहिं करिए अगम अगोचर पेखो ।
वोह निमाज वोह पूजा करते हिन्दू तुरक का मेला ।
दुई पर्वत हम बूड़त देखा बिरला जन कोउ खेला ।
दाबहिं नाक झकोरहिं पानी वर्णन बहुत कराया ।
कान मुंद वोह बांग सुनावते उन भी शोर लगाया ।
वो ए रोजा राजी दिल राखे लज्जति कबाब बनाया ।
वो भी बरत एकादशी करते बहुत सगोती खाया ।
मुसलमीन रहिमान हमारे ए भी कहर खोदाई ।
हिन्दू राम राम सभ कहते दया बिना दुख पाई ।

बिसमीला करि जबह करत है पढ़ि कोरान दिल राखा ।
तेग-कत्ति पकरि बो ए मारहिं झटका इन्ह गीता गुन भाखा ।
वाए गुरू वोए मोरसिद कहले महरम बातें कसबी
आसिक होना दील सफाई वोए माला वोए तसबी ।
दुनौं दीन सरहद बना है मुसलमीन औ हिन्दू ।
कहै दरिया दोए पिन्ड रचा है एक लोहु एक बिन्दु ।।

—शब्द परिशिष्ट, पृ० ६५-६६, संतकवि दरिया एक अनु०

भयै हिंडोला झूलै सब जग आय ।
पाप पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया माँहि ।
लोभ भवंरा विषय मरुवा, काम कीला ठानि ।
शुभ अशुभ बनाय डांड़ी, गहो दूनौं पानि ।
कर्म पटरिया बैठिके, को को न झूलै आनि ।
झूलत नारद शारदा, झूलत व्यास फणीन्द्र
झूलत विरंचि महेश शुकमुनि, झूलत सूरज चंद्र ।
आप निर्गुण सगुण होय, झूलिया गोविन्द ।
छौ चारि चौदह सात एकइस, तीनिउ लोक बनाय ।
खानि बानी खोजि देखहु, अस्थिर कोइ न रहाय ।
खंड ब्रह्मांड खोजि देखहु, छूटत कितहूं नाहिं ।
साधु संगति खोजि देखहु, जीव निस्तरि कित जाहिं ।
शशि सूर रैनि शारदी, तहाँ तत्व पलै नाहिं ।
काल अकाल परले नाहिं, तहँ संत विरले जाहिं ।
तहाँ के बिछुरे बहु कल्प बीते, भूमि परे भुलाय ।
साधु संगति खोजि देखहु,बहुरिन उलटि समाय ।
ये झूलवे की भय नहीं, जो होय संत सुजान ।
कहहिं कबीर सत सुकृत मिलै तो बहुरि न झूलै आन ।। हिंडोला १ ।।

—बीजक, पृ० २६१-२६३

तुलना

जगत हिंडोलना झूलत है मौ जून ।
मेरु मंडल खंभ लागेवो गही दीशा थानि
चंद सूर दोय मरुवा झूलावि डाँड़ि विछाय ।।

गंगन उडिगन घटा छार बौ पवन कौ परगास ।
निगम बारी बुंद बरिखे पाप पुन्य नैवास ।।
प्रथम झूले सीव सारदा नारदा सुकदेव ।
सनकादि आदि जौ ब्रह्म झूले ज्ञान गनपतिदेव ।।
झूले अहिपति सहस्र बानी व्यास बेद बखान ।
मारकंडे कल्प झूले अथ कीन्हौं जानि ।
राम झूले नव बार नीके सक्ति सिया के पास ।
झूले रावन गरब गामी बक्त कीन्ह उपहास ।।
गोपिन्ह संग कान्ह झूले मुख मुरली रंग ।
काया धरि कबीर झूले ज्ञान कौ प्रसंग ।
बालमीक वाशिष्ट झूले ज्ञान मुनि कौ मत आए ।।
और मुनि सभ सकल झूले कोउ नाहि ठहराए ।।
भेख सेख अलेख झूले आपनो मत ठानि ।
कहै दरिया दाया सतगुर ज्ञान सीचै मानि ।।

— शब्द(परिशिष्ट), पृ० १६३-१६४ संतकवि दरिया एक अनुशीलन

संतो जागत नींद न कीजै ।
काल न खाय कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै ।
उलटी गंग समुद्रहि सोखै, शशि औ सूरहि ग्रासै ।
नौ ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मई बिम्ब प्रगासै ।
बिनु चरणन को चहुं दिशि धावै, बिनुलोचन जग सूझै ।
संशय उलटि सिंघ को ग्रासै, ई अचरज को बूझै ।
औंधे घड़ा नहीं जल बूड़े, सीधे सौं जल भरिया ।
जिहि कारण नर भिन्न भिन्न करु, सो गुरु परसादे तरिया ।
बैठि गुफा मई सब जग देखै, बाहर किछु न सूझै ।
उलटा बाण पारधी लागे, सूरा होय सो बूझै ।
गायन कहै कबहुं नहिं गावै, अनबोला नित गावै ।
नटवट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै ।
कथनी बदनी निजु कै जोवै, ई सब अकथ कहानी ।
धरती उलटि अकाशहि बेधै, ई पुरुषन की बानी ।
बिना पियाला अमृत अंचवै, नदीनीर भरि राखै ।

कहैं कबीर सो युग युग जीवै, जो राम सुधारस चाखै ।। शब्द २ ।।

— बीजक, पृ० ६८-१००

तुलना

नर तुम साधु कहन कै भुवा ।[१]
गया न साध स्वाद सब चाहे कंदर्प कबिहिं ना मुवा ।।
जाहाँ तै द्रिस्टि नीचे कै देखौ कनक कामिनी सोभा ।
नीर्द परे चोर गरसि लेत है मन माया ते लोभा ।।
तिलक माला सुन्दर बहु सोभा सुन्दर गुरिया लाया ।
सुन्दर गुदरी ज्ञान एह पेखौ तब मराल गति आया ।
उलटा कुंभ नीर नहिं भरिया सिधा भए भरि आई ।
कुंभ कुंभ के जोग राग ते रहित है आनंद मंगल गाई ।।
पूरब लहरि बाढ के देखौ पछिम द्रिस्टि है चंदा ।
तब कुनहरिया खेवन लागे लहरि परि गौ मंदा ।।
तब कनहरिया खेवन लागे लहरि परि गौ मंदा ।।
पारस बिना कंचन नहिं होवै फूल बिनु तैल न बासा ।
कहै दरिया परिमल है पारस हमि सतगुर को दासा ।।

—शब्द (परिशिष्ट) पृ० १०२-१०३ संत कवि दरिया, एक अनु०

कबीर साहेब की शब्दावली एवं दरिया शब्द की तुलना —

साधो ई मुर्दन के गाँव ।। टेक ।।
पीर मरे पैगम्बर मरिहैं, मरिहैं जिन्दा जोगी ।
राजा मरिहै परजा मरिहै बैद औ रोगी ।
चाँदो मरिहै सूर्य मरिहै, मरिहै धरनि आकाशा ।
चौदह भुवन चौधरी मरिहैं, इनहूँ के का आशा ।।२।।
नौ हूँ मरिहैं दसहू मरिहैं, मरिहैं सहज अठासी ।
तैंतिस कोट देवता मरिहैं, परिहैं काल की फाँसी ।।३।।
नाम अनाम रहै जो सबदा, दूजा तत्व न होई ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भटकि मरो मत कोई ।।४।। शब्द ।।

—शब्दावली भाग २, चितावनी, पृ० २३

तुलना

अवधू रह मुर्दे का गांव ।[१]

जोगी जती तपै सन्यासी मरि गये सभ ठावँ ।।

ब्रह्मा विस्नु महेसर मरि गयौ सनकादिक जेहि कहिए ।

गौरी गनपति फनपति मरिगौ अमल ब्रह्म कौ लहिए ।।

मच्छ कच्छ बराह सरूपी बावन सौं मरि गयऊ ।

राम क्रिस्न सीतापति कहिए मरि मरि या जग भयऊ ।

कोटि पैगंमर पीर अउलिया गौर कफन में भयऊ ।

नेकी बदी कागज जग माहीं मरि मरि या सभ गयऊ।।

मुआ सभै खोवौ तुम करके ऐसा जग है बवरा ।

आपन थीर चीन्हैं नहिं मूरख तीरथ मंका दवरा ।।

धोखे सभ जग मारि उड़ाया धोखे काहु न मारा ।

बेद किताब देखा दिल दरिया उतपति परले डारा ।।

—शब्द(परिशिष्ट), पृ० ११३, संत कवि दरिया एक अनु०

चल चल रे भंवरा कवल पास । तेरी भंवरी बोलै अति उदास ।।१।।

औंघ करत बई बार बार । तन बन फूल्यौ डार डार ।। २।।

बनस्पती का लियौ है भोग । सुख न भयौ तन बढ़्यौ रोग ।।३।।

दिवस चार के सुरंग फूल । तेहि लखि भंवरा रह्यौ भूल ।।४।।

वनस्पती जब लागै आग । तब भंवरा कहाँ जै हौ भाग ।।५।।

पुहुप पुराने गये सूख । तब भंवरा लगि अधिक भूख ।।६।।

उड़ि न सकत बल गयौ छूट । तब भंवरा रोवै सीस कूट ।।७।।

"चहुँ" दिसि चितवै मुंह पढ़ाय । अबले चल भंवरी सिर चढ़ाय ।।८।।

कहै कबीर ये मन के भाव । इक नाम बिना सब जम के दाव ।।९ ।। शब्द ३१।।

—शब्दावली भाग २, (बेलवेडियर प्रेस) चितावनी, पृ०५१

तुलना

चलु चलु रे भंवरी भंवर संग । बिनु रे भंवर तौर कवन रंग ।।

काया कवल मन फूल सुबास । ववना मरूआ चंपा बास ।।

केवलि चमेलि प्रिय गुथिय हार । सोधा बरचित करु सिंगार ।।

---

१. तुलना कबीर ग्रन्थावली (परिषद्) पद १०५, पृ० ६१ एवं मलूकदास हस्तलिखित प्रति, पृ० ५३

प्रेम आनन्द सुख भएव बैलास । सोह सोहागिन पिया के पास ।।
अजर अमर बर मीलवै कंत । मेटेउ कलपना दुख अनंत ।।
भंवरा भंवरी भेट अनंद । जैसे जल कुमुदिनि उदित चंद ।।
कुसुम फुले बन बिबिध फूल । दुमलता फूले प्रेम मूल ।।
भंवरा भंवरी करु अनंद । परसु पिया पद तेजु दंद ।।
नाम सुमिरु जग अमर सार । बेद बिहित सब करु बिचार ।।
ज्ञान पुरुष है भक्ति नारि । कहैं दरिया तन मनहिं वारि ।।

—शब्द(परिशिष्ट)पृ० १७३-७५ संत कवि दरिया एक अनुशीलन

नित मंगल होली खेलौ, नित बसंत नित फाग ।। टेक ।।
दया धर्म की केसर घोरो, प्रेम प्रीति पिचकार ।
भाव भगति से भरि सतगुरु तन, उमंग उमंग रंग डार ।।१।।
छिमा अबीर चरच चित चंदन, सुमिरन ध्यान धमार ।
ज्ञान गुलाल अगर कस्तूरी, सुफल जनम नर नार ।।२।।
चरनामृत परसाद चरन रज, अपने सीस चढ़ाव ।
लोक लाज कुल कान छाड़ि के, निरभय निसान बजाव ।।३।।
कथा कीरतन मंगल महोछव, कर साधन की भीर ।
कभी न काज बिगरिहै तेरो, सत सत कहत कबीर ।।४।। शब्द ६ ।।

— शब्दावली भाग २ (बेलवेडियर प्रेस), होली, पृ० ८५-८६

तुलना

सभ हंसा सजन समाज होरी खेलहीं ।
अगर कुम कुमा नाम सुगन्ध है प्रेम भक्ति निजु सार ।
सेत बरन सिर छत्र बिराजे बाजत अनहद तार ।।
परिमल बास प्रेम रंग छिरकहिं कामिनि कर लिए हाथ ।
कोटि कामिनि जाके चंवर डोलवहिं बैठे हंसा राज ।।
एक रूप सब हंस बिराजहिं बरनि कबिनि अब लाज ।
धन्य धन्य फागु खेलहिं एह दरिया तेजि सकल भ्रमलाज ।।

—शब्द (परिशिष्ट)पृ०१८८, संत कवि दरिया एक अनुशीलन

~~१. तुलना कबीर ग्रन्थावली~~

'कबीर ग्रन्थावली' एवं 'दरिया शब्द' की तुलना

मन रे संसार अंध कुहेरा ।
चिरि प्रगटा जम का घेरा ।।टेक।।
बुत पूजि पूजि हिन्दू मुए तुरक मुए रूज जाई ।
जटा धरि धारि जोगी मुए तेरी गति किनहुं न पाई ।।१।।
कबित पढ़े पढ़ि कबिता मुए कापड़ी कै दारै जाई ।
केस लूंचि लूंचि मुए बरतिया इनमैं किनहुं न पाई ।।२।।
धन संचते राजा मुए गढ़िले कंचन भारी ।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मुए रूप देखि देखि नारी ।।३।।
राम नाम बिनु सभे बिगूते देखहु निरखि सरीरा ।
हरि के नाम बिनु किनि गति पाई कहे जुलाह कबीरा ।।४।। पद ८५।।

—कबीर ग्रन्थावली(परिशष्ट), पृ० ५०

तुलना

अवधू ऐसो लोक के सागर ।
सागर सभते ज्ञान बिचारे रह तो है भव भागर ।।
जोग करंते जोगी थाके भोग करंते भोगी ।
ज्ञान बिना मुनिवर सब थाके भए गए सब रोगी ।।
दान करंते दानी थाके राज करंते राजा । है
वेद पढ़ंते पंडित थाके गनिका के नहिं लाजा ।
बैल थाकि हरवाहा थाके धरती हंसि के बोले ।
सब घर काल कलोलह खेले बिनु पशु जगु मैं डोले ।।
ब्रह्मा बिस्नु महेसर थाके तिर्गुन राम कन्हाई ।
तीनि लोक में आगि लगाया भागि कहां अब जाई ।।
सतगुरु खोज करे जो कोई सत के नाव बिराजे ।
कहै दरिया टूटे ना फाटे बिनु गुन जल मैं छाजै ।।

—शब्द (परिशिष्ट),पृ० ११२ संत कवि दरिया

कबीर ग्रन्थावली एवं दरिया सागर की तुलना :—

पांणी हू तैं पातरा - धूंवां हूं तैं झीण ।
पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीरै कीन ।।३।।

—कबीर ग्रन्थावली (परिशष्ट), पृ० २३८

तुलना

पानी पवनहुं ते मन तेजा । जहवां कहो तंहवां मन भेजा ।।१३३ ।।

—दरिया सागर, पृ० १३

कबीर-साहित्य के अतिरिक्त कबीर पंथी-साहित्य में भी कुछ ऐसे स्थल हैं जो दरिया साहब की रचनाओं में यत्किंचित शब्दांतर के साथ प्रयुक्त किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं —

'अनुराग सागर' एवं 'दरिया सागर' की तुलना

सकल जीव हैं साहिब केरा । मोह विवश जिव परे अंधेरा ।।

—अनुराग सागर, पृ० ८५

तुलना

सभै जीव साहब कर अहई । बूझि विचारि ग्यान एह कहई ।। ६११ ।

—दरिया सागर, पृ० ६१

कबीर पंथी निर्भय ज्ञान एवं दरिया पंथी निर्भय ज्ञान की तुलना

वेदहिं पंडित जगत भुलाना । सत पुरुष का मर्म न जाना ।।

—निर्भय ज्ञान, पृ० २५ (कबीरपंथ)

पंडित बेद जो करे बखाना । आदि अंत का मरम न जाना ।।

—निर्भय ज्ञान , पृ० ४ (दरियापंथ पांडु)

ज्ञान सागर एवं ज्ञान रतन की तुलना —

टूट्यो धनुष धुम भइ भारी । परसराम तब लाग गुहारी ।

—ज्ञान सागर, पृ० ३७

तुलना

टूटेउ धनुष [illegible] सब्द भौ भारी । परसुराम सुनि लागु गोहारी ।।१६०

—ज्ञान रतन, पृ० १३२

'अनुराग सागर' एवं 'ज्ञानदीपक' की तुलना :—

कह बेदन ते मूरख नारी । येहि बाहु दे बालक हारी ।।

—अनुरागसागर, पृ० १०७

तुलना

कम गुह बालक के दुई नारी । बारह तुरंग उर्वा पैहुकारी ।।

—ज्ञानदीपक, पृ० ११०

'भव तारण बोध, एवं दरिया सागर तथा' ज्ञान स्वरोदय' की तुलना :—

तन मन धन सब अर्पण कीजे । प्रेम सहित ऐसो सुख लीजे ।।
पांच तत्व को भोजन कीजे । ब्रह्म आत्महि तृप्त करीजे ।।

तुलना —भवतारण बोध, पृ० ५८

तन मन वारि प्रेम पगु दीन्हा । पद पंकज निजु हिरदै चीन्हा ।।५६६ ।।
पांच पचीस तीनु कर रीती । मन कहं ऑटि सभन्हि कहं जीती ।।१०५।।

—ज्ञानस्वरोदय, पृ० २५६

'आत्मबोध' तथा दरिया शब्द' की तुलना

गगन गर्जें तहां नीर निर्झर झरै, परखि पीवै कोई संत सूरा ।
कहैं कबीर मस्तान माता रहै, बिना मृदंग बजै तूरा ।।
मांहि मंथान मन रई को फेरना, होय घमसान तहां गगन गाजै ।
उठै झंकार तहां नाद अनहद घुरै त्रिकुटी महल के बैठ छाजै ।

—आत्मबोध, पृ० ११

तुलना

जहां गगन झरि अगम तहांनिगम नहिं नेम तहां प्रेम परगास निज्जुप्यारा ।
तहां शब्द सतसार गुलजार गुलफुल मधु देखि मराल नीर छीर न्यारा ।
तहां संत सुबुधि सरवर सारंग झरि झरत झरि बुंद इह नीर प्यारा ।
जहां मूल प्रगास भौ अगह इह कमल तहां देखि दरिया कलि कर्म जारा ।।

—शब्द (परिशिष्ट), पृ० ७३ संत कवि दरिया एक अनु०

जटा धारी घने यती योगी बने, पहिर मुद्रा लिये कानफारी ।
एक मौनी रहै एकअक त्यागी रहै, एक दण्डी रहै एक ब्रह्मचारी ।।
एक नागा रहै सर्व लज्या तजै, एक कैद बबूद को नाथ धारी ।
एक बांधि पग घुंघरू निरत करता रहै, स्वांग कैसे करै भर्मभारी ।।
एक आकाश दृष्टा रहै मौनी रहै एक उर्द्धबाहु रहै नखधारी ।
एक भोगी रहै भोग भोगतः रहै, एक बनरक छोटी कसि काम जारी ।।
कहां लौं कहुं बहु रूप को पेखनो, आप आपन पो सब मैंपिसारी ।
एक अन्न भोजन तजै दूधरनरहैं, एक दूध भोजन करै दुधाहारी ।।
एक तिलक माला किये टोप सेला लिये, एक गुदड़ी पहरिकारे किन्ध धारी ।
एक पृथि है मुर्ति नभ धारिधरी, एक संत धुनि कारती अधिकारी ।।

—आत्मबोध, पृ० १६-१७

तुलना

कहिं जो गिया जुक्ति से जोग करै कहिं लाए कपाट गगन नारी ।
कहिं ध्यान प्रगटकहिं ज्ञान गावै कहिं ताल म्रिदंग ले मंगल भारी ।
कहिं झूलना झूलि रेसम डोरी कहिं पंच अगिनि जल बांधि बारी ।
कहिं कर माला तीलक दीए तीरथ भरम में आपु हारी ।
कहिं भूख मारै कहिं प्यास टारै कहिं आपने आप से तन जारी ।।
बहु रंग का पेखना सभ है रे येह जानि जहान में जीव हारी ।
सब्द सुरति है मूल मेरे दिबिद्रिस्टि में द्रिस्टि नहीं डारी ।
कहें दरिया जनि पचि मरो यह सब्द की सांगि ले जक्त भारी ।।

शब्द (परिशिष्ट), पृ० ६८

जो व्यक्ति ग्रन्थ-ज्ञान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं,उनके प्रति कबीर पंथी-साहित्य में कहा गया है :—

अंध सो दरपन बेद पुराना, दरबी कहा महा रस जाना ।
जस खर चन्दन लादेउ भारा, परिमल बास न जाने गंवारा ।।रमैनी ३२बीजक

इसी प्रकार दरिया पंथ में भी बाह्यकर्म विश्वासियों को हेय दृष्टि से देखा गया है :-

ऊपर हंस भितर है कागा कर्म कमावै खोटा ।
आगे नाथ ना पाछे पगहा एहि बिधि गदहा मोटा ।।

--शब्द(परिशिष्ट) संत कवि दरिया एक अनुशीलन

इस प्रकार दोनों पंथों के साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते जिनमें रचयिताओं ने अपनी मुहावरे दार भाषा के माध्यम से काव्य सौन्दर्य एवं वर्ण्य विषय के स्पष्टीकरण में सशक्तता लाने का प्रयास किया है।

ब. उलटबासियां —

दोनों पंथों के साहित्य में उलटबासियों का भी भरपूर प्रयोग हुआ है, उसे लाक्षणिक भाषा का नाम दिया जाता है, जिसे कि कबीर तथा अन्य परवर्ती संत कवियों ने अपने काव्य कौशल के लिए अनिवार्य समझा है। इन निर्गुणि कवियों ने इस परम्परा को बौद्ध सिद्धों और नाथ-पंथ के योगियों से विरासत के रूप में प्राप्त किया है। इन सांकेतिक पदावलियों के माध्यम से इनके काव्य की अभिव्यंजना शक्ति और भी

मुखरित हो उठी है, परिणाम स्वरूप वर्ण्य विषय में अत्यधिक रोचकता आ गई है। इस जगत् की अन्ध परम्परा में समस्त जीव फँस कर प्राय: सीधी राह से उलटी राह के पथिक बन जाते हैं। इसीलिए उन्हें इन्हीं उलटी अवस्थाओं का रूपक देकर उनके दोषों का अधिक स्पष्टीकरण किया गया है। इन छंदों को उलटा भी नाम दिया जाता है, इनमें लाक्षणिक भाषा एवं विरोधोक्तियों की भरमार सी दृष्टिगत होती है। इन अटपटे कथनों से कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, जिसके गूढ़ अर्थों से अनभिज्ञ पाठक सहसा स्तम्भित सा रह जाता है।

कबीर-पंथ एवं दरिया-पंथ के साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि इनके कवियों ने अपने विरोधोक्तियों में अपने जीवन के सन्निकट विविध कार्य व्यापारों से प्रतीकों का चुनाव किया है, जिसके माध्यम से उन्होंने जगत् के प्रपंच सहजानुभूति, ज्ञान, विरह, आत्मदर्शन, माया, काल, सृष्टि तथा मन आदि गूढ़ विषयों का भली भाँति स्पष्टीकरण किया है। इनमें उक्ति वैचित्र्य का ही प्राधान्य है। इनको समझने के लिए हमें अभिधा की अपेक्षा लक्षणा पर ही अधिक विचार करना होगा। अब इनके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं:—

एक अचंभौ देखा रे भाई।
ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।। टेक।।
पहिले पूत पिछै भइ माई। चेला के गुर लागै पाई।।१।।
जल की मछरी तरवरि ब्याई। कुताकों लै गई बिलाई।।२।।
बैलहिं डारि गौनि घरि आई। घोरे चढ़ि भैंस चरावन जाई।।३।।
तलि करि पता (?) उपरि करि मूल। बहुत भाँति जड़ लागे फूल।।४।।
कहै कबीर या पद कों बूझै। ताकों तीनिउं त्रिभुवन सूझै।।५।। शब्द ११६।

—कबीर ग्रन्थावली (परिशिष्ट), पृ० ८८

उपर्युक्त पद में समस्त कार्य व्यापार में विपरीतता है, यही उलटबासी का अपना प्रमुख गुण है, अब उसमें गूढार्थ के अनुसार पूत - जीव, माता-माया, गुरु-शब्द चेला- जीवात्मा, सिंह-ज्ञान, गाय-वाणी, मछली-कुण्डलिनी, तरुवर-मेरुदण्ड, कुत्ता-अज्ञानी, बिल्ली-माया, बैल-सुषुम्ना नाड़ी, फल-फूल-चक्र और सहस्र दल कमल, घोड़ा-मन, भैंस-तामसी वृत्तियाँ एवं बैल-पंच प्राण के प्रतीक ज्ञात होते हैं। यही गूढार्थ प्रतीक ही इनकी कुंजी है।

~~गूढ़ार्थ प्रतीक ही इनकी कुंजी हैं।~~

इसी प्रकार दरिया पंथ के साहित्य में प्रयुक्त उलटवासी का उदाहरण द्रष्टव्य है :—

बन में सिंध चरावै गाई।
इंधर्लीर फिरै सांझहि देत दुआई ।।
बकरी लेके बीगे सौंपा जतन करोजिनि चीखौ।
एको रोंवा जो बिस्तुर होइहै धरिधरि मुगरिन्ह पीटौ ।।
मूस मजारहि घर में राखा नित उठि खेलौ धमारी।
मूस गावै तुम अरथ बिचारौ ऐसी भक्ति हमारी ।।
माछु की मोटरी गीधहिं सौंपा आइ तुम्हारी पारी।
तौलि देउं जो घटिहै कबहीं फारौ चोंच पसारी ।।
मेढक लेई भुंअ गहि सौंपा राखहु माल हमारी ।।
मंदन जारि जो कबहीं तकि हौ गडुवन्हि दांत उपारी ।।
उलटा पलटा सब्द हमारा साधु का महिमा ऐसा।
कहै दरिया उलटा सो सुलटा है जैसे का तैसा ।।

—शब्द(परिशिष्ट), पृ० १२६ संत कवि दरिया एक अनुशीलन

संतो बोले ते जग मारै।
अनबोले ते कैसे कै बनि है, शब्दहि कोइ न विचारै।
पहिले जन्म पुत्र को भयऊ, बाप जन्मिया पाछे।
बाप पूत की एकै नारी, ई अचरज को काछे।
दुंदुर राजा टीका बैठे, विषधर करै खवासी।
श्वान बापुरा धरिन ढांकनो, बिल्ली घर में दासी।
कार दुकार कार करि आगे, बैल करै पटवारी।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो भैंसे न्याव निबेरी ।। शब्द ६।

—बीजक, पृ० ११०-१११

तुलना

साधो गल बमरा है साधु।
धोबिया के घर धरम सोवतुहै प्रभु आइ घर बाधु ।।
मोर पता घर भौंरा भूली मक्ने मैं को बोरी।

उलटा कुंभ भरै जल नाहीं बगुला खोजै भौरी ।।
मूस मंजारहि भंस गाईं मिलि जुलि मंगल गाईं ।
सरपा आगे नेउरी नाचै चीन्हि सौ नेवते आईं ।।
व्याधर कै घर पढ़े पुरानौ दादुल मै गौ बक्ता ।
कीचस आगे चिखुर वियानी भालु भई है भक्ता ।
आगि लगा के घर मैं पैठा बाहर पहरू बोले ।
नवौ नारि बहत्तरि कोठा मूल दुआरा खोले ।।
हंसिकै पैठे रोए कै निकले ऐसी हरि की बाजी ।
कहैं दरिया कोई सब्द बिचारै होए पंडित भाइकाजी ।।

—शब्द(परिशिष्ट), पृ० १२७ संत कवि दरिया एक अनुशीलन

को अस करै नगर कोतवरिया, मांसु फैलाय गीध रखवरिया ।
मूस भौनाव मंजार कंडिहरिया, सोवै दादुर सर्प पहरिया ।
बैल बियाय गाय भई बंझा , बछुरहि दुहिये तिनि तिनि संझा ।
नित उठि सिंघ स्यार सौं जूझै, कबीर का पद जन बिरला बूझै ।। ६५शब्द

—बीजक, पृ० २०६-१०

तुलना

अवधू ऐसो ज्ञान समोई ।
जो कोई गुर ज्ञानी मिले सो यह सब्द बिलोई ।।
सिंघ सियारै प्रीति भई है दादुल सर्प सहाई ।
सुगना पोसि बीलि घर राखै एह अचरज नहिं भाई ।।

—शब्द(परिशिष्ट) संत कवि दरिया एक अनुशीलन,पृ०११२

दुनिया भामर भूमर अरुभी ।। टेक ।।
अपने सुत के मुंडन करावै, छूरा लगन न पावै ।
अजया कै चिंगना धरि मारै, तनिकौ दया न आवै ।।१।।
लेके तेगा चला बाबुरा, अजया कै सिर काटा ।
पूजा रही सो मालिन लै गइ,; ठाकुर मूरति चाटा ।। २।।
माटी कै चोतरा बनाइन, बुवा मुत मुत जाई ।
जो देउना मैं सक्ती होती, बुवा धरि धरि खाई ।।३।।
गोबर लै कै गौर बनाइन, पूजैं, लौंडी मैं जुलकाई।

यह बोलै वह बोल न जानै - पानी मैं डुबकाई ।।४।।

सोनै की इक मुरति बनाइन, पूजन कौ सब धाई ।।

बिपति पड़े गहनै धरि खाई, भलकीन्ह्यौ सेवकाई ।।५।।

देवी जी कौ खस्सी भेड़ा, पीरन कौ नौ नैजा ।

उन साहिब कौ कुछ भी नाहीं, बाँह पकरि जिन भेजा ।।६।।

निरगुन आगे सरगुन नाचे, बाजे सौहंग तूरा ।

चेला के पांव गुरू जी लागैं, यही अचम्भा पूरा ।।७।।

जाति बरन कुनौ हम देखा, झूठी तन की आसा ।

तीनौं लोक नरक मैं बूड़े बाम्हन के बिस्वासा ।।८।।

रही एक की भइ अनेक की, बेस्या सख्ख भतारी ।

कहैं कबीर केहि के संग जरिहौ, बहुत पुरूष की नारी ।। ९।।शब्द११।।

—शब्दावली भाग २, पृ० ३२-३३

तुलना

साधो एक बन भाकर भड़ुआ ।

लावा तितिर तेहि माँह भुलाने ज्ञान बुझावत कौआ ।।

बोली नाचे मूस मिरदंगी , खरहा ताल बजावे ।

छकत छकत चीता आवे स्यार तीखु बने धरि खावे ।।

कच्छप बैद ब्याकरण लागे रौरन: तान सुनाया ।

मर्कट मछुमनी सुनन लागी भैंसा कुसल बँधाया ।

ब्यारिन के सिखवन लागा ; बेहुन मम उपदेसा ।

डैन पसारी गदहरा आया लिखि पकरि धरि कैसा ।।

घर बरै तब धूर बतावै आगी लाया पानी ।

तीनि लोक मैं ढूंढ़न लागे घर मैं बैठी रानी ।

मोटरी फाटी टाटी उड़ि गइ टेंढा भया बिलाई ।

कहै दरिया एह जग का कौतुक जल देखि मीन पराई ।।

—शब्द (परिशिष्ट) , पृ० १२५-१२६

सहायक ग्रन्थ

कबीर और उनसे सम्बन्धित अन्य रचनाएं :-

उत्तरी भारत की संतपरम्परा -श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, सं० २००८वि

कबीर- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर- कार्यालय, बम्बई, १९५५
(पांचवां परिवर्द्धित संस्करण)

कबीर एंड हिज फालवर्स--डा० एफ०ई०के०, एसोसिएशन प्रेस, कलकत्ता, १९३१ ई०

कबीर का रहस्यवाद--डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, सन् १९६६

कबीर साहित्य की भूमिका--डा० रामरतन भटनागर, प्रयाग, २००७ वि०

दि निर्गुन स्कूल आव् हिन्दी पोएट्री -डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, द इण्डियन बुक शाप,
बनारस, १९३६ ई०

कबीर साहित्य की परख--श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भं०, प्रयाग, सं० २०११ वि०

कबीर साहित्य की भूमिका--डा० रामरतन भटनागर, प्रयाग, २००७ वि०

कबीर ग्रन्थावली--श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१३,छठां संस्क०

कबीर ग्रन्थावली--डा० पारसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय,
अक्टूबर १९६१, (प्रथम संस्करण)

कबीर वचनावली--श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, संपा० नागरी प्रचारिणी सभा,काशी, १९१६

कबीर और कबीर पंथ का तुलनात्मक अध्ययन--डा० केदारनाथ द्विवेदी,हिन्दी साहित्य
सम्मेलन प्रयाग, सन् १९६५ ई० प्रथम संस्करण

कबीर साहब की शब्दावली (भाग १) प्रकाशक बेलवेडियरप्रेस, प्रयाग सन् १९४६, छठां संस्क०

कबीर साहब की शब्दावली (भाग २) सन् १९४६ , पांचवां प्रकाशन

कबीर साहब की शब्दावली (भाग ३) सन् १९४५ , ,,

बीजक मूल स्वर्वेद कार्यालय, सीयाबाग , बड़ौदा, प्र०सं०, १९४१ ई० ।

योग प्रवाह--डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, काशी विद्यापीठ,बनारस, सं० २००३वि०

संत कबीर--डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, सन् १९५७ ई०

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास --डा० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद , १९५७

हिन्दी साहित्य का इतिहास --आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा,
बनारस, सं० [illegible] वि०

कबीर पंथी रचनाएं :—

कबीरपंथी अनुराग सागर—स्वामी युगलानन्द संपा० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
अमर मूल, बम्बई, १६८१ वि०
अमर सिंह बोध, बाम्बे, १६७८ वि०
आत्मबोध, बम्बई, २००६ वि०
आगम निगम बोध, सम्वत् १६८३
उग्रगीता, बम्बई, १६८३ वि०
कर्मबोध, बम्बई, १६८१ वि०
कमाल बोध, बम्बई, १६८१ वि०
कबीर चरित बोध, बम्बई, १६८३
कबीर बानी, बाम्बे, १६८३ वि०
कबीर मन्सूर, स्वर्वेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, २०१३ वि०
कबीरोपासनापद्धति, युगलानन्द बिहारी, बम्बई, २००५ वि०
कबीरपंथी बालोपदेश, बम्बई, सम्वत् १६७१
कबीर पंथी शब्दावली, सं० युगलानन्द बिहारी, बम्बई, सं० १६८८
गरुड़ बोध, बम्बई, सं० १६८० वि०
चौका स्वरोदय, ,, १६८१ वि०
चौका चन्द्रिका, महन्थ श्री सुकृतदास जी खरसिया, सं० २००५
चौका विधान, सीया बाग, बड़ौदा, सं० २००५
जगजीवनबोध, बम्बई, सं० १६८०
जीवनधर्मबोध, ,, सं० १६८७ वि०
तीसायंत्र, कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा
धरमदास जी की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६६० ई०
धर्मदास बोध, सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, म०प्र०सं०, १८१३
धर्म बोध, बम्बई, सं० २००६
निर्भयज्ञान सरस्वती, विलासप्रेस, नरसिंह पुर, म०प्र०सं० १८६३
निरंजन बोध, बम्बई, संवत् १६८१
पंचमुद्रा, बम्बई, १६८१
पूर्णिमाव्रत कथा, बड़ौदा, सं० २००६

पूनोमाहात्म्य बड़ा, महन्थ प्रसाददास जी, सरस्वती प्रेस, म०प्र०, १६२७
बीजक सुख निधान, नरसिंहपुर, म०प्र०सं० १८६३ ।
कबीरसिंह बोध, बम्बई सम्वत, १६७८
भोपाल बोध, बम्बई,सं० १६८०
भवतारण बोध,बम्बई, १६८१ वि०
मुक्तिबोध, बम्बई, सं० १६८१ वि०
मूलनिर्णय सार, श्री पूरण साहब, बुरहानपुर, सं० २०१३
मूल संध्यापाठ, स्वसम्वेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा
रामरहस, साहब पंचग्रन्थी, टीकाकार राघवदास, बड़ौदा, सं० १६८८
विवेक सागर, बम्बई, सं० २००६
सुरति सम्वाद, मदन साहब आचार्य गद्दी, बड़ौदा, सन् १६५४
संध्यापाठ, स्वसम्वेद कार्यालय सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १६४८ ई०
स्वसम्वेदबोध, बम्बई, सम्वत् २००६
सर्वज्ञ सागर, बम्बई, सं० २००६
हनुमानबोध, बम्बई सं० १६८०
स्वांस गुंजार , बम्बई, १६८३ वि०
शब्दविलास, मदन साहब, आचार्य गद्दी बड़ैया, सम्वत् १६६५ वि०
ज्ञान स्थिति बोध, बम्बई, १६८१ वि०
ज्ञान प्रकाश ,, १६७८ वि०
ज्ञानबोध, बम्बई, सं० १६८१ वि०
ज्ञान सागर, बम्बई, सं० १६६४

<u>दरिया साहब से सम्बन्धित रचनाएं</u> -

अग्रज्ञान, पाण्डुलिपि--बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
अमरसार ,, ,,
अमरसाज्ञान ,, ,,
गणेशगोष्ठी बेलवेडियर प्रेस प्रयाग
दरियासागर, डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना
निर्भयज्ञान, पाण्डुलिपि
[illegible]

विवेक सागर, पाण्डुलिपि

ब्रम्हचैतन्य, पाण्डुलिपि

ब्रह्मविवेक (दरिया ग्रन्थावली)

भक्तिहेतु (दरियाग्रन्थावली)

मूर्तिउखाड़ पाण्डुलिपि

सहसानी (सहसरानी) पाण्डुलिपि

शब्द (पाण्डुलिपि)

ज्ञानदीपक, साधु चतुरीदास, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

ज्ञानमूल (दरिया ग्रन्थावली)

ज्ञानरतन (दरिया ग्रन्थावली)

ज्ञानसरोदय (,,)

अन्य सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

संतचरनदास, डॉ॰ त्रिलोकी नारायण दीक्षित, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग

रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर

कवितावली, ,, ,,

संस्कृत

ईशावास्योपनिषद्, आनन्दाश्रम संस्करण

एतरेयोपनिषद, पूना का आनन्दाश्रम संस्करण

केनोपनिषद् ,, ,,

कठोपनिषद् ,, ,,

कैवल्योपनिषद्, निर्णयसागर का संस्करण

छान्दोग्योपनिषद्, आनन्दाश्रम का संस्करण

तैत्तिरीय उपनिषद् ,,

तैत्तिरीय ब्राह्मण ,, ,,

दास बोध, श्री समर्थ रामदास स्वामी कृत, धुलिया सत्कार्योत्तेजक सभा की प्रति का चित्रशाला प्रेस में छपा हुआ हिन्दी अनुवाद ।

नारदसूत्र, बम्बई संस्करण

पातंजल योग सूत्र, तुकाराम तात्या का संस्करण ।

पंचदशी, निर्णयसार का सटीक संस्करण ।

बृहदारण्यकोपनिषद्, आनन्दाश्रम संस्करण

श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य, लोकमान्य, गंगाधर तिलक अनुवाद माधव एवं सप्रे, १९२८ ई०

श्रीमद्भागवतपुराण, निर्णयसार का संस्करण

मत्स्य पुराण, आनन्दाश्रम का संस्करण

वेदान्तसूत्र ,, ,,

सांख्य कारिका, तुकाराम तात्या का संस्करण
